हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी-माला—४३

श्रीरामचरितमानसकी भूमिका



लेखक

श्रीरामदास गौड़



प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेंसी

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता,

देहली और काशी।



प्रथम संस्करण २०००

१९८२

अजिल्द ३)
सजिल्द ३॥)

प्रकाशक—
वैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
हिन्दी पुस्तक एजेंसी
१२६ हरिसन रोड, कलकत्ता।

मुद्रक—
किशोरी लाल केडिया
वणिक प्रेस,
1, सरकार लेन, कलकत्ता।

अनुवचन

यह भूमिका मानसके अनुशीलन करनेवाले पाठकोंके लिये पाच खडोंमें सग्रह की गयी है। पहले खंडमें शिक्षा और व्याकरण, दूसरेमें शका समाधान, तीसरेमें कथाभाग, चौथेमें शब्द-कोष, पाचवेंमें ग्रन्थकारकी जीवनी और विचार दिये गये हैं। इसका सग्रह और सम्पादन दो वर्षों के भीतर सभी दशाओंमें हुआ है। जब जब लेखक बीमार था, तब तब सम्पादन और प्रूफ-सशोधनमें भारी भूलें रह गयीं। यदि शुद्धिपत्र दिया जाय तो कई पृष्ठ व्यर्थ बढेंगे पर पाठकोंको विशेष लाभ न होगा, क्योंकि ऐसे पाठकोंकी सख्या हजारमें शायद एक दो होगी जो पहले शुद्धिपत्रानुसार सशोधन कर लेते हैं, तब पढना आरम करते हैं। चतुर पाठक स्वय त्रुटियोंको सुधार लेते हैं। ऐसा अधिक होता है। इसी आशापर अनेक भूलें होते हुए भी शुद्धि पत्रका व्यथ-प्रयास लेखक छोड देता है।

गोस्वामीजीका चित्र हमारे परम मित्र प्रसिद्ध कवि और रसिक रायकृष्णदासकी चीज है। उनके निकट इस चित्रकी शुद्धता सिद्ध है। कहते हैं कि यह चित्र लगभग १६६०—७० का होगा। इसी चित्रमें सवत १६४१ का उनका हस्ताक्षर दे दिया गया है। इस पुस्तकमें जो चित्र दिया जाता है, उसमें यह नवीनता है। पाठकोंके सुभीतेके लिये मानसकारके हाथके अक्षरो के चित्र भी दिये गये हैं। पचनामेकी फोटोके लिये श्रीमन् महाराजाधिराज काशीनरेशके प्रधानामात्य श्रीमन् कर्नल विध्येश्वरीप्रसादसिंहकी कृतज्ञता प्रकट किये विना नही रह सकता।

एजेंसीने मानसका शुद्ध पाठ स्टीरियो कराकर सस्ते दामोंपर निकाला है। यह भूमिका उसी सस्करणपर है। यह

भूमिका पहली जिल्द है और रामचरितमानस दूसरी। परन्तु उन पाठकोंके सुभीतेके लिये जो भूमिका मोल लेनेमें समर्थ नहीं हैं, रामचरितमानसकी आदिमें गोसाईंजीकी संक्षिप्त जीवनी और अन्तमें एक संक्षिप्त शब्दकोष दिया जाता है। इस बार बड़ी सावधानीसे शोधकर स्टोरियो कराया गया है। सर्व साधारणके सुभीतेके लिये सुलभ मूल्यपर यह संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है मानसके प्रेमी सम्पादकके इस परिश्रमसे पूरा लाभ उठावेंगे।

बड़ी पियरी, काशी।
विजया १,० १९८२ } रामदास गौड़

राम राम राम राम राम

गुरुवर

गोस्वामी तुलसीदासजीके चरणोंमें

श्रद्धांजलि

राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम

विषय-सूची

रामचरितमानसकी भूमिका

पहला खण्ड

दूसरा खण्ड

तीसरा खण्ड

चौथा खण्ड

पांचवां खण्ड

चित्र-सूची

पृष्ठके सामने

मंत्र महामनि विषय व्यालके
मेटत कठिन कुअंक भालके



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

पहला खण्ड

शिक्षा और व्याकरण



श्रीरामचरितमानसकी
भूमिका
पहला खण्ड



रामचरितमानसकी शिक्षा और व्याकरण

१—प्राकृत और संस्कृतका भेद

सभी देशोंमें और सभी कालोंमें भाषाके दो रूप हुआ करते हैं, प्राकृत और संस्कृत। प्रकृति, प्रजा या साधारण जनसमुदाय—जिसमें पौर और जानपद दोनों परिगणित हैं—जो भाषा बिना किसी बनावटके बोलता है और जिसमें अपने मनोभाव प्रकट करता है, वह 'प्राकृत' कहलाती है। शिष्ट और शालीन पौर या पंडित या शिष्ट समाजमें रहनेवाले जैसे अपने आचार व्यवहारपर ध्यान रखते हैं, वैसे ही अपनी भाषाके सौंदर्य, सौष्ठव और शीलपर भी ध्यान रखते हैं, उसमें कोमलता और माधुर्य्य लानेका प्रयत्न करते हैं, विचार और कल्पनाके विकाससे नये मुहावरे, नयी परिभाषा, नयी रचनाका समावेश होता जाता है, नियम और प्रयोगकी समानतापर निगाह रहा करती है, शिष्टोंका



गोस्वामी तुलसीदास

किसीकी भाषा तो रह नहीं गयी थी। ऐसी ही अवस्थामें गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपनी कविताकी भाषा देश काल और परिस्थितिके अनुसार अधिकाश अवधी, कुछ ब्रजभाषा, कहीं कहीं बुन्देलखण्डी और कहीं स्पर्शमात्र भोजपुरिया रची है।

१–राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा, बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा
स्रवन समीप भये सित केसा, मनहु जरठपनु अस उपदेसा
नृप जुवराज राम कहुँ देहू, जीवन जनमु लाहु किन लेहू।

(अवधी)

२–अवलोकि हौं सोच बिमोचनकौं ठगिसी रही जे न ठगे धिक से

(ब्रजभाषा)

३–ए दारिका परिचारिका करि पालवी करुनामई
अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यो दई

(बुंदेलखण्डी)

४–सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल, कहि अस कोपि गगनपथ धायल

(भोजपुरिया)

मानसकार गोस्वामीजीके समयमें आजकलकी खडी बोली जो वस्तुत प्रान्त विशेषकी प्राकृत थी, संस्कृतके पदपर नहीं आयी थी। यही बात है, कि गोस्वामीजीने स्थलस्थलपर जहा भाषाकी चर्चा है, एक ओर "संस्कृत' का विचार किया है तो दूसरी ओर "प्राकृत" "भाषा" "ग्राम्य" वाणी आदिका प्रयोग किया है।

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच,
काम तो आवे कामरी, का लै करे कमाच।" [दोहावली]

"भाषा निबन्धमति मजुलमातनोति"

"भाषा बद्धमिद चकार तुलसीदास"

जनताकी बोलचाल जबतक व्याकरणके साँचेमें ढल नहीं जाती या नियमोंके शिकजेमें कस नहीं जाती तबतक उसका रूप नित्य बदलता रहता है, उसमें निरन्तर विकार होते रहते हैं और यही बात स्वाभाविक है, प्राकृत है, जीवन-मरणका कारण है। व्याकरणके कड़े नियम उसे विकारोंकी परिधिसे बाहर निकाल लेते हैं। यद्यपि इस तरह उसके प्रयोगकी सीमा संकुचित हो जाती है, तथापि उसमें अधिक स्थायित्व आ जाता है, भाषा अमर हो जाती है। उसपर देश, काल और स्वभावकी परिस्थिति पहलेकी तरह अपना प्रभाव नहीं डाल सकती।

साधारण जनताकी भी उन्नति और विकास होता ही रहता है। जनताके विकसित अंशकी भाषा भी देश और कालके क्रमसे धीरे धीरे संस्कृत होती जाती है। इस तरह यह दोनों विभाग, प्राकृत और संस्कृत प्रत्येक देश और कालमें स्वभावतः रहता ही है। वर्तमान कालमें खड़ी बोली हमारी संस्कृत है और प्रान्तीय बोलियाँ प्राकृत हैं।

हिन्दुओंकी "हिन्दुई" अथवा हिन्दकी "हिन्दी" भाषा भी इन्हीं विकारोंके अधीन मुद्दतसे चली आयी है। आवा-जाई, चिट्ठी पत्री, समाचार पत्रादिके कालसे पहले जब खड़ी बोलीको वर्तमान गौरव नहीं मिला था, जबतक वह "संस्कृत" नहीं समझी गयी थी, तबतक उसकी गिनती प्रान्तीय बोलियोंमें ही थी। जिन प्रान्तीय बोलियोंमें हिन्दीकी कविता होती चली आयी है, उनमें राजस्थानी प्राकृतमें चन्दका रासो, दिल्ली, सहारनपुर और मेरठ प्रान्तकी खड़ी बोलीमें और ब्रजभाषामें अमीर खुसरोकी रचनाएँ, खड़ी बोली और भोजपुरियामें कबीरदासकी रचनाएँ, अवधीमें जायसीकी कविता और भोजपुरिया-मागधीमें विद्यापतिकी पद्य रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। उस समय यह प्रान्तकी बोलियाँ निस्सन्देह प्राकृत थीं और इन्हींके मुकाबले पाणिनिके सूत्रोंसे बँधी "संस्कृत" चुने हुए विद्वानोंसे ही आदर पा रही थी।

किसीकी भाषा तो रह नहीं गयी थी। ऐसी ही अवस्थामें गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपनी कविताकी भाषा देश काल और परिस्थितिके अनुसार अधिकाश अवधी, कुछ ब्रजभाषा, कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी और कहीं स्पर्शमात्र भोजपुरिया रखी है।

१–राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा, बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा
स्रवन समीप भये सित केसा, मनहु जरठपनु श्रस उपदेसा
नृप जुबराज राम कहुँ देहू, जीवन जनमु लाहु किन लेहू।
(अवधी)

२–अवलोकि हौं सोच बिमोचनकौं ठगिसी रही जे न ठगे धिक से
(ब्रजभाषा)

३–ए दारिका परिचारिका करि पालवी करुनामई
अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यो दई
(बुन्देलखण्डी)

४–सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल, कहि अस कोपि गगनपथ धायल
(भोजपुरिया)

मानसकार गोस्वामीजीके समयमें आजकलकी खड़ी बोली जो वस्तुत. प्रान्त विशेषकी प्राकृत थी, संस्कृतके पदपर नहीं आयी थी। यही बात है, कि गोस्वामीजीने स्थलस्थलपर जहां भाषाकी चर्चा है, एक ओर "संस्कृत' का विचार किया है तो दूसरी ओर "प्राकृत" "भाषा" "ग्राम्य" वाणी आदिका प्रयोग किया है।

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच,
काम तो आवे कामरी, का लै करे कमांच।" [दोहावली]

"भाषा निबन्धमति-मजुलमातनोति"

"भाषा बद्धमिद चकार तुलसीदास."

"भाषा बन्ध करबि मैं सोई"

"जे प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन हरिचरित बखाने"

"भाषा भनित मोरि मति भोरी"

"भनित भदेस बस्तु भलि बरनी"

"गिरा ग्राम सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान"

"सियनि सुहावनि टाट पटोरे"

"राम सुकीरति भनित भदेसा" इत्यादि

[रामचरितमानस]

जिस तरह नाटकोंमें संस्कृतके साथ साथ प्राकृतका मिश्रण प्राचीन कवि करते आये हैं, उसी तरह तुलसीदासजीने अपने महाकाव्यमें प्राकृतके साथ साथ पवित्र "देववाणीसे" अपनी रचनाका आरम्भ और अन्त किया है। "इति श्रीरामचरित मानसे" इत्यादि यह संस्कृतका ही ढङ्ग है।

२-"भाषा" लिखनेका कारण

भाषा और संस्कृतके भेदकी चर्चा तुलसीदासजीके पूर्ववर्ती वा परवर्ती कवियोंने न तो इतनी विशेषतासे कहीं की है और न प्राचीन संस्कृतको अपनी कवितामें कोई विशेष आदर दिया है। इतनी बात अवश्य देखी जाती है, कि चंद कवि संस्कृतकी छौंक बघारसे बाज नहीं आते। अनुस्वारोंके प्रयोगसे संस्कृतानुकरण तो चन्दके सिवा अन्य कवियोंने भी किया है। तो भी भाषामें कविता करनेके लिये विशेष रूपसे कोई कारण नहीं दिखाये। तुलसीदासजीने स्वीकार किया है, कि हम "स्वान्त सुखाय" "मोरे हिय प्रबोध जेहि होई" भाषामें लिखते हैं। स्पष्ट है कि प्राचीन संस्कृत मातृभाषा नहीं है, उससे "प्रबोध" होना कठिन है। "गुरुजीने बारम्बार जो कथा मुझसे कही, वह संस्कृतमें थी। अपनी बालबुद्धिके अनुसार थोड़ा बहुत मैंने

समझा। प्रबोध तभी होगा, जब मैं अपनी भाषामें कहूंगा। इसमें एक विशेष लाभ भी है, कि भगवान्के चरित बखानकर मैं अपनी वाणीको पवित्र करूंगा। चतुर कवि भगवान्का गुणगान करके अपनी वाणीको पवित्र करते हैं। भाषामें प्राकृत जनोंका गुणगान करनेसे सरस्वती अप्रसन्न हो जाती हैं।" गोस्वामी जीने यह युक्ति इसलिये दी, कि उनसे पहलेके अनेक कवियोंने राजाओंकी प्रशंसा, रईसोंकी खुशामदमें अपनी कविताका दुरुपयोग किया था। साथ ही यह भी स्मरण रहे, कि आजकलकी तरह साढ़े तीन सौ बरस पहले भी संस्कृतके प्रकाण्डपण्डित "भाषा"को हेय दृष्टिसे देखते थे। संस्कृतके पण्डितोंकी यह प्रवृत्ति इतनी ही पुरानी नहीं है। धम्मपदकी "भोवादियों" वाली बात ढाई हजार बरस पहलेका पता देती है। गोस्वामीजी भक्तों और पण्डितोंके बीच रहते थे। रईसोंके दरबारदार न थे। पण्डितोंकी रायका उन्हें बड़ा खयाल था। ऐसा होते हुए भी नैसर्गिक कवित्वशक्ति उन्हें भाषा कविताकी ओर खींचे लिये जाती थी और देशकालकी आवश्यकता भी भाषाके ही पक्षमें थी। इस दृष्टिसे भी गोस्वामीजीको भाषा पक्ष समर्थनकी आवश्यकता थी।

३—मानसकी भाषाका स्थान

रामचरितमानसकी भाषा प्रधानत अवधी है। यह प्राय वही भाषा है, जिसमें गोस्वामीजीके कुछ पूर्व मलिक मुहम्मद जायसीने पदमावत लिखी। पदमावतकी भाषामें और रामचरितमानसकी भाषामें कुछ अन्तर है। परन्तु वह व्याकरणका नहीं, शैलीका अन्तर अवश्य है। पदमावत जहां शुद्ध तद्भवमय है, वहां रामचरितमानस अर्द्ध तत्समोंसे भरा है। गोस्वामीजी कहनेको तो कहते हैं, कि हमारी भाषा गवारू है, पर उनकी शैली वस्तुत अधिक परिमार्जित है। उनकी भाषा विद्वान्की लिखी ग्रामीण भाषा है, उसमें संस्कृत काव्यका अनुकरण पर्याप्त रूपसे है। जहां

पद्मावतका शील मुसलिमका पता देता है, वहाँ रामचरितमानस हिंदू भक्ति भावसे डूबी हुई कविता है। विषयके कारण भी भाषा-शैलीमें अन्तर पड जाता है। गोस्वामीजीकी मातृभाषा संभवतः बुंदेलखंडी मिली हुई अवधी होगी, क्योंकि टोडरमलके लडकोंके लिये पचायतनामा लिखते हुए भी—जब कि काशीमें उनके जीवनका एक बडा भाग बीत चुका था—गद्यमें भी वह अवधीका ही प्रयोग करते हैं। काशीकी भाषा भोजपुरियासे मिलती जुलती अर्द्धमागधीका रूपांतर अब भी है और गोसाईं जीके समयमें भी थी। "हमहिं दिहल जड करम कुटिल चँद मन्द मोह बिन डोलारे" आदि गोसाईं जीके ही पदोंके सिवा कबीरदासजी, जो काशीमें तुलसीदासजीसे डेढ सौ बरस पहले हो गये थे, खडी बोली और भोजपुरियामें ही कविता कर गये। इतनेपर भी राम-भक्त गोसाईं जीने रामजीकी अवधकी भाषाका ही प्रयोग काशीमें रहते हुए स्थिर रखा।

४—छंद-रचनामें पिंगलकी रीतिसे भेद

गोसाईं जी अपने समयके प्रचलित प्राकृतके अपूर्व पंडित थे। उनकी कविताका ढंग हिन्दीकी कविताकी परम्पराके अनुकूल था। मलिक मुहम्मद जायसीकी पद्मावत दोहा चौपाइयोंमें ही है। यह चाल इतनी मिलती जुलती है, कि दोहोंमें पहले और तीसरे चरणोंमें तेरहके बदले बारह मात्राओंका प्रयोग गोसाईं-जी और जायसी दोनोंने किया है। प्रचलित पिंगलकी रीतिसे इसे दोहेके किसी प्रकारमें नहीं गिन सकते। तो भी यह गोसा-ईं जी या जायसीकी भूल नहीं है। उन्होंने जानबूझकर ऐसा किया है। वह आचार्य थे। उनका लिखना ही प्रमाण है। पिंगलकारोंको चाहिये था, कि दोहोंके एक प्रकारमें अथवा मात्रिक छंदोंके अर्द्धसमोंके रूप-विशेषमें इसे सन्निविष्ट करते। जो हो, रामचरितमानसका छन्द प्रबन्ध भी परम्पराके अनुसार ही

है। चौपाइयोंमें भी ऐसी विषमता कहीं कहीं देखनेमें आती है, जो पिंगलग्रंथोंके अनुसार नियमका व्यतिरेक समझी जायगी।

५—लिपि और शिक्षा

गोसाईं जी स्वयं बड़े अच्छे अक्षर लिखते थे। उन्होंने अनेक पोथियोंकी नकल की होगी। वाल्मीकीय रामायणकी उनके हाथकी लिखी एक प्रति काशीके सरकारी सरस्वती भवनमें रखी हुई है। राजापुरका अयोध्याकांड उन्हींके हाथका लिखा हुआ कहा जाता है। पर लिखावटमें अन्तर अवश्य है। राजापुरवाली प्रतिका ग्रंथकारका स्वलिखित होना केवल अनुमान पुष्ट है। सरस्वती भवनवाली प्रतिमें साफ "तुलसीदासेन लिखित" और संवत् मौजूद है। वह संस्कृत है। राजापुरवाली पोथी मानसका अयोध्याकांड है। शिक्षाके लिये उसे ही ठीक मानें तो कहना पड़ता है कि "ब" आजकलके "व" की तरह लिखते थे। "व" उच्चारण व्यक्त करनेको उसके नीचे बिन्दी देते थे। "श्री" को छोड़ "भाषामें" तालव्य "श"का प्रयोग नहीं है। मूर्धन्य "ष" सर्वत्र "ख" की जगह लिखा गया। अमृत शब्द प्राकृतमें अमिअ या अमी बन जाता है। वह नियमतः "अमिअ" लिखते थे। संयुक्ताक्षर "ज्ञ" के स्थानमें ग्य और "क्ष"के स्थानमें "छ" या "ख" लिखना उनका नियम था। "ङ","ञ" और विसर्गका प्रयोग उनकी प्राकृतमें न था। संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग कम करते थे। "धर्म कर्म" धरम करम था। ऋ, ॠ ऌ, ॡ उनकी "भाषा वरनमाला"में न थे।

मागधीके प्रभावसे पूर्वी और पहाड़ी बोलियोंमें जैसे "श" का ही प्रयोग है, "स" का नितान्त अभाव है, उसी तरह शौरसेनीसे प्रभावान्वित बोलियोंमें "शकार" का अभाव है। शौरसेनी और पैशाची वर्णमालामें "ण" है और "न" नहीं है। उसी तरह मागधीमें "ण" नहीं है, "न" है। अवधका प्रान्त दोनोंके मध्यमें पड़ता है। इसीलिये हम देखते हैं, कि अवधीमें

शौरसेनीकी तरह तालव्य "श" नहीं है, वहां मागधीकी तरह मूर्धन्य "ण" भी नहीं है। इनकी जगह क्रमश दन्त्य "स" और "न" से ही काम लिया गया है। यह दोनों समस्थानीय हैं और इनसे अवधीका माधुर्य बढ जाता है। "रैयत" और "कौआ" वाले ऐ और औ के स्थानमें "अइ" और "अउ" का प्रयोग तुलसी और जायसी दोनों ही करते हैं। "बैल" और "ठौर" वाले "ऐ" और "औ" के लिये ही ऐ और औ अवधीमें लिखे गये हैं। जैसे "अनैसे, वैसा, भैंसा" इत्यादि "कहउ" 'रहइ" को कहौ और रहै लिखना अवधी नहीं है, ब्रजभाषा है।

इस तरह अवधीकी वर्णमाला यों हुई—

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं
क ख ग घ
च छ ज झ
ट ठ ड ढ ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व स ह

तुलसीदासजी जिसे भाषा कहते हैं, उसमें यही ४२ अक्षर व्यवहारमें आते हैं। अवधीके शब्द भांडारमें अधिककी आवश्य कता नहीं पडती। "रिषि" भगति पूछते हैं और "सिव" अधि कारी पाकर कहते हैं, और सच तो यह है, कि जिस शिक्षाके अनुकूल "ऋ" का स्वरकी तरह शुद्ध उच्चारण होता है, वह तो नष्ट ही हो गयी है। अब लिखनेको हम 'ऋषि" लिखते हैं, पर पढते हैं "रिषि"। मद्रास प्रान्तका विद्वान् "रुषि" की तरह उच्चारण करता है। "ऋ"के ठीक उच्चारणका पता नहीं। यही हाल"ऌ"आदिका भी है। आजकलकी लिपिमें 'रैयत और बैल' दोनोंके 'ऐ'का उच्चारण भिन्न तो है परन्तु आज दोनोंको व्यक्त एक-

ही तरहसे करते हैं।* तुलसीदासजीके समयमें भिन्न भिन्न रीतिसे व्यक्त करते थे। "ष" अक्षर था ही नहीं। संयुक्ताक्षरोंमें जब "विष्णु" की जगह "बिस्नु" "अष्टादश" की जगह "अस्टादस" लिखते थे, तब श, ष, अन्त स्थकी आवश्यकता ही क्या थी। प्राकृतोंकी साधारण प्रवृत्ति सदासे सादगीकी ओर चली आयी है। भरसक संयुक्ताक्षरोंका प्रयोग घटाना ही समीचीन समझा गया है। यही बात जायसी और तुलसीमें भी पायी जाती है। "ज्ञ" के उच्चारणमें संस्कृतमें ही प्रान्तभेद है। महाराष्ट्र "द्न्य" उत्तर-भारतीय "ग्यँ" और बंगाली "गें" अब भी कहते हैं। जायसी और तुलसीने इसे साफ "ग्य" लिखा है। "ज्ञ" का बहिष्कार हो गया। प्राकृतमें यह सर्वथा उचित ही समझा जाता है। प्रतिज्ञा शब्द पहले "पतिज्ञा" फिर "पइज्ञाँ", फिर "पइज्ञ" और अंतमें व्रजभाषाका "पैज" बन जाता है। 'सज्ञान' का पहले "सज्ञान" फिर "सयान" बनता है। "तौ कि बराबरि करइ अयाना" में अयान भी अज्ञानका ही प्राकृत रूप है। इसी तरह "क्ष" का भी प्राकृतमें बहिष्कार ही समझना चाहिये। "लक्ष्मण" का कहीं "लछिमन" और अधिकांश "लखन" हो गया है जो "लक्खन" का उसी तरह सुधरा रूप है, जिस तरह "लक्ष्मी" का रूप बँगलामें "लक्खी" और हिन्दीमें "लच्छी" या "लछी" हो गया है।

६—शब्दोंके तोड़ने-मरोड़नेका दोष

व्रजभाषाके कवियोंकी समालोचना करते हुए साधारणतः लोग उन्हें शब्दोंके तोड़ने मरोड़नेका दोष लगाते हैं, परन्तु जो उदाहरण देखे गये हैं, उनमेंसे अधिकांश प्रचलित

* आजकल स्कूलोंमें अब ऐ और औका शुद्ध संस्कृत उच्चारण प्रायः बहिष्कृत है। बैल और ठौर वाला ही उच्चारण सिखाते हैं। "कौआ" का उच्चारण "कउआ" नहीं कराते "कऔवा" कराते हैं। आधुनिक शिक्षा लोंका यह भी एक प्रमाद है। ले०

प्राकृतके शुद्ध तद्भव शब्द हैं, जिनका प्रयोग किसी किसी प्रान्त-के लिये केवल स्थानीय है, जिसकी अभिज्ञता सबको होनी सम्भव नहीं है। कविका ज्यों ज्यों विकास होता है, त्यों त्यों वह एक देशीयताकी सङ्कुचित सीमासे निकलकर सर्व देशिकताकी प्रशस्त परिधिमें आता जाता है। अधिक व्यापक शब्दोंका ही व्यवहार करने लगता है। मानसके शुद्ध पाठको देखकर बहुधा प्राकृतके नियमोंसे अनभिज्ञ सज्जन उन शब्दोंके "अशुद्ध" वा "तोड़े-मरोड़े" होनेका भी दोष लगाते हैं, जो वस्तुत एक देशीय वा स्थानीय हैं। इतना ही नहीं, आये दिन प्रेसोंसे भी पण्डितोंद्वारा शोधी हुई "तुलसीकृत रामायण" निकला करती है। उसे अरसिक जनता अधिक पसन्द करती है। पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, पण्डित रामेश्वर भट्ट आदिने तो शोधकर उसका रूप ही बदल दिया। गोसाईं जीकी रचनाको लोगोंने यहांतक अपनाया, कि घटाने या बढ़ानेमें, संशोधन वा परिवर्तनमें, किसी बातमें तनिक भी संकोच न किया। इससे जनता इतने भ्रममें पड गयी, कि आज शुद्ध पाठका यदि आदर है तो ऊँची श्रेणीके हिन्दी-प्रेमियोंमें ही है। ऐसे संस्करण निकले हैं, कि यदि आज तीन सौ वर्ष पीछे गोस्वामीजीकी मुक्त आत्मा देखे, तो पहचान न सके, कि यह हमारी ही रचनाकी कपाल-क्रिया है। पंडितसमुदाय यह भूल जाता है, कि मानस जनता वा प्राकृत जनोंके लिये लिखा गया है।

लिपि-प्रणाली और शिक्षापर हम जो कुछ ऊपर लिख आये हैं, वह अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी पद्धतिपर विचार और आलोचनाका फल है। हमारे तर्ककी प्रतिज्ञा यह नहीं है, कि लिखनेवालोंने सर्वत्र अपनेको हमारे ऊपरके बताये नियमों-में दृढतापूर्वक बद्ध कर रखा है। जब तीन सौ बरस पीछे आज भी रेल, तार, डाक, प्रेस, आवाजाईके और विचार और कार्य्य विनिमयके पूर्वापेक्षा अपरिमित सुभीतेके युगमें भी, अच्छे

अच्छे लेखक जिनके व्याकरण सिद्धान्त निश्चित हैं, लिपि और शिक्षाकी सर्वमान्य प्रणाली स्थिर नहीं कर सके हैं—प्रत्युत जब आज भी एक ही सिद्धान्तनिष्ठ सुलेखक अपने एक ही लेखमें अपने ही मान्य नियमका बराबर पालन नहीं कर पाता—तो गोस्वामीजीके समयमें यदि पूर्वोक्त लिपिके नियम अस्सी प्रति सैकडा भी पाले जाते थे, तो थोडी प्रशसाकी बात नहीं है।

प्रस्तुत सस्करणमें जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उनके सुभीतेकी दृष्टिसे हमने "ख" और "ष" का प्रयोगमात्र सस्कृतकी तरह किया है। पाठकोंको यह समझ लेना चाहिये, कि "विसेष" का अनुप्रास "देष" तभी हो सकता है, जब विसेख पढा जाय। तुलसीदासजीने अन्त्यानुप्रास द्वारा "ष" का समान्य उच्चारण निर्दिष्ट कर दिया है।

एक वचन अकारान्त सज्ञा यदि कर्मकारक हो, तो उसके अन्तमें अवधीमें प्राय "उ"का आदेश होता है। हमने "प्राय" इसलिये कहा, कि शुद्ध पाठोंमें भी इस नियमके अनेक अपवाद हैं। "समाजु", "राजु", "खलु", "बिचारु", "करमु", "धरमु" इत्यादिका प्रयोग मानसमें विस्तृत रूपसे पाया जाता है। शब्दों और क्रियाओंके रूप अवधीमें जैसे पहले प्रयोगमें आते थे, आज कल उनसे कुछ ही भिन्न हैं। पाठकोंके सुभीतेके लिये हम चुने हुए शब्दों और धातुओंके रूप इस प्रकरणके अन्तमें देते हैं।

७—छन्दोंका चुनाव

रामचरितमानस विशेषकर दोहा-चौपाइयोंमें लिखा गया है। बीच बीचमें अवसरानुकूल और विषय या काडके अन्तमें अवश्य हरिगीतिका छन्द दिये गये हैं। स्तुतियोंमें और युद्ध-प्रकरणमें और छन्द भी काममें आये हैं। सस्कृत काव्योंमें भी सर्गान्तमें किसी भिन्न वृत्तसे समाप्ति होती है। स्तुति या युद्धादि प्रकरणमें भिन्न भिन्न वृत्त काममें लाये जाते हैं। मानस

और पद्मावतके सैकड़ों वर्ष पहलेसे दोहा-चौपाईका ढंग लोक प्रिय रहा है। छ सौ वर्ष पहलेकी खालिकबारी भी चौपाइयोंमें ही है और आज भी गाँवके अपढ़ अहीर जो बिरहा गाते हैं, वह वस्तुत दोहासे आरम्भ करके बीचमें चौपाइयां कहते और फिर दोहासे ही समाप्त करते हैं। उनकी रचना चाहे छन्द शास्त्रके बारीक काटेपर तुल न सके, पर दोहा चौपाईके वह मूलरूप अवश्य हैं, इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं है।

८—कविकी प्रतिभा

गोसाईं जीने यह शालीनतापूर्वक कहा है, कि मैं गँवारू भाषामें लिखता हू और मुझे कविताका विवेक नहीं है, चतुर पाठक सुधार लें, इत्यादि। परन्तु उनकी लोकोत्तर आनन्द-दायिनी कविता, उनका वाक् पाटव, उनका विचित्र कथा-प्रबन्ध, उनका भाषाशील—सभी कुछ उनकी अपूर्व प्रतिभाका परिचायक है। जब कबीरदास जैसे निरक्षर भक्त प्रतिभासम्पन्न कविता कर सकते हैं, तब शिक्षित गोसाईं जी ऐसी अनुपम कविता करें, तो क्या असगति है? उनके महाकाव्यकी आलो-चना ऐसा स्वतन्त्र विषय है, कि इस छोटीसी भूमिकामें उसका स्पर्श भी असंभव है। यहां इतना ही कह सकते हैं, कि "कवि-रनुहरतिच्छाया" की उक्तिके अनुसार गोसाईं जीने अपने पूर्वके संस्कृत और प्राकृत कवियोंके भाव ग्रहण किये हैं, परन्तु उनकी वर्णना ऐसी स्वाभाविक है, भाषा ऐसी कसी हुई है और ढङ्ग ऐसा अनोखा है, कि गोसाईं जीकी रचना मौलिक जान पड़ती है और मूल कविता गोसाईं जीका भद्दा सा अनुवाद। गोसा-ईं जीकी भाषा इतनी स्वाभाविक है, कि झट जुबानपर चढ़ जाती है, शब्दोंका चुनाव इतना उपयुक्त है, कि उनके एक शब्दके बदले दूसरा चुनना असभव है। क्षेपक सैकड़ों लगाये गये, छपानेका प्रयत्न हुआ, परन्तु गोसाईं जीकी कवितामें पैवन्दका लगाना कितना मुशकिल है, यह इसी बातसे स्पष्ट है कि क्षेपकवाले जब

गोसाईं जीकी नकल न उतार सके, तो उनके पाठको ही उन्होंने बिगाडा कि मेल मिले। कहावत है, कि 'ऐब करनेको भी हुनर चाहिये" बिगाडनेको भी शऊर चाहिये, अत पाठ बिगाडनेसे काम न बना।

गोसाईं जी पूर्वापरका विचार इतनी दूर दर्शितासे करते थे, कि आजतक लोग सैकड़ों शंकायें निकालते हैं और उनका समाधान भी उसी मानसके भीतर ही भीतर हो जाता है। लक्ष्मणजीकी मूर्च्छापर श्रीरामचन्द्रजीके अनेक असगत वाक्योंके पीछे "प्रभु प्रलाप" कहना या "दुइ सुत सुन्दर सीता जाये" में सीताका ही उल्लेख और शेष सन्तानके प्रकरणमें "सब भ्रातन्ह" कहना, इत्यादि इस बातके उदाहरण हैं।

९--पाठ-भेदमें लेखन-प्रमाद

गोसाईं जीके समयमें विभक्तियोंके मिलाने या अलगानेका कोई झगडा न था। छन्दके चरण अवश्य अलग अलग लिखे जाते थे, शेष सब एकमें मिलाकर लिखते थे। आजकल अलगा कर लिखनेवालोंने "दशा मशरा" न्यायसे अनेक पाठ प्रमाद उत्पन्न कर दिये हैं। पुरानी हाथकी लिखी पोथियोंमें पाठ है "सीतलनिसितवहसिवरधारा", आजकल पाठ कहीं हो गया है "सीतल निसि तव असि वर धारा" और कहीं "सीतल निसि तव हसि वर धारा। अर्थ सगतिमें जो कठिनाई पडती है, रसज्ञ ही जानते हैं। पाठ होना चाहिये "सीतल निसित वहसि वर धारा," अर्थ स्पष्ट हो जाता है। पाठ था "जेहितरहेकरत सोइपीरा," प्रमादपूवक अलगानेसे हुआ "जेहि तर हे करत तेइ पीरा"। अब "जेहि"के "जे" को ह्रस्व पढना पडा, तो चौपाईका पद पन्द्रह मात्राका हो गया और अर्थ भी नहीं लगा। 'हे" के पहले "र" की छूट समझकर यों शोधा "जेहि तर रहे करत तेइ पीरा," अब "तर" की जगह "तरु" हो जाना तो कुछ बात

नहीं है। परन्तु पाठ "जे हित रहे करत तेइ पीरा," रखनेसे सभी दोष दूर हो जाते हैं, अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है।

सौभाग्यवश ऐसे प्रमादोंकी सख्या थोडी ही है। रामचरितमानसकी नकलें गोस्वामीजीके समयसे ही होने लगी थीं। गोसाईंजी स्वय अपने जीवनमें यत्र तत्र सशोधन करते रहे होंगे। यह बात स्वाभाविक ही है। इसी कारण-अनेक पाठान्तर मिलते हैं, जो लेखकोंकी भूल नहीं, बल्कि ग्रन्थकारके ही रचे पाठान्तर हैं। काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने पाठान्तरोंका उल्लेख करके भक्त पाठकोंका बडा उपकार किया है। ये पाठान्तर प्रामाणिक हस्त लिखित प्रतियोंसे सशोधनके फल हैं। ये वे पाठान्तर नहीं हैं, जो पण्डितोंने अपने आसनपर बैठे ही बैठे कर डाले हैं। जैसे किसी विद्वान्ने 'गाहा' का अर्थ 'गहा' समझकर—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा
उभय अपार उदधि अवगाहा

में 'अघ' शब्दको 'गह' करके 'शुद्ध' कर दिया। उन्होंने यह समझा कि "खल अगुन गह (इ), साधु गुन गहा" यह अन्वय है।

परन्तु इस अन्वय और सशोधनसे चौपाईका चमत्कार लुप्त हो जाता है और आगेके पदोंसे असगति भी होती है। वास्तवमें 'गाहा' तद्भव है गाथाका, और 'अवगाहा' क्रिया नहीं, विशेषण है। शुद्ध अन्वय इस प्रकार है—'खल' (के) अघ (अरु) अगुन (की) (अरु) साधु (के) गुन (की) गाहा उभय अपार अवगाह [गम्भीर=अथाह] उदधि (हैं)।" सशोधक पण्डितोंने इसी ढगके पाठान्तर पैदा कर दिये हैं, जो गोस्वामीजीकी कल्पनामें भी न आये होंगे।

हमारी हिन्दी उतनी परिवर्तनशीला नहीं है, जितनी कि और भाषाएँ। विशेषकर गावोंकी भाषापर समयका उतना

प्रभाव नहीं पड़ता जितना नागरिक भाषापर। कुछ ऐसी ही बात होगी कि गोसाईं जीकी अवधी आज भी प्रान्तीय बोली है और तीन सौ बरस बीत जानेपर भी आज घर घर रामचरित मानसका इतना प्रचार है, जितना कि ईसाई देशोंमें बाइबिल या मुसलिम देशोंमें कुरान शरीफका भी नहीं है और यद्यपि एक एक पदके सत्रह लाख अर्थ लगानेवाले चतुर टीकाकार इसकी चौपाइयोंके भावमें उलझे रहते हैं, तथापि केवल अक्षर पहचाननेवाला भी बड़े गर्वसे कहता है कि "मैं रामायण पढ़ लेता हू।" यद्यपि ग्रंथका नाम रामचरितमानस है, तथापि 'रामायण' शब्दसे साधारणत लोग "तुलसीकृत" ही समझते हैं। इसका इतना अधिक प्रचार शायद् गोस्वामीजीके जीवनकालमें ही हो गया था, क्योंकि यह ग्रन्थ उन्हींके समयसे रामलीलाका आधार है। गोसाईं जीने कहा भी है—

सपनेहु साचहु मोहिंपर जौ हरगौरि पसाउ,

तौ फुर होउ, जो कहेउ, सब भाषा भनिति प्रभाउ।"

यह सब करामात 'भाषा भनित'की ही है। जिस तरह गौतम बुद्धने प्राकृतको अपनाकर अपने मतका प्रचार किया, उसी तरह गोसाईं जीने भी ललित प्राकृत या मधुर 'भाषा' में 'मलिनवस्तु' का वर्णन करके रामचरितमानसको अमर कर दिया है। 'रामनामामृत' या 'रामयश सुधा सम सलिलसे, पूर्ण इस अगाध मानसरोवरका तीन सौ बरससे नित्य वर्धमान कीर्ति सम्पन्न बने रहना हमें यह दृढ आशा दिलाता है कि इसी प्रकार कई सौ बरस आगेकी सतान भी इस मानससरका अवगाहन करती रहेगी।

१०—शब्द रूपावली

मानस-प्रेमियोंके सुभीतेके लिये व्याकरणकी परिभ
मंमटमें न शब्दों और धातुओंके रूप

कुछ उदाहरण देकर नियम दे देते हैं। योग्य पाठक इन्हींके अनुसार और शब्दोंको भी समझ लेंगे। रूपके सामने अर्थ भी दे दिये गये हैं।

(१) सुर, [देवता, देवताने, देवतागण, देवताओंने, देवताको, देवताओंको]

(२) सुरन्ह, [देवताओंने, देवताओंको]

(३) सुरउ, [देवता भी, देवताने भी, देवताओंने भी, देवताको भी]

(४) सुरहिँ [देवताको, देवताके लिये, देवतामें]

(५) सुरन्हि [देवताओंको, देवताओंके लिये, देवताओंमें]

(६) सुरसन [देवतासे, देवगणसे, देवताके द्वारा]

(७) सुरन्हसन [देवताओंसे, देवताओंके द्वारा]

(८) सुरकहँ [देवताको, देवताओंको, देवताके लिये, देवताओंके लिये

(९) सुरन्हकहँ [देवताओंको, देवताओंके लिये]

(१०) सुरतेँ [देवतासे, देवताओंसे]

(११) सुरन्हतेँ [देवताओंसे]

(१२) सुरक, सुरकर, सुरकै, [देवताका]

(१३) सुरन्हक, सुरन्हकर, सुरन्हकै, [देवताओंका]

(१४) सुरमहँ, [देवतामें, देवताओंमें]

(१५) सुरन्हमहँ, [देवताओंमें]

ह्रस्व स्वरान्त सभी शब्दोंके रूपोंमें सुर शब्दके समान ही परिवर्त्तन होते हैं। दीर्घ स्वरान्त शब्दोंमें विभक्तियोंके प्रत्यय जब लगते हैं प्राय ह्रस्व बोले जाते हैं, जैसे "सीतहि" "अखारेन्हि" इत्यादि। शेष नियम खड़ी बोलीके व्याकरणकेसे हैं। विशेषणके रूप भी संज्ञाके ही अनुरूप होते हैं। ऊपर दिये हुए पहले रूपमें बहुधा ह्रस्व "उ"कार भी पाया जाता है जैसे "रामु" "कपासु" "अनलु" "आपु" "सबु" इत्यादि।

सर्वनामके रूप

"आप" "आपु" [आत्म=खुद, स्वय] आदरसूचक सर्वनाम मध्यम पुरुषके लिये आता है। इसके रूप प्राय उदाहरणवाले "सुर" शब्दके समान हैं। केवल सम्बन्धका रूप "राउर" "रावर" "रावरो" [राउ=राजा, राउर= राजाका] "आपुकर" "आपुकें" की जगह आये हैं। प्रयोग प्राय एक वचनमें ही होता है।

मैं (मैं)	हम, (हम)
मोहि, (मुझे, मुझमें)	हमहि, (हमें, हमों)
मोकह, (मुझको, मेरे लिये)	हमकहं, (हमको, हमारे लिये)
मोसन, (मुझसे, मेरे द्वारा)	हमसन, (हमसे, हमारे द्वारा)
मोतें, (मुझसे, मेरे पाससे)	हमतें, (हमसे, हमारे पाससे)
मोर, मोरि, (मेरा, मेरी)	हमार, हमारी, (हमारा, हमारी)
मोहिं, मोमहँ, (मुझमें)	हममहँ (हममें)
तैं, (तू)	तुम्ह, (तुम)
तोहि, (तुझे, तुझमें)	तुम्हहि, (तुम्हें)
तोकह, (तुझको, तेरे लिये)	तुम्हकह, (तुमको, तुम्हारे लिये)
तोसन, (तुझसे, तेरे द्वारा)	तुम्हसन, (तुमसे, तुम्हारे द्वारा)
तोतें, (तुझसे, तेरे पाससे)	तुम्हतें, (तुमसे, तुम्हारे पाससे)
तोर, तोरि (तेरा तेरी)	तुम्हार, तुम्हारी, (तुम्हारा तुम्हारी)
तोहिमह=तोमह, (तुझमें)	तुम्हमहं, (तुममें)
सो, (वह)	ते, (वे)
तेहि, ताहि, (उसे, उसमें)	तिन्हहि, (उन्हें, उनमें) उन्हहिं
तेहि, ताकहँ तेहिकहँ (उसको, उसके लिये)	तिन्हकहं, उन्हकहँ (उनको, उनके लिये) उन्हकह
तासन, (उससे, उसके द्वारा)	तिन्हसन, (उनसे, उनके द्वारा) उन्हसन
तातें, (उससे, उसके पाससे, उस लिये)	तिन्हतें, (उनसे, उनके पाससे) उन्हतें
तासु, (उसका, उसकी)	तिन्हकर, तिन्हकें, (उनका) ०
तोमहँ, (उसमें)	उनमें) उन्हमहँ,

को, (कौन) और के, (कौन लोग) तथा जो, (जो) और जे, (जो लोग) इन चारोंके रूप भी क्रमश "सो" और "ते" के रूपोंकी तरह बनते हैं इसलिये यहा इनका विस्तार नहीं किया गया ।

११—धातु-रूपावली

आजकल खडी बोलीकी भाषासम्बन्धी शक्ति घट गयी है। उसका कारण यही जान पड़ता है कि अपने पुराने धातु-भाण्डारका तिरस्कार करके उसने सस्कृत फारसी, अरबी आदि जटिल व्याकरणवाली भाषाओंके शब्दोंकी शरण ली । कृदतोंके साथ होना या करना क्रिया लगाकर भाषाकी टागें तोड़ वैसाखियोंके बल चलानेकी ऐसी कुटेव पड गयी है कि साधारण बोलचालमें भी जहा "मिला" या "पाया" से काम चल सकता है वहा भी पडितम्मन्य भाषाविद् "प्राप्त हुआ" या "प्राप्त किया" बोलना साधु भाषा समझते हैं। कुशल इतनी ही है कि "प्राप्त होता भया" और "प्राप्त करता भया" अब कम सुननेमें आता है ।

गोस्वामी जी अपनी ग्रामीण भाषामें इस कुरीतिको नहीं वर्तते । उन्होंने जितनी धातुएँ वर्ती हैं उनमेंसे अधिकाशका अब गद्यमें प्रयोग नहीं होता ।

मुझे **निदर** कहा चला ?

जाकर अपना मुख मुकुरमें **विलोको** ।

मैं गुरु पद पद्म **बन्दता हूँ** ।

मैं रामचरित **बर्नता हूँ** ।

मैं विदेहको **प्रनवता हूँ** ।

वह अनुरागसे **मज्जते हैं** ।

वह चारफल **लहते हैं** ।

सत उसे **प्रशसते हैं** ।

ऐसे प्रयोग ब्रजभाषा या "पडी" बोलीकी कवितामें अब भी आते हैं। परन्तु खड़ी बोलीकी कविता करनेवाले इनका बहिष्कार करके हिन्दीके साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। मानसभक्तोंके सुभीतेके लिये हम कुछ धातुओंके रूप अर्थके साथ देते हैं। इसके साथ एक धातुकोष भी देते हैं जिसमें वह असाधारण रूप दरसाये जायँगे जिनमे दिये हुए नमूनोंसे कुछ अन्तर है। -

धातुरूपावलीमें प्रत्येक रूपके पहले जो अंक एकसे चौवीस या छब्बीस तक दिये गये हैं इस सुभीतेके लिये हैं कि यदि किसी धातुका रूप विशेष भिन्न हो तो दिये हुए अंकसे उदाहरणमें उसका साधारण रूप मिलाकर अन्तर जाना जा सके।

अकारान्त, लड़, मार, धर इत्यादि धातुओंके रूप

(१) चढ़–धातु "चढ़ने" के अर्थमें
(२) चढ़इ [यदि वह चढ़े]
(३) चढ़उ [वह पुरुष चढ़े—आशी. (स्त्री-चढ़इ)]
(४) चढ़त [वह चढ़ता। स्त्री—"चढ़ति"]
(५) चढ़तिउ [चढ़ते हुए भी (—तिहुँ)]
(६) चढ़नहार [चढ़नेवाला।—री (स्त्री)]
(७) चढ़ब [चढ़ना]
(८) चढ़बउ [चढ़ना भी]
(९) चढ़सि [तू चढ़ता है]
(१०) चढ़हि [हम, वे, चढ़ें या चढ़ते हैं]
(११) चढ़हु [चढ़ो]
(१२) चढ़ा [चढ़ा। स्त्री० चढ़ी]
(१३) चढ़ि [चढ़कर]
(१४) चढ़िय [चढ़िये]
(१५) चढ़िहइ [तू या वह चढ़ेगा]
(१६) चढ़िहउँ [मैं चढ़ूँगा]
(१७) चढ़िहहिं [हम या वे चढ़ेंगे]
(१८) चढ़िहहु [तुम चढ़ोगे]
(१९) चढ़िहि [वह चढ़ेगा, चढ़ेगी]
(२०) चढ़ु [तू चढ़]
(२१) चढ़े [वे या हम चढ़े हुए]

(२२) चढ़े उ [वे या तुम चढ़े, चढ़नेपर भी]
(२३) चढ़े उँ [मैं चढ़ा । चढ़िहौं, मैं चढ़ी]
(२४) चढ़े हु [चढ़िये तुम, या चढ़नेपर भी]
(२५) चढ़ त [चढ़नेकी क्रिया, चढ़ते हुए । स्त्री० चढ़ती]
(२६) चढ़ न [चढ़ाई चढ़ना ।]

वकारान्त बनाव, करावै, मचाव, धराव आदि करानेके अर्थवाली धातुओंके रूप

(१) चढ़ा व [धातु चढ़ाने के अर्थमें]
(२) चढ़ा वइ [यदि वह चढ़ावे]
(३) चढ़ा वउ [वह पुरुष चढ़ावे, आशी स्त्री चढ़ा वइ]
(४) चढ़ा वत [वह चढ़ाता । स्त्री चढ़ा वति]
(५) चढ़ा वतिउ [चढ़ाते हुए भी (—तिहुँ)]
(६) चढ़ा वनहार [चढ़ानेवाला —री (स्त्री)]
(७) चढ़ा उब [चढ़ाना]
(८) चढ़ा उबउ [चढ़ाना भी]
(९) चढ़ा वसि [तू चढ़ाता है या चढ़ाता]
(१०) चढ़ा वहिं [हम या वे चढ़ावें या चढ़ाते हैं]
(११) चढ़ा वहु [चढ़ाओ]
(१२) चढ़ा वा [चढ़ाया]
(१३) चढ़ा इ [चढ़ाकर]
(१४) चढ़ा इय [चढ़ाइये]
(१५) चढ़ा इहइ [तू या वह चढ़ावेगा]
(१६) चढ़ा इहउँ [मैं चढ़ाऊँगा]
(१७) चढ़ा इहहिं [हम या वे चढ़ावेंगे]
(१८) चढ़ा इहहु [तुम चढ़ाओगे]
(१९) चढ़ा इहि [वह चढ़ावेगा या चढ़ावेगी]

(२०) चढा उ [तू चढा]
(२१) चढा ए [वे या हम चढाए हुए]
(२२) चढा एउ [चढानेपर भी या उन्होंने या तुमने चढाया]
(२३) चढा एउं [मने चढाया]
(२४) चढा एहु [चढानेपर भी, या तुम चढाइयो]

अकारान्त रिसा, सुखा, परा, समा

पिरा आदि धातुओंके रूप

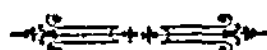
(१) रिसा
(२) रिसा इ
(३) रिसा उ
(४) रिसा त
(५) रिसा तिउ
(६) रिसा नहार
(७) रिसा ब
(८) रिसा बउ
(९) रिसा सि
(१०) रिसा हिं
(११) रिसा हु
(१२) रिसा न
(१३) रिसा इ
(१४) रिसा इय
(१५) रिसा इहइ
(१६) रिसा इहउ
(१७) रिसा इहहि
(१८) रिसा इहहु
(१९) रिसा इहि
(२०) रिसा उ
(२१) रिसा ने
(२२) रिसा नेउ
(२३) रिसा नेउ
(२४) रिसा नेहु, येहु

---

(१) कर (करनके अर्थमें)
(२) कर इ
(३) कर उ
(४) कर त
(५) कर तिउ
(६) कर नहार
(७) कर ब
(८) कर बउ
(९) कर सि
(१०) कर हि
(११) कर हु
(१२) कीन्ह

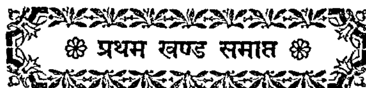
(१३) करि
(१४) करिय
(१५) करिहइ
(१६) करिहउँ
(१७) करिहहि
(१८) करिहहु
(१९) करिहि
(२०) करु
(२१) कीन्ह, किये
(२२) कीन्हेउ, कियेउ
(२३) कीन्हेउँ, कियेउ
(२४) कीन्हे हु, किये हु
(२५) करन्त, (स्त्री० करन्ती)
(२६) करन, (स्त्री० करनी)

ओकारान्त हो, और एकारान्त दे, ले आदि धातुओंके रूप



(१) हो [अस=अह] धातु होनेके अर्थमें।
(२) होइ
(३) होउ
(४) होत
(५) होतिउ
(६) होनहार
(७) होब
(८) होबउ
(९) होसि [अहसि, तू है]
(१०) होहिं [अहहिं, हहिं=हैं]
(११) होहु [अहहु=हो]
(१२) भा
(१३) भइ
(१४) होइय
(१५) होइहइ
(१६) होइहउँ [अहउँ=हूँ]
(१७) होइहहिं
(१८) होइहहु
(१९) होइहि
(२०) होउ
(२१) भये
(२२) भयेउ
(२३) भयेउ [अहहुँ=हूँ]
(२४) भयेहु (अहहु=तुम हो)

(१) दे
(२) दे इ
(३) दे उ
(४) दे त
(५) दे तिउ
(६) दे नहार
(७) दे य
(८) दे यउ
(९) दे मि
(१०) दे हिं
(११) दे हु
(१२) दी न्ह
(१३) दे इ
(१४) दे इय
(१५) दे इहइ
(१६) दे इहउ
(१७) दे इहहि
(१८) दे इहहु
(१९) दे इहि
(२०) दे हि
(२१) दीन्हें, दिये
(२२) दीन्हेउ, दियेउ
(२३) दीन्हेउ, दियेउँ
(२४) दीन्हेहु, दियेहु



नोट—१–शब्द तथा धातु रूपावलीमें विकार पैदा करनेवाले प्रत्ययोंको मोटे टैपमें दिखाया है ।

कविहि अरथ आखर बल सांचा
अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

दूसरा खण्ड

मानस शङ्कावली



उपोद्घात

गोस्वामीजीका रामचरितमानस छोटेसे बड़ेतक, अक्षर परिचितसे लेकर अगाध विद्वानतक, साढ़े तीनसौ बरसोंसे पढ़ते आये हैं। सैकड़ों टीकाएं हो गयी हैं जिनमेंसे अनेक छपीं और अनेकके प्रकाशनकी नौबत न आयी। सूरसागर, सुखसागर, ब्रजविलास, राम रसायन, रामचन्द्रिका, रामायण आदिके नामकी पुस्तकोंकी क्या गिनती है! परन्तु श्रीमद्-भागवतादि पुराणों, रामायण महाभारतादि इतिहासोंकी कथा जिस तरह व्यास लोग बाचते और श्रद्धालु श्रोताओंको सुनाकर उनका परलोक मार्ग सुगम करते हैं, उसी तरह श्रीराम-चरित मानस ही "भाषा" का एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसकी कथा व्यासलोग बाँचते और श्रद्धालु भक्त सुनते हैं। धर्मग्रन्थकी पदवी आजतक किसी और "भाखा" की पोथीको नहीं मिली। काव्यकी सरसता, शब्दोंका माधुर्य्य, अपूर्व प्रसाद, पवित्र प्रेम और शृङ्गार, अनुपम वीरता, करुणाकी अटूट धारा, भक्ति वात्सल्य और शान्तिका अविरल संयोग, अलंकारोंकी छटा, भावोंका अपूर्व आनन्द पढ़ने और सुननेवालेके मनको यह सभी गुण ऐसा छीन लेते हैं, ऐसा वे अख्तियार कर देते हैं, कि इस मानस सरोवरके सौंदर्यपर "भाखा" के विरोधी और प्रेमी, साम्प्रदायिक झगड़ोंपर जान देनेवाले मतवाले, सभी मुग्ध हैं, सभी एक ही घाटपर रामचरितामृत पान करते हैं।

मैंने देखा है कि रामचरितमानसकी कथा कहनेवाले

ईसाइयों और मुसलमानोंतकको आकृष्ट कर लेते हैं। "सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्"। सत्काव्य ऐसी ही चीज है। लोकोत्तर आनन्द तो वस्तुत वही अवस्था है जिसके लिये श्रुति कहती है "तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत"। वही लोकोत्तर आनन्द गोस्वामीजीके मानसमें अपनी अपनी पहुँचके अनुसार सभी पाते हैं। जो अच्छी तरह नहीं समझ सकते उनके मनमें शंकाए उठती हैं, प्रयत्न करके पूछ पाछकर समाधान कर लेते हैं, नहीं होता तो भी इसकी कविता मोहित किये ही रहती है। विद्वानोंके लिये तो यह विशेष सुखकी सामग्री है। "जड मोहहिं बुध होहिं सुखारी।" जो बात गोस्वामीजीने श्री भरतजीकी भारतीके लिये कही है वह उनकी ही कविताके लिये ठीक बैठती है—

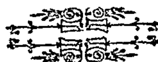
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथ अमित अरु आखर थोरे।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी।

ऐसी अद्भुत कवितापर शंकाए उठें तो क्या आश्चर्य? उसमें ही उसका समाधान भी मिल जाय तो कौन से अचम्भेकी बात है! एक एक पदके अनेक अर्थों का होना भी कोई असाधारण बात नहीं। चतुर वक्ताओंके वाक्पाटवसे भी अर्थके अनेक अभूतपूर्व, अश्रुत और अदृष्ट चमत्कार देखने सुननेमें आते हैं। काशीके श्रीवदन पाठक बडे चतुर और विद्वान् कथा बाचनेवालोंमें हो गये हैं।० उन्होंने मानस-शंकावलीके नामसे ऐसी शंकाओं और समाधानोंका संग्रह करके छपवाया था। उसका दूसरा संस्करण जो संवत् १९२५में छपा था

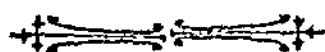
मेरे सामने है। इसमें शंकाओंका अच्छा संग्रह है। समाधान भी हैं। भाषा ब्रजकी टीकावाली है, जो अब लोक-प्रिय नहीं। समाधान भी कई ऐसे हैं जिन्हें आजकलके हिन्दी-पाठक शायद अब उतना पसन्द न करेंगे जितना कि उस समय के श्रद्धालु श्रोता पसन्द करते थे। अनेक समाधानोंमें मुझे स्वयं मतभेद था। इसलिये मैंने शंकाओंके संग्रहमें उनकी शंकावलीसे पूरी सहायता ली है, परन्तु समाधानके लिये मैंने वैसी ही स्वतंत्रतासे काम लिया है। शंकाएं पाठकजी-की मौलिक नहीं हैं। यह तो सभी मानसके पाठक जानते हैं। समाधानमें सबकी कुछ न कुछ अलग छाप होती है। सहृदय पाठक प्रस्तुत शंकावली देखकर स्वयं विचार कर लेंगे।

मैंने रामचरितमानसका लड़कपनसे श्रद्धा और भक्तिसे परिशीलन किया है। मेरी भाषामें अथवा समाधानमें यदि इसका प्रभाव पड़ा है, तो इसके लिये मेरी परिस्थिति दोषी है। इसकी और मानसकथाकौमुदीकी रचनामें इटावा निवासी श्री पं० रघुवरदयालजी मिश्र विशारदने श्रद्धासे ही प्रेरित हो मेरे लेखकका काम किया है। एतदर्थ उनका मैं कृतज्ञ हूं।

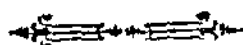
श्रीकाशी। मातृनवमी १९८०।	रामदास गौड़



मानस-शंकावली



प्रथम सोपान—बालकांड



शङ्का १—गोस्वामीजीने गणेशादि देवताओंकी वंदना आरम्भमें क्यों की और रामके नामसे क्यों आरम्भ किया ?

समाधान १—गोस्वामीजी स्मार्त्त वैष्णव थे, श्रीरामचन्द्रजीको महाविष्णु और अंगी मानते थे और समस्त ब्रह्माण्डोंके संचालक देवताओंको उनके अंग। साधारण हिन्दू धर्म भी देव समाजमें अपने इष्टदेवको अंगी मानता है और शेष सब देवताओंको अंग। गणेशजीका स्थान पौराणिक कथाके अनुसार श्रीपार्वतीजीके आदेशसे द्वारपालका हुआ, इसीसे आज भी हिन्दू मंदिरोंमें गणेशजीको द्वारपर स्थान दिया जाता है। श्रीरामचन्द्रजीके दरबारमें पहुँचनेके लिये भक्तकी कल्पना यही होती है कि द्वारपर गणेशजी और दरबारतक पहुँचनेके मार्गमें सभी देवताओंके दर्शन होते हैं, अन्तमें ही भक्त भगवानके चरणोंतक पहुँचता है। मानसकारने विनयपत्रिकामें भी यही रीति निबाही है। इस विचारसे श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य भक्त होते हुए भी गोस्वामीजीका और देवताओंकी वंदनासे आरम्भ करना असंगत नहीं है। चमत्कारिक टीकाकार तो भी शब्दोंके श्लेषार्थ करके सारी वंदना भगवान रामचन्द्रजीपर ही घटाते हैं। हमारे मतसे ग्रंथकारका ऐसा अभिप्राय नहीं था।

गोस्वामीजीके समयमें भी साधारणतः काशीका पंडित समुदाय आजकलकी तरह भाषाद्रोही था और देववाणी संस्कृत मंगलाचरण वन्दना आदिके लिये अबतक इतनी आवश्यक समझी जाती है कि साधारण संकल्पसे लेकर सभी श्रौत और स्मार्त कर्म संस्कृतमें किये जाते हैं। अतः मंगलाचरणका संस्कृतमें होना विशेषतः ऐसे कविकी लेखनीसे जो संस्कृत लिखनेमें असमर्थ नहीं था अयुक्त नहीं है। गोस्वामीजी जैसे कट्टर रामभक्त थे वैसे ही भाषा-भक्त भी थे।

"का भाषाका संसकृत, प्रेम चाहिये साच
काम तो आवे कामरी, का लै करै कमाच,,

स्पष्ट है कि सर्वसाधारणको भाषा सुलभ है इसके द्वारा भगवद्भक्तिका रसास्वादन जनताको सुलभ हो जाता है।

"भाषा बंध करब मैं सोई
मोरे हिय प्रबोध जेहि होई"

क्या मार्केकी बात कही है। मातृभाषासे ही तो हृदयको प्रबोध हो सकता है ? संस्कृतसे आदि अन्त करना मंगलाचरण मात्र समझना चाहिये।

शङ्का २—* द्विभुज रामोपासक तुलसीदासजीने क्षीरसागरशायी चतुर्भुज भगवानसे अपने हृदयमें धाम करनेकी प्रार्थना क्यों की ?

समाधान २—पहले तो यहाँ चतुर्भुज मूर्तिकी चर्चा ही नहीं है, भगवानकी मूर्तिकी कल्पना सर्वथा भक्तके भावपर निर्भर है, गोस्वामीजी चतुर्भुजकी कल्पनासे अपरिचित नहीं हैं इसका अनेक स्थलोंमें उल्लेख किया है, तोभी जहा जहाँ अपने हृदयमें वास करानेकी चर्चा आयी है कहीं भी चतुर्भुजी मूर्तिकी चर्चा

* "नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन
करहु सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन

नहीं है। अत इस शंकाकी प्रतिज्ञा ही निर्मूल है। जो लोग इस प्रतिज्ञाको मानते ही हैं उनके लिये यह समुचित समाधान है कि तुलसीदासजीने अपने हृदयको रामकी कथाका पवित्र भाण्डार बनानेके लिये निर्म्मल क्षीरसागरमें निरन्तर शयन करनेवाले नारायणसे प्रार्थना की है कि जैसे आपके निरन्तर शयन करनेसे क्षीरसागर निर्म्मल और उज्ज्वल रहता है वैसे ही यदि आप हमारे हृदयमें अपना धाम बनायेंगे तो हमारा हृदय भी निर्म्मल और उज्वल हो जायगा, आगे जाकर इसी प्रतिज्ञाका निर्वाह करते हुए कहा है—

"जस कछु बुधि विवेक बल मेरे
तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे"

हरिकी प्रेरणा हृदयमें तभी होगी जब भगवान हृदयको अपना धाम बनावेंगे।

*शङ्का ३—अनेक वन्दनाओंके अनन्तर यह महीसुर वंदना प्रथम कैसे हुई?

समाधान ३—यहाँ प्रथम महीसुरका विशेषण है, क्रिया विशेषण नहीं है। प्रथम महीसुरसे अभिप्रेत है वह ऋषि-परम्परा जो मोहजनित संशयोंको हरनेवाली है, विश्वका उपकार करनेवाली है, इस भूतलपर सृष्टि रचना और उसके विकासके लिये आदि युगमें अवतीर्ण हुई और अबतक अपने कार्यमें तत्पर है। यह भूदेवताओंका समाज सृष्टिमें सर्व प्रथम है इसीलिये इसे "प्रथम महीसुर" कहा।

---

* "बंदउँ प्रथम महीसुर चरना
मोह जनित संसय सब हरना"

गोस्वामीजीके समयमें भी साधारणतः काशीका पंडित समुदाय आजकलकी तरह भाषाद्रोही था और देववाणी संस्कृत मंगलाचरण वन्दना आदिके लिये अबतक इतनी आवश्यक समझी जाती है कि साधारण संकल्पसे लेकर सभी श्रौत और स्मार्त कर्म संस्कृतमें किये जाते हैं। अतः मंगलाचरणका संस्कृतमें होना विशेषतः ऐसे कविकी लेखनीसे जो संस्कृत लिखनेमें असमर्थ नहीं था अयुक्त नहीं है। गोस्वामीजी जैसे कट्टर रामभक्त थे वैसे ही भाषा-भक्त भी थे।

"का भाषाका संसकृत, प्रेम चाहिये साच
काम तो आवै कामरी, का लै करै कमाच,,

स्पष्ट है कि सर्वसाधारणको भाषा सुलभ है इसके द्वारा भगवद्भक्तिका रसास्वादन जनताको सुलभ हो जाता है।

"भाषा बंध करब मैं सोई
मोरे हिय प्रबोध जेहि होई"

क्या मार्केकी बात कही है। मातृभाषासे ही तो हृदयको प्रबोध हो सकता है? संस्कृतसे आदि अन्त करना मंगलाचरण मात्र समझना चाहिये।

शङ्का २—* द्विभुज रामोपासक तुलसीदासजीने क्षीरसागरशायी चतुर्भुज भगवानसे अपने हृदयमें धाम करनेकी प्रार्थना क्यों की?

समाधान २—पहले तो यहाँ चतुर्भुज मूर्तिकी चर्चा ही नहीं है, भगवानकी मूर्तिकी कल्पना सर्वथा भक्तके भावपर निर्भर है, गोस्वामीजी चतुर्भुजकी कल्पनासे अपरिचित नहीं हैं इसका अनेक स्थलोंमें उल्लेख किया है, तोभी जहा जहाँ अपने हृदयमें वास करानेकी चर्चा आयी है कहीं भी चतुर्भुजी मूर्तिकी चर्चा

* "नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन"

नहीं है। अत इस शंकाकी प्रतिज्ञा ही निर्मूल है। जो लोग इस प्रतिज्ञाको मानते ही हैं उनके लिये यह समुचित समाधान है कि तुलसीदासजीने अपने हृदयको रामकी कथाका पवित्र भाण्डार बनानेके लिये निर्म्मल क्षीरसागरमें निरन्तर शयन करनेवाले नारायणसे प्रार्थना की है कि जैसे आपके निरन्तर शयन करनेसे क्षीरसागर निर्म्मल और उज्ज्वल रहता है वैसे ही यदि आप हमारे हृदयमें अपना धाम बनायेंगे तो हमारा हृदय भी निर्म्मल और उज्वल हो जायगा, आगे जाकर इसी प्रतिज्ञाका निर्वाह करते हुए कहा है—

"जस कछु बुधि विवेक बल मेरे
तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे"

हरिकी प्रेरणा हृदयमें तभी होगी जब भगवान हृदयको अपना धाम बनावेंगे।

* शङ्का ३—अनेक वन्दनाओंके अनन्तर यह महीसुर वंदना प्रथम कैसे हुई?

समाधान ३—यहाँ प्रथम महीसुरका विशेषण है, क्रिया विशेषण नहीं है। प्रथम महीसुरसे अभिप्रेत है वह ऋषि-परम्परा जो मोहजनित संशयोंको हरनेवाली है, विश्वका उपकार करनेवाली है, इस भूतलपर सृष्टि रचना और उसके विकासके लिये आदि युगमें अवतीर्ण हुई और अबतक अपने कार्यमें तत्पर है। यह भूदेवताओंका समाज सृष्टिमें सर्व प्रथम है इसीलिये इसे "प्रथम महीसुर" कहा।

---

* "बंदउँ प्रथम महीसुर चरना
मोह जनित संसय सब हरना"

* शङ्का ४—माया ब्रह्म, जीव और जगदीश यह ब्रह्माके बनाये गुसाईं जीने लिखे हैं। ब्रह्म और जगदीश तो कदापि ब्रह्माके बनाये नहीं हो सकते, माया और जीवके लिये भी ऐसी ही शंका उत्पन्न होगी।

समाधान ४—अद्वैत वेदान्त मतके अनुसार यह संसार वा जो कुछ गोचर विश्व है वह भ्रम है।

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई,
सो सब माया जानेहु भाई"

सृष्टिका होना श्रुतिके महावाक्य "एकोऽहम् बहुस्याम"-के अनुसार एक ब्रह्मसे अनेकताका प्रकट होना है और दर्शनोंमें पुरुष और प्रकृतिके मेलसे सृष्टि बतायी गयी है, श्रीमद्भगवद् गीतामें भगवानने एक जड़ और दूसरी चेतन, अपनी दो प्रकृतियाँ बतायी हैं। ब्रह्म शब्द प्रकृतिके लिये भी आता है, पुरुष शब्दका भी यही हाल है।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहम् अक्षरादपि चोत्तमः
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः"

---

* भलेउ पोच सब विधि उपजाये
गनि गुन दोष वेद बिलगाये

* * * *

जड़ चेतन गुन दोषमय, विस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा
लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।

इन कथनोंसे स्पष्ट है कि ईश्वर और जीव अथवा माया और ब्रह्मका सम्बन्ध सृष्टि है या सृष्टिके साथ ही यह सबध उत्पन्न होता है और सृष्टि ब्रह्मा नामक भगवद्विभूतिकी रचना कही जाती है। अतएव जगदीश (जगत्+ईश) या जगतका स्वामी और जीव या जगत्का वदी या दास यह दोनों सृष्टि की ही कल्पना है। इसी तरह माया और ब्रह्म यह द्वैत भी सृष्टिके साथ ही कल्पनामें आता है। अन्यथा अद्वैतसिद्धिमें एकको छोड दूसरा तो कुछ है ही नहीं। इसलिये माया, ब्रह्म, जीव, जगदीशको ब्रह्माको या सृष्टिकी कल्पना लिखना किसी प्रकार अयुक्त नहीं है।

* शङ्का ५—अनेक वदनाओंके अनन्तर भरतके चरणोंकी वदनाको प्रथम क्यों लिखा ?

समाधान ५—जहा श्रीरामचन्द्रजीके भाइयोंकी वदनाका प्रकरण आरम्भ हुआ वहा भरतजोकी वदना करना स्पष्ट कारणोंसे ही प्रथम हुआ। यहा प्रथम शब्द वदना क्रियाका विशेषण है, तीनों भाइयोंमें भरतजी न केवल सबसे बडे हैं प्रत्युत भ्रातृभक्तिमें उनका दर्जा सबसे ऊचा है।

। शङ्का ६—नाम वदनामें क्रमभग क्यों किया ? चापभगके बाद ही दडक वनका प्रकरण क्यों उठाया ?

समाधान ६—कविका उद्देश्य यहा रामायणका कथाक्रम

---

* प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना
जासु नेम व्रत जाइ न बरना।

। भजेउ रामु आपु भव चापू,
भव भय भजन नाम प्रतापू।
दडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन,
जन मन अमित नाम किये पावन।
निसिचर निकर दले रघुनन्दन,
नाम सकल कलि कलुष निकदन।

वर्णन करना नहीं है, उसे केवल नामका उत्कर्ष दिखाना इष्ट है, जहां कहीं कि रामायणकी कथाके वर्णनका सकल्प है वहा क्रमका पूरा ख्याल रखा गया है। जैसे उत्तरकांडमें भुशुडिने गरुडसे जो रामकी कथा वर्णन की है उसमे कोई क्रमभंग नहीं है।

प्रस्तुत प्रकरणमें भी पाठकको जो क्रमभग दिखायी देता है वह भ्रममात्र है क्योंकि नाममहिमाके वर्णनमें चापभगके पहले दण्डक वनका प्रकरण नहीं आता। पीछे ही आता है, यदि दण्डक वनकी चर्चाके पीछे दशरथका स्वर्गवास आदि बीचके प्रकरणोंकी चर्चा होती तो अवश्य ही क्रमभग कहा जाता। ग्रन्थकारका उद्देश्य यहा सारी कथाका उल्लेख नहीं है।

शङ्का ७—गोस्वामीजी शालीनतापूर्वक दो वार कवि होनेसे इनकार करके भी लिखते हैं 'रामचरित मानस कवि तुलसी' यह असङ्गत है या नहीं ?

समाधान ७—

चौपाई—सभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी
रामचरित मानस कवि तुलसी
करइ मनोहर मति अनुहारी
सुजन सुकवि सुनि लेहु सुधारी

इसका अन्वय इस प्रकार हुआ—सभु (के) प्रसाद (तें) हिय (में) सुमति हुलसी। (याही वलतें) रामचरित मानस (को) कवि तुलसी मनोहर और अपनी सुमति (की) अनुहारि करइ। सुनि (के) सुजन सुकवि सुधारि लेहु।

तुलसीदासजीने—'कवि न होहु नहिं चतुर प्रवीनू
सकल कला सब बिद्या हीनू।

* * *

कबित होइ नहिं चतुर कहावउँ,
मति अनुरूप राम गुन गावउँ।

इन दो स्थलोंमें अपना असामर्थ्य और लाचारी दिखाकर ब्याजसे अपने उन कथनोंका पोषण किया है जिनमें बारम्बार उन्होंने हरि, शिव, शम्भुकी कृपासे रामकी कथा कहनेका साहस दिखाया है।

"जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे,
तस कहिहउँ हिअँ हरिके प्रेरे।
*　*　*
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ
बरनउँ राम चरित चित चाऊ
भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती
ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती
*　*　*

इन उक्तियोंके अनन्तर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलसीदासजी यद्यपि स्वयं "कवित विवेक एक" भी नहीं रखते, तथापि उन्हीं शिवजीकी कृपासे इतनी अयोग्यतापर भी "कवि तुलसी" हो जाते हैं जिनकी कृपासे,

अनमिल आखर अरथ न जापू
प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू
होउ महेस मोहिं पर अनुकूला
करहु कथा मुद मंगल मूला

जहाँ बेमेल निरर्थक साबर मंत्र शिवजीकी कृपासे प्रभावशाली हो जाते हैं वहाँ तुलसी जैसे अकवि, अचतुर, कलाहीन, विद्याहीन मनुष्यका राम-गुणगानमें उन्हीं शिवजीके प्रसादसे—

कवि हो जाना कौन सी बडी बात है। इस चौपाईमें तुलसीदासजीने व्याजसे अपनी अत्यन्त नम्रताके साथ ही साथ शम्भुके प्रसादका उत्कर्ष दिखाया है, पूर्वापर विरोध नहीं है।

शङ्का ८—गोसाईंजीने उमा शब्दका प्रयोग (लछमन दीख उमा कृत वेषा) सतीके लिये उस समय किया है जब उमा नाम ही नहीं पडा था, सीताजीसे फुलवारीमें गिरिराज किशोरी कहलाया, यद्यपि सीता-हरणके समय आरम्भकी ही कथामें सती चरित्रका वर्णन किया है क्या इसमें असङ्गति दोष नहीं है?

समाधान ८—पहले तो स्वयं ग्रन्थकार इन समस्त चरित्रोंके वर्णनमें भूतकालकी कथा कहता है, पद्य-रचनाकी आवश्यकताके अनुसार उसे समानार्थक शब्दोंके चुननेमें अधिक स्वतन्त्रता होनी ही चाहिये। दूसरे तुलसीदासजी राम और शिव, पार्वती और सीता आदि भगवद्विभूति अवतार वा ईश्वरमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं रखते, उनका मन्तव्य।

नाना भाति राम अवतारा
रामायन सत कोटि अपारा
कलप भद हरि चरित सुहाये
भाति अनेक मुनीसन गाये

इन पदोंसे स्पष्ट है।

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं
चारु चरित नाना विधि करहीं

ऐसी दशामें किसी शब्दके प्रयोगमें अथवा किसी चरित्रके आगे पीछे वर्णनमें हो जानेवाली असङ्गतिका सहज ही समाधान हो सकता है। इसके सिवा गिरिजाके लिये स्तुति करते हुए सीताजीके मुखसे कहलाया है कि—

जय गजवदन षडानन माता,

* * *

नहिं तव आदि मध्य अवसाना।

* * *

भव भव विभव पराभव कारिनि

और स्वायम्भुव मनुके प्रकरणमें,

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई

राम बाम दिसि सीता सोई

इत्यादिसे प्रकट है कि तुलसीदासजीके मतमें सती और गिरिजा, जानकी और सीता अनादि और अनन्त हैं और इनके चरित कुछ थोड़े बहुत अन्तरके साथ कल्प कल्पमें प्राय दुहराये जाते हैं। इन्हीं कारणोंसे न केवल गिरिजा, उमा और सतीके नामके प्रयोगमें कोई असङ्गति नहीं हैं प्रत्युत उत्तरकाडमें राम-कथाके अन्त और भुशुडि कथाके आरम्भमें भी

गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई,

बोले सिव सादर सुख पाई।

धन्य सती पावनि मति तोरी,

रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी।

गौरी और सती इन दो शब्दोंके प्रयोगमें कोइ असङ्गति नहीं है। रामचन्द्रजीके जन्मकालमें कौशल्या सम्बन्धी छन्दमें खरारी शब्दका प्रयोग वा आरण्यकाडमें जटायुकी स्तुतिमें "दससीस बाहु प्रचड खडन" कहना यद्यपि खर और रावणके मारे जानेके बहुत पहले कहा गया है तथापि कालासङ्गति नहीं समझी जाती।

शङ्का ६—गोसाईंजीने लिखा है " निसि दिन नहि अव-लोकहि कोका" और साथ ही यह भी कहते हैं " दुइ दण्ड भरि ब्रह्मण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं " और फिर " उभय घरी अस कौतुक भयऊ " तो दो घडीमें दिन रात कैसे पूरे हो जा यंगे ? और सारे विश्वपर उसने चढाई क्यों की ?

समाधान ६—कोकके लिये प्रसिद्ध है कि रात्रिमें अपने जोडेसे अलग रहता है। यहा तात्पर्य यह है कि जहा कहीं ब्रह्माडमें रात थी वहा भी चक्रवाकोंपर कामका ऐसा प्रभाव पडा कि जो स्वभावसे ही दिन और रातका विचार करते हैं वह चक्रवाक भी यह भूल गये कि अभी सूर्योदय नहीं हुआ है अभी रात्रि है, जहा ब्रह्माडमें दिन था वहाके लिये तो कहना ही क्या। रही यह बात कि रात और दिन दोनोंका एक साथ होना कैसे सम्भव है सो इसका समाधान तो सहज ही है। ब्रह्माडमें एक ही कालमें न तो सब जगह रात ही होती है न दिन। कही दिन है, कहीं रात है, कही सुबह है कहीं शाम। कामदेवकी चढाई विश्वनाथ पर हुई थी इसी लिये उसने सारे विश्व, सारे ब्रह्माडपर अपना प्रभाव डाला था, जिस दो घडीमें कामने अपना प्रभाव विस्तारा उसी दो घडीके भीतर कहीं रात थी कहीं दिन, कहीं सुबह थी कहीं शाम। विश्वविजयका उद्योग करना विश्वनाथके विजय करनेके लिये आवश्यक था और उसकी असफलतामें ही विश्वनाथका उत्कर्ष है। फुलवारीमें श्रीरामचन्द्रजी भी कहते हैं—

मानहुँ मदन दुदुभी दीन्हीं,
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं।

शिव और राम विश्वेश्वर हैं। इनका राज विश्व है। इनपर चढाई करना विश्वपर चढाई करना है। कामने विश्वनाथपर चढाई की थी अत विश्वपर चढाई करना अनिवार्य था।

* शङ्का १०—"विनु अघ तजी सती असि नारी" इस चौपाईमें सतीको विनु अघ बताया परन्तु सीताजीका वेप धारण करना शिवजीने इतना घोर पाप समझा कि

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी,
बिनु अघ तजी सती असि नारी।

येहि तनु सतिहि भेट मोहि नाहीं,

सिव सकल्प कीन्ह मन माहीं ।

तो शिवजीने ग्रन्थकारजीकी रायमें सतीजीके साथ बडा अन्याय किया ।

समाधान १०—बिनु अघ, का अर्थ बिना पाप यहा नहीं है। कोषमें अघका अर्थ शोक और दु ख भी है। शिवजीने बिना दु खके सती ऐसी पत्नीका परित्याग कर दिया, अपनी स्वामिनीका रूप धारण करनेसे उन्हें फिर पत्नी भावसे ग्रहण करनेमें बहुत अनौचित्य जान पडा, पत्नीत्यागसे शिवजीको दु ख नहीं हुआ, हा, सतीजी भक्त भी थीं अत भक्तके नाते जो विरह दु ख हुआ उसे आगे जाकर सूचित किया है

जदपि अकाम तदपि भगवाना

भगत विरह दुख दुखित सुजाना

और उत्तरकाडमें, "

तब अति मोच भयउ मन मोरे,

दुखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे ।

यह वाक्य भी भक्त और भक्तभावनके वियोगसम्बन्धमें है, पुरुष और नारीके सम्बन्धमें नहीं है। नारीके सम्बन्धत्यागका तो शिवजीको यहातक ख्याल है कि जब रामचन्द्रजी पार्वतीके जन्मका, तपस्याका और विवाहेच्छाका सन्देशा कहते हैं तो भी शिवजी इस सम्बन्धको अनुचित ही कहते हैं और स्वामीकी आज्ञा होनेके कारण ही विवाहसम्बन्ध स्वीकार करते हैं ।

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं,

नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।

अघका अर्थ पाप भी लिया जाय तो यों समाधान हो सकता है कि 'बिनु अघ तजी सती असिनारी, यह वाक्य याज्ञवल्क्य

मुनिका है, वह कहते हैं कि शिवजीके समान भी रघुनाथजीका कौन ऐसा कट्टर भक्त होगा जो सती ऐसी निर्दोष, निष्पाप पत्नीको केवल स्वामिनीका रूप धारण करनेसे त्याग दे, क्योंकि सतीजीने सीताजीका वेष पापबुद्धिसे नहीं धरा था और शिवजी इस बातसे अभिज्ञ थे कि सतीजी निष्पाप हैं। त्यागका उत्कर्ष दिखानेके लिये यहा याज्ञवल्क्यने यह वाक्य कहा है। त्यागका कारण पाप ही हो, यह कोई आवश्यक बात नहीं है। सतीजीने पापबुद्धि न होते हुए भी शिवजीके भक्तिसिद्धान्तके विरुद्ध एक भारी भूल की, जो पाप न होते हुए भी त्यागका पर्याप्त कारण हुई।

शङ्का ११—शिवजीने पहले तो कहा कि—

राम कृपातें हिमसुता सपनेहु तव मन माहिं
सोक मोह संदेह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं।

और फिर कहते हैं।

एक बात नहिं मोहिं सुहानी
जदपि मोह बस कहेहु भवानी

जब शोक, मोह, संदेह, भ्रम कुछ भी नहीं रहा तो यह एक बात मोहवश कैसे कही गयी ?

समाधान ११—इस प्रकरणमें पार्वतीजीके पूछनेपर प्रसन्न होकर शिवजीने कहा है कि "तुम तो रघुनाथजीके चरणोंमें सच्चा प्रेम रखती हो, जहा रामचन्द्रजीकी ऐसी कृपा है वहा मेरे विचारमें तुम्हारे मनमें सपनेमें भी शोक, मोह, संदेह, भ्रम नहीं हो सकता, तो भी जो आशका तुमने की है उसके कहते सुनते ससारका हित होगा, तुमने यह प्रश्न जगत के हितके लिये किया है। हा, एक बात मुझे पसद नहीं आयी यद्यपि तुमने मोह बस कही है।" तात्पर्य यह कि अविद्यासे उत्पन्न मोह जिससे ससार आवागमनके बंधनमें पडा रहता है

अब पार्वतीजीके मनमें नहीं रहा परन्तु विद्याजनित मोह राम विषयक अज्ञान यह एक मोह पार्वतीजीमें मौजूद था। वह जगतके हितके लिये था यद्यपि कट्टर रामभक्त शिवजीको ऐसे मोहकी चर्चा भी नहीं सुहाती "उमाराम विषइक अस मोहा, नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।"

परमपदप्राप्तिके लिये अविद्याजनित और विद्याजनित दोनों प्रकारके मोहोंका त्याग आवश्यक है, श्रुतिका वचन है—

अन्धन्तम प्रविशन्तियेऽविद्यामुपासते

ततो भूय इव ते तम यउ विद्यायाᳪरताः।

शङ्का १२—एक बार शिवजीने लिखा "जोग ग्यान वैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम" और फिर लिखते हैं—

जबतें सती जाइ तनु त्यागा

तबतें सिवमन भयउ बिरागा

अर्थात् वैराग्यनिधि शिवजीके मनमें सतीके तनुत्यागके पीछे विराग उत्पन्न हुआ।

समाधान १२—'वैराग्यनिधि' पदसे जिस वैराग्यकी सूचना है उस वैराग्यके तो शिवजी स्वरूप हैं, पार्वतीजीने भी कहा है कि

"हमरे जान सदा सिव जोगी

अज अनवद्य अकाम अभोगी

सतीजीके तनुत्याग करनेपर

'भक्त विरह दुख दुखित सुजान' शिवजी उदास हो कैलास छोड़ बहुत कालतक भूमण्डलपर सत्सगके लिये विचरते रहे। वैराग्यनिधिमें 'वैराग्य' शब्द परमार्थसे सबध रखता है और चौपाईमें 'विराग' शब्द व्यावहारिक है, साधारणतया उदास रहनेके अर्थमें आया है।

शङ्का १३—पार्वतीजीने पूछा था

'प्रजा सहित रघुवंसमनि किमि गवने निज धाम', इस प्रश्नका उत्तर रामचरितमानसमें कहाँ दिया गया है?

समाधान १३—रामचन्द्रजीके प्रति शिवजीकी और ग्रन्थकारकी प्रगाढ भक्ति उपास्य देवका वियोगवर्णन सह नहीं सकती, साथ ही अवध वा साकेतनिवास भक्तकी कल्पनामें नित्य और सत्य है, अयोध्या और सरयूतटका श्रीरघुनाथजी द्वारा त्याग भक्तको कल्पनामें असह्य है, राम और सीताका वियोग ही ग्रन्थकार नहीं मानता,

सीतहिं प्रथम अनल महँ राखी
प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी।

सीताहरण भी छायामात्रका हरण दिखाया है।

लछिमनहू यह भेद न जाना
जो कछु चरित रचे भगवाना।

और आगे जाकर जब सीताजीकी अग्निपरीक्षा की है तब ग्रन्थकारने साफ लिख दिया,

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।

तात्पर्य यह कि वास्तविक सीता निरन्तर शुभभावसे साथ थीं श्रीरघुनाथजीसे कभी अलग हुई ही नहीं, इस विचारको निबाहते हुए ग्रन्थकारने सीताजीके वनवास और वाल्मीकिके आश्रममें लवकुशके जन्मकी कथाका केवल दो स्थानोंमें इशारा मात्र किया है एक तो बालकाडमें वन्दनाके प्रसंगमें

सिय निंदक अघ ओघ नसाये,
लोक विसोक बनाइ बसाये,

और दूसरा उत्तरकाडमें

दुइ सुत सुंदर सीता जाये
लव कुस बेद पुरानन गाये।

पहलेमें धोबीकी शिकायतपर सीताजीके त्यागका अप्रत्यक्ष इशारा है और दूसरेमें लव कुश नामक दो सुंदर बेटे सीताजीके हुए यद्यपि 'दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे'में पिताका उल्लेख है। लव कुशके विषयमें केवल माताका उल्लेख सीताजीके वनवासका अप्रत्यक्ष पता देना है। बिना सीताजीके श्रीरघुनाथजीकी यात्रा बड़ी खूबसूरतीसे उत्तरकाण्डमें ४९वें दोहेके बाद दिखायी।

"अस कहि मुनि वसिष्ट गृह आए, कृपा सिन्धुके मन अति भाए
हनूमान भरतादिक भ्राता, संग लिये सेवक सुखदाता
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए, गज रथ तुरग मगावत भए
देखि कृपा करि सकल सराहे, दिये उचित जिन्ह जिन्ह जेहि चाहे
हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई, गये जहां सीतल अँवराई
भरत दीन्ह निज बसन डसाई, बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई
मारुत सुत तब मारुत करई, पुलक वपुष लोचन जल भरई
हनूमान सम नहिं बड़ भागी, नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई, बार बार प्रभु निज मुख गाई।
तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥

* * * *

प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभा सिन्धु हृदय धरि, गए जहां बिधि धाम ॥"

यहां सीताके बिना ही पूरी मंडली दिखायी गयी है और नारदजी पार्षदसे गुणगान कराकर रामायणी कथाका पटक्षेप कर दिया गया है।

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा -
मैं सब कही मोर मत यथा

कछुक राम गुन कहेहु बखानी
अबका कहहुँ सो कहहु भवानी।

* * * *

श्री पार्वतीजीने शिवजी पूछते भी हैं कि अब क्या कहूं। यदि पार्वतीके मनमें 'प्रजा सहित रघुवसमनि, किमि गवने निज धाम' इस प्रश्नका उत्तर पर्याप्त रूपसे आ न गया होता तो वह अब क्या कहू पर अपना प्रश्न अवश्य दुहरातीं, परन्तु उन्होंने गरुड और भुशुंडिकी कथा पूछी जिससे स्पष्ट है कि उनके पहलेके प्रश्नोंका उत्तर मिल गया।

शङ्का १४—

'जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई, सोउ दयाल राखहु जनि गोई

गिरजाजीकी कौन सी अनपूछी बातका शिवजीने उत्तर दिया है?

समाधान १४—प्रश्न करनेवालेकी यह चतुराई है कि उत्तर देनेवालेसे सभी जाननेके योग्य बातें निकाल ले। गिरजाका यह प्रश्न भी उसी तरहका है। रामचरितमानसका वर्णन जितने विस्तारसे या जितने संक्षेपसे हुआ है, उसके सम्बन्धमें कोई विशेष प्रश्न नहीं है, कथा विस्तारमें अनेक बातें अनपूछी समझी जा सकती हैं। साथ ही अनेक बातें ऐसी भी कथाविस्तारमें छूट गयी होंगी कि यह कहना कि उत्तरके कई अंश छूट गये हैं अनुचित न होगा। विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको धनुर्विद्या सिखायी, गगावतरण और अहिल्याकी कथा सुनायी, यह सब बातें जो रामचरितमानसमें वर्णित हैं गिरिजाके प्रश्नोंके बाहर समझी जा सकती हैं, और इसमें तो तनिक भी सदेह नहीं कि कागभुसुंडि और शिवजीकी यात्रा गिरजाकी अनपूछी बातोंके अन्तर्गत ही हो सकती है।

औरउ एक कहहुँ निज चोरी। सुनु गिरजा अति दृढ़ मति तोरी
कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ
परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले

शङ्का १५—मनु सतरूपाके प्रसगमें श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी दोनों ही प्रगट हुए परन्तु बातचीत केवल श्रीरामचन्द्रजीसे ही हुई, इसका क्या कारण है?

समाधान १५—स्वायम्भुव मनु और सतरूपाकी उपासना केवल रामचन्द्रजीके लिये थी।

* * * *

द्वादस अच्छर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग,
वासुदेव पद पङ्करुह, दम्पति मन अति लाग।

* * * *

पुनि हरि हेतु करन तप लागे, वारि अहार मूल फल त्यागे।

परन्तु उनके हृदयमें निरतर यह अभिलाषा रहती थी कि हम उसी रूपके दर्शन करें जो शिव, भुशुंडि आदि भक्तोंके मनमें बसता है, अतर्यामी भगवान विश्वकी समस्त घटनाओंको सुसगत रूपसे सघटित करनेवाले पुरुष और प्रकृतिके रूपमें प्रकट हुए क्योंकि भावी घटनाचक्रमें दोनोंके अवतारकी आवश्यकता थी। मनु सतरूपा अनन्य भक्त थे, यह पुरुषमात्रके उपासक थे, दोनोंकी अभिलाषा थी

'चाहहुँ तुमहिं समान सुत, प्रभु सन कौन दुराव'

इस वरदानको देते और पुत्रत्व स्वीकार करते हुए भी भगवान रामचन्द्रजी अपने साथ प्रकट श्री सीताजीकी ओर इशारा करके यों परिचय देते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं—

'आदि सक्ति जेहि जग उपजाया'
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।

सीताजीसे तो वर मागनेका कोई प्रयोजन ही नहीं था, क्योंकि सीताजीको उसी घरमें अवतरित होना, जिसमें श्रीरघुनाथजी अवतरित हुए, नितान्त असगत था। हा, साथ ही साथ प्रकट होना पुरुष और प्रकृतिके अभिन्न सबधका परिचायक है, यह त्रिकालमें अलग नहीं हो सकते, एककी उपासना दूसरेसे भी मिलानेके लिये पर्याप्त होती है।

शङ्का १६—भानु प्रताप बडा धर्मात्मा राजा था, उसका अन्त इतना बुरा क्यों हुआ ?

समाधान १६—मनुष्यकी बुद्धि सदा एकसी नहीं रहती, यद्यपि आरभमें

> करइ जो धरम करम मन बानी।
> बासुदेव अरपित नृप ग्यानी

परन्तु उसमें राजोचित साम्राज्य वृद्धिकी बडी लालस थी जो कि उसके विजयोंसे प्रत्यक्ष है। अब वह कपटी मुनिसे वर मागने लगा उस समय भगवदर्पणके भावके बदले उसकी स्पष्ट कामना थी।

> जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितउ जनि कोउ
> एक छत्र रिपु हीन महि, राज कलप सत होउ।

यह उसके मनकी उत्कट अभिलाषा थी जिसकी पूर्तिके लिये उसने इससे पहिले भी कोई बात उठा न रखी होगी परन्तु अपने धूर्त्त शत्रुके जालमें वह ऐसा फसा कि उसे अकरणीय कर्म करने पडे और लोकैषणाके पीछे वह बेतरह छला गया। अन्तकालमें जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है, विप्र शाप हो जानेपर वह घबरा गया और उसकी घोर राक्षसी गतिसे भावी उद्धारका साधन उसकी पूर्व्वभक्ति और शुभ कर्म न होता तो कोई कारण नहीं कि वासुदेवको विशेषत उसके उद्धारके लिये अवतार लेना पडता। साथ ही यह बा॰

भी उल्लेख्य है कि जिस अभिलापसे वह कपटी मुनिके जालमें फँसा वह अंशतः उसके पूर्व पुण्योंके बलसे फैल गयी। बहुत काल तक रावण "जरा मरण दुख रहित" था उसे कोई समरमें जीत नहीं पाता था उसका राज प्राय एकच्छत्र था और उसने यदि सौ कल्प नहीं तो बहुत कालतक तो अवश्य ही राज्य किया।

*शङ्का १७—रावणके दस सिर और बीस बाहें तुलसीदास जीनें गिनायी हैं, क्या यह अप्राकृतिक नहीं है?

समाधान १७—तुलसीदासजीने कुछ अपनी तरफसे रावणके कधेपर दस सिर नहीं जोडे। 'नाना पुराण निगमागम समत' जो बातें पायीं लिखीं। यद्यपि वाल्मीकीय रामायणमें युद्धकाड-तक रावणके जन्मादिका वर्णन नहीं है और बहुतसे विद्वान् षट्काडानि तथोत्तर, कोन मानकर उत्तरकाडको क्षेपक मानते हैं। तथापि इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि वाल्मीकीय उत्तर काडमें ६वें सर्गके २६ वें श्लोकमें रावण जन्मका उल्लेख करते हुए लिखा है,

> एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित्,
> जनयामास बीभत्स रक्षो रूप सुदारुण।
> 'दशग्रीव महा दष्ट्र नीलांजन चयोपमम्,
> ताम्राष्ठ विंशति भुज महास्य दीप्तिमूर्द्धज।
> तस्मिन् जाते ततस्तस्मिन् सज्वाल कवला शिवा,
> क्रव्यादाश्चापसव्यानि मडलानि प्रचक्रमुः'

हे राम! यह सुन उस कन्याने कुछ दिनों पीछे अति भय कर रूप अति दारुण, दस मुख, बीस भुजा तथा बडे बडे दात-वाला श्याम अजनके समान काला ताम्रवत् ओष्ठवाला बडा

* दस सिर ताहि बीस भुज दडा।
रावन [illegible] बरबडा॥

भारी मुख तथा कुछ ललाई लिये बालवाले रावणको उत्पन्न किया। उस दारुण कालमें उस दारुण रावणके उत्पन्न होनेके कारण मुखसे ज्वाला सहित कवल युक्त श्रृगालिया व गृद्धादि पक्षी दाहिनी ओर निकलने लगे।

रही यह बात कि रावणके दस सिर होना स्वभावके प्रतिकूल है या नहीं, सो हम इसके उत्तरमें कहेंगे कि सामान्यत दस सिर होना स्वभाव-विरुद्ध है। परन्तु सृष्टिमें असामान्य और असाधारण रीतिसे स्वभाव-विरुद्ध बातें देखी जाती हैं, स्वभाव विरुद्धका अर्थ असम्भव नहीं है, जुटे हुए बच्चे, दो सिर और चार हाथवाले देखनेमें आये हैं, और ऐसे मनुष्य बहुत दिनोंत जीते भी रहे हैं। ससार बहुत विस्तीर्ण है। हमारा ज्ञान जितना परिमित है उतना परिमित संसार नहीं है। बहुत सी असाधारण बातें नित्य होती रहती हैं, जिन सबका ज्ञान तर्क करने वालोंको होना सम्भव नहीं है। सृष्टिके प्राचीन युगोंमें कराल व्याल राक्षसों और दैत्योंका होना विज्ञानके खोजियोंने सिद्ध किया है और यह भी असम्भव नहीं है कि अत्यन्त प्राचीन युगों मनुष्यके समान बुद्धिका विकास पाये हुए ऐसी जातिके प्राणी रहे हों जिन्हें हम विज्ञानकी दृष्टिसे वानर अर्थात् आधा मनुष्य कह सकते हैं। रामायणकी कथा त्रेतायुगकी बतायी जाती जिसका काल अनुमानत अबसे नौ दस लाख बरस पी पड़ता है। वर्तमान विकासप्राप्त मनुष्य जातिके अस्तित्वका पता वैज्ञानिक खोजसे गत दो लाख वर्षों से है क्योंकि इतने पुराने स्तरोंके नीचे खोपड़िया और ठठरिया मिली है। भूगर्भ-विद्या और जीवविज्ञान सम्बधी विकास-वाद दोनों अन्योन्याश्रित हैं और इनके अकोंकी अटकल करनेकी रीति ऐसी ढीली ढाली है कि दो लाखके दस लाख और दस लाखके दो लाख होनेमें कोई भयकर भूल या महापातक नहीं समझा जाता। रामायणकी सारी कथा पढकर यह सहज ही अनुमान हो

सकता है कि यह किसी और ही कल्पकी सभ्यताका वर्णन है। यदि महात्मा तिलक और मनुस्मृतिके मतसे तेरह चौदह हजार वर्षोंका कल्प मानें तो यह बात समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। जो हो, रामायणके रावणका आज कलकेसे मनुष्योंसे विलक्षण होना, वानरोंकी सेनाका श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करना, राक्षसों और (मनुष्य खानेवाले) मनुजादोंकी लड़ाई और सौ योजनके सागरपर बहनेवाले पत्थर या झाँवाका पुल बनाना, आकाशमें उड़नेवाले "पुरों" और विमानोंपर युद्ध करना या उन्हींमें बराबर निवास करना, बड़ी लम्बी लम्बी छलांगें मारना, पेड़ोंको उखाड़ उखाड़कर और पहाड़के चट्टान तोड़ तोड़कर फेंकना और बहुत बड़ी नहर खोदकर नयी नदियां बहाना या गंगाका लाना, उस युगके लिये आजकलकी वैज्ञानिक दृष्टिसे तनिक भी अस्वाभाविक नहीं है। हां, इतना दोष अवश्य है कि विलायती आचार्य्य और उनको माँसे माननेवाले और मनसे उनका तिरस्कार करनेवाले एतद्देशीय अर्द्धशिक्षित वैज्ञानिक इन बातोंको स्वभावके प्रतिकूल मानते हैं।

जिन्हें यह दिक्कत मालूम होती है कि रावण किस करवट सोता होगा, किन किन मुहोंसे खाता होगा इत्यादि, उन्होंने बहुत सी युक्तियां इस शंकाके समाधानमें रची हैं जिनका उल्लेख यहां निरर्थक है।

एक मत है कि रावणके पिता विश्रवा ऋषि उसकी कैकसीको प्रिया सम्बोधन करके ध्यानस्थ हो गये और दस मास पीछे जब आंखें खुलीं तो देखते क्या हैं कि केकसी हाथ जोड़े सामने खड़ी है, पूछा, कि तुम्हें कितने महीने हुए, बोली, दस। ऋषिने विचारा कि दस ऋतु दान खंडित होनेके कारण इसमें दस भ्रूण हत्यायें लगेंगी अत उसे या तो दस बालक होने चाहिये या दसोंके समान एक, इसीलिये केकसीसे दस सिर बीस भुजोंवाला एक पुत्र हुआ।

कोई कहता है कि विद्या चौदह है इससे ब्रह्माने विचारा कि मेरे तो चार मुख हैं इस कारण चारही विद्यायें मैं ग्रहण कर सकूंगा, शेष दस विद्याओंके लिये रावणको बनाया, इसीसे तो ब्रह्मा चार मुखसे वेद पाठ करते हैं और रावण दसों मुखोंसे वेदपर भाष्य करता है।

अथवा राजामें सर्व देवोंका अंश रहता है तिसमें तीन देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश मुख्य हैं जो धर्मके उत्पादकके, प्रजा पालनकर्ता और दुष्टोंके नाशक हैं इसीसे चार मुख ब्रह्माके पांच मुख शिवजीके और एक मुख विष्णुजीका लेकर दशानन हुआ।

अथवा दसों दिशाओंको जीतनेवाला होगा इससे दशानन हुआ।

अथवा रावण मोह रूप है उसके दस इन्द्रिया ही आनन हैं उनके द्वारा बली है इस कारण दशानन हुआ अथवा दसवीं दशा मृत्यु है इसलिये दस मुखसे संसारकी मृत्यु सूचित करायी।

*शङ्का १८—रावणने यह वरदान मांगा कि हम मनुष्य और वानर छोड किसीके मारे न मरें परन्तु वह मारा गया मनुष्यके हाथ, वानरवाला वर निष्फल क्यों हुआ ?

समाधान १८—शिव और ब्रह्माने वाणी द्वारा प्रेरणा करके जो वर उससे मंगवाया वह केवल उसकी ही व्यक्तित्वके लिये नहीं था उसने कहा है कि, हम काहू कर मरहि न मारे, जिसका तात्पर्य यह है कि मैं और मेरे साथी राक्षस मनुष्य और वानर छोड किसीके मारे न मरें। इसके लिये और प्रसङ्गमें स्पष्टीकरण हैं जैसे—

---

* हम काहू कर मरहिं न मारे
वानर मनुज जाति दुइ बारे

रावन मरन मनुज कर जांचा
प्रभु विधि वचन कीन्ह चह सांचा।

* * * *

काल पाय मुनि सुनु सोइ राजा
भयउ निसाचर सहित समाजा।
दस सिर ताहि बीस भुज दडा
रावन नाम वीर बरवडा।

* * * *

रहे जे सुत सेवक नृप केरे
भये निसाचर घोर घनेरे।

* * * *

बचेउ मोहिं जवन धरि देहा
सोइ तनु धरहु साप मम एहा।
कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी
करिहैं कीस सहाय तुम्हारी।

* * * *

आये कीस कालके प्रेरे
छुधावन्त रजनीचर मेरे।
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू
धरि धरि भालु कीस सब खाहू।
कहै दसानन सुनहु सुभट्टा,
मरदहु भालु कपिनक ठट्टा।
हौं मारि हौं भूप दोउ भाई
अस कहि सनमुख फौज रिगाई।

भिरे सकल जोरी सन जोरी
इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ।

शङ्का—१६—पहले तीन कल्पोंकी कथाका विस्तार करके ग्रन्थकारने एकाएकी आकाशवाणीके समय " कश्यप अदिति तहाँ पितु माता " का उल्लेख किया, जिसकी चर्चा पहले नहीं की थी। चर्चा तो मनु सतरूपाकी होनी चाहिये थी। यह तो विचित्र ढङ्ग है, " कहींकी ईंट कहींका रोड़ा "।

समाधन १६—ग्रन्थकारने चार कल्पोंकी कथाका उल्लेख किया है, यद्यपि उनकी प्रतिज्ञा विशिष्टरूपसे चार कल्पोंके लिये नहीं थी।

जनम एक दुइ कहहु बखानी
सावधान सुनु सुमति भवानी ।

* * * *

सो सब हेतु कहब मैं गाई
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई
कल्पभेद हरिचरित सुहाये
भांति अनेक मुनीसन गाये

* * *

अपर हेतु सुनु सयलकुमारी ।
कहहु विचित्र कथा विस्तारी ।
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं ।
चारु चरित नाना विधि करहीं ।
विविधि प्रसग अनूप बखाने ।
करहिं न कछु आचरज सयाने ।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी ।

नहिं आचरज करहिं अस जानी।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

* * * *

ग्रंथकारने अनेक कल्पोंकी कथा बीच बीचमें विचित्र रूपसे ग्रथित की है। जान बूझकर भिन्न भिन्न कल्पोंकी कथाओंको बीच बीचमें रत्नोंकी तरह अवसरके अनुकूल जड दिया है। विचित्रता यह है कि चार कल्पोंकी चार रामायण होती परन्तु कथाकी समानता होनेके कारण जहा जहा थोडा थोडा अन्तर पडा वहा कविने इशारेसे काम लिया है और ऐसे ढगपर वर्णन किया है कि मानसके रसज्ञ बाचनेवाले कई रामायणोंका आनन्द पावें।

चार कल्पोंकी कथा विशेष रूपसे है। इनमें दो अवतार तो श्रीविष्णुजीके हैं और एक अवतार क्षीरसागरशायी श्रीमन्नारायण भगवानका है और एक अवतार श्रीसाकेत विहारीका है, तीनों कथाओंका क्रमश सातों काडोंमें निर्वाह किया है। एक मुख्य और दो गौण पक्ष हैं। उनके उदाहरण क्रमश इस प्रकार हैं।

पहले श्रीविष्णु अवतार कथा मानसान्तर्गत प्रमाण

पुर बैकुठ जान कह कोई।

कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।

* * * *

कस्यप अदिति महातप कीन्हा।

तिन्ह कहँ मैं पूरब बर दीन्हा।

* * * *

लोचन अभिराम तनु घन स्याम निज आयुध भुज चारी।

* * * *

सो ममहित लागी जन अनुरागी भये प्रगट श्रीकता।

* * * *

भिरे सकल जोरी सन जोरी।
इत उत जय इच्छा नहिं थोरी।

शङ्का—१६—पहले तीन कल्पोंकी कथाका विस्तार करके ग्रन्थकारने एकाएकी आकाशवाणीके समय " कश्यप अदिति तहाँ पितु माता " का उल्लेख किया, जिसकी चर्चा पहले नहीं की थी। चर्चा तो मनु सतरूपाकी होनी चाहिये थी। यह तो विचित्र ढङ्ग है, " कहींकी ईंट कहींका रोड़ा "!

समाधान १६—ग्रन्थकारने चार कल्पोंकी कथाका उल्लेख किया है, यद्यपि उनकी प्रतिज्ञा विशिष्टरूपसे चार कल्पोंके लिये नहीं थी।

जनम एक दुइ कहहु बखानी
सावधान सुनु सुमति भवानी।

* * * *

सो सब हेतु कहब मैं गाई
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई
कल्पभेद हरिचरित सुहाये
भांति अनेक मुनीसन गाये

* * *

अपर हेतु सुनु सयलकुमारी।
कहहु विचित्र कथा विस्तारी।
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं।
चारु चरित नाना विधि करहीं।
विविधि प्रसग अनूप बखाने।
करहिं न कछु आचरज सयाने।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी।

इत्यादि अनेक वाक्य विष्णु अवतारके मानसांतर्गत हैं। अब क्षीरशायी भगवान श्रीमन्नारायणके अवतारकी कथा सुनिये।

सदा छीर सागर सयन।

* * * *

सष सहस्र सीस जग कारन

* * * *

कोउ कह पय निधि वस प्रभु सोई।

* * * *

नारद वचन सत्य सब करिहैं।

* * * *

पय पयोधि तजि अवध बिहाई

* * * *

मोर साप करि अंगीकारा,
सहत राम नाना दुख भारा।

इत्यादि। अब श्रीसाकेतविहारी परात्परतम द्विभुजका प्रकरण सुनिये।

देखे सिव बिधि बिस्नु अनेका,
अमित प्रभाव एकतें एका।
बदत चरन करत प्रभु सेवा,

* * * *

उपजहिं जासु असतें नाना
संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना।

* * * *

उर मनिहार पदिकके सोभा ;
विप्र चरन देखत मन लोभा ।

* * * *

पद नप निरषि देवसरि हरषी,
सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी ।

* * * *

नमामि इंदिरा पतिं,
सुखाकर सतां गतिं

* * * *

भजे सशक्ति सानुज
शचीपति प्रियानुज ।

* * * *

एवमस्तु कहि रमानिवासा

* * * *

अतिबल मधु कैटभ जिहिं मारे
महावीर दिति सुत संहारे ।
जेहिं बलि बाधि सहस भुज मारा,
सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ।

* * * *

हिरन्याच्छ भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान
जेहिं मारे सोइ अवतरे, कृपासिंधु भगवान ।

* * * *

जय राम रमा रमन समन,

* * * *

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहे।

इत्यादि अनेक वाक्य प्रमाण हैं। इसलिये मुख्य कथा विस्तार और ऐश्वर्य्य तो श्रीसाकेतविहारीका है क्योंकि सबधवाक्य यों है—

एहि मह आदि मध्य अवसाना,
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।

इन सब बातोंसे ग्रन्थकारका विचित्र प्रबध सिद्ध है। अनेक कल्पोंकी कथा एकही पुस्तकमें ग्रथित हैं, अनेक रामायणों इतिहासों और पुराणोंके अनुकूल सब मतोंकी रक्षा करते हुए अपने इष्टदेवको परात्परतम दिखाते हुए ग्रथकारने यह रचना वस्तुत अद्भुत की है। जो साधारणतया असगति दोष सा प्रतीत होता है वह वस्तुत ग्रथकारका रचनावैचित्र्य है।

शङ्का २०—कौशल्याको महाराजने तो जन्म कालहीमें अपना वास्तविक रूप दिखा दिया था फिर पूजाके समय कौशल्याजीको भ्रम क्यों हुआ? और विश्वामित्रजीके लिये प्रकरणारम्भमें ही कहा गया

तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा,
प्रभु अनतरेउ हरन महि भारा।
एहू मिस देषउ पद जाई,
करि विनती आनौं दोउ भाई।
ग्यान विराग सकल गुन अयना,
सो प्रभु मैं देषब भरि नयना।
बहुविधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरयू जल, गए भूप दरबार।

और आगे जाकर राक्षसवधपर कहते हैं,

सुनु सेवक सुर तरु सुर धेनू।
विधि हरि हर वंदित पद रेनू।

* * * *

देखरावा मातहिं निज,अद्भुत रूप अखंड,
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड।

प्रति ब्रह्मांडमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश गिनाये हैं, जहां करोड़ों ब्रह्मांड रोम रोम प्रति हैं वहां ये वेचारे क्या हैं।

हरि हित सहित राम जब जोये
रमा समेत रमापति मोहे।

* * * *

हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा।
मुनि अकुलाय उठा तब कैसे।

* * * *

की तुम्ह तीन देव महँ कोऊ (विष्णु हो)
अथवा, नर नरायनकी तुम दोऊ (क्षीरशायी हो)
जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार,
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार।

अर्थात् साकेत विहारी हो ?

सकर सहस विस्नु अज तोहीं,
सकहिं न राखि राम कर द्रोही।

* * * *

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूपसिरोमने,

* * * *

कोटि विस्नु सम पालन करता

* * * *

ऐसा होते हुए भी यह बात सदैव ध्यानमें रहनी चाहिए कि मनकी वृत्ति और बुद्धिकी दशा निरंतर एक सी नहीं रहती, जो ऋषि देवता आदि कल्पित शरीरके बंधनमें पड़े हुए दिखाये गये हैं त्रिकालज्ञ होते हुए भी अनायास ही उनका सब कुछ जान लेना शरीरयुक्त होते हुए स्वाभाविक नहीं है, शिवजी त्रिकालज्ञ हैं, ईश्वर हैं, परन्तु उन्हें भी ध्यान*धरनेपर वास्तविक घटनाका ज्ञान होता है। जब शिवजीकी यह दशा है तो मुनि और कौशल्या की बात ही क्या है जिसे यह अलौकिक विवेक निरंतर बना रहता है वह परम ज्ञानवान विदेह जनक भी शरीरके प्रभावसे अपनी विदेहता भूल जाते हैं।

बंधु समेत जनक तब आए,
प्रेम उमगि लोचन जल छाए।
सीय बिलोकि धीरता भागी,
रहे कहावत परम बिरागी।
लीन्हि राय उर लाय जानकी,
मिटी महा मरजाद ग्यानकी।
समुझावत सब सचिव सयाने,
कीन्ह विचारु अनबसर जाने।

शकुन्तला नाटकमें भी भाव और रसकी प्रबलता विरागी कण्वके सम्बन्धमें कालिदासने जो दिखायी है वह प्रसिद्ध है। तात्पर्य्य यह कि विवेकका काम किसी कार्य्यप्रवृत्तिके समय सदसद् विचार करनेके लियेही लगता है, मनकी तरह विवेक निरंतर हाज़िर और नाज़िर नहीं है, द्रष्टा और भोक्ता नहीं है केवल परिचायक है। यह वह मंत्री या सलाहकार है जो वक़्त

* तब सार देखेउ धरि ध्याना,
सती जो कीन्ह चरित सब जाना।

तब रिपि निज नाथहिं जिय चीन्हा,
विद्या निधि कहुँ विद्या दीन्हा ।

इससे स्पष्ट है कि बीचमें मुनिजीको भी कौशल्याकी तरह भ्रम हो गया था । इसका क्या समाधान है ?

समाधान २०—मनु सतरूपाके प्रकरणमें वरदान मागते समय कहा है ।

जो वर नाथ चतुर नृप मागा,
सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ।
प्रभु परतु सुठि होति ढिठाई,
जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई ।
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जगस्वामी,
ब्रह्म सकल उर अतरजामी ।
अस समुझत मन ससय होई,
कहा जो प्रभु प्रमान पुनि सोई ।
जे निज भगत नाथ तव अहहीं,
जो सुप पावहिं जो गति लहहीं ।

सोइ सुष सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु ।

और महाराजने उत्तर दिया है

मातु विवेक अलौकिक तोरे,
कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ।

इसमें जन्मके पहलेही माता करके संबोधन किया और ...की कि मेरे अनुग्रहसे तुम्हारा अलौकिक विवेक बना

देते हैं, ऐसे आनन्दमें तन्मय कर देते हैं कि साधारण-सेवक सेव्य भाव लुप्त हो जाता है और स्वामी और दासका विवेक छिपा रहता है, कौशल्याके सामने जो बालक्रीडा होती थी उसका कुछ उल्लेख मानसमें हुआ है और विश्वामित्रके साथकी बाललीलाका उल्लेख गीतावलीमें हुआ है, कौशल्याजीके लिये माताका सबोधन उनके पूर्वजन्म सबधमें उल्लिखित हो चुका है और विश्वामित्रजीको सौंपते समय दशरथजीने कहा है—

मेरे प्राननाथ सुत दोऊ,
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।

विश्वामित्रजीको शिष्य-भावके अतिरिक्त राम लक्ष्मणके प्रति पुत्र भावका होना इससे स्पष्ट होता है।

शङ्का २१—विश्वामित्रजी तो यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज को लाये थे फिर धनुषयज्ञमें बिना पूछे क्यों ले गये?

समाधान २१—विश्वामित्रजी पहले ही राजा दशरथसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

'धरम सुजस प्रभु तुमकहँ, इन कहँ अति कल्यान'

महाराज आप राजा हैं प्रजाकी रक्षा आपका धर्म है सो आप मेरे यज्ञकी रक्षा कराके धर्मके भागी होंगे। और आपके पुत्रोंने रक्षा की, यह आपका यश ससारमें फैलेगा। और इन राजकुमारोंका क्या लाभ है? 'इन कहँ अति कल्यान' इनका परम कल्याण होगा। छिपा हुआ अभिप्राय यह है कि महाराजके पराक्रमसे धन्वा टूटेगा, त्रिलोकमें कीर्ति फैलेगी और सीतारूपी विजयश्री प्राप्त होगी। इन बातोंकी तरफ दोहेमें साफ इशारा है। राजा अपने वात्सल्य प्रेममें इतने डूबे हुए थे कि यह प्रलोभन उनके हृदयके ऊपर कोई असर न डाल सके और थोड़ेसे ही वियोगके प्रस्तावको अति अप्रिय वाणी समझा। जो हो चलती

ज़रूरतके बुलाया जाता है। परन्तु मन प्रत्येक इन्द्रियमें क्षणक्षण घूम घूमकर कर्ममें प्रवृत्त होता और रसोंका आस्वादन करता रहता है। इसी तरह रस और भावकी प्रवृत्तिमें विवेक और बुद्धिका निरंतर उपस्थित रहना न केवल अनावश्यक है प्रत्युत अस्वाभाविक है। महाराज अलौकिक ज्ञानका सम्प्रदान करते हुए भी पहले माता कहके ही सबोधन करते हैं। अर्थात् पहले वात्सल्य रसकी प्रवृत्ति दिखाकर उसके साथही अलौकिक विवेक मंत्री या सलाहकारकी रीतिपर इसलिये देते हैं कि व्यवहार कालमें जभी सदसद्विवेचनाकी आवश्यकता हो तभी उससे काम लिया जाय। समय समयपर कौशल्या और विश्वामित्रमें ऐसीही बात पायी जाती है। वनगमनके समय जहां दशरथजीको शरीरांत करनेवाला वियोग होता है वहां कौशल्याजी अलौकिक धैर्यपूर्वक अपने प्यारे पुत्रको चौदह बरसके वनवासके लिये आज्ञा दे देती हैं। साथही साथ यह सद्‌सद् विवेक भी कौशल्याका स्थिर है कि विमाता होते हुए भी कैकयीकी आज्ञा पालन करना रामचन्द्रजीका उतनाही कर्तव्य है जितना कौशल्याकी आज्ञाका पालन करना।

जो केवल पितु आयसु ताता

तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।

जौं पितु मातु कहहिं वन जाना

तौ कानन सत अवध समाना।

विश्वामित्रजी भी जनकसे परिचय देते हुए कहते हैं।

'ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्रानी'

अर्थात् विश्वामित्रजी अपने प्रभुको भूले नहीं हैं। यह जो बीच बीचमें थोड़े थोड़े कालके लिये भूल सी दिखायी देती है, वात्सल्य रसकी प्रवृत्तिके कारण है। महाराजके बालचरित कौशल्याको और विश्वामित्रको अज्ञानमें न डालकर ऐसे सुख समुद्रमें डुबा

देते हैं, ऐसे आनन्दमें तन्मय कर देते हैं कि साधारण सेवक सेव्य भाव लुप्त हो जाता है और स्वामी और दासका विवेक छिपा रहता है, कौशल्याके सामने जो बालक्रीड़ा होती थी उसका कुछ उल्लेख मानसमें हुआ है और विश्वामित्रके साथकी बाललीलाका उल्लेख गीतावलीमें हुआ है, कौशल्याजीके लिये माताका सम्बोधन उनके पूर्वजन्म-सम्बन्धमें उल्लिखित हो चुका है और विश्वामित्रजीको सौंपते समय दशरथजीने कहा है—

मेरे प्राननाथ सुत दोऊ,
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।

विश्वामित्रजीको शिष्य-भावके अतिरिक्त राम लक्ष्मणके प्रति पुत्र भावका होना इससे स्पष्ट होता है।

शङ्का २१—विश्वामित्रजी तो यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज-को लाये थे फिर धनुषयज्ञमें बिना पूछे क्यों ले गये?

समाधान २१—विश्वामित्रजी पहले ही राजा दशरथसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

'धरम सुजस प्रभु तुमकहँ, इन कहँ अति कल्यान'

महाराज आप राजा हैं प्रजाकी रक्षा आपका धर्म है सो आप मेरे यज्ञकी रक्षा कराके धर्मके भागी होंगे। और आपके पुत्रोंने रक्षा की, यह आपका यश संसारमें फैलेगा। और इन राज-कुमारोंका क्या लाभ है? 'इन कहँ अति कल्यान' इनका परम कल्याण होगा। छिपा हुआ अभिप्राय यह है कि महाराजके परा-क्रमसे धन्वा टूटेगा, त्रिलोकमें कीर्ति फैलेगी और सीतारूपी विजयश्री प्राप्त होगी। इन बातोंकी तरफ दोहेमें साफ इशारा है। राजा अपने वात्सल्य प्रेममें इतने डूबे हुए थे कि यह प्रलोभन उनके हृदयके ऊपर कोई असर न डाल सके और थोड़ेसे ही वियोगके प्रस्तावको अति अप्रिय वाणी समझा। जो हो

बेर "तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ" यह वाक्य कहके सौंप इससे विश्वामित्रजीको वह स्वतः पूरा अधिकार दे चुके।

शङ्का २२—जनकजीने विश्वामित्रजीसे मिलते ही श्रीरघुनाथजीको पहचान लिया था फिर सभामें होते हुए अनादर वचन क्यों बोले?

समाधान २२—बीसवीं शंकामें हम इस बातका स्पष्टीकरण कर चुके हैं कि मनकी प्रवृत्ति जैसी जिस समय होती है वैसा ही आचरण मनुष्य कर बैठता है, यद्यपि राजा जनक विवेकनिधि हैं तथापि मनकी वृत्ति सदैव एकसी नहीं दिखायी है।

लीन्ह राय उरलाइ जानकी
मिटी महा मरजाद ग्यानकी।

वात्सल्य रसमें ज्ञानकी मर्य्यादाका मिट जाना दिखाया ही है और महाराजके प्रति विदेहका वात्सल्यभाव अन्यत्र भी स्पष्ट किया है

सहित विदेह बिलोकहिं रानी
सिसु सम प्रीति न जाय बखानी।

इसके सिवाय जिस प्रकरणकी यह शका है, उसमें रौद्र रसका भी सचार स्पष्ट है।

नृपन बिलोकि जनक अकुलाने,
बोले बचन रोष जनु साने।

जनकजी व्याकुल हो गये हैं और यद्यपि समयोचित आत्मसम्मानपूरित स्पष्ट क्रोधसे भरे हुए वाक्य निकल रहे हैं तथापि "रोष जनु साने" हैं, अर्थात् वस्तुत व्याकुलताका भाव सबसे प्रबल है यद्यपि प्रकाश क्रोधका हो रहा है, सो भी क्रोध अकेला नहीं है व्याकुलताके वचनके साथ सना हुआ है। एक तो वात्सल्यभाव और दूसरे उस समय व्याकुलताके उद्वेगसे महाराजकी

उपस्थितिका ध्यान न होना मानवचरित्रके लिये परम स्वाभाविक है। ऐसे अवसरोंमें विवेकका वाग्वाद बीचमें कूद पड़ना बिलकुल अस्वाभाविक और असंगत है। अत उन वचनोंको निरादरके वचन नहीं समझना चाहिये।

शङ्का २३—सीय स्वयम्बर देखिय जाई,
ईश काहि धौं देहि बड़ाई।

इसमें सीताजीका स्वयंवर कहा है, परन्तु धन्वा तोड़नेकी प्रतिज्ञा हुई तो स्वयंवर कैसा?

समाधान २३—प्रतिज्ञा सहित स्वयंवर भी हुआ करते हैं इस बातका प्रमाण द्रौपदीका स्वयंवर है, जिसमें मत्स्यवेधकी शर्त थी और द्रौपदीने पाण्डवोंको स्वयं नहीं चुना था। इधर महारानी सीताजीने फुलवारीमें महाराजके दर्शन करके स्वयं वरण कर ही लिया था और प्रतिज्ञा पूरी होनेके लिये न केवल पार्वतीजीकी शरण गयी हीं, प्रत्युत धनुष टूटनेके पहले कितनी घबरायी हुई थीं उसका चित्रण ग्रंथकारने अपूर्व रीतिसे किया है। पीछे जयमाला पहिराना स्वयंवरकी ही रीति है। भगवानके विवाहमें तीन रीतियां बर्ती गयीं। एक तो प्रतिज्ञा, दूसरी जयमाला और तीसरी साधारण कुल रीतिके अनुकूल विवाह।

बहुधा लोग यह युक्ति भी देते हैं कि विश्वामित्रजीने एक प्रकारकी भविष्यवाणी कही है कि महाराज आप जो स्वय वर हैं अर्थात् विवाहके लिये चुने हुए हैं अथवा आप जो श्रेष्ठ हैं वह स्वय सीताजीको जाके देखिये, परन्तु उद्घाटनके डरसे तुरंत ही कहते हैं कि नहीं मालूम किसको भगवान बड़ाई दे। इसपर उनके पिछले सदेहको दूर करते हुए "लखन कहा, जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।"

शङ्का २४—भूप सहसदस एकहिं बारा,
लगे उठावन टरइ न टारा।

अगर धनुष उठ जाता तो कन्या किसको वरी जाती ?

समाधान २४—पहले तो धनुषकी गुरुताकी परीक्षाके लिये सब राजा लगे, कन्याके अर्थ नहीं। सभामें देव, राक्षस, गंधर्व नाग, मानव सभी आये थे। ऐसा विचारकर दस हजार भजा धनुष उठानेको एक साथ लगे कि कन्याको इतने योद्धाओंके बीचमें वरण करलें तब आपसमें स्वयंवर या युद्ध-रीतिसे निर टारा कर लेंगे, जिसमें कन्या दैत्य, दानव और गंधर्वादिकोंमें न जाने पावे। यों तो जनकजीको मालूम ही था कि धनुष दस हजारके समूहसे भी नहीं उठनेका। यों भी अर्थ हो सकता है कि भूप सह (साथ) सहस (सभा, समूह) अर्थात् समूहमें होकर राजालोग,कई कईकी टोलियोंमें मिलकर उठाने लगे पर टाले न टला।

कोई कोई यह भी अर्थ करते हैं कि भूप सहस (को) एक दस (दशानन) ही (ने) वारा, अर्थात् मना किया। पर वह उठाने में लगे ही। तब भी टाले न टला।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि समूह रूपसे लोग धनु उठानेमें लगे, पर किसीसे टला नहीं। इसपर यह शङ्का कि यदि टल जाता या टूट जाता तो विवाह किससे होता, बिलकुल अन विकार चर्चा है, क्योंकि जो बात हुई नहीं उसको समाधन लेकर व्यर्थ बकवाद करना बुद्धिमत्ता नहीं। यदि रामावतार होता, यदि राम धन्वा न तोडते, यदि रावण मारा न जाता यदि समुद्र न बँधता,तो क्या होता,यह प्रश्न बुद्धिमत्ताके नहीं हैं हम इतिहास कह रहे हैं, आगे क्या चाल चली जाती यह कूट नीति-निर्णायक शास्त्र नहीं लिख रहे हैं।

शङ्का २५—सकर चाप जहाज, सागर रघुवर बाहुबल,
वूड़ सो सकल समाज,चढ़ा जो प्रथमहिं मोहवस।

लोग कहते हैं कि सारे समाजमें राम, जनक, विश्वामित्र आदि सभी थे। सभी डूब गये। इस अर्थ विपर्ययको देखकर

तुलसीदासजी, बड़े संकटमें पड़े तो हनुमानजीने अन्तिम पद 'चढा जो प्रथमहि मोहबस', लगा दिया, यह बात कहांतक ठीक है ?

समाधान २५—यह बात बिल्कुल अनर्गल है, गोस्वामीजी जैसे जागरूक, चतुर और विचारवान लेखक स्वयं अपने लेखसे ऐसी कठिनाईमें नहीं पड़ सकते। उन्होंने भूलके यह सोरठा नहीं लिखा, इस सोरठेसे चौबीस पद पहले उन्होंने जहाज और सागरका रूपक बांधना आरम्भ किया। रामचन्द्रजीका अपार बाहुबल अथाह और वारपारहीन महासागर है, इस महासागरमें एक जहाज डांवाडोल है जिसका नाम है पिनाक। इसी जहाजपर सागर पार करनेके इरादेसे कुछ यात्री सवार हैं। वह यात्री कौन हैं ?

सब कर संसय अरु अग्यानू,
मंद महीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई,
सुर मुनि बरन केरि कदराई।
सिय कर सोचु जनक पछितावा,
रानिन्ह कर दारुन दुख दावा।
संभु चाप बड़ बोहित पाई,
चढ़े जाइ सब संगु बनाई।

इन्हीं सबोंका समाज था जो जहाजपर था—

(१) सबका संशय और अज्ञान कि रामचन्द्रजीसे धनुष टूटेगा कि नहीं।

(२) मूर्ख राजाओंका यह अभिमान कि धनुष टूटनेपर भी हमारे होते हुए रामचन्द्रजीको सीता न वरेगी।

(३) सीताजीका यह सोच कि रामचन्द्रजी मिलेंगे या नहीं।

(४) जनकजीका यह पछितावा- कि मैंने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की ?

(५) रानियोंका यह दुःख कि बालकोंसे राजा जनक धनुष क्यों उठवाते हैं ?

(६) परशुरामजीका यह गर्व कि हमारे गुरुका धनुष तोड़नेवाला हमारे होते जीता नहीं रह सकता।

(७) देवताओं और मुनियोंकी यह कातरता कि कहीं राम और सीताका विवाह न हुआ तो रावण कैसे मरेगा।

यह सातों पिनाकके टूटनेपर ही अवलम्बित थे, एक ही जहाज़पर सवार थे। पिनाक टूटा, जहाज डूबा, और इन सभोंका सर्वनाश हुआ। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि एक तरफ अपार सिन्धु है और दूसरी तरफ़ बिना केवटका जहाज। कर्णधार हो नहीं तो जहाजको इस महासागरसे पार कौन लगाये। इस पद्योंमें ऐसा विलक्षण रूपक स्थापित करके जहाजको बीच समुद्रमें डावाडोल और कर्णधाररहित छोड़कर गोसाईंजी किस खूबीसे धनुषके टूटनेके बीचका शेष चौबीस पद्योंमें वर्णन करते हैं। इस जहाजके डूबनेमें बड़ा शोरोगुल होता है, शायद इसी शोरोगुलमें पाठकको उस अपूर्व रूपकका अंत भूल गया हो, इसीलिये याद दिलाते हैं और दुहराते हैं

सकर चापु जहाज, सागर रघुबर बाहुबल

बूड़ सो सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहि मोहबस।

धन्वा टूटा,और साथ ही साथ उस जहाजके अज्ञानके वशमें सवार यात्री भी जलतलमें निमग्न हो गये। ऐसे ही कहीं के लिये सरोवरके रूपकमें गोसाईं जीने कहा है।

"धुनि अवरेब कवित गुन जाती

मीन मनोहर ते बहु भाँती"।

यह बल उस मछलीका उदाहरण है जो एक ओर सूखी
ौर फिर दस बीस गजके बाद नजर आयी, रूपकके वर्णनका
सिलसिला वस्तुतः टूटा नहीं था, जहाज डावाडोल है, कर्णधार
दारद, तो अब डूबते डूबतेतक जो जो बातें हुईं उनका वर्णन
ी प्रसङ्गके अनुकूल ही था, तुलसीदासजी कौन सी बात भूलते
क उसमें हनुमानजीकी सहायता दरकार होती।

इसमें परशुरामजीका वर्णन जो घटनासे पहले कर दिया है
समें भी कोई असंगति नहीं है, क्योंकि यद्यपि परशुरामजी
ीछे आये तथापि पिनाकका टूटना उनके गुरुके धनुषका भंग
नके गर्वो का भंग ही था, बादकी बातचीत तो उनके विशेष
ानभंगकी चर्चा है, उन्होंने तो स्वयं कहा है।

"सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा,
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाइ बिहाइ समाजा,
नतु मारे जैहहिं सब राजा।"

परशुरामजी आखिर आये क्यों? उनके इस क्रोधका कारण
सके लिये सब राजा मारे जायँगे आखिर था क्या, यही उनके
र्व और गुरुभाईका भंग, उनके मानका टूटना जिसकी मर-
मतके लिये वह सभी राजाओंके सिर काटनेके लिये तुले
ए थे।

शङ्का २६—ग्रन्थकार गोस्वामीजी लिखते हैं कि "जनक बाम
दिसि सोह सुनैना" इससे और स्मृति वाक्यसे विरोध पाया
ाता है, स्मृति प्रमाण—"पत्नी तिष्ठति दक्षिणे" और लोकमें
ी दक्षिण ही ग्रहण है-तब ग्रन्थकारजीने-"बामदिसि" क्यों
लेखा?

समाधान २६—इस वाक्यमें ग्रन्थकारका अगाध
और अनेक प्रयत्नगत है इसलिये यदि दक्षिण लिखना

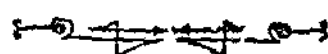
तो, वाम पद कदापि न देते, इसलिये वाम ही दिशा ठीक है अनेक ऋषियोंके अनेक मत हैं। जिन ऋषियोंका बायें रहना मत है, उन्हींका मत यहां ग्रंथकारको ग्राह्य है क्योंकि ग्रंथकारका पहले ही सङ्कल्प है "नाना पुराण निगमागम सम्मतम् यत्।" ग्रंथकारने कोई वाक्य बिना प्रमाण नहीं लिखा है।

दक्षिण दिशाके पक्षमें अक्षरार्थ यों करते हैं कि वामका अर्थ है "शिव सुन्दर" और सौंदर्य और कल्याण दक्षिण दिशामें ही है इसलिये वामका अर्थ है "दक्षिण"। अथवा यों अन्वय कीजिये कि " सुनैना वाम दिसि जनक सोह " वा जनक वाम सुनैना दिसि (अर्थात् उचित दिशामें) सोह (शोभा देती है)। परन्तु दक्षिण दिशाके जितने अर्थ किये जाते हैं स्वाभाविक नहीं हैं। खींचातानीके अर्थ हैं।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहिरउ जो चाहसि उजियार

द्वितीय सोपान—अयोध्या कांड



शङ्का १—श्रीगुरुचरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनहु रघुबर बिमल जस, जो दायक फल चारि॥

बालकाण्डमें रामके यशके वर्णन करनेके लिये गुरुसमेत सबकी वंदना तो कर चुके फिरसे यहा वंदना करनेकी क्या ज़रूरत थी, मनका दर्पण मैला कैसे हो गया ?

समाधान १—यह कविकी शालीनता है। उसका मन न भी मैला हो तब भी गुरुके चरणरजोंकी वंदना कर्तव्य है। आखिर मनका उज्ज्वल होना गुरुजी महाराजका ही प्रसाद तो है। उसके लिये रोम रोमसे श्वास श्वासप्रति कृतज्ञता दर्शायी जाय तो भी थोडा है, साथ ही यहा एक विशेष प्रयोजन भी है। 'राम तें अधिक रामकर दासा' यहा महाराजके यशसे अधिक रघुकुलश्रेष्ठ आदर्श अनुज भरतजीके यशोंका कीर्तन करना है, इसके लिये विशेष प्रतिभा चाहिये अतएव विशेष प्रार्थना है। क्योंकि भरतजीकी कीर्तिके वर्णनमें बडे बडोंको भी लाचारी है—

'अगम सनेह भरत रघुबरको
जहँ न जाइ मति बिधि हरिहरको।

* * * *

जो न होत जग जन्म भरतको
सचर अचर चर अचर करतको

* * * *

भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकहि न सेषु
कबिहिं अगम जिमि ब्रह्म सुख, अहममलिन जनेषु ।

जनकजी कहते हैं—

"धरमराज तप ब्रह्म बिचारू
यहाँ जथामति मोर प्रचारू
सो मति मोरि भरत महिमाहीं
कहइ काह छलि छुवतन छाहीं
विधि गनपति अहिपति सिव सारद
कवि कोविद बुध बुद्धि बिसारद
भरत चरित कीरति करतूती
धरम सील गुन विमल विभूती
वरनत सकल सुकवि सकुचाहीं
सेस गनेस गिरा गम नाहीं,
भरत महा महिमा सुनु रानी
जानहिं राम न सकहिं बखानी"

इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है कि अयोध्याकाडके देवता भरत हैं और भरत चरित्रके लिये ही यहा विशेषकर गुरुकी वदना की गयी है। अन्तिम सोरठा इस धारणाका पोषक है। कहा है—

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं,
सीय रामपद प्रेमु, अवसि होय भव रस विरति ।

यहा 'रघुवर' शब्दसे अवश्य ही भरतजीसे अभिप्राय है। यदि यह कहा जाय कि 'रघुवर' केवल रामचन्द्रजीके लिये आया है तो ठीक न होगा। रघुवरका अर्थ रघुश्रेष्ठ है। दशरथजीके लिये भी रघुनाथ शब्दका प्रयोग हुआ है इसका प्रमाण है—

'तब गुरु भूसुर सहित गृह, गमन कीन्ह रघुनाथ'

फिर लक्ष्मणजीके लिये भी रघुवर शब्दका प्रयोग हुआ है। 'माया मानुष रूपिणौ रघुवरो'और अन्यत्र भी 'रघुश्रेष्ठ' भरतको कहा ही है—

जानहु सदा भरत कुलदीपा
बारबार मोहि कहेहु महीपा।

कहते हैं कि भरतजीके चरितको अगम और अनंत मानकर ही गोसाईजीने अयोध्याकांडकी 'इति' नहीं लगायी और अरण्यकांडमें साफ यह कहते हैं—

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई
मति अनुरूप अनूप सुहाई
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन
करत जो बन सुर नर मुनि भावन

अबतक अयोध्याकांडमें अति अनूप भरत चरितको गुरुके चरणरजसे सुधारी हुई मतिके अनुरूप गाकर गोस्वामीजी अब रामचन्द्रजीके चरित्रके मननमें प्रवृत्त होते हैं और कांडके अन्तमें रामचरित गानकी दृष्टिसे जो छन्द, दोहा और सोरठा फलकथन रूपसे कहना चाहिये वह अरण्यकांडके आरंभमें छठे दोहेपर लिखा गया है—

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन, नयन मुख पंकज दिए
मन ग्यान गुन गोतीत, प्रभु मैं दीख जप तप का किए
जप जोग धर्म समूह ते, नर भगति अनुपम पावई
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई।

कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल
... जे तिन्हिपर, राम रहहिं अनुकूल

कठिन काल मल कोस, धर्म्म न ग्यान न जोग जप
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर

शङ्का—२--ग्रन्थकार लिखते हैं—

'जबतें राम ब्याहि घर आए
नित नव मगल मोद बधाए'

रामचन्द्रजीके विवाहके पहले क्या अयोध्याजी में आनन्द-मंगल न था ?

समाधान २—यह बात सच है कि जबसे रामचन्द्रजी विवाह करके घर आये तबसे ही पूर्ण आनन्दमगल अयोध्याजीमें हुआ। राजा दशरथको रामलक्ष्मणके वियोगमें आनद था कहा ? उन्होंने तो छातीपर पत्थर रखके विश्वामित्रके साथ बडी कठिनाईसे विदा किया था 'मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ' फिर राजा दशरथके मनमें इन पुत्रोंकी रक्षाके सबन्धमें बडा सन्देह था, परशुरामका बडा डर था, वह क्षत्रियोंका निर्बीज कर रहे थे और यहा—

'चौथेपन पायेउ सुतचारी
विप्र बचन नहिं कहेहु विचारी'

बुढापेके बेटे थे, बडी कठिनाईसे वश चलनेका उपाय हुआ, राक्षसोंके मुकाबलेका तो कोई डर न था, वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्मरामायणमें तो दशरथजी विश्वामित्रजीसे कहते हैं कि मैं खुद अपनी सेना लेकर राक्षसोंके मुकाबिलेमें चलूं गा। वास्तविक डर था परशुरामका, और यदि परशुरामके मामा विश्वामित्र आश्वासन न देते 'इन कहँ अतिकल्यान' तो राजा दशरथ कदापि राजी न होते। रामचरितमानसमें तो दिखाया है कि परशुरामजीके आते ही सब राजा लोग थर थर कापने लगे। राजा जनक जैसे विज्ञानीका हाल यह था कि

'अति डर उतर देत नृप नाहीं'

और अन्य रामायणोंमें तो ब्याह करके लौटते समय जब रास्तेमें परशुरामजी मिलते हैं तो राजा दशरथ मारे डरके बेहोश हो जाते हैं। परशुरामके हार जानेसे भारी शकाएं निवृत्त हो जाती हैं और राजा दशरथके नजदीक तो मानों उनके वशकी जिन्दगीका बीमा हो जाता है। यही बात है कि जबसे ब्याह-करके रामचन्द्रजी घर आये तबसे नित्य नये मङ्गल मोद बधावे होने लगे। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनेके योग्य है कि बापके लिये बेटेका ब्याह उसके जीवन मनोरथ की पूर्ति है। कहा भी है कि

जनक सुकृति मूरति वैदेही
दसरथ सुकृति राम धरि देही।

'जनुपाये महिपाल मनि, क्रियन सहित फलचारि' इत्यादि कथन इस बातके प्रमाण हैं कि विवाहके अनंतर आनन्द मगल-की वृद्धि हुई। जगज्जननी महालक्ष्मी

उपजहिं जासु अंस गुनखानी
अगनित उमा रमा ब्रह्मानी
भृकुटि विलास सृष्टि लय होई

पहले मिथिलापुरीमें थीं। विवाहानन्तर अयोध्यामें पधार। यही तो बात थी कि

भुवन चारि दस भूधर भारी
सुकृति मेघ बरषहिं सुखवारी
रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई
उमगि अवध अबुधि कहँ धाई

जहा यह महाशक्ति होगी वहा सम्पूर्ण आनन्दका सिमटकर भर जाना अत्यन्त आवश्यक है, यही

जबते राम ब्याहि घर आए
नित नव मंगल मोद बधाए।

शंका ३—* वृद्धावस्थामें दशरथ महाराजका कामकौतुक दिखाना कहांतक स्वाभाविक है?

समाधान ३—एक तो यहां भवितव्यता शब्द लिखकर साफ ही कर दिया कि होनीके वश वृद्धावस्थामें भी राजा दशरथ स्त्रीकी बातोंमें आ गये।

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ
* * * *
तब कछु कीन्ह राम रुख जानी

इत्यादि वाक्योंसे भी भवितव्यताका पोषण होता है। साथ ही स्वभाव पक्षमें भी यह सिद्ध है कि वृद्धावस्थाके दुर्बल शरीरपर काम, क्रोध मोह लोभ आदि विकारोंका प्रबल आक्रमण होता है। कैकेयी वृद्धावस्थाकी ही ब्याही रानी थीं और उनके पितासे प्रतिज्ञा हो चुकी थी कि कैकेयीका ही पुत्र राजा होगा।

शंका ४—प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई
हरहु भगत मनकी कुटिलाई।

भक्तोंके मनमें कौनसी कुटिलाई हो सकती है, जिसके दूर करनेकी कामना यहां प्रकट की गयी?

समाधान ४—भगत अपभ्रंश है, भक्त शब्दका, जिसका एक अर्थ उपासक है और दूसरा अर्थ है वह व्यक्ति जिसे हिस्सा मिले। प्रस्तुत प्रकरणमें श्री रामचन्द्रजी इस बातपर पछताये हैं कि सब भाइयोंका जन्म लालन पालन, भोजन शयन, खेल-कूद, पढना-लिखना, विवाहतकके सभी संस्कार, उत्साह

* तुलसी नृपति भवितव्यता वश काम कौतुक लेखई।

कालके सभी कार्य्य साथ ही साथ हुए और बराबर हुए, यह बड़ा अनुचित है कि राजके बाटमें बड़े छोटेका विचार किया जाय। भगवान भरतको जैसे चाहते हैं, क्योंकि पूर्व प्रसङ्गमें

राम सीयतनु सकुन जनाये
फरकहिं मंगल अंग सुहाये
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं
भरत आगमन सूचक अहहीं
भये बहुत दिन अति अवसेरी
सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी
भरत सरिस प्रियको जगमाहीं
इहइ सगुन फल दूसर नाहीं,
रामहिं बन्धु सोचु दिनु राती
अण्डन्हि कमठ हृदउ जेहि भांती

राजा दशरथको भी भरतसे कम प्रेम नहीं है
मोरे भरत राम दोउ आंखी
सत्य कहहु करि संकर साखी

राजा दशरथको और रामचन्द्रको बराबर यह खयाल था कि प्रतिज्ञानुसार भरतको ही राज मिलना चाहिये, परन्तु राजा दशरथ अपने कुल रीतिके विरुद्ध नहीं जाना चाहते थे। मनुस्मृतिका प्रमाण है,

विनीतमौरसम् ज्येष्ठम् यौवराज्येऽभिषेचयेत्

* * * *

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पित्र्य धनमशेषत
अन्येतु उपजीवेतु यथैव पितर तथा।
(मनु० ९।१०५)

इस नृप-नीतिके निर्वाहके लिये राजा दशरथने कोई बात उठा नहीं रखी, परन्तु अपना दोहरी प्रतिज्ञासे हार गये, श्री रामचन्द्रजी एक तो इस सबधमें कोई अधिकार बोलनेका नहीं रखते थे, दूसरे उनकी इच्छा स्वय कार्य्यवश वनगमनकी थी, तीसरे भाइयोंकी अनुपस्थितिमें यौवराज्य पद लेना उन्हें अत्यन्त अनुचित जचा, इसीलिये वह सप्रेम पछताये।

साधारण विचार करनेवालोंके मनमें इस शकाका आना स्वाभाविक है कि भरतजीको जान-बूझकर मौकेसे हटाया गया और मामला था राजका, जिसमें पिता-पुत्र और भाई भाई दुश्मन हो जाते हैं तो क्या श्रीरामचन्द्रजीके मनमें यौवराज्यकी लालसा न थी। उपर्युक्त घटनाओंका विचार करनेसे इस शकाका सहज ही समाधान हो जाता है। मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी चक्रवर्ती राज्यको भाइयोंमें बाटनेके लिये उत्सुक हैं और राजधर्मके विपरीत होनेके कारण प्रेम समेत पछताते हैं। इस प्रकार वह इस आदर्शका निदर्शन करते हैं कि चक्रवर्ती राज्य भी हो तो भी भाई भाई आपसमें न लड़े प्रत्युत जिसका जो हिस्सा हो वह अपने हिस्सेपर अधिकार करे। महाभारतमें भी भाइयोंके झगडेके प्रसगमें कहा गया है

> युध्यता राजधानीषु सर्वसम्पन्नमहीक्षिताम्।
> पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरोभव।
>
> (उ० प० १२६।१८।)

श्रीरामचन्द्रजीका यह पछताना (भगत) बाटनेवालेके मनकी कुटिलाईका हरनेवाला हो। साथ ही भगवान भक्तभावन अपने भक्त भरतके लिये एवम् भाइयोंके लिये प्रेम समेत पछताते हैं और ममता दिखलाते हैं कि भगवान् भक्तोंको कितना चाहते हैं। यह देखते हुए भी भक्तके मनमें भगवानके चरणोंमें अटल विश्वास न हो और परायी आशा करे तो यह उसके मनकी कुटिलता है क्योंकि महाराजने कहा है कि

मोर दास कहाइ नर आसा
करइ तो कहहु काह विस्वासा ।

भक्ति पक्षमें अर्थ यह हुआ कि महाराजका प्रेम समेत भक्तोंके लिये पछताना और यत्परोनास्ति ममत्व दिखाना भक्तोंके मनके अविश्वासको, जो कुटिलता है, दूर करनेवाला होवे ।

शङ्का ५ फिरि पछितैहसि अंत अभागी।
मारेसि गाय नाहरू लागी ।

इस चौपाईका क्या अर्थ है ?

समाधान ५—इसका अर्थ करनेमें लोग व्यर्थ वागाडम्बरसे काम लेते हैं, प्रसङ्गका ध्यान नहीं रखते । नाहरू नामक एक रोग होता है जिसे नहरुआ भी कहते हैं । यह एक प्रकारका व्रण है, जिसमें सूत सरीखे लम्बे लम्बे कीड़े निकलते हैं, और इसे गायके ताँतसे झाड़ना एक टोटका है । साधारणतया टोटकोंकी जैसी दशा होती है, इस टोटकेसे भी कोई लाभ वस्तुतः नहीं होता । ग्रन्थकारने अन्यत्र भी इस रोगकी चर्चा की है—

अहंकार अति दुखद डमरुआ,
दंभ कपट मद मान नहरुआ ।

यहाँ प्रसङ्गसे यह अर्थ स्पष्ट है कि कैकेयी अन्तमें उसी तरह पछतायगी जैसे वह रोगी पछताता है जो नाहरू झाड़नेको ताँतके लिये गोवध करता है और नाहरू अच्छा भी नहीं होता और गोहत्या ऊपरसे लगती है, यहाँ रोगी कैकेयी हैं जिसे सवतिया डाहरूपी नाहरू हो गया है । इसे दूर करनेको राज्यरूपी ताँतकी वह जरूरत समझती है और राजा दशरथरूपी गायकी रामवनवासरूपी हत्यासे यह ताँत रूपी राज्य प्राप्त होगा । परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या राज्यके मिल जानेसे सवतियाः डाह रोग मिट जायगा ? टोटका सफल होगा ? क्या

तातसे नहरुआ दूर हो जायगा ? राजा दशरथका अभिप्राय यही है कि यह प्रयत्न विफल होगा और कैकेयीको अन्तमें पछताना ही पड़ेगा।

शङ्का ६—कैकेयीने विशेषकर चौदह वर्षका वनवास क्यों माँगा ?

समाधान ६—राक्षसों और देवताओंका वैर पुराना था। भगवानके अवतारके लिये वरदान पाकर देवताओंने

> बनचर देह धरी छिति माहीं,
> अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।
>
> गिरि तरु नख आयुध सब बीरा,
> हरि मारग चितवहिं मति धीरा।
>
> गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी,
> रहे निज निज अनीक रुचि रूरी।

रावणके पुराने साम्राज्यको उलट देनेके लिये बड़ी लम्बी चौड़ी तैयारी दरकार थी। भारतके दक्षिणी प्रदेशोंमें जङ्गलोंमें और गाँवोंकी बस्तियोंमें छिपी हुई असंख्य सेना देवताओंकी ओरसे तैयार हो रही है। चौदह बरस श्री रामचन्द्रजीका वनवास मसलहतसे खाली न था। रावणके साम्राज्यके बैरी और उनके भेदिये बराबर रामचन्द्रजीका स्वागत करते रहे, अयोध्या काण्डमें एक तापसका मिलना और अरण्यकाण्डमें मुनियों और ऋषियोंकी भेंट और इशारेसे रावणके अत्याचारोंका स्थल स्थलपर दिग्दर्शन, नारदका मिलना, और लड़ाईके लिये हँसी हँसीमें शूर्पणखाके नाक कान काट लेना, चौदह हजारकी सेनाका आवाहन और विनाश, सीता-हरण और उनकी तलाश, हनुमान, सुग्रीवादिकी मैत्री—निदान यह सारे काम दो चार वर्षोंके नहीं थे, देवताओंके पक्षके बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंने चौदह वर्षोंकी अटकल करके सरस्वती द्वारा प्रेरणा की। और कैकेयीने

अपनी ओरसे जो चौदह वर्षकी शर्त रखी उसके लिये पूर्ण सुसङ्गति है। मन्थराने कहा

भयेउ पाखु दिन सजत समाजू,

तुम पाई सुधि मोहि सन आजू।

जिस दिन सुधि पायी पन्द्रहवाँ दिन था, कैकेयीने चौदह दिनोंतक बात छिपानेके बदले चौदह वर्षका वनवास दण्ड दिया।

शङ्का ७—वनयात्राके समय श्री जानकीजीने मार्गमें अनेक सेवाएं करनेको कहा परन्तु जब वनकी यात्रा की तब ग्रन्थकार-ने एक भी सेवा सीताद्वारा नहीं लिखी तो इस प्रसङ्गमें सत्यता कहाँ रही ?

समाधान ७—पहले तो सीताजीके सब वचनोंका अभिप्राय यह है कि अपनी ओरसे सब तरहसे दृढता दिखानी चाहिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी साथ ले चलें, अब रही वचनोंकी सत्यता सो मानसमें ग्रन्थकारने मार्गसेवा नहीं लिखी इसमें यह कोमलता है कि श्री सीताजी श्रीरामचन्द्रजीसे अति सुकुमारी हैं। क्योंकि रामचन्द्रजी तो श्री विश्वामित्रजीके साथ मिथिलातक पाव पयादे हो गये थे परन्तु सीताजीने तो पलंग, पीठ, गोद, हिंडोरा छोडकर भूमिपर कभी पैर ही नहीं रखा इसलिये श्रीरामचन्द्रजी इन्हींको सभालते रहे।

जानी स्रमित सीय मन माहीं,

बरिक बिलम्ब कीन्ह बट छाहीं।

इत्यादि वाक्य इसके प्रमाण हैं।

फिर ग्रन्थकारने जो लिखा है वह असत्य भी नहीं है क्योंकि आगे चलकर चित्रकूटमें सीताजी द्वारा सेवाका वर्णन है

बट छाया बेदिका बनाई

सिय निज पानि सरोज सुहाई।

* * * *

तुलसी तरु वर विविधि सुहाए

कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए।

* * * *

सेवहिं लषन सीय रघुवीरहिं

जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं

मानसमें तो इतना ही सेवाप्रसङ्ग है परन्तु गीतावलीमें कुछ मार्गसेवा भो गायी गयी है।

शङ्का ८—कैकेयीने वरदान माँगा,

तापस वष विसेष उदासी,

चौदह बरस राम बनवासी।

परन्तु रामचन्द्रजी मृगया करते थे, रथपर सवार होते थे और युद्ध करते थे, इन दोनों बातोंकी सङ्गति कैसी?

समाधान ८—वेषमात्रके लिये तापस और विशेषकर उदासी कहा है। गृहस्थ क्षत्रियके कर्मका त्याग नहीं बताया है। यदि गृहस्थ आश्रमसे वाणप्रस्थमें प्रवेश होता तो बात दूसरी थी। यह तो वरदानकी शर्त थी कि रूप तपस्वी, उदासीका हो सो भगवानने चौदह वर्षतक अपना यही रूप रखा। कर्मणा गृहस्थ क्षत्रिय बने रहे। राजत्याग और वनवास और तपस्वियों का वेष रावणसे भावी युद्धके लिये तैयारीमें सहायक था। इसमें महाराजको भी मरजी थी इसके लिये प्रमाण है

तब कछु कीन्ह राम रुख जानी

* * * *

दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई

जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।

* * * *

राजा राम स्ववस भगवान्

*   *   *   *

राम रजाय सीस सबहींके ।

शङ्का ६—दशरथजीने जब विश्वामित्रजीके साथ महाराजको भेजा तब वियोगव्यथा ऐसी नहीं हुई कि प्राण छोड़ दें यद्यपि तब महाराजकी बाल्यावस्था थी। अब प्रौढावस्थामें वनगमनपर क्यों प्राणत्याग किया ?

समाधान ६—विश्वामित्रजीने जब पुत्रोंके ले जानेकी इच्छा प्रकट की तो पहले राजाने साफ इन्कार कर दिया था। विश्वामित्र इतने कुपित हुए कि घोर शाप देनेको तैयार हो गये थे। वशिष्ठजीकी सलाहसे राजा दशरथने उन्हें मनाया। विश्वामित्रजीने स्वयम् भी आश्वासन दिया

'धरम सुजस प्रभु तुम कहँ, इन कहँ अति कल्यान'

साथ ही विश्वामित्रजी दीर्घ कालके लिये नहीं लिवा ले गये। यह सब होते हुए भी राजा दशरथने साफ कहा है

'मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ

तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ'

मानो राजा दशरथने विश्वामित्रको केवल पिताका चार्ज नहीं दिया बल्कि अपने प्राणोंका भी चार्ज दिया और जबतक पुत्रोंसे मिल न लिये तबतक मानो मृतकसे थे। जब राजा बेटोंसे मिले उस प्रसङ्गमें कहा भी है

'सुत उर लाय दुसह दुख मेटे

मृतक सरीर प्रान जनु भेटे'

वनगमनका प्रसंग विश्वामित्रके संग जानेसे नितान्त भिन्न है। पहले तो वरदान ही एक छल था जिसकी बड़ी गहरी चोट राजाके हृदयपर पहुंची। दूसरे श्रीरामचन्द्रजीको

चौदह वरस वनमें रहना था वह। नियत अवधि थी जिसमें जरा भी कोर कसर होना सम्भव न था। फिर भरतके राजा हो जानेपर और कैकेयीके पूर्ण अधिकार प्राप्त होनेपर सवतिया डाहको देखते हुए क्या आशा थी कि श्रीरामचन्द्रजी चौदह वरस बीतनेपर भी लौटते। उसके साथ शर्त यह थी कि गाउमें प्रवेश न करें, तपस्वियोंकी भांति रहें और साथ ही यह कोई आश्वासन न था कि चौदह बरसके बाद अयोध्या ही लौट आवें। इन बातोंके सिवा राजा दशरथने जिस उत्साह और उमगसे रामके यौवराज्यका काम छेड़ा उसपर तो पाला पड़ हो गया, साथ ही राजा दशरथने जिन श्रीरामचन्द्रजीको राज्य देनेके लिये वशिष्ठ द्वारा कहलाया था कि संयमसे रहें उन्हींको बुलाकर वन जानेका संदेशा सुनवाना और स्वयं लाचार हो कुछ न कर सकना यह राजाके हृदयको प्राणान्तक आघात पहुंचानेवाली बात थी। यदि इस तरहका उनके हृदयमें महान शोक न होता तो शायद भरतको राज्य देकर राम समेत स्वयं वनको चले जाते। कैकेयीने तो इतनी जल्दबाजीकी कि

होत प्रात मुनि वेषधरि, जो न राम बन जाहिं
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं।

राजाने प्रतिज्ञा की

अवसि दूत मै पठउब प्राता
ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता।
सुदिन सोधि सब साजु सजाई
देहुँ भरतकहुँ राजु बजाई।

परन्तु कैकेयी भरतके राजतक रुकनेको तैयार न थी उसे सबेरा होते ही रामको शहर बदर करना मजूर था। रामचन्द्रजीका एक मिनटका ठहरना कैकेयीको गवारा न था। राजा दशरथको विदा करते समय फिर भी यह आशा थी कि राम

चन्द्रजी सीता, लक्ष्मण सहित समझाने बुझानेसे लौट आवेंगे। कमसेकम सीताजीके लौटनेकी आशा नहीं, तो दशरथकी दृष्टिमें आवश्यकता बड़ी थी। सुकुमारी सीताको वन भेजकर राजा जनकके पक्षको क्या जवाब देते

'सम्मानितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते'

राजा दशरथके सत्यने, अपयशके भयने, और संकोच और मृदुताने उनको मृत्युको अत्यन्त निकट बुलाया और अन्धोंके शापने उनके कदमोंको मजबूर कर दिया और असह्य वियोगने मार्मिक और साघातिक चोट पहुचायी। मरणकालकी परिस्थिति भिन्न थी, विश्वामित्रजीके साथ भेजनेकी भिन्न।

भक्तिपक्षने यह समाधान भी किया जाता है कि महाराजके वनवासके कष्टोंको राजा दशरथ सहन नहीं कर सके परन्तु अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा मरे पीछे भगवानके समस्त चरित्र देखनेके अभिलाषी थे। इन्द्रके साथ साथ बराबर देखते भी रहे और अन्तमें रावणके मरनेपर श्रीरामचन्द्रजीके पास आये भी थे।

शङ्का १०—महाराज दशरथने अन्तसमय छ बार राम नाम कहा परन्तु मुक्त नहीं हुए जब कि प्रमाण ऐसा है—

मरतहु जासु नाम मुख आवा,

अधमउ मुकुत होइ स्रुति गावा,

इसका कारण क्या है ? छ बार राम नाम लेनेमें क्या युक्ति है ?

समाधान १०—महाराज दशरथजी रामभक्त हैं और भक्त-लोग भक्तिके आगे मुक्तिको तुच्छ मानते हैं। भक्त मोक्ष नहीं चाहते। भक्तिके आगे मोक्षका वही मूल्य रखते हैं जो मणिके आगे काचकी रखी जा सकती है। तिसपर भी ग्रन्थकार गोसाइंजीने लङ्काकाण्डमें बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है

'तातें उमा मोच्छ नहिं पाया,
दसरथ भेद भगति मन लावा।
सगुन उपासक मुकुति न लेहीं,
तिन्हकहुं राम भगति निज देहीं।

और भी ग्रन्थोंमें इसके प्रमाण हैं

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते,
तावत् श्रीराम भक्तिः सा कथमभ्युदय लभेत्।

पूर्वमीमांसा शास्त्रके आचार्य्य जैमिनिका मत है कि स्वर्ग सुख ही मोक्ष है 'स्व स्वर्गे परलोके च इति'

महाराज दशरथजीके लिये और भक्तोंके लिये तो धामादिक मुक्ति बतायी गयी है परन्तु महाराज दशरथने विचारा कि अभी श्रीरामचन्द्रजी तो वनमें रणचरित्र कर रहे हैं। हम राम-भक्ति उपासक वहाँ धाममें जाकर क्या करेंगे। यही कारण है कि जब मानवचरित्र समाप्त कर 'प्रजा सहित रघुबसमनि' अपने धामकी यात्रा करेंगे तभी महाराज दशरथ भी जायेंगे। तबतक महाराजने विचारा कि बालचरित्र तो देखा अब वनरण चरित्र भी देखने ही चाहिये तो अच्छा होगा कि चलकर अपने मित्र इन्द्रके यहा रहें। वहासे उनके साथ राम वन चरित्र तथा रणचरित्र देखेंगे। यही कारण है कि महाराज अपने सूक्ष्म शरीरसे इन्द्रलोकमें जा कर रहने लगे।

राजाने सत्यको पकडा रामको छोड़ा जैसा स्वय रामचन्द्रजीने कहा है

'राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी'

और सत्यका फल स्वर्ग है इसलिये मोक्ष नहीं हुई।

इधर राजा दशरथकी यह वासना भी थी कि मैं राम

राज्याभिषेक देखूं और जैसी वासना अन्तमें होती है वैसा ही फल मिलता है इसलिये अभी मुक्ति नहीं हुई।

शब्दार्थसे मुक्तिका प्रतिपादन चतुर रसिक यों करते हैं कि 'राउ गयेउ सुरधाम' धामोंका जो सुर वहां राजा गये, अर्थात् साकेतको गये।

छ बार राम नाम कहनेका कारण है वीप्साभाव। अत्यन्त दर और अति शोकमें एक ही शब्द बारम्बार मुखसे निकलता है, जैसे आइये ? आइये !! हाय हाय !! इत्यादि।

वा

महाराज राम उपासक हैं और रामतारक मन्त्रभी षडक्षरी है इससे महाराजने छ बार रामनाम कहा।

वा

योगियोंकी गति षट् चक्र वेधनेसे होती है और अब समय योगका था कहां, इसीसे छ बार राम राम कह लिया।

वा

महाराजने विचारा कि हमारे इष्टदेव शिव और गिरिजा हैं वह छ मुखोंसे राम नाम जपा करते हैं अत हम भी राम नाम छ बार कह रहे हैं इससे छ बार राम नाम कहा। शिव जीके उपासक होनेका प्रमाण है

'इन सम काहु न सिव अवराधे
काहुन इन समान फल लाधे'

राम जैसे पुत्रोंका मिलना आदि फलोंके अनेक प्रमाण हैं।

शङ्का ११—प्रयागनिवासी तो भरतजीके स्नेहकी बड़ाई कर रहे हैं और गोस्वामीजी लिखते हैं कि भरतजी रामगुणगान सुनते हुए भरद्वाजजीके आश्रममें आये, सो भरतजीने अपने गुणोंमें रामगुण किस तरह सुने ?

समाधान १. ` रामके गुणोंमें इतने लीन हैं,

तन्मय हैं कि उन्हें जो कुछ सुन पड़ता था वह रामके ही गुण थे।

'निजगुन सहित राम गुन गाथा
सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥'

शङ्का १२—श्री भरद्वाज मुनिने भरतजीके आतिथ्यमें बड़ी आवभगत दिखायी, विशेष वैभवके साथ उनका आतिथ्य किया। इसका क्या कारण है?

समाधान १२—(१)भरतजी चक्रवर्ती महाराजके कुमार हैं सामान्य ऐश्वर्य भोगसे तृप्त न होंगे, ऐसा समझ भरद्वाजजीने विशेषताके साथ आतिथ्यआयोजन किया।

'मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता
तस पूजा चाहिय जस देवता।

(२) भरतजी अयोध्यावासियों सहित आये हैं। यह सब राम भक्त हैं और हम भी राम भक्त हैं अतः भक्तके नाते हमें भरसक शुश्रूषा करनी चाहिये। तिसपर भी अब यह सब हमारे अतिथि हैं इसलिये मुनिने अपना सभी तपोबल लगाकर अपने सहयोगी भक्तों और अतिथियोंकी सेवा करना परम कर्त्तव्य समझ विशेष वैभवके साथ अतिथिसत्कारका आयोजन किया।

(३) भरतजी रामप्रेमके अगाध समुद्र हैं या कहिये कि 'राम प्रेम मूरति तनु आही' और इस समय चक्रवर्ती पदवी को छोड़े हुए रामजीके पास जा रहे हैं। इनकी बड़े ठाटबाटके साथ मेहमानदारी करनेपर इनकी रामके प्रति कितनी भक्ति है, कितना त्याग है यह सारा रहस्य खुल जायगा। यह आडम्बर वस्तुतः भरतकी परीक्षा थी। गोसाईं जी आगे चलकर लिखते हैं कि "मुनि आयसु खेलवार" यह सारा ठाटबाट और मुनिजी

की आज्ञा सभी भरतजीके सामने बालकोंके खिलवाड जैसी प्रतीत हुई क्योंकि यह सभी रामभक्तिके बाधक और त्यागके विरोधी हैं। भरतजीको यह वैभव क्या बहका सकता था ?

शङ्का १३—निषादराज तो यमुना तीरसे ही लौट गया था परन्तु भरतजीकी यात्रामें गोसाईं जी दिखलाते हैं कि निषादराज भरतजीसे कहता है कि इस नदी किनारे श्री राघवजीकी पर्णकुटी है"। तो निषादराजको पर्णकुटीका पता क्यों कर मालूम था ?

समाधान १३—गोसाईं जी निषादराजके बारेमें दो स्थलोंमें पहले ही लिख चुके हैं

'नाथ साथ रहि पथ देखाई
करि दिनचार चरन सेवकाई'
जेहि बन जाय रहब रघुराई
परन कुटीमें करब सुहाई,
तब मोहिं कह जस देब रजाई
सो करिहौं रघुबीर दोहाई,

इन वाक्योंसे निषादराजका चित्रकूटतक जाना सिद्ध है, पहले वाक्यके अनुसार निषादराजका रामजीके साथ चार दिन का रहना इस प्रकार है कि पहले दिन शृङ्गवेरपुरसे चलकार बीचमें रहना, दूसरे दिन प्रयागराजमें रहना, तीसरे दिन यमुना तीर रहना और चौथे दिन यमुना पार होना जिसका प्रमाण है

तब रघुबीर अनेकबिधि, सखहिं सिखावनदीन्ह,
राम रजायसु सीसधरि, भवन गवन तेहि कीन्ह ।

दूसरे वाक्यसे निषादराजका कुटी बनाना सिद्ध है। यही कारण है कि निषादराज भरतजीको कुटी दिखला सका, क्योंकि

तन्मय हैं कि उन्हें जो कुछ सुन पड़ता था वह रामके ही गुण थे।

'निजगुन सहित राम गुन गाथा
सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा"

शङ्का १२—श्री भरद्वाज मुनिने भरतजीके आतिथ्यमें बड़ा आवभगत दिखायी, विशेष वैभवके साथ उनका आतिथ्य किया। इसका क्या कारण है?

समाधन १२—(१)भरतजी चक्रवर्ती महाराजके कुमार हैं सामान्य ऐश्वर्य भोगसे तृप्त न होंगे, ऐसा समझ भरद्वाजजीने विशेषताके साथ आतिथ्यआयोजन किया।

'मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता।
तस पूजा चाहिय जस देवता।

(२) भरतजी अयोध्यावासियों सहित आये हैं। यह सब राम भक्त हैं और हम भी राम भक्त हैं अतः भक्तके नाते हमें भरसक शुश्रूषा करनी चाहिये। तिसपर भी अब यह सब हमारे अतिथि हैं इसलिये मुनिने अपना सभी तपोबल लगाकर अपने सहयोगी भक्तों और अतिथियोंकी सेवा करना परम कर्त्तव्य समझ विशेष वैभवके साथ अतिथिसत्कारका आयोजन किया।

(३) भरतजी रामप्रेमके अगाध समुद्र हैं या कहिये कि 'राम प्रेम मूरति तनु आही' और इस समय चक्रवर्ती पदवी को छोड़े हुए रामजीके पास जा रहे हैं। इनको बड़े ठाटबाटके साथ मेहमानदारी करनेपर इनकी रामके प्रति कितनी भक्ति है, कितना त्याग है यह सारा रहस्य खुल जायगा। यह आडम्बर वस्तुतः भरतकी परीक्षा थी। गोसाईंजी आगे चलकर लिखते हैं कि "मुनि आयसु खेलवार" यह सारा ठाटबाट और मुनिजी

की आज्ञा सभा भरतजीके सामने बालकोंके खिलवाड़ जैसी प्रतीत हुई क्योंकि यह सभी राममक्तिके बाधक और त्यागके विरोधी हैं। भरतजीको यह वैभव क्या बहका सकता था ?

शङ्का १३—निषादराज तो यमुना तीरसे ही लौट गया था परन्तु भरतजीकी यात्रामें गोसाईंजी दिखलाते हैं कि निषादराज भरतजीसे कहता है कि इस नदी किनारे श्री राघव-जीकी पर्णकुटी है"। तो निषादराजको पर्णकुटीका पता क्यों कर मालूम था ?

समाधान १३—गोसाईंजी निषादराजके बारेमें दो स्थलोंमें पहले ही लिख चुके हैं

'नाथ साथ रहि पथ देखाई
करि दिनचार चरन सेवकाई '
जेहि बन जाय रहब रघुराई
परन कुटीमें करब सुहाई,
तब मोहि कह जस देब रजाई
सो करिहौं रघुबीर दोहाई,

इन वाक्योंमें निषादराजका चित्रकूटतक जाना सिद्ध है, पहले वाक्यके अनुसार निषादराजका रामजीके साथ चार दिन का रहना इस प्रकार है कि पहले दिन शृङ्गेरपुरसे चलकर बीचमें रहना, दूसरे दिन प्रयागराजमें रहना, तीसरे दिन यमुना तीर रहना और चौथे दिन यमुना पार होना जिसका प्रमाण है

तब रघुबीर अनेकबिधि, सखहिं सिखावन दीन्ह,
राम रजायसु सीसधरि, भवन गवन तेहि कीन्ह ।

दूसरे वाक्यसे निषादराजका कुटी बनाना सिद्ध है। यही कारण है कि निषादराज भरतजीको कुटी दिखला सका, क्योंकि

तन्मय हैं कि उन्हें जो कुछ सुन पड़ता था वह रामके ही गुण थे।

'निजगुन सहित राम गुन गाथा
सुनत जाहि सुमिरत रघुनाथा"

शङ्का १२—श्री भरद्वाज मुनिने भरतजीके आतिथ्यमें बड़ी आवभगत दिखायी, विशेष वैभवके साथ उनका आतिथ्य किया। इसका क्या कारण है?

समाधन १२—(१)भरतजी चक्रवर्ती महाराजके कुमार हैं सामान्य ऐश्वर्य भोगसे तृप्त न होंगे, ऐसा समझ भरद्वाजजीने विशेषताके साथ आतिथ्यआयोजन किया।

'मुनिहिं सोच पाहुन बड नेवता
तस पूजा चाहिय जस देवता।

(२) भरतजी अयोध्यावासियों सहित आये हैं। यह सब राम भक्त हैं और हम भी राम भक्त हैं अत भक्तके नाते हमें भरसक शुश्रूषा करनी चाहिये। तिसपर भी अब यह सब हमारे अतिथि हैं इसलिये मुनिने अपना सभी तपोबल लगाकर अपने सहयोगी भक्तों और अतिथियोंकी सेवा करना परम कर्त्तव्य समझ विशेष वैभवके साथ अतिथिसत्कारका आयोजन किया।

(३) भरतजी रामप्रेमके अगाध समुद्र हैं या कहिये कि 'राम प्रेम मूरति तनु आही' और इस समय चक्रवर्ती पदवीको छोडे हुए रामजीके पास जा रहे हैं। इनकी बडे ठाटबाटके साथ मेहमानदारी करनेपर इनकी रामके प्रति कितनी भक्ति है, कितना त्याग है यह सारा रहस्य खुल जायगा। यह आडम्बर वस्तुत भरतकी परीक्षा थी। गोसाई जी आगे चलकर लिखते हैं कि "मुनि आयसु खेलवार" यह सारा ठाटबाट और मुनिजी

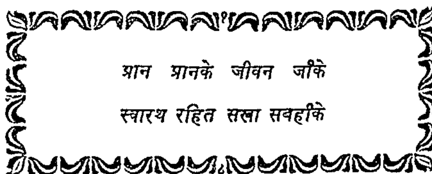
तृतीय सोपान--आरण्य कांड

शङ्का१—जयन्त काक हो बनकर क्यों आया ? और यह दोनों भाई उस समय कहा थे जो सीताजीकी रक्षा न कर सके और जानकीजीने यह घटना राम तथा लक्ष्मणसे क्यों न कहा ?

समाधान १—"या मति सा गति" "श्रद्धामयोऽय पुरुष यो यच्छ्रद्ध स एव स" " अय खलु क्रतुमय पुरुष" आदिके प्रमाणसे जयन्त जैसे नीच, कुटिल, डरपोक, हिंसक और पापी प्रवृत्तिवालेको कौवेके सिवा और कोई रूप धारण करना ही असङ्गत था। कौआ जिस समय अपनी मतिके अनुरूप रूप धारण कर आया उस समय महाराज श्री भगवती जानकीजीके अङ्कमें सिर रख सो रहे थे। भगवान् लक्ष्मणजी एकान्त देख वहासे हट गये थे। महाराजके निद्राभङ्गके भयसे भगवतीने चोट खाकर "आह" भी न किया। कौवेके दु स्साहसपर हिलीं तक नहीं। जागनेपर रक्त प्रवाह देखकर भगवानने सब हाल मालूम किया। कविने "बैठे फटिक सिलापर सुन्दर" कहकर लक्ष्मणजीका उस समय न होना दिखाया। "चला रुधिर रघुनायक जाना" कहकर लक्षित किया कि केवल बैठे नहीं वरन इस घटनाके समयतक सो गये थे, रक्त प्रवाह देख पीछे उन्होंने 'जाना" अर्थात् श्री मैथिलीजीसे मालूम किया।

शङ्का २—लक्ष्मणजी तो पूर्वमें ही निषादको ज्ञान, वैराग्य तथा भक्तिका उपदेश कर चुके हैं तो फिर लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीसे इस विषयमें षट्प्रश्न क्यों किये जब कि आप स्वय ही इन सब बातोंके परम ज्ञाता हैं ?

बिना जाने कुटी कैसे बतला सकता था। इससे सिद्ध है कि निषादराज यहातक आया और कुटी बनाकर वापस गया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि निषादराज पहले रामजीके साथसे बीचहीसे वापस गया हो परन्तु वर्षके भीतर तो कई बार गया और दिन दिनकी खबर अपने सेवकों द्वारा लेता रहा इससे इसे सब कुछ मालूम है।



तृतीय सोपान--आरण्य कांड

शङ्का१—जयन्त काक ही बनकर क्यों आया ? और यह दोनों भाई उस समय कहा थे जो सीताजीकी रक्षा न कर सके और जानकीजीने यह घटना राम तथा लक्ष्मणसे क्यों न कहा ?

समाधान १—"या मति सा गति" "श्रद्धामयोऽय पुरुष यो यच्छ्रद्ध स एव स" " अथ खलु क्रतुमय पुरुष" आदिके प्रमाणसे जयन्त जैसे नीच, कुटिल, डरपोक, हिंसक और पापी प्रवृत्तिवालेको कौवेके सिवा और कोई रूप धारण करना ही असङ्गत था। कौआ जिस समय अपनी मतिके अनुरूप रूप धारण कर आया उस समय महाराज श्री भगवती जानकीजीके अङ्कमें सिर रख सो रहे थे। भगवान् लक्ष्मणजी एकान्त देख वहासे हट गये थे। महाराजके निद्राभङ्गके भयसे भगवतीने चोट खाकर "आह" भी न किया। कौवेके दुस्साहसपर हिलीं तक नहीं। जागनेपर रक्त प्रवाह देखकर भगवानने सब हाल मालूम किया। कविने "बैठे फटिक सिलापर सुन्दर" कहकर लक्ष्मणजीका उस समय न होना दिखाया। "चला रुधिर रघुनायक जाना" कहकर लक्षित किया कि केवल बैठे नहीं वरन इस घटनाके समयतक सो गये थे, रक्त प्रवाह देख पीछे उन्होंने 'जाना" अर्थात् श्री मैथिलीजीसे मालूम किया।

शङ्का २—लक्ष्मणजी तो पूर्वमें ही निषादको ज्ञान, वैराग्य तथा भक्तिका उपदेश कर चुके हैं तो फिर लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीसे इस विषयमें षट्प्रश्न क्यों किये जब कि आप स्वय ही इन सब बातोंके परम ज्ञाता हैं ?

समाधान २—शास्त्रकी ऐसी आज्ञा है कि प्रकाण्ड विद्वान् भी हो तो भी उसे वारम्बार शास्त्रावलोकन और सत्सङ्ग करना ही चाहिये। "शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय" ऐसी रीति है भी छोटोंको बडोंसे प्रश्न करना और बडोंको छोटोंके लिये उपदेश करना इस उत्तम प्रकारसे समय बिताना ही चाहिये। यही कारण है कि एकान्तवास तिसपर भी वनवासके दिन उस प्रकार बितानेके लिये लक्ष्मणजीने श्रीरघुनाथजीसे जानते हुए भी उसी विषयके प्रश्न किये।

आगे चलकर श्रीरघुनाथजी अनेक ललित नरलील करनेवाले हैं। ऐसे अनेक प्रश्नोंसे समाधान कर लेनेपर भविष्यमें किसी प्रसंगकी शङ्का उत्पन्न न होगी। इस विचारसे लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे प्रश्न किये कर्त्तव्य कर्मकी गति बडी सूक्ष्म है। बडे बडे ज्ञानी, ध्यानी विद्वान् इसके चक्करमें पडकर गोता खा जाते हैं। अत लक्ष्मणजीका प्रश्न करना उचित ही है।

शङ्का३—शूर्पणखा तो परम सुन्दरी बनकर आयी थी, फिर लक्ष्मणजीने यह कैसे पहचान लिया कि यह रिपु भगिनी है?

समाधान ३—पहले तो अगस्तजीसे ही सुन चुके हैं। श्री रामचन्द्रजीने अगस्त मुनिसे मन्त्र पूछा था, अर्थात् गुप्त सलाह की थी उसके उत्तरमें स्थान और नामके निर्देश सहित उन्होंने सब बताया था। इससे लक्ष्मणजीने पहचान लिया। दूसरे शूर्पणखाकी बातचीत द्वारा लक्ष्मणजी जैसे चतुर राजपुरुषका ताड जाना कि यह जरूर राक्षसी है, क्या कोई कठिन बात है!

मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं
देखेउ खोजि लोक तिहु नाहीं।

तातें अब लगि रहिउँ कुमारी
मन माना कछु तुमहिं निहारी ।

इन सब बातोंसे स्पष्ट था कि तीनों लोकोंमें गमन करनेवाली और बहुत पुरानी है। इससे यह मनुष्य जातिमें हो ही नहीं सकती, जरूर राक्षसी है। उसकी कामातुरता भी पता देती थी। और ऐसे भयानक जङ्गलमें मानवसुन्दरी भला कब निर्भय अकेले विचरनेका साहस कर सकती थी। रावणकी बहिन शूर्पणखाका चरित्र अगस्त्यादि ऋषियोंसे सुना था। इसका हाल ठीक तदनुरूप पाया। इसीसे उन्होंने ताड लिया कि यह रावणकी बहिन शूर्पणखा है।

शङ्का ४–श्री रामचन्द्रजीने शूर्पणखासे कहा कि 'हमारे लघु भ्राता कुमारे हैं' परन्तु वास्तवमें लक्ष्मणजीका तो विवाह हो चुका है फिर श्रीरामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तमने ऐसा क्यों कहा ?

समाधान ४—मीठी चुटकी और लतीफ मजाकका यह नमूना है। हास्यरसमें, व्यङ्गमें, कूटमें, काकूक्तिमें सत्यके कठिन काटेपर वाक्योंको नहीं तोलते। उत्तर प्रत्युत्तरका होना सुसंगत होता है। श्री रघुनाथजी खूब जानते थे कि शूर्पणखा बूढ़ी विधवा है,पर हमारे सामने आकर सुन्दरी कुमारी बन रही है। इस बनी हुई धृष्टा निर्लज्जा अनूढ़ा नायिकाको हँसीमें ही भगवान, लक्ष्मणजी जैसे क्रोधी ब्रह्मचर्य्यव्रतीके पास शिक्षार्थ यह कहकर भेजते हैं कि सुन्दरी! जैसी तू "कुमारी" है (यद्यपि विधवा है) वैसे ही मेरा छोटा भाई भी "कुमार" ही है (यद्यपि व्याहा है) अर्थात् दोनों ही इस समय दाम्पत्य सुखसे वञ्चित हैं) तुम दोनोंसे पट जायगी। कुछ लोग यों अर्थ करते हैं कि भगवान्ने "कुमार" सुन्दरके श्लिष्ट अर्थमें कहा। कुमार अर्थात् कुत्सित है

जिससे। परन्तु इस श्लेषार्थका कोई विशेष प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

शङ्का ५—मारीच तो राक्षस था वह तो कपटमृग बना था फिर उसकी छाला श्रीरामचन्द्रजी कैसे लाये?

समाधान ५—गोसाईंजीने पहले ही यह विशेषण दिया है कि

सत्यसन्ध प्रभु बध करि येही
आनहु चर्म कहति वैदेही।

इस विशेषणसे यह अभिप्राय जान पड़ा कि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं और प्रभु हैं अर्थात् आप अकरणीय करनेमें भी समर्थ हैं। इस कारण मृगतनुका बना रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस मृगकी छालापर तो रामसीता दोनोंका ही सङ्कल्प है यही कारण उसके बने रहनेका हुआ!

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई
करै अन्यथा अस नहिं कोई।

इसी कनकमृगकी छाला श्रीराघवजी लाये। जैसा कि गीतावलीमें कहा है "हेमको हरिन हनि, फिरे रघुकुल मनि, लषन ललित कर लिये मृगछाला" फिर मानसमें भी लङ्काकाण्डमें सुबेल प्रकरणमें लिखा है "तापर रुचिर मृदुल मृगछाला" मृगछालाका वर्णन रामचरितमानसमें यह पहली बार हुआ है। अवधकाण्डके प्रारम्भसे लङ्काकाण्डके प्रारम्भ तक और कहीं मृगचर्म बिछाना नहीं है। केवल कुशसाथरी और तृणपल्लवों-का बिछाना वर्णन किया गया है। इस अवसरपर यह कहा जा सकता है कि जब 'कनक मृगचर्म" श्री रामचन्द्रजी आरण्य काण्डमें लाये तो गोसाईंजीने लङ्काकाण्ड में आकर उसका प्रयाग क्यों किया, तो कारण स्पष्ट है कि श्रीरामजी तो श्री जानकीजीके लिये ही मृगचर्म लाये थे। परन्तु लानेके

साथ वियोग हुआ इससे बीचमें उसकी चर्चा नहीं लिखी। अब सीताको सुधि पाते ही जब लङ्काके समीप पहुंचे तब कुछ विरह शान्त हुआ। तब उस मृगचर्मको बिछाया।

शङ्का ६—रावणने तो केवल मनमें अनुमान किया पर "सुनत गीध क्रोधातुर धावा" क्यों? अनुमानमें शब्द तो होते नहीं, फिर गृध्रराजने सुना कैसे!

समाधान ६—यहां प्रश्नोत्तरालङ्कार है। कविकी इसमें चतुराई है कि कभी प्रश्न विवक्षित रखना है, कभी उत्तरवाक्यसे पूर्वकथनका बोध हो जाता है। जैसे

जानहु सदा भरत कुल दीपा
बार बार मोहिं कहेउ महीपा।

स्पष्ट है कि और प्रसङ्गमें यह विवक्षित था।

* * * *

'रामानुज लघु रेख खचाई' इस वाक्यसे स्पष्ट है कि लक्ष्मणजीने रेखा खिंचाई थी, पर प्रसङ्गपर इसका वर्णन पिहित (छिपा) है। यहां रावणने अवश्य ही कटु शब्द कहे हैं जिसे ग्रन्थकारने उसके अनुमान करने और जाननेके प्रसङ्गमें लिखकर " सुनना " क्रियासे लक्षित कर दिया है।

शङ्का ७—श्री राघवजीने गृध्रराजसे कहा, कि श्री चक्रवर्ती महाराजसे सीताहरण न कहना, यदि मैं राम हूं तो रावण ही सपरिवार जाकर कहेगा। परन्तु आगे चलकर कहीं भी रावण-द्वारा कहना नहीं लिखा है, इस तरह गृध्रराजको मना करनेमें क्या विशेष हेतु है?

समाधान ७—महाराज दशरथजीका वास तो स्वर्गमें है और गृध्रराजका राघवने परमधाम दिया है इससे स्पष्ट है कि महाराजसे गृध्रराजकी इन्द्रलोकमें जरूर ही भेंट होगी क्योंकि अर्चिरादि मार्गमें इन्द्रलोक भी है। इस कारण मित्रभावसे श्री रामचन्द्रजीने गृध्रराजको मना किया कि और सारा समाचार

महाराजसे कहना परन्तु सीताहरण न कहना क्योंकि यदि महाराज यह दुःखद समाचार सुनेंगे तो स्वर्गमें रहते हुए भी उन्हें महान् दुःख होगा ।

रहा अपना पुरुषार्थ, उसके लिये 'रावण वध कुल समेत' कहा। उसको इस तरह समझना चाहिये कि रावणकी मोक्ष अनेक रामायणोंमें अनेक प्रकारसे वर्णन की गयी है परन्तु गोस्वामीजीने मानसमें दो रीतियां मोक्षकी वर्णन की हैं—

तासु तेज प्रभु वदन समाना,

*   *   *   *

निश्चर अधम मलायतन, ताहि दीन्ह निजधाम

*   *   *   *

तासु तेज समान प्रभु आनन

*   *   *   *

तुमहु दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्

उपर्युक्त वर्णनसे मोक्षकी दोनों रीतियां स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो श्री भगवद्विग्रहमें होकर और दूसरी अर्चिरादि मार्गमें होकर। इसलिये जहां रावणको अर्चिरादि मार्गमें होकर जाना है वहां राजा दशरथसे श्री जानकीजी द्वारा अपनी मोक्ष कहना असम्भव नहीं है। शेष कुलके लिये तो स्पष्ट है कि विभीषणको छोड़ रावणके कुटुम्बमें कोई नहीं बचा। सभी मारे गये और स्वर्गगामी हुए।

राम सरिसको दीन हितकारी

कीन्हें मुकुत निसाचर झारी

इस वाक्यसे व्यङ्गद्वारा सभी राक्षसोंकी मुक्ति सिद्ध होती है। गोसाईंजीकी वर्णनशैली ही है। 'अरथ अमित अति आखर थोरे'

गीध अगर सीताहरणकी कथा श्री दशरथजीसे कहेगा तो उन्हें बड़ा रञ्ज होगा, और रावण कहेगा तो उसकी वीरता-

का समाचार सुनकर महाराज प्रसन्न होंगे और सीताजीका पुन मिल जाना सुननेसे सीता हरणका रञ्ज भी उन्हें न होगा। और यही बात हुई भी, क्योंकि विजयके अनन्तर "तेहि अव सर दसरथ तह आये" रावणने सब हाल कहा। सुनकर प्रसन्न हो पुत्रको देखने आये।

शङ्का ८—"सापत ताडत परुष कहन्ता, विप्र पूज्य अस गावहि सन्ता। पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना।"

इन चौपाइयोंमें गोसाईं जीने ब्राह्मण जातिका अनुचित पक्ष किया है या नहीं ?

समाधान ८—गोस्वामीजी वर्णाश्रम धर्मके माननेवाले थे। जन्मना वर्ण अवश्य मानते थे। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है

"भये बरन सङ्कर कलो, भिन्न हेतु सब लोग"

यह ब्राह्मण जातिका महत्व भी समझते थे। इसलिये जिस जातिके होनेका उन्हें उचित गर्व था यदि उसका महत्व प्रति पादन उन्होंने किया तो कोई अक्षम्य दोष नहीं है। परन्तु उन्होंने उपस्थित प्रसङ्गमें अपना मत नहीं, प्रत्युत स्मृतिकारोंका मत श्री रामचन्द्रजीके मुखसे कहलाया है। इसमें "विप्र" शब्द का अर्थ विद्वान् ब्राह्मण ही लेना उचित होगा। तुलसीदासजी ने इसी अर्थमें विप्र शब्दका प्रयोग किया है। प्रसङ्ग यह है कि दुर्वासाने तिरस्कारपूर्वक हँसनेपर कवन्धको राक्षस होनेका शाप दिया था। कबन्धका कहना था कि इतने छोटे अपराध पर ऐसी कड़ी सजा। यह अवश्य ही ऋषिका अन्याय था कि कबन्धके गानेको समझकर उसकी प्रशसा तो दूर रही, उसको इतना कड़ा दण्ड दे डाला। उसने इसमें ऋषिकी गुण-हीनता भी दिखायी, इसपर भगवानने कहा कि दुर्वासा सरीखे विद्वान् ब्राह्मण और ऋषि चाहे शाप दे, दण्ड दे, कठोर वचन कहे, परन्तु फिर भी वह सन्तोंके (भलोंके)

निकट अधिक पूज्य होगा, "सील गुनहीन" होते भी "विप्र" अधिक आदरणीय होगा, उस शूद्रकी अपेक्षा भी जो कबन्धकी तरह अनेक गुणोंसे भूषित, ज्ञानी और चतुर हो। यह वाक्य दुर्वासा सरीखे ऋषियोंके सम्बन्धमें कहे गये हैं जिनकी आत्म शुद्धि और आत्मबल अत्यन्त उच्च कोटिका है। गुणी, ज्ञानी, और चतुर होनेसे ही शूद्र ऋषिकी अपेक्षा ऊंची कोटिका आत्मवित् नहीं हो सकता। आजकलके साधारण रसोई बनाने वाले महाराजा बहादुरोंके लिये यह चौपाइयां नहीं कही गयी हैं। प्रसङ्गपर विचार करनेसे मूर्ख और ब्राह्मणोंका नाम धराने वालोंसे पक्षपात नहीं मालूम होता।

शङ्का ९—मानसमें वर्णित नवधा भक्ति श्रीमद्भागवतकी नवधा भक्तिसे भिन्न है। इसका क्या कारण है?

समाधान ९—भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें नवधा भक्तिका वर्णन भिन्न है। श्री रामचरितमानसमें श्री रामचन्द्रजीने जिस नवधा भक्तिका वर्णन किया है वह अध्यात्मरामायणके आधारपर गोस्वामीजीने लिखी है। गौण भेद तो अनेक स्थलोंपर ग्रन्थमें लिखे हैं। रामचरितमानस तो कोई अनुवाद ग्रन्थ तो है नहीं।

शङ्का १०—नारदजीने पम्पासरके तटपर श्रीरामचन्द्रजीसे अपने पूर्व मोहका कारण पूछा और श्रीरामचन्द्रजी पहले ही यह प्रसङ्ग नारदजीको समझा चुके हैं और यह भी कह चुके हैं कि

अब न तुमहिं माया नियराई।

तो फिर नारदजीने वही प्रसङ्ग क्यों दुहराया?

समाधान १०—यहां नारदजीने विचारा कि राघवका चित्त इस समय स्वस्थ है।

बैठे परम प्रसन्न कृपाला।
कहत अनुज सन कथा रसाला॥

* * * *

ऐसे प्रभुहि विलोकउ जाई ।
पुनि न बनिहि अस अवसर आई ॥

अब कुछ सत्सङ्ग करना चाहिये। यही कारण है कि नारदजी पूर्वकथित श्रीरामजीकी भक्तवत्सलता और सन्त-महिमा जानना चाहते हैं। इसीसे उन्होंने वही प्रश्न किये, जिनका उत्तर पहले भी पा चुके थे और श्रीरामचन्द्रजीने भी नारदजी का भाव जानकर कि इनकी इच्छा सत्सङ्गकी है उसी भावसे प्रेम और वात्सल्यके साथ सारा प्रसङ्ग-वर्णन किया। यहां नारदजीका मतलब मोहादिके कारण पूछना नहीं है, बल्कि सत्सङ्ग करनेकी यह एक रीति है। इसीलिये इस पूर्वकथित प्रसङ्गोंको नारदजीने फिर दुहराकर पूछा।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

रहत न प्रभु चित चूक कियेकी
करत सुरति सयवार हियेकी

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

चतुर्थ सोपान—किष्किंधा काण्ड



शङ्का १—'कुंदेंदीवर सुंदरावति बली' इस काण्डके आरम्भमें प्रथम श्लोकमें पहले 'कुंद' फिर 'इन्दीवर' पद दिया है। यहा 'कुंद' पदसे लक्ष्मणजी और 'इन्दीवर' श्याम कमलसे श्रीराम चन्द्रजीका बोध कराया गया है। तो 'कुंद' पद देकर लक्ष्मणजी का पहले बोध क्यों कराया गया?

समाधान १—यहा जो रामके पहले लक्ष्मणका बोध कराकर शिष्टाचार नियमका क्रम भग किया गया है वह केवल छदोभग होनेके भयसे किया है। यह छदोभंगकी कठिनाई गद्यमें नहीं है। वहा शिष्टाचार नियम ज्यों का त्यों निवाहा जा सकता है और पाठक्रमसे अर्थक्रम ही बलवान होता है। इस पदका भी अर्थ क्रम वही रहेगा जो गद्यक्रमका होना चाहिये। रामके बाद ही लक्ष्मणका बोध कराया जायगा। श्रीरामानुज सम्प्रदायके अनु यायी कहते हैं कि आचार्यरूपसे लक्ष्मणजीका नाम पहलेसे आना ही चाहिये। आगे चलकर सुग्रीवका लक्ष्मणजीकी शरणमें आना दिखाया गया ही है।

शङ्का २—जब हनुमानजी विप्रवेषमें श्रीरामचन्द्रजीके पास उनका भेद लेने गये उस समय श्रीरामचन्द्रजी तो क्षत्रिय वेषमें थे तो विप्रवेषमें क्षत्रिय वेषको सिर क्यों नवाया?

समाधान २—हनुमानजीको श्रीराघवको देखतेही परेसे परे ईश्वर दृष्टि हो गयी आगे चलकर 'स्वामी' भी कहा है। परन्तु फिर भी निश्चयार्थ यह पूछा है कि "आप तीन देवमें कौन हैं, विष्णु हैं या नर नारायण हैं अथवा अखिल भुवनपति हैं अर्थात् साकेत विहारी हैं"। यहातक जब महावीरजीकी सशय रहित दृष्टि पहुची थी तो नमस्कार करना तो सर्वथा उचित है।

हनुमानजीका दासभाव तो नित्य ही है इस कारण अज्ञात भावमें भी सिर झुक गया।

इसके सिवा हनुमानजी ब्रह्मचारी हैं और श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यक्ष वानप्रस्थ दशामें हैं। इससे आश्रमकी उच्चता देखकर प्रणाम किया। हनुमानजीका जो कपटरूप था वह श्रीरामके सामने स्थिर न रह सका। सच है सूर्यके आगे अंधकार कैसे टिक सकता है। देखो 'सतीजी' को भी सीताके वेषमें रामके आगे लज्जित ही होना पड़ा है। हनुमानजीको सिर झुकाना ही पड़ा, क्योंकि यह मायावी ब्राह्मण बनकर रामके सम्मुख आये थे, और राम हैं मायापति, भला मायापतिके सामने माया ठहर सकती है!

ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है कि

'विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ
माथ नाइ पूछत अस भयऊ'

सुग्रीवको माथा नवाकर (कि आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है) गये। अथवा 'माथ नाइ पूछत अस भयऊ' से यह भी ध्वनि निकलती है कि शीलके कारण हनुमानजीने सिर नीचा करके अर्थात् झुकाकर श्रीरामजीसे पूछना आरम्भ किया। अत मुख्यार्थ और पक्षान्तर दोनोंसे ही सिद्ध है कि हनुमानजीका सिर नवाना अनुचित नहीं है।

शङ्का ३—श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानसे भेंट होते ही कह दिया कि 'तैं मम प्रिय लछमन तें दूना' रामने हनुमानको लक्ष्मणसे दूना क्योंकर माना?

समाधान ३—पहले तो यह लौकिक रीति है कि जब किसीका किसीसे साक्षात् होता है तब वह उसके आश्वासनके लिये ऐसे वाक्य कहता ही है कि 'आप हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं'।

'दूना' से यह भी ध्वनि निकलती है कि लक्ष्मण और तुम दोनों ही समभाव करके प्यारे हो। दू+ना=दो नहीं, एक समान हो।

कवित्त रामायणमें गोसाईंजीने कहा है

नीके कै ठीक दई तुलसी अवलम्ब बड़ी उर आखर दूकी,

*   *   *   *

ताको भलो अजहूं तुलसी जिन्हें प्रीति प्रतीति है आखर दूकी,

यहा आखर दूकीसे मतलब, दो अक्षरकी है, इससे स्पष्ट है कि 'दू' के मानी 'दो' भी होते हैं।

अयोध्या काण्डमें भी मंथराकैकेयीके संवादमें

'सुख सुहाग तुम कह दिन दूना'

इस पदका भी भावार्थ उसी तरह लगाया गया है जिस भांति कि यहाँ "तैं मम प्रिय लछमन तें दूना" का अर्थ लगाया गया है। मंथराके वाक्यसे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि तुम्हारे सुहागके दिन अब 'दो नहीं' हैं अर्थात् आजहीतक सुहाग है और ऐसा ही हुआ है कि वरदान मांगतेही सुहागका अंतही सा हो गया।

"दूना" का अर्थ द्विगुण माननेमें भी कोई बाधा इसलिये नहीं पड़ती कि हनुमानजी पशुयोनिमें होकर ऐसी भगवद्भक्ति और सेवाधर्मका निर्वाह करते हैं, जो मनुष्य शरीरमें भी दुष्कर है। वह श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मण दोनोंके सेवक हैं और लक्ष्मणजी केवल श्रीरामजीके सेवक हैं। श्रीहनुमानजी संजीवन बूटी लाकर लक्ष्मणजीके भी प्राणदाता होनेवाले हैं। सीताजीकी सुधि लानेवाले हैं। अन्तर्यामी भगवान इस विचारसे "लक्ष्मणते दूना"का पेशगी खिताब बख्श दें, तो क्या बेजा है। "खोजत विप्र फिरहि हम तेही"में तो विप्रसे इस काममें सहायता पानेका इशारातक मौजूद है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि शेषसे शंकरजी उत्पन्न हुए हैं। लक्ष्मणजी शेषके अवतार हैं और हनुमानजी शंकरके हैं। इस संबंधसे यदि लक्ष्मण पुत्र तो हनुमानजी श्रीरामजीके पौत्र हुए और लोकमें पुत्रसे पौत्र प्यारा अधिक समझा जाता है।

शङ्का ४—* श्री रामचन्द्रजीकी बातोंसे ही हनुमानजीने प्रभुको कैसे पहचान लिया ?

समाधान ४—श्रीहनुमानजीका श्रीरघुनाथजीसे पूर्व परिचय अवश्य था। इसके लिये मानसके अतिरिक्त कथाएं प्रमाण हैं। परन्तु पूर्व साक्षात्कार न होनेपर भी रामको वन मिलना, दशरथ जी जैसे चक्रवर्ती राजाका स्वर्गवास, भरतका रघुवरको मनाने जाना, उनका न लौटना आदि साधारण घटनाएं न थीं। यह देशव्यापी घटनाएं सारे देशमें बिजलीकी तरह फैल गयी होंगी। यह सब घटनाएं हनुमानजीने भी सुन ही रखी होंगी। तिसपर जब श्री रघुनाथजीका साक्षात्कार हुआ और उन्हीं घटनाओंको सक्षेपतः रघुनाथजीके मुखसे सुना और उनमें तेज और पराक्रम भी असाधारण देखा तो हनुमान्‌जी जैसे विद्वान् गुप्त भेदियेको यह पहचान लेना कि यह वही रघुनाथजी हैं क्या कठिन है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक काम जो सामने था, जिसमें हनुमानजी शामिल थे, उसस श्रीरामजीसे समस्त गुप्त देवसेनाओंसे परिचय था ही।

शङ्का ५—श्रीरघुनाथजी तथा सुग्रीवने, केवल पावककी ही साक्षी अपने दोनोंके बीच क्यों दी ?

समाधान ५—पहले तो जब श्री रघुनाथजी वनको सिधारे हैं उस बीचमें जमुनाजीके तटपर अग्नि तपस्वी* वेषमें श्रीरघु

---

* कोसलेस दशरथके जाये, हम पितु वचन मानि वन आये।
नाम राम लछिमन दोउ भाई, सग नारि सुकुमारि सुहाई।
इहा हरी निशिचर बैदेही, विप्र फिरहिं हम खोजत तेही।

* तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा।
कवि अलखित गति वेष बिरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी।

* * *

पुनि सिय राम लषन करजोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रवि तनुजा कै करत बड़ाई

नाथजीसे आकर मिला और राम, लषन, सीताके पैरों पड़ा है। वहांसे ही श्री रघुनाथजीने निषादराजको लौटा दिया है। इस तपस्वीका न तो वापस जाना ही लिखा है, न प्रत्यक्षमें सदेह रघुनाथजीके साथ जाना ही कविने दिखलाया है। केवल इशारा कर दिया है कवि अलखित गति वेष विरागी' वास्तवमें देवताओंका यह प्रधान चर अदृश्य रूपसे भगवानके साथ रहा है। भगवानके साथ इसके रहनेमें कई प्रयोजन थे। यात्रामें चार जनोंका साथ मंगलकारी होता है, श्रीजनकनन्दिनीकी रक्षा करना तो इसका परमोद्देश्य था। यह राम सुग्रीवके बीच साक्षी, लंका दहनमें हनुमानका सहायक और रावणवधके पश्चात् सीताजीको निर्दोष और पवित्र सिद्ध करनेमें सीताजीका सहायक हुआ। यह सारे कार्य करके सीताको रामको सौंप कर अपने लोकको गया।

"धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य' स्नुति जग विदित जो
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहिं समरपी आगिनि सो"

ऐसे हितूकी साक्षी देना असंगत नहीं है।

सुग्रीव तथा श्रीरघुनाथजी दोनोंकी मित्रता केवल वचनों द्वारा हुई है और वाग्देवता अग्नि है अग्निका साक्षी देनेका यह भी कारण हो सकता है।

ऐसा भी लोकप्रसिद्ध है कि शुद्धि शपथ और साक्षी सर्वत्र अग्निसे ही हुआ करती हैं क्योंकि अग्नि सर्वव्यापक है।

'तौ कृसानु सबकी गति जाना'

अत अग्निदेवको सर्वव्यापक और परम तेजस्वी जान परस्पर साक्षी दी।

*शङ्का ६—श्रीरघुनाथजीने वालि, सुग्रीव दोनों भाइयोंको

---

* एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमतें नहिं मारेउ सोऊ।

* * * *

मेली कंठ सुमनकै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।

एक रूप बताया और अपनेमें भ्रम सिद्ध किया और पहचानके लिये कण्ठमें माला मेली कोई दूसरी पहचान नहीं रखी इसका क्या कारण है ?

समाधान ६—अन्तर्यामी होनेपर भी श्रीरघुनाथजी तो नर लीला कर रहे हैं जिसका प्रमाण अनेक स्थलोंपर मिलता है।

'उहा राम लछिमनहिं निहारी । बोले बचन मनुज अनुहारी ।

* * * *

उमा एक अखण्ड रघुराई । नर गति भगत कृपालु देखाई ।

इसी भावको लेकर रघुनाथजीने दोनों भाइयोंको पहचाननेमें कि इनमें कौन सुग्रीव और कौन बालि है भ्रम बतलाया क्योंकि दोनोंके रंग रूप अवस्था और कद समान ही थे, वाल्मीकि रामायणमें भी ऐसा ही उल्लेख है। स्पष्ट है कि पहचाननेके लिये ही माला पहिनायी।

इस मालाके पहनानेमें एक और भाव है।

भगवानने अपना प्रमाद दे सुग्रीवको समाश्रित कर लिया। उसकी रक्षा इस भावसे भी आवश्यक हुई। उसका वैष्णव संस्कार हो गया। बालिने यह जानकर भी कि यह भगवान् रामचन्द्रजीका आश्रित है उसका बध करना चाहा। यह वैष्णवके प्रति महाअपराध था। श्रीरघुनाथजीने कहा भी है।

'मम भुजबल आस्रित तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी।'

कोई कोई गौण अर्थ ऐसा भी लगाते हैं कि दोनोंको श्रीरघुनाथजीने इसलिये एक रूप बतलाया कि बालि और सुग्रीव दोनोंही एकहीसे क्षणिक ज्ञानी थे। देखिये रघुनाथजीसे मित्रता होनेके बाद सुग्रीव जब इनके बलकी परीक्षा कर चुका तो कहता है कि—

'सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई'

ए सब राम भगतिके बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक,

* * * *

वालि परम हित जासु प्रसादा । मिले राम तुम समन विषादा ।

यहा सुग्रीव बडा ही वैराग्यपूर्ण बातें कर रहा है। यहातक कहता है कि वालिने तो हमारा हित किया है। उसीके कारण आप मुझे मिल सके। रहा लडाई यह तो संसारी झगडे हैं। परन्तु आगे चलकर थोडी ही देरमें लडनेके समय वही सुग्रीव रामचन्द्रजीसे कहता है

मै जो कहा रघुबीर कृपाला । बन्धु न होय मोर यह काला ।

यह पूर्वापर विरोध क्षणिक ज्ञानी होनेका द्योतक है और भी देखिये आगे चलकर राज्याभिषेक होनेपर तो सुग्रीवका सारा वैराग्य काफूर हो गया, रघुनाथजीको लाचार हो स्वयं कहना पड़ा कि

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी । पावा राज कोष पुर नारी ।

जिसे सुग्रीव फिर वैराग्य दिखाते हुए कहता है कि

'नाथ विषम सम मद कछु नाहीं । मुनिमन मोह करै छनमाहीं'

अब वालिकी ओर ध्यान दीजिये कि जब वालिकी स्त्री वालिको श्रीरघुनाथजीका ऐश्वर्य्य वर्णन करके समझाने लगी कि

"सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा । ते दोउ बन्धु तेजबल सींवा ।
कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहिं संग्रामा ।"

तब वालिने कहा कि 'समदरसी रघुनाथ' अर्थात् रघुनाथजी समदर्शी हैं वह मुझको सुग्रीवको सभीको बराबर समझते हैं। यहा ज्ञानकी बात कही और फिर तुरत ही पूर्वापर विरोधकी बात कह दी कि 'जो कदापि मोहि मारिहैं' अर्थात् यहा फौरन ही संदेह भी हो गया। पहली बातपर दृढ नहीं रह सका। इससे सिद्ध है कि यह भी क्षणिक ज्ञानी ही था। अत दोनोंहीका एक रूप अर्थात् प्रकृति रंगरूप एक हीसे सिद्ध होते हैं इससे 'एक रूप' कहना यों भी सुसगत है।

शङ्का ७—श्रीरघुनाथजीने पहले यह प्रतिज्ञा करली है कि मैं

बालिको एक ही बाणसे मारूंगा फिर* धनुषपर दूसरा बाण क्यों चढ़ाया ?

समाधान ७—श्रीरघुनाथजी कोई साधु सन्यासी नहीं हैं। वह एक महान राजनैतिक पुरुष हैं। उन्होंने विचारा कि बालि यहाका राजा है यदि बालिके घायल होते ही हम क्रोध शान्त कर लेंगे तो यह वानर जो उसकी प्रजा हैं अज्ञानवश हमें असावधान समझ हमपर टूट न पड़े और नाहक इनका बध करना पड़े। इस कारण राजनैतिक दृष्टिसे रघुनाथजी अपना राज्य श्रीयुक्त ऐश्वर्य्य तथा प्रभाव रखनेके लिये बाणपर धनुष चढ़ाये और लाल नेत्रसे क्रुद्धसे दीखे जिसमें वानर लोग समझते रहें कि अभी रघुनाथजीका क्रोध शान्त नहीं हुआ। जिससे श्रीरघुनाथजीकी ओर ताकनेकी किसीकी हिम्मत न पड़ी। रही बाणकी अमोघता, सो जब रघुनाथजी सकल्प करके बाण चढ़ाते हैं तो वह उस समय तो अमोघ है और जब स्वाभाविक ही रीतिपर चढ़ावें तो उस समय अमोघताका विचार नहीं है, क्योंकि यह तो उनका स्वाभाविक बाना है। गीतावलीमें कहा है

सुमनसरासन सायक जोरे तुलसिदास प्रभु बानन मोचत, इत्यादि।

भगवान रामचन्द्रजी भक्तवत्सल हैं। वह भक्तोंके दुःखके आगे अपनी प्रतिज्ञा भी भूल जाते हैं, छोड़ देते हैं। यहा सुग्रीव तो केवल भक्त नहीं है मित्र भी है। उसने सारी दुःखमय कहानी करुणाजनक शब्दोंमें सुनायी। उसपर भगवानके हृदयसे सहसा उद्गार निकल पड़े कि

'सुनु सुग्रीव हौं मारि हौं बालिहि एकहि बान,
ब्रह्म, रुद्र सरनागत, गए न उबरहि प्रान'।

---

* सुनु सुग्रीव हौं मारि हौं, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरहिं प्रान।
स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुन नयन सर चाप चढ़ाए,

अरण्यकाण्डमें भी जब अस्थि समूह देखकर मालूम किया कि

"निसिचर निकर सकल मुनि खाए"

तो सुनते ही "श्री रघुनाथ नयन जल छाए।"

तुरतही

"निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाय पन कीह"

दुर्वासाके प्रसङ्गमें तो भगवानने शरण्यत्व ब्रह्मण्यत्व आदि सभी त्याग दिये। बेचारे दुर्वासा ऋषिको अन्तमें भगवानके भक्त उसी राजाकी शरण लेनी पड़ी जिसका अपराध किया था। भीष्म प्रतिज्ञामें भी यही बात देखी गयी। यह है भक्त वत्सलता!

रही अरुण नयनकी बात सो रघुनाथजीने क्रोधका नाट्य करके पहलेहीसे धनुष बाण चढ़ाये हैं यही कारण है कि रोष अबतक नेत्रोंमें भरा हुआ है, इसीसे 'अरुण नयन' हैं।

इस चौपाईका अर्थ यों भी कर सकते हैं जिससे कोई शङ्का रहही नहीं जाती। "श्याम गात है, सिरपर जटा सँवारे हैं। अरुण आँखें हैं (मानों) चाप(भृकुटी)पर (दृष्टिरूपी)शर चढाये हैं।

शङ्का ८—श्री रघुनाथजीने बालिके हृदयमें अर्थात् मर्म स्थानमें शर तानकर मारा परन्तु बालि तुरत ही नहीं मरा, उठ बैठा। इसका क्या कारण है?

समाधान ८—जब बालिके बाण लगा और वह उसके लगते ही व्याकुल हुआ तो उसे फौरन ही ताराके वचनोंका स्मरण आ गया अर्थात् भगवान् और उनके ऐश्वर्यका स्मरण आ गया और साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि अब बचूंगा नहीं। अतः रामके दर्शन और उनसे बातचीत करने

बहु छल बल सुग्रीवकरि, हिय हारा भय मानि

मारा बाली राम तब, हृदय माझ सर तानि।

परा बिकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।

तथा अङ्गदादिको उन्हें सौंपनेकी उत्कट अभिलाषा वालिके हृदयमें उस समय हुई। प्रेम और अभिलाषाका संयोग क्यों न पूरा होता क्योंकि कहा है कि

जो इच्छा करिहहु मन माहीं, प्रभु प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।

स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुन नयन सर चाप चढ़ाए।

अत वालि उठ कर बैठ गया। देखा तो भगवान आगे खड़े हैं।

पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा, सुफल जनमु माना प्रभु चीन्हा।

आगे बहुत वादविवाद वर्णन किया गया है, सो वह तो रौद्ररस वर्णनका है जो युद्धप्रसंगके अनुकूल है। परन्तु वालिका क्रोध ऊपरी है।

हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा, बोला चितइ रामकी ओरा।

हृदयकी प्रीतिने ही वास्तवमें वालिको बैठा दिया। यदि बाण लगते ही फौरन वालिके प्राण निकल जाते तो जो जो मनोरथ उसके हृदयमें थे वे ज्योंके त्यों रह जाते और मोक्ष न मिलती। परन्तु रामको तो उसे मुक्ति देनी थी क्योंकि वालिके कथनानुसार

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।

* * * *

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।

यह भाव तो वालिके हृदयमें पहले ही बाण लगते ही आ गया होगा। भला ऐसे मनोरथ रखता हुआ अर्थात् मरते समय सच्चा भक्त होते हुए भी मोक्ष न पाता तो भगवानकी भक्तवत्सलतामें ही बट्टा लग जाता। अतएव वालिका उठ बैठना आवश्यक था। सङ्कल्प पूरे हो गये कोई बात दिलकी दिलहीमें रह नहीं गयी इसलिये पुनर्जन्मका झगड़ा छूट गया। मोक्षका भागी हो गया। प्राणतो उसी बाणसे गये हैं। अतः एकही बाणवाली प्रतिज्ञा भी पूरी हुई।

शङ्का ९—*श्रीरघुनन्दनने वालिके पुत्र अङ्गदके मौजूद रहते हुए वालिकी अन्त्येष्टिक्रिया सुग्रीवसे क्यों करायी ?

समाधान ९—(१) अंगद बालक है यदि वह अन्त्येष्टि क्रिया करेगा तो उसे पितामरणका अधिक दुःख होगा। इस लिये सुग्रीवसे अन्तक्रिया करायी।

(२) लोक-व्यवहारमें भी यह दिखानेके लिये कि वैर जीवन तक रहता है मरणपर नहीं रहता। अब वालि मर गया है सुग्रीवको उनसे अब शत्रुता नहीं रही। इसलिये सुग्रीवसे अन्त्येष्टि क्रिया करायी।

(३) सुग्रीव वैष्णव हैं अतः वैष्णवके हाथ दाह कर्मादि करानेसे हरिधाम जाना भी सिद्ध है।

(४) रघुनाथजीको सुग्रीवको राजा बनाना मंजूर था और यह राजपरंपरा है कि जो राजाकी दाह क्रिया आदि करता है वही राज्याधिकारी होता है। अतः इस नियमानुसार सुग्रीव वालिका पुत्र था, इसलिये सुग्रीवसे दाहकर्मादि कराये। वैसे लौकिक व्यवहारमें भी ज्येष्ठ भ्राता पितातुल्य कहा गया है।

शङ्का १०—श्रीरघुनाथजीने कहा कि—

'जेहि सायक मारा मैं बाली।
तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली'।

तो शरणागत पालन और सत्य प्रतिज्ञा कहा रही। प्रतिज्ञा की कि कलही मारूंगा और फिर मारा नहीं ?

समाधान १०—यहां श्रीरघुनाथजीका क्रोध करना भय दिखानेके लिये है।

'साम दाम अरु दण्ड विभेदा, नृप उरबसहिं चारि कह बेदा।

वास्तवमें मारनेकी प्रतिज्ञा नहीं है। श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार क्रोध करनेसे लक्ष्मणजीको भी बहुत क्रोध हुआ। यह

* तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा।

समझकर कि लक्ष्मणको सचमुच क्रोध आगया है रघुनाथजीने उन्हें समझा दिया कि

'भय देखाय लैआवहु, तात सखा सुग्रीव'

रही प्रतिज्ञाकी बात। सो रामचन्द्रजीने 'कालि' मारनेको कहा है परन्तु लक्ष्मणजो आज ही सुग्रीवको रघुनाथजीकी शरणमें लेआये। प्रतिज्ञा पालनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ने पायी।

शङ्का ११—तीन दिशाओंमें तो छोटे छोटे सामान्य वानर ही समुद्रके पारतक गये। पर दक्षिण दिशामें सब सुभट ही गये और समुद्रके किनारे पहुँचकर सबने अपने अपने बलका वर्णन किया पर पार जानेमें सबने सन्देह जताया और अङ्गदने केवल लौटनेमें असमर्थता प्रकट की तिसपर भी जाम्बवन्तने उन्हें जानेसे रोका। इन बातोंके क्या कारण हैं?

समाधान ११—जब सब वानर चलने लगे तब सबसे पीछे हनुमानजीको रघुनाथजीने बुलाकर

'परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी'

और कहा—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह वेगि तुम्ह आएहु,

अर्थात् रघुनाथजीने सारा वृत्त हनुमानजीको समझा बुझाकर मुद्रिका देकर विदा किया। यह सब व्यवहार सब वानर देखते रहे इसीलिये बड़े बड़े योद्धाओंने भी अपने अपने बलकी असमर्थताके मिस छिपाया और जाम्बवन्तने इसी कारण अगदको रोका और हनुमानजीको उत्साहित कर

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुपसाधि रहेहु बलवाना

* * * *

राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा

क्योंकि सब जानते थे कि रघुनाथजीकी आज्ञा और मुद्रिका

तो हनुमानजीपर है। हम लोगोंको अधिकार नहीं है यदि और वानर, रीछ अपना सामर्थ्य और बल वर्णन करते तो स्वामीकी आज्ञाका विरोध होता।

अगदके लिये कहा जाता है कि उसको गुरुका शाप था कि अक्षयकुमारके एक घूंसेसे मर जायगा इसीलिये "जिय संसउ कछु फिरती बारा" था। इसे हनुमानजीने पहली यात्रामें ही मार डाला।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

राम राम राम राम

जौं परिहरहिं मलितमन मानी
जौं सनमानहिं सेवक जानी
मोरे सरन राम कइ पन ही
राम सुस्वामि दोष सब जनही

राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

पञ्चम सोपान—सुन्दरकाण्ड

*शङ्का १—श्रीहनुमानजी तो संपातीसे पहले ही सुन चुके थे कि श्रीजानकीजी अशोकवाटिकामें हैं तो फिर रावणके महलोंमें प्रवेश क्यों किया, सीधे अशोकवाटिकामें ही क्यों न गये ?

समाधान १—यद्यपि श्रीमहावीरजी यह सब सुन चुके थे कि सीताजी अशोकवाटिकामें हैं परन्तु नैतिक पुरुष केवल सुननेपर ही अमल नहीं करने लगते, कुछ स्वय भी सोचा विचारा करते हैं। यह भी निश्चय न था कि अशोकवाटिका कौन है, किधर है। अत किसी सज्जनकी सहायता आवश्यक प्रतीत हुई। आगे चलकर विभीषण जी मिले और उन्होंने सीताजीका ठीक ठीक पता और उनसे मिलनेके तथा दूसरे कार्य करनेके सारे उपाय बतला दिये। रही नगर-प्रवेशकी बात, सो उसमें प्रवेश करना तो अत्यावश्यक था क्योंकि सीताजीका पता लगा लेना ही अभीष्ट न था बल्कि शत्रुका पूरा पूरा हर तरहका भेद भी लेना अभीष्ट था। उससे भविष्यमें चलकर लड़ना भी है और तिसपर भी अशोकवाटिका लङ्काके अतर्गत ही थी कुछ बाहर तो थी नहीं, लङ्किनीने स्वयं हनुमानजीसे कहा 'प्रविसि नगर कीजे सब काजा' इस वाक्यसे भी यही ध्वनि निकलती है कि दूतको शत्रुके विषयमें जितनी बातें जाननी चाहिये उन सबका पता लगाना परमावश्यक था।

यद्यपि संपातीने बतला दिया था कि सीता जी अशोक

---

* गिरि त्रिकूट ऊपर बस लङ्का। तहँ रह रावन सहज असङ्का॥ तहँ असोक उपवन इक अहइ। सीता बैठि सोच रत रहई।

वाटिकामें हैं तथापि विचारणीय है कि जो व्यक्ति शत्रु के हाथमें पड़ा हुआ है उसे अपने काबूमें लानेके लिये शत्रु क्षण क्षणमें अपने नियम, उपाय आदि बदल सकता है। इस बातको ध्यानमें रख कर कि सम्भव है सीताजी घोर विपत्तिमें हों और वह घोर विपत्ति उनके लिये एकान्तवाससे हटाकर अंतःपुरमें लाना ही हो सकती थी, हनुमानजी जैसे महाचतुर दूताचार्यके लिये यह आवश्यक ही था कि वह पहले अंतःपुरको देखे कि कदाचित् यहां श्रीजानकीजी घोर विपत्तिमें हों तो उन्हें विपत्तिसे मुक्त करावें। साथ ही रावणको तथा उसके रनिवास आदि गुप्तसे गुप्त स्थानको देखना भी आवश्यक था। तात्पर्य्य यह कि चतुर दूतको तो सभी कुछ देखनाभालना चाहिये। राजनैतिक कार्य बड़े सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचारोंके अंतर्गत रहते हैं। देखिये यद्यपि जटायुने भगवान रामचन्द्रजीसे सीताहरण रावणद्वारा बतलाकर यह भी बतला दिया था कि वह दक्षिण दिशामें लेगया है, तो भी, सब जानते हुए भी, श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीकी खोजमें चारों दिशाओंमें वानर रीछ भेजे। कहा भी है—

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुर ताता॥

हम ऊपर भी कह आये हैं कि हनुमानजीको किसी सज्जनसे लंकाका सारा भेद जानना और परामर्श करना और अपनेमें मिलानेका प्रयत्न करना भी अभीष्ट था। अतः आवश्यक था कि सारी लंकाको छान मारें और गुप्त रीतिसे किसी राम-भक्तका पता लगा लें। ऐसा ही हुआ कि रातोंरात देखते भालते विभीषणका महल मालूम कर ही लिया। उनसे अनेक प्रेमयुक्त परस्पर बातें हुईं अंतमें परामर्श भी हुआ।

सुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहं रही॥
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥

हनुमानजीने विभीषणसे मिलनेके बाद जितने चरित्र किये

है निस्संदेह सपर विभीषण और हनुमानजीने परस्पर परामर्श कर लिया होगा। अत हनुमान जीका सीधे अशोकवाटिकामें न जाकर नगर-प्रवेश करना परमावश्यक था।

* शङ्का २—त्रिजटाका सब स्वप्न सत्य हुआ केवल एक अश रावणकी मृत्यु, सत्य नहीं हुआ इसका क्या कारण है?

समाधान— स्वाभाविक स्वप्न कुछ क्रमबद्ध भी नहीं होते और यह भी आवश्यक नहीं कि सभी अश पूरे हो जायँ। तिसपर भी स्वप्नमें केवल रावणकी मृत्यु ही वर्णन नहीं की है आगे विभीषणको लकाका राज मिलना और सीताका रामके पास पहुँच जाना भी बताया है। यह सारी बातें एक साथ पूरी नहीं हुई। त्रिजटाने तो स्पष्ट कह दिया है कि स्वप्नके सारे ही अश चार दिन बीतनेपर सत्य होंगे। यहा चार दिनसे तात्पर्य एकसे लेकर चार दिनतक नहीं है, बल्कि यह लोकोक्ति है जिसका मतलब 'थोडे दिन बीतने' से है। सो कुछ ही दिन पीछे धीरे धीरे सारी ही बातें ठीक हो गयीं। अगर यह कहा जाय कि 'दिन चारी' से मतलब 'वानर' से है कि जब बागसे वानर चला जायगा तब यह सपना सिद्ध होगा तो यह तो नहीं कहा कि कहा चला जायगा। चले जानेसे मतलब लौट जानेका भी हो सकता है। सो बागसे चलते चलाते सेना-वध और लका दहन तो हुआ ही है और रघुनाथजीके पास पहुचनेके बादसे युद्धारम्भ ही हो गया है जिसमें रावणकी मृत्यु, विभीषणको राज्याभिषेक और सीताका रामसे मिलना हुआ ही है सपना प्राय सत्य ही हुआ।

---

* सपने बानर लका जारी। जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ नगन दससीसा। मुडित सिर खडित भुज बीसा।
एहि विधि सो दच्छिन दिसि जाई। लका मनहु विभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाइ। तब प्रभु सीता बोलि पठाइ।
यह सपना मैं कहउ विचारी। होइहि सत्य गये दिन चारी।

शङ्का ३—सुग्रीवको तो बालिके बधेपर राज्य दिया और विभीषणको रावणके जीते ही राजतिलक कैसे कर दिया?

समाधान ३—सुग्रीव माधुर्य्यउपासक और विभीषण ऐश्वर्य-उपासक था। जिसका प्रमाण यह है कि जब बालि वधकी प्रतिज्ञा श्रीरघुनाथजीने की तो सुग्रीवको सहसा विश्वास नहीं हुआ। जब दुंदभि अस्थि और सप्तताल द्वारा परीक्षा कर ली तब भली भाति विश्वास हुआ। तिसपर भी रामने बालिके मारने की प्रतिज्ञा की थी न कि सारे वंशके मारनेकी प्रतिज्ञा की थी। रघुनाथजीको सुग्रीव द्वारा यह भी ज्ञात हो हो गया होगा कि बालिके अंगद नामका पुत्र है और सुग्रीवके भी दधिबल था ही। सुग्रीवने मित्रता होने और बल परीक्षाके बाद ऐसा भी कहा है :—

'सुख सपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहहुँ सेवकाई।

* * * *

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाती। सब तजि-भजन करहुँ दिनराती।

और सुग्रीवको तो केवल बालिका भय था उसके डरसे ऋष्यमूक छोड़ कहीं जा नहीं सकता था। अत मित्रका दु ख दूर करना ही अभीष्ट था। बालिसे कोई अपनी तो शत्रुता न थी। जब बालिने भक्ति और प्रेमसने वाक्य रामसे कहे हैं और रामने समझा कि अब यह सुग्रीवको न सतायेगा तो यहातक कह दिया कि 'अचल करहु तनु राखहु प्राना' अत यहा तो रामका विचार यही था कि बालि हमारे मित्र सुग्रीवको बहुत दु ख दे रहा है उसे बिना मारे मित्रका दु ख दूर नहीं किया जा सकता। रहा राज्याभिषेक वह पीछे जैसा समय और मौका होगा किया जायगा। इसी कारण पहले राज्याभिषेक नहीं किया।

विभीषण जो ऐश्वर्य उपासक था उसने घर बैठे ही रावणको

यह समझाया था कि हे तात ! राम मनुष्य और राजा नहीं हैं वह भुवनेश्वर और कालके भी काल हैं।" और यहां तो रावणका सारा वंश ही नाश करना है ऐसा कोई भी राक्षस रहना नहीं है जो देव, मुनि द्विज तथा अपना द्रोही हो, सो विभीषणके सिवा और कोई राक्षस ऐसा न था जो रावणका साथी न हो। अत यहां तो सबको मारना अभीष्ट ही था। तब लंकाका राजा कौन होगा। निश्चय है कि विभीषण ही लंकाके राजा होंगे क्योंकि रावणादि राक्षसोंको मार सीताको पाना ही रामका अभीष्ट था। श्रीरामचन्द्र जी स्वयं लंकाका राज्य करना चाहते न थे।

दूसरे यह एक राजनैतिक चाल भी थी कि विभीषणको पहले ही राज्याभिषेक कर दिया जायगा तो विभीषण हमारा पक्का मददगार बन जायगा। रावण जब सुनेगा तो उसके दिलमें धक्का लगेगा और यह निश्चय होगा कि हम निश्चय मारे जायँगे क्योंकि श्रीरघुनाथजी तो हमें मरा मान चुके हैं। अत. श्रीरामके पराक्रमका दबदबा सारे राक्षस-समूह तथा रावणके दिलपर बिठानेके लिये रामने पहले ही राज्याभिषेक कर दिया। यहां श्रीरघुनन्दनको विभीषणादिकी पहले ही शंका मिटा देना है कि जिस राज वैभवका रावणको इतना अभिमान है, वह मैं तृण वत् समझता हू अर्थात् उसको मारकर उसकी राज्यश्री लेनेका विचार मेरा नहीं है।

क्या अजब है कि विभीषण और हनुमानजीमें जब परामर्श हुआ होगा तो विभीषणकी बातोंपर गौर करके हनुमानजीने रामसे सारा वृत्त कह दिया हो कि विभीषण भी अवसर पाकर आपसे आ मिलेगा और यहां रामने अपने मन्त्रियोंमें पहले ही निश्चय कर लिया हो कि विभीषणको आते ही राज्याभिषेक कर दिया जाय ताकि वह हरतरहसे हमारी सहायता करे।

इसमें यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि सीताजीको भी धैर्य बधाना है। श्रीसीताको यह दृढ विश्वास है कि रामजी

सत्य तथा दृढ़प्रतिज्ञ हैं अत विभीषणको आते ही, रावणकी मृत्युके पहले ही राज्याभिषेक कर दिया कि सीताजीको निश्चय हो जाय कि रावण मारा जायगा।

शंका ४—रावणादि पैदा तो महामुनि पुलस्त्यके वंशमें हुए हैं जैसा कहा है कि 'उपजे जदपि पुलस्त्यकुल' परन्तु विभीषण रघुनाथजीको अपना परिचय देते हुए कहते हैं 'निसिचर बंस जन्म सुरत्राता' तो यह निश्चर वशके किस प्रकार हुए?

समाधान ४—रावणादिका जन्म तो जरूर पुलस्त वशमें हुआ है परन्तु संस्कार मातृ वशमें हुआ। और माता इनकी राक्षसकी कन्या थी और जबसे पैदा हुए तबसे मातृवर्गमें ही रहे। वहीं लालन पालन हुआ। इससे मातृसंबध बलवान रहा। संसारमें वशके साथही साथ कर्म प्रधान है ही। इसी कारण विभीषणने अपनेको निश्चरवश कहा। देखिये किसी ब्राह्मणवीर्यसे वेश्याके पुत्र उत्पन्न हो तो वह वेश्या कर्मके प्रधानत्वके कारण वेश्यापुत्रही कहलायेगा।

गौण रूपसे ऐसा भी कहा जा सकता है कि शरणागतके जहा और लक्षण हैं वहा एक लक्षण दीनता भी है अत अपनेको तुच्छ दर्शानेके लिये ऐसा कहा।

शका ५—समुद्रने हनुमानजीकी तो रामदूत जानकर मैनाकद्वारा शुश्रूषा की परन्तु स्वय रघुनाथजीकी यात्रामें तीन दिन बीत जानेपर भी न स्वय न किसीके द्वारा शुश्रूषा की और न आया। इसका क्या कारण है?

इसका मुख्य कारण तो यह है कि समुद्र हनुमानजीका तो पराक्रम देख चुका था तो रामदूत समझ अहसान जताने या रामके प्रति अपनी भक्ति दिखानेके अभिप्रायसे हनुमान जीकी शुश्रूषा मैनाकद्वारा करायी। परन्तु रामने निश्चय किया कि 'बिनय करिय सागर सन जाई" इस माधुर्य्यमय वचनोंसे समु-

श्रीरघुनाथजीकी ईश्वरतामें भ्रम हो गया परन्तु जब

'सधानेउ प्रभु विसिप कराला उठी उदधि उरअतर ज्वाला ।
मकर उरग झषगन अकुलाने । जरत जन्तु जलनिधि जब जाने' ।

तब श्रीरघुनाथ जीका ऐश्वर्य देख समुद्र

कनक थार भरि मनिगन नाना । विप्ररूप आये तजिमाना'

नीतिपक्षको लेकर ऐसा भी कहा जा सकता है कि, समुद्र ने विचारा कि मेरे दोनो तटोंमें दो शत्रु हैं। दक्षिणमें तो रावण है सो उसे मारना तो श्रीरघुनाथजीने ठहरा ही लिया है। अब उत्तर तटवासी अघरासी साठ हजार आभीर हैं उनके वधका उपाय विचारके समुद्र चुप हो रहा कि जब रघुनाथजी क्रोध करेंगे तो बाण चढ़ावेंगे। उनका बाण अमोघ है, रोदेपर चढ़कर उतर नहीं सकता, उस समय छोडनेके पहले ही मैं उनकी शरणमें जाऊंगा और बाण छोडनेके लिये यह प्रार्थना कर लूंगा कि 'एहि सर मम उत्तर तटवासी । हतहु नाथ खल नर अघरासी ।' ठीक उसकी यह चाल चल भी गयी। ज्योंही श्रीरघुनाथजीने बाण संधाना अर्थात् चढाया कि समुद्र शरणमें आया, सारे उपाय और अपना दुख कह सुनाया। उस बाणसे उत्तर तटवासी अघरासी दुष्टोंका नाश कराके अपना रास्ता लिया।

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

जपेउ पवनसुत पावन नामू
अपने बस करि राखेउ रामू

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

षष्ठ सोपान—लंकाकांड

*शंका १—श्रीरघुनाथजीने यह कहा है कि 'परम रम्य यह उत्तम भूमि है, इसकी महिमा अमित है, यहां शंभु स्थापना करूंगा" इसका क्या कारण है, क्या इससे उत्तम भूमि कहीं और न थी?

समाधान १—यह लोक-प्रसिद्ध बात है कि सब नदियां पवित्र और उनका तट परम रम्य माना जाता है इस विचारसे भारतवर्षमें भौगोलिक दृष्टिसे देखिये तो जितने पवित्र और बड़े बड़े तीर्थस्थान हैं वह सब नदियोंके ही किनारे हैं, जैसे मथुरा, प्रयाग, काशी आदि। तिसपर समुद्र सब नदियोंका पति है क्योंकि सभी नदियां उसके अन्तर्गत हैं। इसलिये समुद्र अति पावन तीर्थ है और उसका तट परमरम्य है। जलतट और पवित्र स्थलमें देवस्थान होना अत्युत्तम है इस विचारसे श्रीरघुनाथजीने कहा कि यह स्थान पवित्र और परम रम्य है, यहां शम्भु स्थापना करूंगा।

यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि यह स्थान भारत जैसे विशाल देशकी दक्खिनी सीमा है। यहां अवश्य ही कोई न कोई पवित्र तीर्थस्थान होना ही चाहिये क्योंकि इसमें दो लाभ हैं एक तो यह कि दक्षिणमें शिवकाची और विष्णुकाची दोनों तीर्थोंकी सीमा मिलती है। शैवों और वैष्णवोंमें परस्पर विरोध रहता है। यदि यहां दोनों तीर्थोंके अलग अलग होते वैष्णवद्वारा

---

* परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नाहिं बरनी
करिहउ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना

शिवकी स्थापना की जायगी तो परस्परका विरोध कम होगा। दूसरे जो यहांतक तीर्थयात्रा करेंगे वह देशाटनके लाभ उठायेंगे और परस्परका मेल मिलाप बढ़ेगा। बड़े लोग इसी दृष्टिसे तीर्थ स्थापित करते हैं।

शंका २—अंगदजीने रावणसे कहा कि " फिरहिं राम सीता मैं हारी " सीताजीके हार जानेका अंगदको क्या अधिकार था ?

समाधान २—जब रावणने रघुनाथजीकी निन्दा की तो वह अंगदजीको सहन न हुई। अतः उन्होंने मारे क्रोधके दोनों भुजदण्डोंको जमीनपर दे पटका, जिसके मारे सारी सभा हिल गयी। यहांतक कि रावणके मुकुट भी गिर गये। इस तरह श्रीरघुनाथजीकी प्रभुता अंगदने रावणको दिखलायी कि मुझ जैसे उनके सामान्य दूत भी ऐसा पराक्रम रखते हैं। इसीसे हमारे स्वामीके बल पराक्रमका अंदाज लगा ले। पर अंगदजीको उस समय इतना क्रोध आ गया कि इतनेपर भी शान्ति न हुई और यह उपयुक्त अवसर भी पराक्रम दिखलानेका मिल गया। अतः अङ्गदजीने विचारा कि यह बड़ा ऐश्वर्य्यवान है इससे क्या बाजी लगाकर अपने बल पराक्रमका अन्दाजा करावें तो यह ठीक ही समझा कि सारा विवाद और झगडा तो सीताजीके ही कारण है। बस इन्हींको बाजी लगा दें। क्योंकि अङ्गदजीको अनेक अलौकिक आलोंदेखा घटनाओंके कारण रघुनाथजीके प्रतापका पूरा भरोसा था ही, कि उनके भक्तों और सेवकोंके प्रण कभी झूठे हो ही नहीं सकते और रामचन्द्रजीने यह कहकर कि"बहुत बुझाय तुमहि का कहऊ। परम चतुर मैं जानत अहहू" यह अधिकार देही दिया था कि—

"काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई।"

अङ्गदजीको श्रीरघुनाथजीके प्रतापका पूरा भरोसा था।

और पुन. भगवानके चरणोंमें आ सिर नवाया। यहां तो भक्ति पक्ष प्रबल था फिर क्योंकर भक्त लक्ष्मणजीका अमगल हो सकता था।

जो बात लक्ष्मणजीके विषयमें वर्णन की गयी ठीक वही हनुमानजीके विषयमें भी घटती है। अर्थात् हनुमानजीको भी अपने बलका गर्व हुआ और कुछ स्वामीसेवकके सम्बन्धमें जो भक्ति-भाव होना चाहिये उसमें भी कमी हुई—

'चला प्रभजनसुत बल भाखी'

इसमें बलका दर्प झलकता है। सेवकमें तो दैन्यभाव चाहिये चाहे वह कितना ही पराक्रमी क्यों न हो। यहा अपना बल मापना और साथ ही प्रणाम भी न करना यह दोनों ही गलतियां हनुमानजीसे हुई, इसीका परिणामस्वरूप दु ख और भ्रमादिक विपदाओंका सामना हनुमानजीको करना पडा। और अभिमान करनेका तो स्पष्ट प्रमाण है कि जब भरतजीने रामचन्द्रजीकी विपदका हाल सुना तो हनुमानजीको शीघ्र पहुचानेका प्रयत्नस्वरूप उन्हें अपने बाणद्वारा भेजनेको कहा। इसपर हनुमानजीको अभिमान हुआ।

'सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना।'

इससे सिद्ध है कि यहा हनुमानजीके हृदयमें अहकार-पक्ष सबल होनेके कारण भक्ति पक्ष निर्बल पड गया था। अत उनको जो विपदाओंका सामना करना पडा सो अनुचित नहीं हुआ। भगवान् रघुनाथजी अपने भक्तोंमें गर्वाकुर उगने नहीं देते।

शंका ४—# कालनेमिने तो मायामय सर बनाया था वहा मकरी कहांसे आ गयी?

समाधान ४—इसने मार्गमें माया रची। अर्थात् आप एक मुनि बनकर बैठा। किसी उपयुक्त स्थानपर जहा बाग, तालाब और मन्दिर था वहीं अपना आसन सजाया। सर मन्दिर ए

लेते मौजूद देखा। उसे केवल "वर बाग बनाना" सुन्दर बाग सजाना था। उसने सजाया। तालाब भूठा न था और न उसकी मकरी।

शंका ५—श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेके बाद मूर्च्छित होनेपर उनको सम्बोधन कर अपना "सहोदर भ्राता" निज जननीके एक कुमार, तथा 'सौंपेहु मोहि तुमहिं गहि पानी, कहा है इसमें सत्यता कहांतक है?

समाधान ५—इस प्रकरणको ग्रंथकार गोसाईं जीने मनुज अनुहारी, और 'प्रलाप' दशामें लिख किया है।

'उहा राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी।

* * * *

'प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भये बानर निकर,

रही प्रलाप दशाकी बात कि प्रलापका क्या लक्षण है सो उसका लक्षण इस प्रकार है—

'प्रलापोऽनर्थक वच , (अमरकोष)

'बिनु समुझे कछु बकि उठै, कहिये ताहि प्रलाप।

देह घटै मनमें बढ़ै, बिरह व्याधि सताप।

(भाषा भूषण)

अर्थात् निरर्थक वचन कहनेको प्रलाप कहते हैं जिसमें कहना चाहें कुछ और कहने लगें कुछ।

इससे सिद्ध है कि यहा रघुनाथजीने जो कुछ कहा है नरत्व और प्रलाप दशामें कहा है। इसलिये पाठकोंको विषयकी सच्चाई-पर ध्यान नहीं देना चाहिये बल्कि रघुनाथजीकी नरलीला और काव्यके रसागपर ध्यान देना चाहिये। फिर किसी प्रकारकी शंकाकी गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

अब ज्योंका त्यों शब्दार्थ लेकर इस प्रकार भी समाधान हो

सकता है कि पहले तो अग्निसे चरु मिला जिससे सब भाइयोंकी उत्पत्ति है अतः इस नाते परस्पर सहोदर हैं।

दूसरे शेषोपनिषद्के प्रमाणसे यथार्थमें सहोदर हैं क्योंकि लक्ष्मणजी उसी प्रकार प्रथम श्रीकौशल्याजीके गर्भमें थे। पीछे जन्मकालमें सुमित्राजीके गर्भमें आये, जिस प्रकार कृष्णावतारमें शेषावतार बलरामजी पहले देवकीजीके उदरमें थे पीछेसे आकर्षणद्वारा रोहिणीजीके गर्भमें आये।

तीसरे ऐसा भी कह सकते हैं कि रघुनाथजीने यह कहा कि 'हे तात! तुम यही विचारकर कि जैसे हमको तुम प्रिय भ्राता मिले हो वैसे इस संसारमें सहोदर भी नहीं मिलते।'

ऐसा भी कहा जा सकता है कि रघुनाथजीकी माताओंमें अभेद बुद्धि है अर्थात् उनमें अपने परायेपनका विचार नहीं है इसी भावको लेकर श्रीरघुनाथजीने सहोदर शब्दका प्रयोग किया।

'निज जननीके एक कुमारा'

लक्ष्मणजीको रघुनाथजीने कहा और सुमित्राजीके दो पुत्र लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नजी हैं। सो एक शब्दके आठ अर्थ हैं, यहाँ प्रधान अर्थ लेना ही मुख्य है।

'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽल्पे सख्या यां च प्रयुज्यते।' (दिनकरी)

'सौंपेहु मोहि तुमहि गहि पानी'

इसके लिये प्रलापके सिवा और कोई समाधान नहीं है।

कुछ लोगोंका मत है कि यहाँ पाणि ग्रहणकी चर्चाके साथ इशारा उर्मिलाजी और सीताजीकी ओर करके कहते हैं कि "उतरु ताहि" अर्थात् जनकजीको या उर्मिलाजीको क्या उत्तर देंगे। यह व्याख्या सगत है अवश्य परन्तु पूर्व पदोंसे सम्बन्ध नहीं है।

* अस कहि चला रचेसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥

शङ्का ६—* श्रीरघुनाथजीकी शरणागत होकर भी विभीषण क्यों कुम्भकरणके पैरों जाके पड़ा ?

समाधान ६—जिस समय रावणने भरी सभामें विभीषणके लात मार उसका घोर अपमान किया उस समय विभीषण महा दुःखी होकर सभासे उठ सीधा श्रीरघुनाथजीके पास चला परन्तु फिर लोकनिन्दाके भयसे सोच समझकर मातासे विदा माग, कुबेर तथा शंकरजीसे परामर्श लेकर तब श्री रघुनाथजीके पास आया, परन्तु कुसमयमें भाईको त्यागनेका दुःख इसके हृदयसे नहीं निकला। जब विभीषण रावणको त्याग लङ्कासे चला था, उस समय कुम्भकरण सो रहा था, इसलिये उससे विभीषण कोई बातचीत न कर सका था। अब, जब रावण-द्वारा जगाया जाकर कुम्भकरण युद्धके लिये भेजा गया तो विभीषणने सोचा कि मेरी निन्दा रावणने जरूर इससे की होगी। अतः अपनेको निरपराध सिद्ध करने और वास्तविक वृत्त अपनेसे बड़े भाईसे कहनेके लिये, तथा अपने प्रति उसका सन्देह मिटा-कर क्षमा-प्रार्थनाके लिये विभीषण इस समयको सुअव-सर जान कुम्भकरणके पास गया। जब विभीषणने चरणोंमें पड़ अपना सारा वृत्त कह सुनाया, तब कुम्भकरणने रावणकी निन्दा की और विभीषणकी प्रशंसा कर उसे निर्दोष सिद्ध किया। इस बातपर सन्तुष्ट हो विभीषण रामके पास आया।

इसके सिवाय यह भी ध्यान रहे कि अब कुम्भकरणका भी मरण समय है। लङ्कामें तो वह सभी भाईबन्धु कुटुम्बियोंसे मिलकर चला ही है। एक बेचारा छोटा भाई विभीषण ही रह जाता है। इसलिये ग्रन्थकार गोसाईंजीने किसी न किसी मिससे सब भ्राताओंका मिलन वर्णन कर दिया है, क्योंकि अब आगे मिलन होना असम्भव है।

*'देखि बिभीषन आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ' –

यदि विभीषणका मिलन कुंभकरणसे न होता तो रावणके कथनानुसार विभीषणपर कुंभकरणका पूरा पूरा सन्देह रहता, जो मरनेके समय साथ ही मनमें चला जाता। अत कुंभकरणकी मोक्ष न होती। इससे दोनोंका मिलन कराके सन्देह मिटाकर कुम्भकरणको मोक्षका अधिकारी बनाया।

यद्यपि रामभक्त होने तथा भाईद्वारा घोर अवमानित होनेके कारण विभीषण रामकी शरणमें आया सही, पर आखिर था तो संसारी ही पुरुष ? वैर-विरोध होनेपर भी रावणकी मृत्युपर विभीषणको महान् दुःख हुआ। बस, जब उसने सुना कि कुम्भकरण रघुनाथजीसे लड़ने आ रहा है तो यह समझकर कि यह अब यहाँसे जीवित तो जा नहीं सकता, भ्रातृस्नेहकी रस्सीमें बंधकर भाईसे जाकर मिलना विभीषण जैसे कोमल हृदयवालेके लिये स्वभाविक ही था। इसीलिये वह कुम्भकरणसे जाकर मिला और सारा वृत्त कहकर अपनेको निर्दोष सिद्धकर भाईके स्नेहरूपी प्रसादको पा श्री रघुनाथजीके पास लौट आया।

शङ्का ७—अंगद तथा हनुमानजी ऐसे शिरोमणि योद्धाओंमेंसे हैं कि जिनके एक ही मुष्टिक-प्रहारसे कुम्भकरण, रावण जैसे योद्धा भूमिमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े, "परन्तु यही योद्धा जब क्रोध करके मेघनादको मारने लगे, तो उसके चोट भी न लगी" ऐसा कहा गया है। जब मारेसे नहीं मरा, तब फिर चल दिये। इसका कारण क्या है ?

समाधान ७—इसका सामान्य रूपसे समाधान तो इस प्रकार है कि यदि एक ही ओरकी विजय वर्णन की जावे तो रणकी वास्तविक शोभा नहीं होती। वीररस फीकासा पड़ जाता है। निर्बल और सबलका संग्राम नीरस होता है। इसीलिये रावणपक्षका भी उत्कर्ष दिखाया है।

मुख्य भाव गोसाईंजीका यह है कि लक्ष्मणजीने मेघनाद-वधकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये अंगद, हनुमान् जैसे योद्धाओंके

मुकाबिलेमें मेघनादका उत्कर्ष दिखाकर फिर लक्ष्मणजीद्वारा उसका वध कराके लक्ष्मणजीका उत्कर्ष बढ़ाकर दिखाया जाय। इसीलिये पहले मेघनादका उत्कर्ष दिखाया, फिर उसका वध लक्ष्मणजीद्वारा कराके वास्तवमें लक्ष्मणजीका उत्कर्ष बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया। श्री रघुनाथजीके भाईके मुकाबिलेमें महान् योद्धा ही आना चाहिये। देखिये आगे जाकर राम-रावणके युद्ध-प्रसगमें लिखा है कि 'लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत' यहा लक्ष्मणजीको भी विकल बताया, क्योंकि रावण-पर रघुनाथजीकी विजय होती है। इसी भांति यहा मेघनादका भी प्रसग है।

शङ्का ८—रावण और कुम्भकरणके शवको तो रघुनाथजीने शरद्वारा लकामें भेजा, परन्तु मेघनादके शवको स्वय हनुमान्जी लकाद्वारपर रख आये, इसमें क्या विशेषता थी?

समाधान ८—श्री लक्ष्मणजी तथा मेघनादके प्रथम युद्धमें जब लक्ष्मणजी मूर्च्छित हुए हैं तब

'मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनन्त किमि, उठइ चले खिसियाइ।'

तो यहा तो मेघनाद जसे अनगिनत योद्धाओंसे भी श्रीलक्ष्मणजी न उठ सके और जब मेघनाद रणभूमिमें धराशायी हुआ तो

बिनु प्रयास हनुमान उठाए। लका द्वार राखि पुनि आए।

अतएव जहा लक्ष्मणजी बड़े परिश्रम और अनेक योद्धाओंके उपाय करनेपर भी न उठे, वहा मेघनादको हनुमानजी अकेले बिना प्रयास उठाते हैं। रहा लका-द्वारपर रख आना, इसमें रामदलके अभयत्व और वीरत्वका दिग्दर्शन कराया गया है और लकाके रावण-दलकी हीनता दिखायी है। रही फेंकनेकी बात सो जाम्बवन्तद्वारा पहले ही लंकामें मेघनादको फेंकना दिखाया गया है।

शङ्का ६—गोसाईं जी राम रावण-संग्राममें रावणके विषयमें

लिखते हैं कि 'अति गर्व गनै न सगुन असगुन' तो रावणको तो सब असगुन ही हुए हैं, सगुन कहां हुए जो नहीं गिने ?

समाधान ९—जब भूतकालमें रावणने दिग्विजय किया, तब शकुन भी होते रहे, परन्तु अपने अपने बल पराक्रम तथा ऐश्वर्य के आगे इसने उन शकुनोंपर कभी विचार तथा विश्वास नहीं किया। यहां भूतकालके शकुन समझना चाहिये और वर्तमान समयमें अशकुन हुए ही हैं, पहलेकी भांति इसने इन अशकुनोंपर भी विचार नहीं किया और न ध्यान दिया।

छन्दका भाव स्पष्ट है कि रावणको इतना गर्व है कि वह इस बातपर ध्यान ही नहीं देता [न गनै] कि शकुन हो रहे हैं या अपशकुन हो रहे हैं। उस समय कोई शकुन नहीं हो रहा था, इस बातसे कोई विरोध नहीं पड़ता।

शङ्का १०—* विभीषण सदासे श्रीरघुनाथजीको ईश्वर समझता आया। परन्तु उसने राम रावण समरमें श्रीरघुनाथजीके लिये रथकी इच्छा प्रकट की और शत्रुको जीतना कठिन बतलाया। परन्तु रघुनाथजीने परमार्थसम्बन्धी रूपकमें उत्तर दिया। यह क्या बात है ?

समाधान १०—विभीषण श्रीरघुनाथजीको चाहे जो समझता रहा हो, परन्तु वह श्रीरामचन्द्रजीका समर-मन्त्री भी था।

" सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिय जलधि गभीरा॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिन्धु सोषक तव सायक॥

---

* रावण रथी, बिरथ रघुबीरा। देखि विभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यसील दृढ़ ध्वजा पताका॥

जद्यपि तदपि नीति अस गाई । बिनय करिय सागर सन जाई ॥

* * * *

रिपुके समाचार जब पाए । राम सचिव सब निकट बुलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा । केहि बिधि लागिय करहु बिचारा ॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन । सुमिरि हृदय दिनकरकुलभूषन ॥
करि बिचार तिन मंत्र दृढ़ावा । चारि अनी कपिकटकु बनावा ॥
जथा जोग सेनापति कीन्हे । जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाये । सुनि कपि सिंहनाद करि धाये ॥

इन अंशोंसे स्पष्ट है कि जहाँ जहाँ मंत्रणाकी आवश्यकता हुई है, वहाँ विभीषणने पूरा पूरा योग दिया है। विभीषण कोरे भक्त ही न थे, बल्कि बड़े चतुर राजनीतिज्ञ भी थे। अतः समरमें धरावरीके विचारसे विभीषणको रथकी 'आवश्यकता' प्रतीत हुई। विभीषणके इस विचारसे देवता भी सहमत थे।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा । उर उपजा अति छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा । हरष सहित मातलि लेइ आवा ॥

और रघुनाथजीने भी रथका विरोध नहीं किया, बल्कि—

'तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा । हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ॥

चल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥
महा अजय संसाररिपु, जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥

अब देखिये वानरोंकी दशा

रथारूढ रघुनाथहिं देखी। धाये कपि बल पाइ बिसेखी॥
सही न जाय कपिनकै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥

इन पदोंसे स्पष्ट है कि विभीषणने जो अपने नैतिक विचार प्रगट किये थे, वे बिल्कुल यथार्थ और उचित तथा न्यायसंगत थे।

श्रीरामचन्द्रजीकी सेनामें, और विशेषतः स्वयं भगवान्के पास रथ न होनेसे जीतमें जो सन्देह हुआ, उसे भगवान्ने उपदेश द्वारा निवारण किया। तात्पर्य्य यह कि

"जेहि जय होइ, सो स्यंदन आना"। जिस रथसे वास्तविक जय होती है, वह और ही है। वह आध्यात्मिक है, आधिभौतिक नहीं। जयका अवलम्ब आज भी सेना और सामग्रीपर नहीं है, वरन् विजेताकी बुद्धि और चरित्र और आत्मबल और साहसपर है।

विश्वामित्रजीका शस्त्रबल वशिष्ठजीके आत्मबलसे परास्त हो गया था। "धिग्बल क्षत्रिय बल, ब्रह्मतेजो बल बलम्"। राम-रावण युद्धमें भी श्रीरामचन्द्रजीकी धर्म-बुद्धि, विवेक और आत्मबलने रावणकी पाप बुद्धि, अविवेक और कमजोरीपर विजय पायी। पिछले युरोपीय-युद्धमें भी जर्मनीको हार उसके शत्रुओंके बलसे नहीं, बल्कि उसकी अपनी कमजोरीसे ही हुई। उसके शत्रुओंमें आत्मबल प्रबल होता तो आजतक निर्णयमें देर न लगती। जर्म्मनीकी हार जरूर हुई, पर शत्रुओंकी जीत भी नहीं हुई।

प्रस्तुत प्रसंगमें भी श्रीरघुनाथजीने वास्तविक हार जीतके सम्बन्धमें 'गीता'का उपदेश विभीषणको करके उनका मोह दूर किया।

सुनि प्रभु वचन विभीषन, हरषि गहे पदकंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपासुखपुंज॥

स्पष्ट है कि विभीषणके वचन राजनैतिक विचारसे थे न कि भक्तिपक्षसे । परन्तु भगवद्वचन नित्य और सत्य हैं।

शङ्का ११—* शिवजीने आरण्य काण्डसे ही अर्थात् वन-गमनसे ही सतासी हजार बरसकी समाधि लगा ली, फिर भला लंकाके राम-रावण-समरमें उनका आगमन क्योंकर हुआ होगा ?

समाधान ११— श्रीशिवजीकी गणना ईश्वर-कोटिमें की जाती है, इससे अनेक रूप धारण करना शिवजीके लिये असंभव नहीं है। देखिये, हनुमानजी नित्य साकेतलोकमें भी रहते हैं कदलीवनमें भी रहते हैं, जहां रामकथा होती है वहां भी रहते हैं—इसी प्रकार शिवजीके भी अनेक रूप होनेमें कोई शङ्का-की बात नहीं है। समाधानकी एक और रीति भी है। गोस्वामी-जीने कई अवतारोंकी कथा कही है और "कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं" सो शिवजीने जिस कल्पमें लम्बी समाधि लगायी थी, उसमें लङ्कामें आकर स्तुति नहीं की । उनका लङ्कामें आकर

---

* बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई

* * * *

संभु समय तेहि रामहिं देखा। उपजा हिय अति हरषु बिसेखा

* * * *

सती कपट जानेउ सुरस्वामी। सब दरसी सब अंतरजामी

* * * *

संकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा

* * *

बीते संवत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी

* * * *

खल मल धाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन
सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहिं, आये संभु सुजान॥

स्तुति करना कल्पान्तरकी कथा है।

शङ्का १२—* अग्निप्रवेशद्वारा पतिव्रत सिद्ध करनेका संकल्प तो सीताजीके प्रतिबिम्बने किया, उसका जल जाना कहा है, तो पतिव्रत कैसे निभाया गया?

समाधान १२—श्रीरघुनाथजीने सीताजीको हरणके पहले ही वनमें अग्निको सौंप दिया था।

'सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अतर साखी'

देखिये खरदूषण त्रिशिरा आदिके मारनेके उपरान्त रघुनाथजीने सीताजीसे कहा कि

"सुनहु प्रिया व्रतरुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नरलीला। तुम पावकमहँ करहु निवासा। जौ लगि करउँ निसाचर नासा"

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पाते ही

'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी'

निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुविनीता

यहा लौकिक रीत्यनुसार भूमिकारूप दुर्वचन कहकर रघुनाथजीने सीताजीको अग्निसे निकालकर प्रकट किया है। वास्तवमें राम-सीता-वियोग तो हुआ ही नहीं है। रामने ललित नरलीला की है उसे निबाहनेके अर्थ यह लौकिक व्यवहार दिखाया है। अन्तमें प्रतिबिम्बको वास्तविक अशमें मिलाना है, इसी कारण प्रतिबिम्बका लय होना दिखाकर सीताजीको स्वत पूर्व रूपमें प्रगट होना दिखाया, क्योंकि अग्निप्रवेशके समय

'श्रीखण्डसम पावक भयो'

* लछिमन होहु धरमके नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी।
* * * *
'प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महँ जरे'

रहा लौकिक कलङ्क उसके लिये कविने ऐसा दिखाया है कि'प्रचण्ड पावक महुँ जरे।' देखिये, ज्यों ही सीताजी अनलसे निकलीं त्यों ही लौकिक कलङ्कोंका नाश हुआ और यह कीर्ति-कौमुदी चतुर्दिक फैल गयी कि सीताजी शुद्ध और सच्ची पतिव्रता हैं, क्योंकि अग्निपरीक्षा करनेपर अग्नि भी उन्हें न जला सका।

प्रतिविम्बका जलना कहा है सो स्वयं सीताजीके प्रकट होनेके कारण ही कहा है। प्रतिविम्ब तो रूपके देवता अग्निका रचा कृत्रिम था। वास्तविक सीताजीका स्थानापन्न था। जब असली सीताजी आ गयीं तब उसका अग्निमें समा जाना अनिवार्य्य था। प्रतिविम्ब अग्निमें जल गया गुप्त हो गया, विलीन हो गया, क्योंकि अब उसकी आवश्यकता न रही।

इस सम्बन्धमें अनेक कथायें कही जाती हैं। कहीं वेदवतीको सीताका रूप कहा गया है, कहीं प्रतिविम्बको पाँचाली-का रूप कहा है। परन्तु मानसकार कविका आन्तरिक अभिप्राय स्पष्ट है।

अयोध्याकाण्डमें जब वनमें भरतादि रघुनाथजीसे मिलनेके लिये आये, उस समय सासुओंकी सेवा करनेके विचारसे उतने ही रूप सीताजीने धारण किये, जितनी कि सासुएं थीं।

'सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई'

वह सब रूप भी सीताजीमें ही लय हुए। ग्रन्थकारने भगवती श्रीसीताजीमें नरलीलाके साथ ही साथ अनेक स्थलोंमें ऐश्वर्य्य भी दिखाया है। "जरे" का अर्थ "जले" करके भी लोग समाधान करते हैं, परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं बैठती।

शङ्का १३—* विभीषणने पुष्पक विमानको जो वास्तवमें कुबेरजीका था, उनके यहा न भजकर रघुनाथजीको समर्पण किया। इसका कारण क्या है ?

* 'लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा'

मिल गया। इसका समाधान तो सहज ही किया जा सकता कि श्रीरघुनाथजीसे उनके भक्तोंकी महिमा सदैव बड़ी कही ग है, अत सुग्रीव, विभीषण,जाम्बवन्त, अंगदादि रघुनाथजीके पर भक्त भी साथमें आ रहे हैं, यही अमृतवत् है।

शङ्का २—*श्री रघुनाथजीने कपि ऋक्षादिकोको अपने स सम्बन्धियोंसे अधिक प्यारा कहा, परन्तु फिर उन्हें अवधमें क्यों नहीं रखा?

समाधान २—मुख्य बात यह है कि सुग्रीव, विभीषणा यह सब राजा तथा गृहस्थ हैं। इनके अवधमें रहनेसे इनक परिवार और इनकी कुछ सेना भी अवधमें रहेगी। इनके राज्योंक प्रबन्ध गड़बड़ा जायगा, सारे देशोंमें भी अशान्ति फैल जायगी इससे इनको अपने अपने देशोंको बिदा कर दिया। इसक पुष्टि इस बातसे और हो जाती है कि हनुमानजीको वापिस नहीं भेजा, क्योंकि न तो वह कहींके राजा हैं और न गृहस्थ हैं

गौण रीतिसे इस प्रकार भी इसका समाधान किया ज सकता है कि यह वानर रीछ आदि सब देवअंश हैं, अपने अपने अंशोंमें मिलेंगे और अवधवासी सब साकेतको जायँगे. परन्तु इस युक्तिमें एक यह शंका पैदा हो जाती है कि विभीषण तो देवअंश न था उसे ही अवधमें रख लेते।

जबतक कि जिसका अधिकार है, उसे भूमिपर रहना ही है क्योंकि द्वापरमें कृष्ण और जाम्बवन्तका युद्ध होना है, और मयद वानरका वध बलरामजीद्वारा होना है, इस कारण अवधमें नहीं रखा।

शङ्का ३—गोसाईंजीने पहले तो यह लिखा कि 'दुइ सुत सुन्दर सीता जाये' और आगे जाकर लिखते हैं कि

---

* अनुज राज सम्पति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥ सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥

"दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे।"

यहां दूसरे वाक्यमें सब भ्राताओंका नाम लिया और पहले वाक्यमें सीताजीका नाम लिया, रघुनाथजीका कहीं भी नाम नहीं लिया। इसका क्या कारण है?

समाधान ३— भरतादि भ्राताओंके पुत्र तो अयोध्यामें पैदा हुए हैं इस कारण लौकिक रीत्यनुसार पिताके नामसे प्रसिद्ध किये। परन्तु सीताजीके पुत्र लवकुश महामुनि वाल्मीकिजीके आश्रममें पैदा हुए और वाल्मीकिने सीताजीको पुत्रीवत् माना जिसके प्रमाण वाल्मीकीय रामायणादिमें मिलते हैं। अत यह मुनि आश्रम ही सीताजीका नैहर हुआ। नैहरमें बालक माताके ही नामसे प्रसिद्ध होते हैं अत श्री रघुनाथके नामसे न कहकर सीताजीके नामसे प्रसिद्ध किये। गोस्वामीजी श्री रामजानकी युगलरूपका नित्य संयोग मानते हैं। रामचरितमानसमें सीताहरणके पूर्व श्री जानकीजीका अग्निप्रवेश और प्रतिबिम्बमात्रको हरा जाना दिखाया गया। यहांतक भक्तकविको सह्य था, किन्तु एक तो सीताजीके वन वाससे वास्तविक असह्य वियोग, दूसरे उसमें श्रीरामचन्द्र-जीकी कथाके प्राधान्यका अभाव, यह दोनों बातें भक्तिमार्गके अनुकूल नहीं पड़ती थीं। इसीलिये गोस्वामीजीने सीताजीके वनवासकी कथाका इशारा " दुइ सुत सुन्दर सीता जाये "पदमें किया है।

शङ्का ४—*जब श्रीरघुनाथजी सब वानर रीछ आदिको

---

* तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि॥
"सुनु सरबग्य कृपा सुखसिंधो। दीन दयाकर आरतबंधो।
मरती बार नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली॥
असरनसरन बिरद संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।

विदा करने लगे तो अंगदजीने बहुत अनुनय विनयकी। पर श्री रघुनाथजीने इतने दयालु होनेपर भी अंगदको अवधमें न रखा, इसका क्या कारण है?

समाधान ४—किष्किधाकाडमें देखिये कि पहले ही मरते समय बालिने अंगदको इसलिये सौंप दिया कि गद्दीकी परम्परा नष्ट न हो।

'यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाह सुरनरनाह आपन दास अंगद कीजिये'

बालिके इस मतलबको समझकर रघुनाथजीने सुग्रीवको, राजा बनानेके साथ ही अंगदको युवराज बना दिया

'लछिमन तुरत बोलाये पुरजन विप्रसमाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहु, अंगद कहुँ युवराज।'

उसी समयके वचनको ध्यानमें रखके श्रीमहाराजने उसे विदा किया। निर्भय करने या अधिक प्रीति दर्शानेको श्रीरघुनाथजीने अंगदको 'निज उरमाल, और बसन' पहिराकर विदा किया।

'निज उरमाल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ।'

मोरे प्रभु तुम्ह गुरु पितु माता। जाउँ कहा तजि पद जलजाता॥
तुम्हहिं बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बलहीना। राखहु सरन जानि जन दीना॥
नीच टहल गृहकी सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाहीं। अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं॥
अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाय उर लायउ, सजल नयन राजीव।

शङ्का ५—*श्री शङ्करजीने भुशुण्डीद्वारा रामकथा मरालतन धारण करके सुनी। प्रकट होकर नहीं सुनी इसका क्या कारण है?

समाधान ५—अनेक श्रोताओंका मरालरूप देखकर आप भी मराल बन गये, जिससे सबमें मिलके सुन सकें। अपने दिव्य रूपसे श्रोता-समाजमें शिव भगवान होते तो और सब पक्षियोंको स्पष्ट ही कठिनाई होती और गुप्त रीतिसे सुननेसे कथाका यथार्थ रसास्वादन भी होता है।

बात मुख्य यह है कि शङ्करजी तो भुशुण्डीके मानसचरित्र सुनानेवाले स्वय आचार्य थे। सतीके वियोगमें भ्रमण पर्यटन सत्सगद्वारा शिवजी अपना समय काटते फिर रहे थे। इसी बीचमें काकभुशुण्डीको रामोपासक जान शिवजी नीलगिरिपर सत्संगके लिये आये। परन्तु यह ध्यान रखा कि यदि मैं अपने रूपमें यहा कथा सुनूगा तो भुशुण्डी सकोचके मारे उस स्वतन्त्रताके साथ कथा वर्णन न करेगा जिस प्रकार इस समय कर रहा है। ऐसी दशामें वास्तविक आनद जो श्रोताओं और वक्ताके बीच कथामें आना चाहिये वह न आयेगा। इसीलिये शिवजीने इस नीतिका अवलम्बन किया।

यह शंका हो सकती है कि मरालका ही रूप क्यों धारण किया। और पक्षी क्यों न बने। इसका समाधान यह है कि कोई काम निष्प्रयोजन नहीं होता। हस नीरक्षीर विवेकयुक्त ज्ञानकी मूर्त्ति समझा जाता है। शिवजी भी ज्ञानरूप हैं। अत उनको हसका ही रूप धारण करना सुसंगत था।

शङ्का ६—श्री रघुनाथजीके उदरमें भुशुण्डीको कई कल्प बीत

अगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव रामकी ओरा।
बार बार कर दड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा।

* तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउ कैलास।

मरण कहाँ? यह अवस्था ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। इसे "सालोक्य मुक्ति" कह सकते हैं। सगुणोपासक गोलोक, साकेतलोक, आदि लोकोंको देश काल वस्तुसे परे मानते हैं।

शङ्का ७—*भुशुण्डिजीने मोहमें भरतादिकोंके अनेक रूप देखे और श्रीराघवको एक ही रूप देखा। भरतादिकोंमें यह अनित्यत्व क्यों दिखाया?

समाधान ७—यह सब श्री रघुनाथजीकी मायाकी करतूत है। भरतादिकके एवं विश्वम्भरके अनेक रूप कौतुकवत् हैं। सविकार और अनित्य हैं। एक बात और भी है। भुशुण्डिको मोह केवल राघवके प्रति ही हुआ है अत श्रीरघुनाथजीने सबसे विलक्षण नित्य और सर्वविकाररहित केवल अपना ही रूप दिखाया। यदि सब भ्राताओंमें भुशुण्डिको सदेह होता तो श्रीरघुनाथजी सबको एक ही रीतिसे दिखाते। जैसे कि सतीजीको राम, सीता तथा लक्ष्मणजी तीनोंमेंही सदेह हुआ था, इसलिये वहां महाराजने सतीको तीनोंका एकसा रूप दिखाया।

'सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता'

इस प्रकार सतीके प्रसगमें वर्णन किया गया है।

शङ्का ८—श्रीरामचरितमानस चार व्यक्तियोंद्वारा सवाद रूपमें वर्णन हुआ है। इनमेंसे उत्तरकाण्डके अन्तमें तीन

* अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी
दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। विविध रूप भरतादिक भ्राता
प्रति ब्रह्माड राम अवतारा। देखेउँ बाल विनोद उदारा,
भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउ प्रभु, राम न देखेउ आन॥

* (बालकाण्डमें)

(१) जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई॥

सवादोंकी, तो 'इति' लगायी है। परन्तु याज्ञवल्क्य और भारद्वाजके सवादको 'इति' नहीं लगायी। इसका क्या कारण है?

समाधान ८—भारद्वाजका प्रश्न रामस्वरूपका है। सप्तकाण्ड रामायण सुननेका प्रश्न नहीं है।

'रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही।

इसीसे आधे बालकाण्डतक रामस्वरूप और जन्महेतु कह कर याज्ञवल्क्य भारद्वाज सवाद गुप्त कर दिया गया।

याज्ञवल्क्यद्वारा सातों काण्डोंकी कथा कहलाना भी सिद्ध कर सकते हैं। बालकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यजीने आरम्भ किया कि

'कहहु सो मति अनुहार अब, उमा सभु सवाद'..

और अन्तमें उत्तरकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यका वैसे ही शब्दोंमें उपसहार भी है—' यह सुभ संभु उमा सवादा ' हा, गोस्वामीजीने याज्ञवल्क्यजीके विदा होनेका समाचार नहीं कहा। शायद मुनियोंके समागमका अन्त करना नहीं रुचा और रामकथा हो

---

(२) प्रभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा

(३) सोइ शिव कागभुसुडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा

* * * *

(४) भाषा बँध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

* * * *

(उत्तर काण्डमें)

(१) तासु चरन सिरनाय करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

* * * *

(२) गिरजा सत समागम सम, न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं वेद पुरान॥

कहेउ परम पुनीत इतिहास सुनत स्रवन छूटहिं भवपासा।

* * * *

(३) रघुपति कृपा जथामति गावा। यह पावन चरित सुहावा।

मरण कहाँ ? यह अवस्था ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। इसे "सालोक्य मुक्ति" कह सकते हैं। सगुणोपासक गोलोक, साकेतलोक, आदि लोकोंको देश काल वस्तुसे परे मानते हैं।

शङ्का ७—*भुशुण्डिजीने मोहमें भरतादिकोंके अनेक रूप देखे और श्रीराघवका एक ही रूप देखा। भरतादिकोंमें यह अनित्यत्व क्यों दिखाया ?

समाधान ७—यह सब श्री रघुनाथजीकी मायाकी करतूत है। भरतादिकके पंच विश्वम्भरके अनेक रूप कौतुकवत् हैं। सविकार और अनित्य हैं। एक बात और भी है। भुशुण्डिको मोह केवल राघवके प्रति ही हुआ है अत श्रीरघुनाथजीने सबसे विलक्षण नित्य और सर्वविकाररहित केवल अपना ही रूप दिखाया। यदि सब भ्राताओंमें भुशुण्डिको संदेह होता तो श्रीरघुनाथजी सबको एक ही रीतिसे दिखाते। जैसे कि सतीजीको राम, सीता तथा लक्ष्मणजो तीनोंमेंही सदेह हुआ था इसलिये वहा महाराजने सतीको तीनोंका एकसा रूप दिखाया।

'सोइ रघुबर सोइ लछिमन सीता'

इस प्रकार सतीके प्रसगमें वर्णन किया गया है।

शङ्का ८—श्रीरामचरितमानस चार व्यक्तियोंद्वारा सवाद रूपमें वर्णन हुआ है। इनमेंसे उत्तरकाण्डके अन्तमें तीन—

---

* अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी
दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। विविध रूप भरतादिक भ्राता
प्रति ब्रह्माड राम अवतारा। देखेउँ बाल विनोद उदारा
भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउ प्रभु, राम न देखेउ आन॥

* (बालकाण्डमें)

(१)जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई॥

सवादोंकी तो 'इति' लगायी है। परन्तु याज्ञवल्क्य और भारद्वाजके सवादकी 'इति' नहीं लगायी। इसका क्या कारण है?

समाधान ८—भारद्वाजका प्रश्न रामस्वरूपका है। सप्तकाण्ड रामायण सुननेका प्रश्न नहीं है।

'रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही।

इसीसे आधे बालकाण्डतक रामस्वरूप और जन्महेतु कह कर याज्ञवल्क्य भारद्वाज सवाद गुप्त कर दिया गया।

याज्ञवल्क्यद्वारा सातों काण्डोंकी कथा कहलाना भी सिद्ध कर सकते हैं। बालकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यजीने आरम्भ किया कि

'कहहु सो मति अनुहार अब, उमा सभु सवाद'।

और अन्तमें उत्तरकाण्डमें इन्हीं याज्ञवल्क्यका वैसे ही शब्दोंमें उपसहार भी है—' यह सुभ सभु उमा सवादा ' हा, गोस्वामीजीने याज्ञवल्क्यजीके विदा होनेका समाचार नहीं कहा। शायद मुनियोंके समागमका अन्त करना नहीं चहा और रामकथा हो

(१) सभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा

(२) सोइ सिव कागभुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा

* * * *

(४) भाषा बध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।

* * * *

(उत्तर काण्डमें)

(१) तासु चरन सिरनाय करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

* * * *

(२) गिरजा सत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

कहेहु परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहिं भवपासा।

* * * *

(३) रघुपति कृपा जथामति गावा। यह पावन चरित सुहावा।

जानेपर प्रयोजन भी नहीं रहा कि आनुषगिक कथाका विस्तार करें। यह स्मरण रखने योग्य है—

सुनु मुनि आजु समागम तोरे, कहि न जाइ जस सुख मन मोरे।

इस सुखका अन्त करना गोस्वामीजी जैसे भक्तिरसिकके लिये इष्ट न था।

शङ्का६—" सत पंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं" इस पदमें सतपचका अर्थ "अच्छे पच" है अथवा यह सख्या सूचक पद है ?

समाधान६—ग्रन्थकारने इस विचारसे कि कोई घटावे बढ़ावे नहीं, चौपाइयोंकी सख्या दी है। महन्त श्री रामचरण दासजीने मुख्य र्थ ५१०० श्लोकाक्षरोंकी गणनासे सख्या दी है, जो मिलती नहीं, अत मान्य नहीं है। उन्होंने फिर युक्तिसे "अच्छे पच" अर्थ किया है। यही अर्थ प० श्रीमहावीरप्रसादजी मालवीय वैद्यको भी मान्य है। उन्होंने अपनी टीकाके अन्तमें एक सारिणी दी है जिसमें कुल चौपाइयोंकी सख्या ४५६४, अर्द्धालियोंकी संख्या ६४, डिल्लाकी संख्या ४, उसको अर्द्धाली १ दो है। इस तरह कुल चौपाइयोंकी संख्या ४५६६ हुई। श्री मालवीयजीने यदि *डिल्ला (जो चौपाईका एक विभेद है) गिना तो लंकाकाडमें ही ४डिल्ला गिनना ठीक नहीं। पोथी भरमें डिल्ला, पादाकुलक आदि सभी भेदोंके अनेक उदाहरण मिलेंगे। डिल्ला आदिकी अपेक्षा २५ मात्राकी चौपाइया अलग गिनाते तो अधिक उचित होता। उन्होंने चार चार पदोंको चौपाइया गिनी पर जो दो पद बच रहे उन्हें ही अर्द्धाली गिना। जान पड़ता है कि गोस्वामीजीने दो पदोंकी भी चौपाई गिनी है, और चार पदोंकी भी। कहीं कहीं, जैसे अयोध्याकाडमें, उन्होंने नियमत दो दोहोंके बीच

*भसु यसु भन्ता डिल्ला जानहु अर्थात् ८-८परयति अन्तमें भगण हो १६ मात्राएं हों तो डिल्ला है। (छन्दप्रभाकर)

चार चार चौपदी चौपाइयां रखी हैं। परन्तु अनेक स्थलोंमें दो दोहोंके बीच ११, १३, १५, १७, १६, २७ द्विपदियां रखी हैं। हम जब द्विपदियों और चौपदियोंको पूरी चौपाइयां करके गिनते हैं तो जो रामचरितमानस नन्दग्रन्थमालामें दूसरी सरशाके नामसे छपा है उसमें ५१४६ चौपाइयाँ होती हैं, अर्थात् ४६ चौपाइयाँ बढ़ती हैं। हमने हालके छपे सभावाले संस्करणसे भी गिनती करायी तो उपर्युक्त संस्करणके पाठान्तरोंके मिलाने और कुछ ही घटाने बढ़ानेसे ५१०३की संख्याकी उपलब्धि हुई। हमें विश्वास है कि हमारी गिननेकी पद्धति ठीक है। सतपचका अर्थ अवश्य ही ५१०० है। तीनकी अधिक संख्याकी सहज ही कहीं भूल हो सकती है। पूरी पोथी श्री गोस्वामीजीकी ही लिखी उपलब्ध होती तो इस शङ्काका निवारण हो जाता। हमारी निश्चित धारणा है कि कविने यहां चौपाइयोंकी संख्या ही बतायी है, अन्यथा यदि "अच्छेपच" वाला ही अर्थ अभिप्रेत होता तो चौपाई छन्दपर ही क्या विशेषता थी। "इन मनोहर चौपाइयोंको सतपंच मानकर जो हृदयमें धारण करेंगे"को जगह इस मनोहर रघुवरयशको सतपच जानकर जो हृदयमें धारण करेंगे" बहुत विशद होना अथवा हरिगीतिकामें ही

"सतपच हरिहरजस मनोहर जानि जे नर उर धरैं"

बड़ी उत्तमतासे कह सकते थे जिसमें रकारके अनुप्रासकी बहार थी। "यश" और "पंच" में लिंगभेद भी न होता। चौपाइका उल्लेख बालकाण्डमें कविने इस प्रकार किया है—

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगति मंजु मनि सीप सुहाई

श्री गोस्वामीजी सरीखे उत्कृष्ट कवि चौपाईको पुरइनिकी उपमा देकर अन्तमें स्त्रीलिंग शब्दको उपमा "अच्छे पंच" पुल्लिंग शब्दसे कदापि न देंगे। इस धारणापर हम सतपचका अर्थ ५१०० ही करेंगे, अच्छे पंच नहीं।

शङ्का १०—रामचरितमानसमें अनेक स्थलोंमें छन्दोभंग है। गोस्वामीजीने अनेक दोहे १२, ११,१२, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(१)ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मनकीन्ह बिचार।
जौन ब्रह्मसर मानउं, महिमा मिटइ अपार॥

कहीं कहीं १२, ११, १३, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(२) कैकइ सुअन कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहिसे अधमके राज॥

नियमत: दोहा १३, ११, १३, ११ मात्राओंका ही होता है। अनेक चौपाइयां भी १५-१५ मात्राओंकी लिखी हैं,

जस—(३)करिहउँ इहा संभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना

*   *   *   *

मुठिका एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी

ऐसे अशुद्ध पद्य गोस्वामीजी जैसे सत्कविके नहीं हो सकते। क्या यह सब क्षेपक नहीं हैं?

समाधान—१०—बहुत प्रामाण्य प्रतियोंसे मिलान करनेसे जान पड़ता है कि यह पद्य क्षेपक नहीं हैं, ग्रन्थकारके ही लिखे हैं। ग्वालकविने दोहाका लक्षण दिया है—

षटकल चौकल जगन बिनु, पुनि इककल फिर दोइ।
पुनि ... त्रीइकं इमि दुकल, दोहा सगती होइ॥

इसके अनुसार पहले तीसरे चरण ६+४+१+२=१३मात्राओंके और दूसरे चौथे चरण ६+४+१=११मात्राओंके होते हैं। पहले तीसरे चरणान्तमें जगणका न होना दोहेके लिये आवश्यक है गोस्वामीजीने इन लक्षणोंसे युक्त दोहे बहुत लिखे हैं। जो दोहा ऊपर १२, ११, १२ ,११ मात्राओंका दिया है वह "पंचा

दोहा" का उदाहरण है, जिसका लक्षण हरदेव* कविने यों दिया है—

छकल चतुष्कल द्वै कलहि, विषम थलन कवि आन,

दुकलहि एक घटाय सम, पंचा दोहा जान।

विषम चरणोंमें ६+४+२=१२मात्रा और सम चरणोंमें ६+४+१=११मात्रा होनी चाहिये। ऐसे दोहे जायसीने भी लिखे हैं।

अब रही दूसरे दोहेकी बात जिसमें चारों चरण क्रमश १२, ११, १३, ११, के हैं। इसमें प्रथम चरणान्तका लघु नियमसे गुरु पढ़ा जायगा और गुरु गिना जायगा। इस तरह दोहा १३, ११, १३, ११ का हो जायगा। चरणान्तमें लघुका गुरु पढ़ा जाना प्राचीन नियम है। जैसे भर्तृहरिके नीचे लिखे प्रसिद्ध वसन्त तिलकामें, जिसका लक्षण त, भ, ज, ज, ग, ग, अर्थात् गुर्वन्त है, चौथे चरणमें अन्त्याक्षर लघु है, पर गुरु पढ़ा जाता है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भये न नीचै

प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमंति मध्या

विघ्नै पुनः पुनरपिप्रति हन्यमाना

प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति। (नीतिशतक)

हिन्दीमें आचार्य्य केशवदासने इस नियमसे कैसा लाभ उठाया है? देखिये वह लिखते हैं—

श्रीरामचन्द्र अति आरतवन्त जानि

लीन्हीं बुलाय शरणागत सु खदानि

लंकेश आउ चिरजीवहि लंकधाम

राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम (रामचन्द्रिका)

*देखो छन्द पयोनिधि वेंकटेश्वर (१९६३) पृ०९९।

शङ्का १०—रामचरितमानसमें अनेक स्थलोंमें छन्दोभंग है। गोस्वामीजीने अनेक दोहे १२, ११,१२, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(१) ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मनकीन्ह बिचार।
जौन ब्रह्मसर मान उ, महिमा मिटइ अपार।

कहीं कहीं १२, ११, १३, ११ मात्राओंके लिखे हैं, जैसे

(२) कैकइ सुअन कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहिसे अधमके राज।

नियमत दोहा १३, ११, १३, ११ मात्राओंका ही होता है। अनेक चौपाइयां भी १५-१५ मात्राओंकी लिखी हैं,

जस—(३) करिहउँ इहा सभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना
* * * *
मुठिका एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी

ऐसे अशुद्ध पद्य गोस्वामीजो जैसे सत्कविके नहीं हो सकते। क्या यह सब क्षेपक नहीं हैं ?

समाधान—१०—बहुत प्रामाण्य प्रतियोंसे मिलान करनेसे जान पड़ता है कि यह पद्य क्षेपक नहीं हैं, ग्रन्थकारके ही लिखे हैं। ग्वालकविने दोहाका लक्षण दिया है—

षटकल चौकल जगन बिनु, पुनि इककल फिर दोइ,
पुनि षट चौइक इमि दुकल, दोहा सगती होइ।

इसके अनुसार पहले तीसरे चरण ६+४+१+२=१३मात्राओंके और दूसरे चौथे चरण ६+४+१=११मात्राओंके होते हैं। पहले तीसरे चरणान्तमें जगणका न होना दोहेके लिये आवश्यक है गोस्वामीजीने इन लक्षणोंसे युक्त दोहे बहुत लिखे हैं। जो दोहा ऊपर १२, ११, १२ ,११ मात्राओंका दिया है वह "पवा

दोहा” का उदाहरण है, जिसका लक्षण हरदेव* कविने यों दिया है—

छकल चतुष्कल द्वै कलहि, विषम थलन कवि आन,
दुकलहि एक घटाय सम, पंचा दोहा जान।

विषम चरणोंमें ६+४+२=१२मात्रा और सम चरणोंमें ६+४+१=११मात्रा होनी चाहिये। ऐसे दोहे जायसीने भी लिखे हैं। अब रही दूसरे दोहेकी बात जिसमें चारों चरण क्रमश १२, ११, १३, ११, के हैं। इसमें प्रथम चरणान्तका लघु नियमसे गुरु पढ़ा जायगा और गुरु गिना जायगा। इस तरह दोहा १३, ११, १३, ११ का हो जायगा। चरणान्तमें लघुका गुरु पढ़ा जाना प्राचीन नियम है। जैसे भर्तृहरिके नीचे लिखे प्रसिद्ध वसन्त तिलकामें, जिसका लक्षण त, भ, ज, ज, ग, ग, अर्थात् गुर्वन्त है, चौथे चरणमें अन्त्याक्षर लघु है, पर गुरु पढ़ा जाता है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भये न नीचै
प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमन्ति मध्या
विघ्नै पुन पुनरपिप्रति हन्यमाना
प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति। (नीतिशतक)

हिन्दीमें आचार्य्य केशवदासने इस नियमसे कैसा लाभ उठाया है? देखिये वह लिखते हैं—

श्रीरामचन्द्र अति आरतवन्त जानि
लीन्हों बुलाय शरणागत सुखदानि
लकेश आउ चिरजीवहि लकधाम
राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम (रामचन्द्रिका)

*देखो छन्द पयोनिधि वेंकटेश्वर (१६६३) पृ०६६।

इसमें चारों चरणान्तमें लघुको गुरु पढ़ना पड़ता है। आचार्य केशवको इसमें दोष नहीं समझा जाता।

आचार्य दासकविने भी छन्दोर्णव पिंगलमें लिखा है—

कहुँ कहुँ सुकवि तुकन्तमें, लघुको गुरु गनि लेत।
गुरुहूका लघु गिनत हैं, समुझत सुमति सचेत॥

यहा स्पष्ट ही तुकन्तसे चरणान्त ही अभिप्रेत है, क्योंकि संस्कृत में प्रायः अन्त्यानुप्रासहीन ही कविता होती है और यह नियम संस्कृतमें भी सर्वमान्य रहा है।

पन्द्रह पन्द्रह मात्राओंकी चौपाइया, चौपइया नहीं, गोस्वामीजीने अनेक लिखी हैं। सभी पिंगल ग्रथोंमें इनका उल्लेख है। जायसीने भी चौपाइया लिखी हैं। चौपाइयोंके साथ चौपाइयां देना कोई दूषण नहीं है। किसीने इसका निषेध नहीं किया है। किसीको पसन्द न आवे तो दूसरी बात है। दासकवि कहते हैं—

पन्द्रह कला गनो चौपई। हसी तिन्ना दुज धुज ठई

यह नियम स्वयम् 'हसी' चौपईमें है। दासकविने तो चौपाई या चौपई १० मात्रावाले ही छन्दको कहा है। १६ मात्रावालेका १५९७ भेद बताते हुए रूपचौपाई या रूपचौपई सामूहिक नाम बताया है। गोस्वामीजीने चौप लिखकर छन्दोभग नहीं किया है। हाँ, भेद दिखाये बिना सब तरहकी चौपइयोंको साथ ही रखा है। उनका तात्पर्य था रामकथा कहना न कि पिंगलका पाण्डित्य दिखाना।

समाप्त।



श्रीराम-चरित-मानसकी भूमिका

तीसरा खण्ड

मानस-कथा-कौमुदी



दिनोंका मानते हैं। इस गणनामें प्राय ५ दिनोंकी कमी पड़ जाती है। परन्तु जहां लाखों वरसोंकी गणना होती है, वहां इस अन्तरपर विशेष विचार न करनेसे कोई हानि नहीं होती। मोटी तौरसे चार लाख वत्तीस हजार वरसोंका कलियुग, इससे दूने समयका द्वापर, तिगुने समयका त्रेता और चौगुने समयका सतयुग माना जाता है। चार युगोंकी एक चतुर्युगी होती है। एक हजार चतुर्युगियोंका एक कल्प माना जाता है।

प्रत्येक कल्पके आरम्भमें ब्रह्माण्डकी सृष्टिका आरम्भ भी माना जाता है। कल्पके अन्तमें सृष्टिका क्षय होता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं। एक एक कल्प महाब्रह्माका एक एक दिन माना जाता है। इस हिसाबसे महाब्रह्माकी आयु सौ वर्षकी मानी जाती है। महाविष्णु और महाशिवकी आयु अपरिमित है। ब्रह्माण्डोंका प्रलय भिन्न भिन्न समयोंपर होता है और सृष्टिके काल भी भिन्न हैं। उनकी स्थितिका काल उनकी ही गणनाके अनुसार एक कल्प अर्थात् चार अरब वत्तीस करोड़ वरस होते हैं। ऋषियोंने मानवी सृष्टिको कल्पके भीतर भी चौदह भागोंमें बाटा है। प्रत्येकको मन्वन्तर कहते हैं। इस तरह मन्वन्तर लगभग साढे इकहत्तर चतुर्युगियोंका होता है। वर्त्तमान मन्वन्तर हमारे सौर ब्रह्माण्डके लिये वैवस्वत नामका है। कल्पका नाम श्वेत वाराह कल्प है जो महाब्रह्माके दूसरे पहरके पहले आधेमें परिगणित है। सत्ताईस चतुर्युगिया इस कल्पकी बीत चुकी हैं। यह अट्ठाईसवां कलियुग है। इसके पहले चरणमें जब ४६३५ वर्ष बीते थे तब गोस्वामी जीने रामचरितमानसका लिखना आरम्भ किया था *।

* युग कल्प आदि कालमानमें हमने रात्रि, सन्ध्या और सन्ध्यांशकी गणनाकी चर्चा इसलिये छोड़ दी कि साधारण पाठकोंको गणनाविस्तारमें कोई विशेष रुचि नहीं होती। ले०

(३) सृष्टिका आरंभ

प्राय सभी पुराणोंका सृष्टिके आरंभके सम्बन्धमें मतैक्य है। क्षीरसागर कोई साधारण पार्थिव समुद्र नहीं है। यह अत्यन्त सूक्ष्म तेजोमय मूलप्रकृतिका सागर है, जो अनन्त आकाश देशमें विस्तृत है। इसी तरल तेजोमय पदार्थका नाम "नारा" है। जो अपरिमेयशक्तिका मूल अनादि पुरुष इसमें "शेष" वा "अनन्त" सत्तापर शयन करता है उसका नाम "नारायण" है। "शयन" इसलिये कि मूलप्रकृति और अनादि पुरुष सृष्टिके पहले अभेद हैं। एक ही सत्ता है, किन्तु कल्पनाकी परिधिमें लानेको दो वर्णन किये जाते हैं। एक रूप दूसरेमें प्रच्छन्न है। उसी सत्तामें जब "एकोऽहं बहुस्याम" का स्फुरण हुआ तब "नारायण" को "नाभि" से अर्थात् शक्तिकी रजोगुण विशिष्ट कुण्डलीसे अष्टदल कमल, वा देशका द्योतक आठों दिशाओंका सूचक सत्ताका प्रादुर्भाव होता है। इसी कमलपर रजोगुण-विशिष्ट भावी सृष्टिके कर्त्तार ब्रह्मा प्रकट होते हैं। शक्तिके मूलरूप "तपस्" वा तपस्याके अवलम्बसे, शक्ति सवरण वा शक्ति-सचयसे वह सृष्टि रचनामें समर्थ होते हैं। वेद वा आत्मज्ञान उनके मुखसे निकलते हैं। ब्रह्मासे महत्, महत्से अहंकार, अहंकारसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधियां, ओषधिसे अन्न, अन्नसे रेतस, रेतससे शेष प्राणी उत्पन्न हुए। इस मेदिनी नामक पार्थिव पिण्डकी रचनाके लिये कथा है कि नारायणके कानसे अर्थात् दो शक्ति-कुण्डलियोंसे दो दानव अर्थात् तमोमय महापिण्ड निकले, युद्ध हुआ, मारे गये। यह मधुकैटभ थे। इनका मेद "नारा" में बहा। यही मेदिनीका मूलरूप हुआ। यह मेदिनी "शेष" वा अनन्त सत्तापर स्थिर हुई। मगल ग्रह इसीके गर्भसे निकलकर

पिण्डरूप हुआ। ब्रह्माके अनेक मानस पुत्र हुए। मरीचि, अंगिरा भृगु, नारद, वशिष्ठ, अत्रि आदिमें पहले दोनों अग्निके वाचक हैं। मरीचिके कश्यप, कश्यपके बारह सूर्य्य हुए। अंगिराके बृहस्पति और भृगुके शुक्र हुए। सूर्य्यसे शनि हुए। पीछे मेदिनीके मंथनसे चन्द्रमा निकला। इससे और बृहस्पतिपत्नी तारासे बुध हुआ। इनके सिवा अनेक "देव" अर्थात् ज्योतिर्मय पिंड उत्पन्न हुए। अगणित ग्रह और तारे, जो सभी "देव" वा ज्योतिर्मय थे, ब्रह्माने उत्पन्न किये। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, दो अश्विनीकुमार, यह तेंतीस कोटि या प्रकारके देवता भी उत्पन्न हुए। भू, भुव, स्व, मह, जन, तप सत्यम् लोक भी उत्पन्न हुए। बहुतोंके मतसे पहले तीन त्रिलोक वा त्रिभुवन कहलाते हैं। इन्हींका क्षय प्रलयमें होता है, शेषका नहीं होता। बहुतसे मर्त्य, स्वर्ग, नरक और कई पाताल, मर्त्य और स्वर्ग त्रिभुवन मानते हैं। इनके सिवा ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक इन सातों लोकोंसे एकदम भिन्न समझे जाते हैं, और अधिक स्थायी। कृष्णोपासक गोलोक और रामोपासक साकेतलोक को नित्य सत्य और इन सबसे परे मानते हैं।

साकेतलोक और गोलोक नित्य और अविनाशी हैं। भगवानका नाम, रूप, लीला, धाम सभी नित्य माने जाते हैं। मुक्त होकर जीव इन्हीं लोकोंमें जाता है। उसे चार प्रकारकी मुक्ति मिलती है, सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य। उपास्यदेवका रूप धारण करना सारूप्य है। उपास्यदेवके ही लोकमें नित्य निवास सालोक्य है। उपास्यदेवका पार्षद होकर रहना सामीप्य है। उपास्यदेवका अंग वा आभूषणादि होकर रहना सायुज्य है। यह दोनों लोक देश, काल और वस्तुकी कल्पनासे परे पुरुषोत्तमरूप ही समझे जाते हैं। वर्णनातीत होनेके कारण ही आचार्य यह अंग, अंगी, लोक, रूप पार्षद आदिकी कल्पनाके साथ बताये जाते हैं।

सातों लोक और सातों पाताल (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, और पाताल) मिलकर चौदह भुवन कहलाते हैं। महाप्रलयमें इनका नाश हो जाता है। इनकी सृष्टिके लिये ब्रह्मा किसीको प्रजापतिका पद देते हैं। प्रजापति मैथुनी सृष्टिका आरम्भ करते हैं। ब्रह्माजीने दस प्रजापतियोंकी सृष्टि की। दक्षको अंगूठेसे उत्पन्न किया। दक्ष भी एक प्रजापति हुए थे, जिनकी कथा रामचरितमानसमें है।

भू, भुव:, स्व आदि लोकोंमेंसे भू तो यह पृथ्वी है। भुव: अन्तरिक्ष और स्वर्लोक स्वर्ग है। स्वर्गका स्वामी इन्द्र है। यह कश्यपके बारह आदित्योंमेंसे वा पुत्रोंमेंसे एकका नाम भी है। परन्तु स्वर्गपति इन्द्र व्यक्तिका नाम नहीं है। यह पदका नाम है। नहुष, बलि आदिके इन्द्रपदके सम्बन्धकी चर्चासे यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वर्गमें देवता रहते हैं। देवताओंके गुरु बृहस्पति हैं। दैत्योंके गुरु शुक्र हैं। देवता और दैत्य दोनों ही कश्यपसे उत्पन्न बताये जाते हैं। कश्यपपत्नी अदितिसे आदित्य देवता, दितिसे दैत्य, दनुसे दानव, मनुसे मानव वा मनुष्य, विनतासे गरुड, कद्रूसे सर्पादि इस प्रकार कश्यपकी अनेक स्त्रियोंसे अनेक सन्तान हुई। ब्रह्माके मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपके विवस्वन्, विवस्वन्के वैवस्वत मनु और वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुकी वंशपरम्परामें रामावतार हुआ। विवस्वन्के कारण यह सूर्यवंश प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार चन्द्रमाके बुध, बुधके इला आदिकी परम्परासे चन्द्रवंश प्रसिद्ध हुआ।

पहला सार्वभौम मनुष्य राजा जो राजधर्मका नियमन और शासनका सङ्गठन करता है "मनु" कहलाता है। कल्पके आरम्भमें पहले मनु स्वायंभुव हुए थे। उनके पीछे फिर प्रत्येक मन्वन्तरके अधिष्ठाता भिन्न भिन्न मनु हुए। यह मनु शब्द पद वाचक है और कश्यपकी स्त्री मनुसे भिन्न है।

पिण्डरूप हुआ। ब्रह्माके अनेक मानस पुत्र हुए। मरीचि, अंगिरा भृगु, नारद, वशिष्ठ, अत्रि आदिमें पहले दोनों अग्निके वाचक हैं। मरीचिके कश्यप, कश्यपके बारह सूर्य्य हुए। अंगिराके बृहस्पति और भृगुके शुक्र हुए। सूर्य्यसे शनि हुए। पीछे मेदिनीके मथनसे चन्द्रमा निकला। इससे और बृहस्पतिपत्नी तारासे बुध हुआ। इनके सिवा अनेक "देव" अर्थात् ज्योतिर्मय पिंड उत्पन्न हुए। अगणित ग्रह और तारे, जो सभी "देव" वा ज्योतिर्मय थे, ब्रह्माने उत्पन्न किये। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, दो अश्विनीकुमार, यह तेंतीस कोटि या प्रकारके देवता भी उत्पन्न हुए। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तप सत्यम् लोक भी उत्पन्न हुए। बहुतोंके मतसे पहले तीन त्रिलोक वा त्रिभुवन कहलाते हैं। इन्हींका क्षय प्रलयमें होता है, शेषका नहीं होता। बहुतसे मर्त्य, स्वर्ग, नरक और कई पाताल, मर्त्य और स्वर्ग त्रिभुवन मानते हैं। इनके सिवा ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक इन सातों लोकोंसे एकदम भिन्न समझे जाते हैं, और अधिक स्थायी। कृष्णोपासक गोलोक और रामोपासक साकेतलोक को नित्य सत्य और इन सबसे परे मानते हैं।

साकेतलोक और गोलोक नित्य और अविनाशी हैं। भगवानका नाम, रूप, लीला, धाम सभी नित्य माने जाते हैं। मुक्त होकर जीव इन्हीं लोकोंमें जाता है। उसे चार प्रकारकी मुक्ति मिलती है, सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य। उपास्यदेवका रूप धारण करना सारूप्य है। उपास्यदेवके ही लोकमें नित्य निवास सालोक्य है। उपास्यदेवका पार्षद होकर रहना सामीप्य है। उपास्यदेवका अंग वा आभूषणादि होकर रहना सायुज्य है। यह दोनों लोक देश, काल और वस्तुकी कल्पनासे परे पुरुषोत्तमरूप ही समझे जाते हैं। वर्णनातीत होनेके कारण ही यथार्थ यह अंग, अंगी, लोक, रूप पार्षद आदिकी कल्पनाके साथ बताये जाते हैं।

परमात्माका यत्न है जो पिंडोंको धारण करता है। यही कच्छपावतार कहलाता है। इसी मंथनमें पृथ्वीका एक अंश, चौदह रत्नोंमें से एक रत्न, चन्द्रमा निकला और वही आकाशमें पृथ्वीमाताकी परिक्रमा करने लगा। बृहस्पति शनि आदि ग्रहोंके अनेक चन्द्रमा भी पिंडोंके इसी संघर्ष या मंथनसे निकले।

पृथ्वी इस घटनाके पीछे लाखों बरसमें इतनी ठंडी हो गयी कि तरल प्रस्तर मय मेघमालाके बदले वर्त्तमान जलकी आनन्द कादम्बिनी आकाश मंडलको सुशोभित करने लगी। पृथ्वी जलमय दिखाई देने लगी। हिमालय या मेरु सदृश कहीं कहीं पहाड़ोंके उत्तुंग शिखर स्थलके रूपमें दिखाई पड़ते थे। ऐसे युगमें जलमें कठिन आवरणवाले दानव ही विचरते थे, जिन्हें शंख कहते थे। शंखोंके उपद्रवसे सारा जलजगत् जब प्रक्षुब्ध हुआ तब भगवानने मत्स्योंकी सृष्टिकी और स्वयं मत्स्यावतार धारणकर मत्स्योंको प्रजाकी नीति सिखायी और शंख महासुरका संहार किया।

धीरे धीरे जल घटता जाता था और अधिकाधिक स्थल निकलता आता था। कभी जल कभी स्थल हो जाता था। एकाएकी किसी समय स्थल जलमग्न हो गया। सूर्य जनित अत्यधिक वर्षा हिरण्याक्षने पृथ्वीका अपहरण कर लिया। श्वेत वाराहरूप भगवान्ने स्थलका पुनरुद्धार किया। श्वेत उत्तप्त बड़वा ज्वाला रूपी कराल दांतोंसे भूगर्भको खोदकर हिला दिया। पर्वतमालाएं उभर उभरकर खड़ी हो गयीं। स्थलके आविर्भावसे अन्न ओषधियोंका आरम्भ हुआ। सारा धरातल हरे हरे ऊंचे ऊंचे पर्वतकी चोटियोंसे बातें करते महावृक्षोंसे भर गया। इन जंगलोंमें वाराह जातिके एवं व्यालजातिके महा विशालकाय दानवाकार जन्तु भर गये। उस समय इन्हीं जन्तुओंका साम्राज्य था। दैत्योंकी सन्तानने पृथ्वीपर अधिकार कर लिया। हिरण्यकशिपु उनका प्रसिद्ध सम्राट हुआ। उस समय मनुष्य जीवनका

सृष्टिमें चार दिशाओंके चार लोकपाल हुए। पूर्वके इन्द्र, दक्षिणके यम, पश्चिमके वरुण, उत्तरके कुवेर। पूर्व और दक्षिण के बीच आग्नेयकोणका देवता अग्नि, दक्षिण पश्चिमके बीच नैऋत्यकोणका देवता निऋति, मृत्यु वा काल, पश्चिमोत्तरके बीचके वायव्यकोणका देवता वायु और पूर्वोत्तरके बीचके कोण ईशानके देवता ईश हुए। लोकपालोंकी जहां आठकी गिनती होती है, यह भी लोकपाल कहे जाते हैं। इन आठों दिशाओंके रक्षार्थ दिग्गजोंकी भी कल्पना की जाती है।

सृष्टि रचनाका आरम्भ जो ऊपर वर्णित है, करोड़ों बरसोंके विस्तारमें हुआ है। ऐसा नहीं कि ईश्वरने कहा कि जगत् हो जाय और जगत् हो गया। सौर ब्राह्माण्डका नायक सूर्य्य है। शेष पृथ्वी, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह और चन्द्रमादि उपग्रह इसी सूर्य्यकी मुख्य वा गौण रूपसे परिक्रमा करते हैं। इन पिंडोंकी रचनाका आरम्भ कई अरब बरस पहले हुआ। इनमें से अनेककी रचना अबतक जारी है। उनके कल्प और युगका परिमाण पृथ्वीके युग और कल्पसे अवश्य ही भिन्न है।

पृथ्वीका पिंड आरम्भमें अत्यन्त तेजोमय तरल पदार्थका था, जो आज ठंढा पड़नेपर बड़े कड़े चट्टानके रूपमें दिखाई पड़ता है। उस उद्दण्ड तापके समय सारा वातावरण घनी उत्तप्त मेघमालासे घिरा रहता था। सूर्य्यके गिर्द घूमनेकी क्रियाका आरंभ हो जानेपर भी अहर्निशकी ठीक व्यवस्था न थी क्योंकि तरलता और घनत्वके न्यूनाधिक्यसे पृथ्वीके भिन्न भिन्न अंश भिन्न कालोंमें ध्रुवकी आवृत्ति करते थे। दिनमान ही निश्चित न था। दक्षिण दिशामें भूतलका अर्धभाग जो तरल समुद्ररूप था बहुत वेगसे दैत्यों और देवोंकी शक्तिके सहारे मथा गया। इसकी मथानी मंदराचलको सँभालनेके लिये रक्षक भगवानने कच्छपका रूप धारण किया। केन्द्राभिगामिनी और केन्द्रत्या शक्तियोंका आधार केन्द्र और गुरुत्व और लघुत्वका सूत्र

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद आदि पुत्र तपस्या करके परमार्थ और निवृत्ति मार्गमें चले गये। तब ब्रह्माने और पुत्र उत्पन्न किये जिनको प्रजापतित्व दिया। दक्षको अंगूठेसे उत्पन्न किया और प्रजोत्पत्तिका काम सौंपा। भगवानकी रजोगुणी मायासे उत्तेजित दक्ष प्रजापतिने पंचजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नीसे विवाह किया। उससे हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए जो सभी एक आचार और स्वभावके थे। पिताकी आज्ञासे सृष्टि रचनेके लिये पश्चिमको गये। सिन्धुनद और समुद्रके सगम नारायणसरमें स्नान करते ही मन निर्मल हो गये। वहां ये उग्र तप कर रहे थे, उसी समय नारदजीने आकर कहा कि "हे हर्यश्वो, तुम अज्ञानी हो। (१) पृथ्वीका अन्त, (२) एक पुरुषवाला देश, (३) जिसमें निकलनेका मार्ग नहीं देख पडता ऐसी गुफा (४) बहु रूप धरनेवाली स्त्री (५) व्यभिचारी पति पुरुष (६) दोनों ओर बहनेवाली नदी (७) पच्चीस पदार्थों से अद्भुत प्रतीत होता घर (८) कोई विचित्र कथा कहता हुआ हंस (९) आपसे घूमता और छुरे वज्रोंसे बना चक्र, और (१०) अपने सर्वस्व पिताकी आज्ञा। इन दस बातोंको जाने बिना सृष्टि क्योंकर रचोगे?" यह कूट प्रश्न सुन हर्यश्व अपनी बुद्धिसे अनेक बातें विचारने लगे और अन्तमें विचार करके मुनिकी परिक्रमा कर सभी हर्यश्व मुक्तिमार्गको चले गये। यह समाचार सुन दक्ष दुःखित हुए। ब्रह्माजीने समझाकर उन्हें शान्त किया। फिर दक्षने असिक्नीसे शबलाश्व नामक एक हजार पुत्र सृष्टि कर्मके लिये और उत्पन्न किये। वह भी वहीं जाकर भारी तप करने लगे। इनसे भी नारदजीने आकर वही कूट प्रश्न किये। नारदजीके उपदेश सुन शबलाश्वों-ने भी अपने भाई हर्यश्वोंका अनुसरण किया और फिर घरको न फिरे। यह समाचार सुन दक्षने अति कुपित हो नारदजीको

*दच्छ सुतन उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई।

विकास नहीं था। इसी राजाने मत्त हो विष्णुसे लडाई छेड़ी। प्रह्लाद इसका लडका विष्णुभक्त और प्रसिद्ध सत्याग्रही हो गया। इसी भक्तकी रक्षाके लिये नृसिंहावतार हुआ। मनुष्य और सिंहके सम्मिलित रूपमें खभा फाडकर भगवान् प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादको गद्दी दी। इसी प्रह्लादके पोते बलिने भू-साम्राज्य स्थापित किया, इन्द्र पदकी इच्छासे यज्ञ किये। इन्द्रकी विनतीपर उससे भगवानने वामनावतार हो समस्त जगत् दानमें ले लिया। वामनको त्रिविक्रम भी कहते हैं। यही समय मानवजातिके विकासारम्भका था। दैत्य धीरे धीरे भूतलसे पाताल चले गये। मनुष्यजातिका युग आया। दैत्योंके साम्राज्यके नष्ट होनेपर ही मनुष्यका सर्वभौम राज्य हुआ। मनुसे मनुष्योंका विकासारम्भ हुआ। मानव चतुर्युगी और कल्पका आरम्भ हुआ।

मनुष्योंकी चतुर्युगीके सतयुगमें ही ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें बहुत कालसे झगडे चल रहे थे। सहस्रबाहु अर्जुनके पुत्रोंने ध्यानावस्थित जमदग्नि ऋषिका सिर काट लिया। उनके पुत्र परशुरामने जो भगवान्के अंशावतार थे प्रतिज्ञा करके इक्कीस बार पृथ्वीके क्षत्रियोंका संहार किया।

भगवान् रामचन्द्रजी सातवें और श्रीकृष्ण भगवान् आठवें अवतार हुए। कथाएं प्रसिद्ध हैं।

बुद्धदेव नवें अवतार हुए। इनके देहावसान हुए सवा दो हजार बरसोंसे अधिक हुए। कल्कि अवतार होनेवाला कहा गया है।

भूमिका रूपसे सृष्टिका वर्णन यहां दिया गया। रामचरितमानसमें जितनी कथाएं आयी हैं उन्हें भरसक सम्बद्ध और कालक्रमसे हम देते हैं।

(४) दक्ष प्रजापति

ब्रह्माजीने सृष्टिकी उत्पत्तिके लिये मानस पुत्र उत्पन्न किये।

न मान हाथमें जल ले दक्षने शाप दिया कि "यह देवगणोंमें नीच महादेव देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पावे।" शिवजीके मुख्यगण नन्दीश्वरने क्रुद्ध हो शाप दिया कि -"किसीसे द्रोह न करनेवाले महादेवसे जो पुरुष मनुष्य-शरीरको श्रेष्ठ समझकर द्रोह करता है, वह भेददर्शी पुरुष तत्वसे विमुख हो जावे। केवल विषय-सुखकी लालसामें लगा हुआ यह दक्ष अत्यन्त ही स्त्रीकी कामना-वाला हो जावे और तुरत ही इसका मुख बकरेका हो जावे। जो लोग यहां दक्षका अनुसरण करनेवाले हैं वे जन्म मरण पाया करें और महादेवके द्वेषी केवल कर्ममें आसक्त रहैं। भक्ष्याभक्ष्य विचारशून्य, केवल पेट भरनेके लिये विद्या, तप, व्रत धारण करनेवाले, ये ब्राह्मण इस जगतमें भिक्षुक हो-कर मागते फिरें।" नन्दीश्वरका ब्राह्मणोंपर ऐसा शाप सुन क्रोधित हो भृगुऋषिने शापरूप ब्रह्मदंड चलाया कि "जो शिव-जीका मत वा अनुसरण करते हैं वे पाखंडी हो जावें और आचारभ्रष्ट होकर वे मूढ बुद्धिवाले जटा भस्म अस्थि धारण करके शिवजीकी दीक्षामें प्रवेश करें कि जहा मदिरा और आ-सव यही देववत् पूजनीय गिने जाते हैं। मनुष्योंकी मर्यादाका रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंका तुम लोग निंदा करते हो। अत तुम पाखंडमें पड़े रहो। परम शुद्ध वेदकी निंदा करके तुम पाखंडमें पडो कि जहा भूतोंका पति तुम्हारा स्वामी है"। इस झगड़ेसे सभा भंग हो गयी और बहुत काल पीछे सतीके शरीर त्यागके समय दक्षकी दुर्गति हुई।

(६) गणेश*

गणेशजी आदि देव हैं। पार्वतीजीसे इनका अवतार हुआ। पार्वतीजीने श्रृंगारके समय इनको मन्दिरके द्वारपर तैनात कर दिया कि किसीको मेरी आज्ञा विना मत आने देना। उसी

* "महिमा जासु जान गनराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ"

शाप दिया कि "सम्पूर्ण लोकोंमें भटकते भटकते तेरा कहीं भी ठिकाना न रहेगा" नारदजीने इस शापको स्वीकार कर लिया।

(५) ब्रह्मसभामें दक्षप्रजापतिका क्रोध

* प्रजापतियोंके यज्ञमें ब्रह्माकी सभा लगी, जिसमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि बैठे थे। इस सभामें तेजस्वी दक्ष प्रजापति भी आये। उन्हें देख ब्रह्मा और शिवको छोड़ शेष सभी सभासद उठ खड़े हुए। जगद्गुरु ब्रह्माजीको नमस्कार कर दक्ष बैठ गये। उनके समीप महादेवजी पहलेसे ही विराज रहे थे। उनको देख वे अपना अनादर न सह सके। क्रोधसे बोले कि "हे देवता और अग्नि सहित ब्रह्मर्षियो! अज्ञान और मत्सरको छोड़ मैं जो कहता हूं सो सुनो। इस निर्लज्जने तो लोकपालोंके वशमें कलङ्क लगा दिया, सत्पुरुषोंके चलाये मार्गको इस घमंडीने दूषित कर दिया। यह मेरी कन्या सतीका पाणि ग्रहणकर मेरे शिष्यभावको पहुंचा है और मैं जो उठकर नमस्कार करनेके योग्य हूं, उसका इसने वाणीसे भी सन्मान नहीं किया। इस क्रियाहीन, अपवित्र, मर्यादा तोड़नेवाले, अभिमानीको मैं अपनी कन्या देना नहीं चाहता था, परन्तु जैसे कोई शूद्रको वेद पढ़ावे, वैसे मैंने इसको अपनी कन्या दी। यह मरघटमें प्रेत, भूत, गणोंको साथ ले उन्मत्तकी नाईं नङ्गा, खुले केश हँसता और रोता फिरता है तथा चिताकी भस्म लगाकर प्रेतोंकी मुण्डमाला और हड्डियोंके गहने पहन घूमता फिरता है। नाम तो इसका शिव है, पर है यह अशिव। आप भी मत्त है और मत्त ही लोग इसे भले लगते हैं और केवल भूत-गणोंका ही यह पति है। इस आचारभ्रष्टको ब्रह्माजीके कहनेसे मैंने अपनी कन्या दे दी।" इस प्रकार निन्दा कर सभासदोंकी घात

---

* ब्रह्म सभा हमसन दुख माना। तेहिते अजहुँ करहिं अपमाना॥
यह प्रभु विदित दच्छ तनि सोइ। जस कछु संभु बिमुख कै होइ॥

न मान हाथमें जल ले दक्षने शाप दिया कि "यह देवगणोंमें नीच महादेव देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पावे।" शिवजीके मुख्यगण नन्दीश्वरने क्रुद्ध हो शाप दिया कि "किसीसे द्रोह न करनेवाले महादेवसे जो पुरुष मनुष्य शरीरको श्रेष्ठ समझकर द्रोह करता है, वह भेददर्शी पुरुष तत्वसे विमुख हो जावे। केवल विषय सुखकी लालसामें लगा हुआ यह दक्ष अत्यन्त ही स्त्रीकी कामनावाला हो जावे और तुरत ही इसका मुख बकरेका हो जावे। जो लोग यहां दक्षका अनुसरण करनेवाले हैं वे जन्म मरण पाया करें और महादेवके द्वेषी केवल कर्ममें आसक्त रहें। भक्ष्याभक्ष्य विचारशून्य, केवल पेट भरनेके लिये विद्या, तप, व्रत धारण करनेवाले, ये ब्राह्मण इस जगतमें भिक्षुक होकर मांगते फिरें।" नन्दीश्वरका ब्राह्मणोंपर ऐसा शाप सुन क्रोधित हो भृगुऋषिने शापरूप ब्रह्मदंड चलाया कि "जो शिवजीका व्रत वा अनुसरण करते हैं वे पाखंडी हो जावें और आचारभ्रष्ट होकर वे मूढ बुद्धिवाले जटा भस्म अस्थि धारण करके शिवजीकी दीक्षामें प्रवेश करें कि जहां मदिरा और आसव यही देववत् पूजनीय गिने जाते हैं। मनुष्योंकी मर्यादाका रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंकी तुम लोग निंदा करते हो। अत तुम पाखंडमें पड़े रहो। परम शुद्ध वेदकी निंदा करके तुम पाखंडमें पड़ो कि जहां भूतोंका पति तुम्हारा स्वामी है"। इस झगडेसे सभा भंग हो गयी और बहुत काल पीछे सतीके शरीर त्यागके समय दक्षकी दुर्गति हुई।

(६) गणेश *

गणेशजी आदि देव हैं। पार्वतीजीसे इनका अवतार हुआ। पार्वतीजीने शृङ्गारके समय इनको मन्दिरके द्वारपर तैनात कर दिया कि किसीको मेरी आज्ञा बिना मत आने देना। उसी

* "आदिमा शम्भु आन गनराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ"

समय दैवयोगसे शिवजी आये। माताकी आज्ञाके दृढव्रत गणेशजीने शिवजीको रोका। शिवजीने क्रुद्ध होकर गणेशजीका सिर अपने त्रिशूलसे उड़ा दिया। जब भीतर गये तो पार्वतीजीने स्वागत किया, परन्तु आश्चर्यसे पूछा कि हमारे नवनिर्मित पुत्रने आपको कैसे आने दिया। शिवजी बोले कि हमने उसकी धृष्टतापर उसका सिर उड़ा दिया। इसपर पार्वतीजी विलाप करने लगीं। शिवजीने उनके परितोषके लिये गण भेजे कि तत्काल ही किसी ऐसे बच्चेका सिर ले आवें जिसकी माताने उससे उपेक्षा की हो। गण एक हाथीके बच्चेका सिर लाये। उसे लगाकर गणेशजीको शिवजीने पुनरुज्जीवित कर दिया।

गणेशजीके सिवा शिवजीके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय भी हुए। स्वामि कार्त्तिकेय गणेशजीसे जेठे हैं। यह देवताओंके सेनापति हुए। इन्होंने तारकासुरका बध किया। गणेशजी बुद्धिके देवता प्रसिद्ध हुए।

एकबार ब्रह्माजीने देवताओंसे पूछा कि तुम लोगोंमें प्रथम पूजने योग्य कौन है। इसपर देवता आपसमें लड़ने लगे। अंतमें ब्रह्माजीने कहा कि जो सबके पहिले विश्वकी परिक्रमा कर आवेगा, उसीको हम स्थान देंगे। सब देवता अपने अपने वाहनों पर चढ़ दौड़े, पर सबसे पीछे गणेशजी रह गये, क्योंकि उनका वाहन मूसा शीघ्र नहीं चल सकता था। इसपर वे बड़े व्याकुल हुए। उसी समय नारदजी वहा आ गये। उन्होंने गणेशजीको सम्मति दी कि पृथ्वीपर रामनाम लिखकर और उसकी परिक्रमा करके तुम ब्रह्माजीके पास चले जाओ। उन्होंने वैसा ही किया और अन्तमें राम नामका प्रभाव समझकर ब्रह्माजीने उन्हींको प्रथमपूज्य पद दिया।

(७) पार्वतीजीका रामनामपर विश्वास*

* "सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेइं पिय संग भवानी"

किसी समय कैलासपर्वतपर शङ्करजी विष्णुपूजन कर भोजन करने बैठे और पार्वतीजीसे कहा कि "हे पार्वती, तुम भी आओ, हमारे साथ भोजन करो।" इसपर पार्वतीजी बोलीं, "आप भोजन करें, मुझे अभी भगवान्‌के सहस्रनामका जप करना है, सो मैं पाठ करके प्रसाद लूँगी।" यह सुनकर महादेवजी हँसे और बोले, "तुम धन्य हो और परम भक्त हो। हे वरानने! तुम 'राम' यही नाम उच्चारण कर हमारे साथ भोजन करो, तुमको सहस्रनामके समान फल हो जायगा और तुम्हारा नियम भङ्ग न होगा।" यह शिवजीका वचन सुन, विश्वास कर, श्रीरामनामोच्चारणकर महादेवके सङ्ग बैठकर भवानीने भोजन कर लिया।

(८) चन्द्रमा और बुध*

चन्द्रमाने जब त्रिलोकको जीतकर राजसूय यज्ञ किया तब उसने गर्वसे गुरु बृहस्पतिकी स्त्री ताराको बलात् हर लिया। बृहस्पतिने कई बार मांगा, पर चन्द्रमाने न दिया। तब देवता और दैत्योंमें घोर युद्ध हुआ। बृहस्पतिके द्वेषसे दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य भी चन्द्रमाके साथ हो गये, और शिवजीने बृहस्पतिके पिता अंगिरासे विद्या पढ़ी थी, इसलिये अपने पार्षदों सहित गुरु-पुत्र बृहस्पतिके पक्षमें हुए और देवताओं समेत इन्द्र भी बृहस्पतिके पक्षमें हुए। इस तरह ताराके लिये देवासुर संग्राममें भारी विनाश हुआ। फिर बृहस्पतिकी प्रार्थनासे ब्रह्माने चन्द्रमाको डाटकर तारा बृहस्पतिको दिला दी। बृहस्पतिने जब जान लिया कि तारा गर्भवती है तब तारासे बोले, "हे अभागिनी, यह दूसरेका गर्भ मेरे क्षेत्रसे जल्दी त्याग दे और मुझे संतानकी इच्छा न होती तो मैं ऐसी दशामें तुझे भस्म कर डालता। ताराने लज्जित हो गर्भको त्याग दिया। तेजस्वी बालकको देख बृहस्पतिने चाहा कि मैं लूँ और उधर चन्द्रमाने

* ससि गुरुतियगामी नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर यान।

चाहा कि मैं। फिर इस बारेमे झगडा उठा। ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा, वह लज्जावश कुछ न बोली। इसपर कुमारने कोपित हो कहा, "हे कदाचारिणी, क्यों नहीं बोलती?" ब्रह्माजीने एकान्तमें दिलासा देकर पूछा तो धीरेसे बोली, 'चन्द्रमाका है।' इससे वह पुत्र चन्द्रमाने लिया। इसकी बुद्धिकी प्रखरता देख ब्रह्माने इसका नाम 'बुध' रखा।

(६) शिवजीका हलाहलपान और राहु केतुकी उत्पत्ति*

समुद्र मथनेसे चौदह रत्नोंमेंसे जब हलाहल विष निकला, तब चराचर जीव विकल हो कहीं शरण न पा श्रीसदाशिवजीकी शरण गये और प्रार्थना की कि हे भगवन्, इस विषसे हमारी रक्षा करो। प्रार्थना सुन और सबको दुःखी देख श्रीशंकरजीने उस हलाहल विषको हथेलीमें लेकर खा लिया। उस विषने महादेवजीके गलेको नीला कर दिया। यह भी शंकरजीका विभूषण हो गया। प्रायः साधु परदुःखसे दुःखी होते हैं और यही सर्वात्मा श्रीहरिकी मुख्य आराधना है। महादेवके हाथमेंसे जो किंचित् विष गिर पड़ा था, उसे सर्प, बिच्छू, जहरीली ओषधि और जहरीले जीवोंने ग्रहण किया।

सुरा निकली। उसे दैत्योंने ले लिया। शङ्ख, धनुष, लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णु भगवान्‌ने लिये। ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा इन्द्रने लिये। पारिजात कल्पवृक्ष स्वर्ग गया। कामधेनु ऋषियों और देवोंके यहाँ गयी। रंभा इन्द्रने ली। चन्द्रमा पृथ्वीका और भगवान् भास्करका आश्रित हुआ। यह

* नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को।
असुर सुरा, बिष संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥ कालनेमि जिमि रावन राहू।

ारह रत्न हुए। अन्तमें मथनका सारभूत अमृतका कलश लिये ुए धन्वन्तरि वैद्य निकले तो दानव उनसे अमृतघट छीनकर े भागे और देवता बेचारे मुह देखते रह गये। नारायणने कहा ाबराओ मत, मैं उपाय करता हू। इधर दानव आपसमें झगड़- े लगे कि "हम पहले, तुम नहीं, तुम नहीं।" जो दुर्बल दैत्य े पुकारने लगे कि भाई देवताओंने भी परिश्रम किया है, अत बको बराबर भाग मिलना चाहिये। इतनेमें भगवान् अत्युत्तम ुन्दरी स्त्रीका मायारूप धारणकर वहा पहुचे उन्हें देख दैत्य ाममोहित हो गये, उसे ही अमृतकलश सौंप दिया। तब स्त्री- ूप भगवानने मुस्कुराकर कहा कि यदि मैं कुछ उचितानुचित ी करू तो तुम्हें मजूर है? तब तो मैं बाट दू? दैत्योंने वह भी ्वीकार किया, तब सबके सब स्नान, व्रत, होम दानादि कर- स्वस्तिवाचन करा, कुशके आसनपर एक गृहमें पूर्वाभिमुख ैठे। मोहिनीरूप भगवानने दुष्ट दैत्योंको अमृत देना मानो ांपोंको दूध पिलाना समझा। देवता और दैत्योंकी दो जुदी ुदी पक्तिया कीं और स्त्री चरित्रसे दैत्योंको ठगकर दूर बैठे ुए देवताओंको अमृत पिला दिया और दैत्य अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाह तथा उस स्त्रीके स्नेहसे कि यह रुष्ट न हो जाय, चुप ैठे रहे और कुछ भी न बोले। उस अवसरपर राहु नामक दैत्य ेवताओंका रूप धरकर देव पक्तियोंमें सूर्य और चन्द्रमाके ीचमें घुस बैठा था और अमृत पीने लगा। इसकी चन्द्र सूर्यने ूचना दी सो भगवानने चक्रसे उसका सिर काट दिया। कठके नीचे अमृत चला गया था इससे धड और सिर अमर हो ाये। उस धड और सिरको ब्रह्माजीने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया।

(१०) प्रह्लाद और नृसिंहावतार

हिरण्यकशिपुके चार बेटे थे, जिनमेंसे छोटे प्रह्लाद बड़े भारी

चाहा कि मैं। फिर इस बारेमे झगड़ा उठा। ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा, वह लज्जावश कुछ न बोली। इसपर कुमारने क्रोधित हो कहा, "हे कदाचारिणी, क्यों नहीं बोलती?" ब्रह्माजीने एकान्तमें दिलासा देकर पूछा तो धीरेसे बोली 'चन्द्रमाका है।' इससे वह पुत्र चन्द्रमाने लिया। इसकी बुद्धिकी प्रखरता देख ब्रह्माने इसका नाम 'बुध' रखा।

(९) शिवजीका हलाहलपान और राहु केतुकी उत्पत्ति*

समुद्र मथनेसे चौदह रत्नोंमेंसे जब हलाहल विष निकला, तब चराचर जीव विकल हो कहीं शरण न पा श्रीसदाशिवजीकी शरण गये और प्रार्थना की, कि हे भगवन् इस विषसे हमारी रक्षा करो। प्रार्थना सुन और सबको दुःखी देख श्रीशंकरजीने उस हलाहल विषको हथेलीमें लेकर खा लिया। उस विषने महादेवजीके गलेको नीला कर दिया। वह भी शंकरजीका विभूषण हो गया। प्रायः साधु परदुःखसे दुःखी होते हैं और यही सर्वात्मा श्रीहरिकी मुख्य आराधना है। महादेवके हाथमेंसे जो किंचित् विष गिर पड़ा था, उसे सर्प, बिच्छू, जहरीली ओषधि और जहरीले जीवोंने ग्रहण किया।

सुरा निकली। उसे दैत्योंने ले लिया। शंख, धनुष, लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णु भगवान्‌ने लिये। ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा इन्द्रने लिये। पारिजात कल्पवृक्ष स्वर्ग गया। कामधेनु ऋषियों और देवोंके यहां गयी। रंभा इन्द्रने ली। चन्द्रमा पृथ्वीका और भगवान् भास्करका आश्रित हुआ। यह

* नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।
असुर सुरा, बिष संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
उपरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।

ारह रत्न हुए। अन्तमें मथनका सारभूत अमृतका कलश लिये हुए धन्वन्तरि वैद्य निकले तो दानव उनसे अमृतघट छीनकर भागे और देवता बेचारे मुह देखते रह गये। नारायणने कहा घबराओ मत, मैं उपाय करता हू। इधर दानव आपसमें झगड़ने लगे कि "हम पहले, तुम नहीं, तुम नहीं।" जो दुर्बल दैत्य थे पुकारने लगे कि भाई देवताओंने भी परिश्रम किया है, अत उनको बराबर भाग मिलना चाहिये। इतनेमें भगवान् अत्युत्तम सुन्दरी स्त्रीका मायारूप धारणकर वहा पहुचे उन्हें देख दैत्य काममोहित हो गये, उसे ही अमृतकलश सौंप दिया। तब स्त्रीरूप भगवानने मुस्कुराकर कहा कि यदि मैं कुछ उचितानुचित भी करू तो तुम्हें मजूर है? तब तो मैं बाट दू? दैत्योंने यह भी स्वीकार किया, तब सबके सब स्नान, व्रत, होम दानादि कर-स्वस्तिवाचन करा, कुशके आसनपर एक गृहमें पूर्वाभिमुख बैठे। मोहिनीरूप भगवानने दुष्ट दैत्योंको अमृत देना मानो सर्पों को दूध पिलाना समझा। देवता और दैत्योंकी दो जुदी जुदी पक्तिया कीं और स्त्री चरित्रसे दैत्योंको ठगकर दूर बैठे हुए देवताओंको अमृत पिला दिया और दैत्य अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाह तथा उस स्त्रीके स्नेहसे कि यह रुष्ट न हो जाय, चुप बैठे रहे और कुछ भी न बोले। उस अवसरपर राहु नामक दैत्य देवताओंका रूप धरकर देव पक्तियोंमें सूर्य्य और चन्द्रमाके बीचमें घुस बैठा था और अमृत पीने लगा। इसकी चन्द्र सूर्य्यने सूचना दी सो भगवानने चक्रसे उसका सिर काट दिया। कण्ठके नीचे अमृत चला गया था इससे धड और सिर अमर हो गये। उस धड और सिरको ब्रह्माजीने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया।

(१०) प्रह्लाद और नृसिंहावतार

हिरण्यकशिपुके चार बेटे थे, जिनमेंसे छोटे प्रह्लाद बड़े भारी

विष्णुभक्त थे। पिताको विष्णुसे विरोध था। इसीलिये सदा नजरबन्द रहता था। पुत्र शण्ड और अमर्क दोनों अपने घरके काममें लगे थे, उसी समय प्रह्लादने अपने साथके पढ़ने वाले बालकोंको बुलाकर ज्ञानका उपदेश किया कि तुम लोग वृथा अपनी आयु मत गवाओ और ईश्वरका भजन करो, इसमें कल्याण है। मैंने यह ज्ञान नारद मुनिसे पाया, सो तुमसे कहा। बालक बोले कि हम तुम एक ही अवस्थाके हैं और सिवाय गुरुके अबतक हमको या तुमको कोई और शिक्षक नहीं मिला, फिर तुम्हें यह ज्ञान नारदजीसे कैसे मिला? प्रह्लादने कहा, भाइयो, जब मेरे पिता मदराचलपर तपस्या करने गये तब देवताओंने दैत्योंको निराश्रय जान घोर युद्धका उद्यम किया और उनके भयसे दैत्योंके यूथपति घबराकर अपने स्त्री पुत्र धनादि सब छोड़ इधर-उधर भाग निकले। ऐसा अवसर पा देवताओंने राजाका शिविर लूट लिया। इसीमें मेरी माता कयाधुको पकड़कर ले चले। उसी समय अनायास नारद आन मिले। बोले "हे सुरेन्द्र! इस पतिव्रता निरपराधिनी स्त्रीको छोड़ दो, इसे न ले जाना चाहिये।" इन्द्र बोले "भगवन्! इसके उदरमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है, जो अत्यन्त भयंकर होगा। प्रसव होनेतक अपने पास रखूंगा, उत्पन्न होनेपर लड़केको मारकर इसे छोड़ दूंगा। इसपर नारदजी फिर बोले "इसके उदरमें निष्पाप महावैष्णव महात्मा है, जो मारे न मरेगा, क्योंकि भगवान्‌के भक्त महा बलवान् होते हैं।" ऐसा वचन सुन मेरी माताकी प्रदक्षिणा कर इन्द्र स्वर्गको चला गया। नारदजीने मेरे पिताके आनेतक मेरी माताको अपने आश्रममें ले जाकर रखा। दयालु मुनिने धर्मका तत्व और ज्ञान मेरी माताको समझाया, साथ ही पुत्रको भी बोध देनेका उद्देश्य था। स्त्री होने और बहुत काल बीतनेके कारण मेरी माताका तो बोध बिल्कुल जाता रहा, परन्तु मुझे नारदजीकी कृपासे उसका स्मरण अबतक बना है। यदि तुम

लोग भी मेरी बात मानो तो तुमको भी बोध हो सकता है और श्रद्धा हो तो मेरे ही जैसी ब्रह्मविद्या भी प्राप्त हो सकती है। अत. हे दैत्य पुत्रो! प्राणीमात्रको अपने बराबर जान सबपर दया करो और ईश्वरकी भक्ति तथा नाम स्मरण करो, यही पुरुष स्वार्थ है।" अपने पिताके विरुद्ध प्रह्लाद इसी तरह जब जब अवसर मिलता था, उपदेश करता था। हिरण्यकशिपु प्रह्लादको अनेकानेक यातनाएं देने लगा, साथ ही भगवान् रक्षा भी करने लगे। पिताने विशेषकर इनपर शस्त्रोंसे प्रहार करवाया, पर्वतपरसे गिरा दिया, जलमें डुबो दिया, अग्निमें डाल दिया, विष पिला दिया, हाथीसे रौंदवाया, सर्पसे कटवाया, पर किसी प्रकार प्रह्लादको न मार सका। उधर प्रह्लादके सत्सगसे पवित्र हो प्रह्लादके साथी बालक गुरुकी शिक्षा छोड़ प्रह्लादके अनुगामी हुए। डरके मारे गुरु शुक्राचार्य्यके पुत्रोंने यह समाचार हिरण्यकशिपुको जा सुनाया। वह क्रोधसे थर्रा उठा और पुत्रको बुला अति कठोर वाणीसे बोला "रे कुलकलङ्क, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले, तू निर्भयकी नाईं किसके बलसे बर्ताव करता है? प्रह्लादने उत्तर दिया "हे राजन्! सब स्थावर जंगममें, तुम्हारेमें मेरेमें, तथा सम्पूर्ण सृष्टिमें एक ईश्वर ही बल और आधार है। अपना असुरभाव छोड़ मनमें समता लाओ इस अजित और चचल विपरीतगामी मनमें समता रखना ही ईश्वरकी बड़ी आराधना है"। हिरण्यकशिपु फिर बोला "तू निश्चय मरना चाहता है, बहुत बकवाद कर रहा है। अच्छा, रे मन्दभाग्य, मेरे सिवा तेरा दूसरा ईश्वर कहाँ है"। प्रह्लादने कहा, "सब कहीं"। हिरण्यकशिपु बोला, "तब इस खंभेमें क्यों नहीं है"? प्रह्लाद बोले, "इसमें तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है"। यह सुनकर हिरण्यकशिपुने खम्भेकी ओर देखकर कहा, "तू विपरीत बोल रहा है। अभी मैं तेरा सिर धड़से अलग कर देता हूँ। तू जिस विष्णुका पक्ष करता है उसे बुला, देखूँ वह

कैसे तेरी रक्षा करता है"। इस प्रकार महावैष्णव पुत्रको दुर्वचनसे पीडित कर खड्ग ले आसनसे उछल उसने खम्भेमें एक मुक्का मारा। तुरत उस खम्भेसे महा भयङ्कर शब्द हुआ जिसे सुन त्रिलोकी काँप उठा। दैत्य डर उठे। शब्द करनेवालेको किसीने न देखा। हिरण्यकशिपु भौंचक सा हो चारों ओर देख रहा था कि उसी खम्भेको चीर श्री नृसिंह भगवान् निकल पडे। इनका रूप नर और सिंहसे मिश्रित देख हिरण्यकशिपु घबडाया कि ब्रह्माके वरदानोंसे विलक्षण यह रूप न तो मनुष्यका है और न पशुका, अवश्य यह रूप मेरे मारनेको विष्णुने धारण किया है। यह सोच उसने दौडकर एक गदा भगवान्‌की छातीमें मारी पर उन्होंने इसे पकड लिया। फिर खेलानेके लिये छोड भी दिया। फिर यह ढाल तलवार लेकर दौड़ा, तब उन्होंने इसे देहलीके ऊपर सायकालके समय गोदमें लिटाकर अपने नखोंसे चीर डाला और प्रह्लादकी रक्षा की।

इस प्रकार नाम जपनेसे श्रीहरि प्रसन्न हुए और प्रह्लादको भक्तशिरोमणि * बनाया। इन्हीं प्रहलादजीके पोते राजा बलि हुए।

(११) *कश्यप, अदिति, वामन और बलि

ब्रह्माके एक पुत्र मरीचि हुए। मरीचिके कश्यप। महर्षि कश्यपने दक्षकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया। इनके ही गर्भसे असख्य और अगणित प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। नाग, व्याल, कीट, पक्षी, दैत्य, दानव, मानव, देवता, पशु, निदान सारे प्राणियोंके पिता कश्यप भगवान् हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके यही प्रजापति हैं। गरुड इन्हींके पुत्र हैं। वामन भगवान् इनके

*"नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू"।

* कस्यप अदिति तहा पितुमाता।

ी पुत्र अदितिके गर्भसे हुए। इन दोनोंने पुन तपस्या की कि
गवान् फिर फिर उनके पुत्र हों। भगवान्ने इन्हें इस सम्बन्धमें
र दिये। एक कल्पमें इसी वरदानके अनुसार कश्यप और
अदिति दशरथ और कौसल्या हुए।

दितिके वंशज दैत्योंमें हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद हुए। वलि
नके पोते थे।

जब इन्द्रने प्रह्लादके पोते वलिकी सब सम्पत्ति छीन ली और
ाण भी ले लिये तब भृगुवशी ब्राह्मणोंने उसे पुन जीवित किया,
सपर वलि शिष्य भावसे उनकी सेवा करने लगा और उसकी
च्छा स्वर्ग जीतनेकी हुई। तब भृगुवशी ब्राह्मणोंने प्रसन्न हो
सले विश्वजित नामका यज्ञ कराया जिससे प्रसन्न हो अग्निने
से इन्द्रके समान दिव्य शस्त्रास्त्र इत्यादि दिये और प्रह्लादने
क पुष्पमाला दी जो कभी न सूखे। तदनन्तर उसने सुसज्जित
ी इन्द्रपर चढ़ाई की और पुरीको घेरकर शुक्राचार्यके दिये हुए
"महास्वन" शंखको बजाया। वलिका ऐसा भारी उद्यम देख
यभीत हो अपने गुरु बृहस्पतिसे इन्द्रने सब वृत्त कहा,
तब बृहस्पति बोले "हे सुरेन्द्र, वलिको ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने
पना तेज दिया है। इस समय सिवाय परमेश्वरके इसके
ामने कोई भी नहीं ठहर सकेगा। सो तुम स्वर्ग छोड़ सब
ेवताओंके सग भाग जाओ। जब यह उन्हीं ब्राह्मणोंका अपमान
रेगा स्वय श्रीहत हो जायगा। यह सुन सब देवता छिपकर
ाग गये और राजा वलिने इन्द्रकी पुरीमें रहकर त्रिलोकीको
श कर लिया। इस घटनासे इन्द्रादि देवताओंकी माता अदिति
ति पीडित और उद्विग्न हो गयी। कश्यपमुनिके कहनेसे उसने
गवान विष्णुका पयोव्रत किया जिससे प्रसन्न हो भगवान्ने
अदितिका पुत्र होकर देवताओंका उद्धार करना स्वीकार किया।
ादों सुदी द्वादशीको कश्यप अदितिको पहले चतुर्भुज दर्शन
ुआ और फिर वही रूप बटु वामनका हो गया जिसे देख सब

कैसे तेरी रक्षा करता है"। इस प्रकार महावैष्णव पुत्रको दुर्वचनसे पीडित कर खड्ग ले आसनसे उछल उसने खम्भेमें एक मुक्का मारा। तुरत उस खम्भेसे महा भयकर शब्द हुआ जिसे सुन त्रिलोक काँप उठा। दैत्य डर उठे। शब्द करनेवालेको किसीने न देखा। हिरण्यकशिपु भौंचक सा हो चारों ओर देख रहा था कि उसी खम्भेको चीर श्री नृसिंह भगवान् निकल पड़े। इनका रूप नर और सिंहसे मिश्रित देख हिरण्यकशिपु घबड़ाया कि ब्रह्माके वरदानोंसे विलक्षण यह रूप न तो मनुष्यका है और न पशुका, अवश्य यह रूप मेरे मारनेको विष्णुने धारण किया है। यह सोच उसने दौड़कर एक गदा भगवान्की छातीमें मारी पर उन्होंने इसे पकड़ लिया। फिर खेलानेके लिये छोड़ भी दिया। फिर यह ढाल तलवार लेकर दौड़ा, तब उन्होंने इसे देहलीके ऊपर सायकालके समय गोदमें लिटाकर अपने नखोंसे चीर डाला और प्रह्लादकी रक्षा की।

इस प्रकार नाम जपनेसे श्रीहरि प्रसन्न हुए और प्रह्लादको भक्तशिरोमणि * बनाया। इन्हीं प्रह्लादजीके पोते राजा बलि हुए।

(११) *कश्यप, अदिति, वामन और बलि

ब्रह्माके एक पुत्र मरीचि हुए। मरीचिके कश्यप। महर्षि कश्यपने दक्षकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया। इनके ही गर्भसे असंख्य और अगणित प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। नाग, व्याल, कीट, पक्षी, दैत्य, दानव, मानव, देवता, पशु, निदान सारे प्राणियोंके पिता कश्यप भगवान् हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके यही प्रजापति हैं। गरुड इन्हींके पुत्र हैं। वामन भगवान् इनके

*"नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू"।

* कस्यप अदिति तहा पितुमाता।

ही पुत्र अदितिके गर्भसे हुए। इन दोनोंने पुन तपस्या की कि भगवान् फिर फिर इनके पुत्र हों। भगवान्‌ने इन्हें इस सम्बन्धमें वर दिये। एक कल्पमें इसी वरदानके अनुसार कश्यप और अदिति दशरथ और कौसल्या हुए।

दितिके वंशज दैत्योंमें हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद हुए। बलि इनके पोते थे।

जब इन्द्रने प्रह्लादके पोते बलिकी सब सम्पत्ति छीन ली और प्राण भी ले लिये तब भृगुवंशी ब्राह्मणोंने उसे पुन जीवित किया, इसपर बलि शिष्य भावसे उनकी सेवा करने लगा और उसकी इच्छा स्वर्ग जीतनेकी हुई। तब भृगुवंशी ब्राह्मणोंने प्रसन्न हो उससे विश्वजित नामका यज्ञ कराया जिससे प्रसन्न हो अग्निने उसे इन्द्रके समान दिव्य शस्त्रास्त्र इत्यादि दिये और प्रह्लादने एक पुष्पमाला दी जो कभी न सूखे। तदनन्तर उसने सुसज्जित हो इन्द्रपर चढ़ाई की और पुरीको घेरकर शुक्राचार्य्यके दिये हुए "महास्वन" शंखको बजाया। बलिका ऐसा भारी उद्यम देख भयभीत हो अपने गुरु बृहस्पतिसे इन्द्रने सब वृत्त कहा, तब बृहस्पति बोले "हे सुरेन्द्र, बलिको ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने अपना तेज दिया है। इस समय सिवाय परमेश्वरके इसके सामने कोई भी नहीं ठहर सकेगा। सो तुम स्वर्ग छोड़ सब देवताओंके संग भाग जाओ। जब यह उन्हीं ब्राह्मणोंका अपमान करेगा स्वयं श्रीहत हो जायगा। यह सुन सब देवता छिपकर भाग गये और राजा बलिने इन्द्रकी पुरीमें रहकर त्रिलोकीको वश कर लिया। इस घटनासे इन्द्रादि देवताओंकी माता अदिति अति पीड़ित और उद्विग्न हो गयी। कश्यपमुनिके कहनेसे उसने भगवान विष्णुका पयोव्रत किया जिससे प्रसन्न हो भगवान्‌ने अदितिका पुत्र होकर देवताओंका उद्धार करना स्वीकार किया। भादों सुदी द्वादशीको कश्यप अदितिको पहले चतुर्भुज दर्शन हुआ और फिर वही रूप वटु वामनका हो गया जिसे देख सब

ऋषि प्रसन्न हुए और कश्यपने जातकर्म किया। समयपर वामन को यज्ञोपवीत दिया गया जिसमें सूर्यने गायत्रीका उपदेश, बृहस्पतिने उपवीत, कश्यपने मेखला, भूमिने कृष्णाजिन, चन्द्रमाने दंड तथा अन्नपूर्णाने भिक्षा दी। इस प्रकार सबसे आदर पाकर वामन बटुने हवन किया। पीछे उन्होंने सुना कि भृगुवंशी ब्राह्मण बलिको एकसौ अश्वमेध यज्ञ कराते हैं। यह सुन वामन बलिके यज्ञमें पधारे। यजमान प्रसन्न हो आप आसन लाया और चरण धोकर वामन भगवानकी पूजा की और बोला "हे बटु! पृथ्वी, धन, कन्या, भूमि अथवा जो आपको वाञ्छित हो मांगो और लो।" इसपर भगवान उसकी प्रशंसाकर बोले "हे राजा तुम्हारा सत्य वचन तुम्हारे कुलके योग्य है और तुम्हें धर्मयुक्त यशस्वी होना ही चाहिये, क्योंकि आपके प्रवर्त्तक भृगुवंशी ब्राह्मण और पितामह प्रहलाद प्रमाणभूत हैं। आप तो अपने पूर्वज तथा और भी उदार कीर्त्ति जनोंका अनुसरण करते हो। अत मैं थोड़ी पृथ्वी मांगता हूँ सो भी कितनी? कि अपने पैरसे तीन पैर। सो हे दैत्येन्द्र चाहे आप जगत्के स्वामी बड़े उदार हो परन्तु मैं इससे अधिक कुछ नहीं चाहता।" बलि बोले कि "हे ब्राह्मणके बालक, तेरी बातें तो बड़े बड़े वृद्धोंके समान हैं, परन्तु अबतक तू अज्ञान ही है। जो मेरे पास आया वह फिर याचनाके योग्य नहीं रहता। इसलिये हे बटु, जिसमें तेरा काम चले उतनी पृथ्वी तू इच्छानुसार मांग ले।" इसपर भगवान् बोले "हे देव, जिसे तीन पैर पृथ्वीमें सन्तोष नहीं उसे त्रैलोक्य मिलनेसे भी तृप्ति न होगी। जो इच्छासे मिल जाय उसीमें सन्तोष करनेसे ब्राह्मणका तेज बढता है। अत आपसे मैं तीन ही पैर पृथ्वी मांगता हू।" तब बलिने कहा "अच्छा, जैसी आपकी इच्छा जितना चाहिये उतना ही लीजिये।" यह कहकर उसने दान करनेके लिये जलपात्र हाथमें लिया। भग

नका अभिप्राय जान अपने शिष्य बलिसे शुक्राचार्य्य बोले- "हे राजा, यह बटु नहीं किन्तु भगवान्‌ने माया करके अदितिके गर्भसे उत्पन्न होकर रूप रचा है। यह तेरा सब राज्य लेकर इन्द्रको दे, देवताओंका कार्य्य-साधन करेंगे और तेरी प्रतिज्ञा भी पूरी न होगी। ये विश्वरूप एक पैरसे पृथ्वी और दूसरेसे आकाश नाप लेंगे फिर तीसरा पैर कहांसे आवेगा? फिर तू प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो नरकका अधिकारी होगा"। बलि थोड़ी देरतक चुप रहा। फिर कुछ विचारकर बोला "मैं प्रह्लादका पौत्र होकर धनके लोभसे ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके नहीं कर जाऊं, यह न होगा। किन्तु मैं दूंगा, मैं अपने सर्वस्वके जाने या नरकसे या किसी और हानिसे नहीं डरता जैसा कि मैं ब्राह्मणसे ठगी करते डरता हूं। धनादि सब पदार्थ अनित्य हैं, न देनेसे भी तो यह सब मर जानेपर छूट ही जावेंगे, तो इससे अपने हाथसे ही क्यों न दे दें। अत ये चाहे विष्णु हों, अथवा कोई हों मैं तो इनको मनवाञ्छित दूंगा।" बलिने गुरुका कहना न माना। शुक्राचार्य्यने शाप दिया कि तू बड़ा मूर्ख है, तूने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये तुरन्त ही लक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।" इसपर भी वह महात्मा सत्यसे न डिगा और पूजनकर वामन भगवान्‌को पृथ्वी सङ्कल्प करके देने लगा। उसकी स्त्री विन्ध्यावली सोनेकी झारीमें जल लेकर आयी और राजाने वामनके पैर धो वह जल अपने माथेपर छिड़का। उस समय देवताओंने दुन्दुभि बजाकर फूल बरसाये और प्रशंसा करने लगे कि इसने जानकर भी यह दुष्कर कर्म किया। तदनन्तर बलिने सङ्कल्प कर दिया और वामन भगवान बढ़ने लगे। उनके शरीरमें सम्पूर्ण जगत् समाया हुआ देख पड़ने लगा, सब चराचर जीव, देवता, दैत्य, उस रूपमें ही देख पड़े। भगवानने एक पैरसे पृथ्वी तथा दूसरे पैरसे स्वर्गादि लोक नाप लिए, तीसरे पैरके लिये कुछ भी न बचा। उस समय सब देवता पूजा और स्तुति करने लगे और ऋक्षराज जाम्बवान् भेरीका शब्द

कर परिक्रमा करने लगे। बलि छले गये यह देख उसके अनुचर के लिये शस्त्र ले भगवान्‌को मारने दौड़े और पार्षद उनका मुकाबला करने लगे। बलिने अपने अनुचरोंको तुरन्त रोका। गरुड़जीने भगवान्‌का अभिप्राय जान वरुणपाशसे बलिको बांध लिया। सब दिशा और सब लोकोंमें हाहाकार मच गया। भगवान्‌ने कहा "हे दैत्य! तूने मुझे तीन पैर पृथ्वी दी है, सो दो पैरमें तो मैंने सब नाप ली, अब तीसरा दे। जो प्रतिज्ञा करके न देगा नरकमें पड़ेगा, इसमें तेरे गुरुकी भी सम्मति है। तूने मुझे धनके अभिमानसे 'हां दूंगा' कहकर ठगा है।" बलिने इसपर भी धैर्य न छोड़ा और दृढ़तापूर्वक बोला "सुरवर्य! यद्यपि मैंने आपको नहीं किन्तु आपने ही मुझे ठगा है क्योंकि जिस रूपसे आपने मुझसे पृथ्वी ली उससे नहीं किन्तु दूसरे रूपसे नापी है, तथापि मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ता। तीसरा पैर आप मेरे सिरपर धरिये। मैं पदच्युत होनेपर भी जैसा झूठसे डरता हू वैसा अपनी मानहानि वा नरकसे नहीं डरता। निस्सन्देह आप परोक्षरूपसे हम मदान्ध दैत्योंके गुरु हैं और पद-भ्रष्ट कर दण्ड दे हमारी आँखें खोलते हैं। आपने मुझे बाधा यह परम अनुग्रह किया। सो मैं तो इसका पात्र न था परन्तु मेरे दादा प्रह्लाद जो आपके अनन्योपासक थे उन्हींका महाभाग्य मुझे आपके चरणोंमें लाया है, यह मेरे पुण्यका प्रताप नहीं किन्तु प्रह्लादहीके पुण्यका प्रताप है।" ऐसा बलि कह रहा था उसी समय परम भक्त प्रह्लाद भी वहां आये जिन्हें देख बलिने प्रणाम किया, परन्तु पूर्वकृत अभिमानसे लज्जित हो सिर झुका लिया और प्रह्लादजी आँखोंमें जल भर लाये और भगवान्‌को प्रणामकर स्तुति की कि "हे भगवन्! आपने मेरे पौत्रको बांधा + नहीं किन्तु उसपर अनुग्रह किया कि इतना ऐश्वर्य

+ बलि बांधत प्रभु बाढेउ, सो तनु बरनि न जाय।

देकर लौटा लिया, सो मानो मोहसे छुड़ा लिया।" भगवान् बोले "मैं जिसपर अनुग्रह करता हूं उसका साभिमान ऐश्वर्य हर लेता हूं और फिर अपनी इच्छासे उसे सम्पत्ति देता भी हूं। यह बलि मेरी मायाको जीत गया है। यह इतनी आपत्ति आनेपर भी नहीं घबराया, न तो गुरुके झिड़कने और शाप देने और मेरे छलयुक्त वचनोंपर ही इसने सत्यधर्म छोड़ा। अतएव यह दुर्लभपद इसे मिल चुका है। सावर्णि मन्वन्तरमें, यह इन्द्र होगा और तबतक यह सुतललोकमें रहे जहा आधिव्याधि किसी प्रकारका उपद्रव नहीं है। भावी इन्द्र! तुम अपने जातिवालोंको ले सुतललोकमें जाओ जहा लोकपाल भी तुम्हारा पराभव न कर सकेंगे और जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेगा उन्हें मेरा सुदर्शन चक्र मार डालेगा और मैं स्वय सदा तुम्हारी रक्षा करूंगा। हे वीर! मैं सदा तेरे द्वारपर रहूंगा और तुझे सर्वदा मेरे दर्शन हुआ करेंगे। जिससे तेरा आसुर भाव भी धीरे धीरे सब मिट जायगा।" ऐसा कहकर भगवान्ने बलिको बन्धनमुक्त किया और बलि तथा प्रह्लाद भगवानकी स्तुति और परिक्रमाकर दण्डवत करके सुतललोकको चले गये। बलिने सर्वस्व खो दिया पर अपने वचनपर दृढ रहा।

(१२) ध्रुवकी ग्लानि और तपस्या*

आदि कल्पके पहले मनुके पुत्र राजा उत्तानपादकी स्त्रिया थीं सुनीति और सुरुचि। दोनों रानियोंमेंसे छोटी सुरुचिपर राजाका अधिक प्रेम था। इनके एक एक पुत्र भी था। बड़ी सुनीतिके पुत्रका नाम ध्रुव और छोटी सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम था। एक समय राजा उत्तमको गोदमें बैठाकर प्यार कर रहे थे जब सुनीतिका पुत्र ध्रुव भी खेलते खेलते आकर राजाकी गोदीमें चढ़ने लगा। परतु राजाने कुछ आदर वा प्यार

*ध्रुव मगनानि जपेउ हरि नाउं, पायेउ अचल अनूपम ठाऊं।

न किया।' गोदीमें चढ़नेका अभिलाषी देख विमाता ध्रुवसे डाहसे बोली "बेटा तुम राजाके पुत्र तो हो, पर मेरे गर्भसे उत्पन्न नहीं हुए। इसलिये राजाके आसनपर चढ़ने योग्य नहीं हो। तुम चाहो तो तपसे परमेश्वरकी आराधना करो कि मेरे गर्भसे जन्म धारण करो।" विमाताका ऐसा दुर्वचन सुन ध्रुवका हृदय ग्लानिसे विध गया और क्रोधसे भर होठ फरकाते रोते हुए, उदासमुख, दीर्घश्वास लेते बालक अपनी माता सुनीतिके पास चला आया। रानी सब वृत्तान्त सुन अपने पुत्र ध्रुवसे यों बोली, "हे तात किसीको दोष मत दो। सुरुचिने जो कहा है सो ठीक ही है क्योंकि एक तो तू मुझ दुर्भागिनीसे जन्मा फिर मेरे ही दूधसे पला। सो हे बेटा, यदि तू उत्तमके ऐसा राज्यासन चाहता है तो भगवान्‌की आराधना कर। भगवान्‌के सिवाय तेरा दुःख मिटानेवाला कोई नहीं है।" माताका ऐसा वचन सुन बुद्धिको स्थिर कर ध्रुव घरसे निकले। ध्रुवके इस अभिप्रायको जान मार्गमें नारदजी मिले और उनके माथेपर हाथ धर बोले कि "वाह रे क्षत्रियोंके मानभगका प्रभाव कि ऐसा छोटा बालक भी विमाताका दुर्वचन न सह सका।" फिर उन्होंने ध्रुवसे कहा कि "हे पुत्र! अभी तू बालक है, असंतोष मत कर। दुःख सुख सब कर्मों के अनुसार होता है। हठ छोड दे, जब बडा हो तब तपस्याका साहस करना।" दृढ मति ध्रुव बोले "आपने जो कुछ कहा सब ठीक है, परन्तु मुझ घोर क्षत्रिय स्वभावको प्राप्त दुर्विनीतके हृदयमें वह नहीं ठहर सकता क्योंकि विमाता सुरुचिके वाक्यसे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। हे ब्राह्मण, मैं ऐसा त्रिलोकी पदको जीतना चाहता हूं जहां मेरे पिता वा और कोई भी न पहुंच सके। इसके लिये जो उत्तम मार्ग हो सो बताइये।" ध्रुवके ऐसे दृढ वचन सुन नारदजी प्रसन्न हुए और द्वादशाक्षर मंत्र ध्यानादि बताकर कहा कि तुम जमुनाजीके तटपर मधुवनमें जाकर

ईश्वरका ध्यान और तप करो। एकाग्रचित्त हो बालक नारदके आज्ञानुसार भगवानका भजन करने लगा। प्रथम मासमें प्रत्येक तीसरी रात्रिके अन्तमें कैथ और बेर खाकर भगवान्का अर्चन किया, दूसरे मासमें छठे छठे दिन आपसे गिरे पत्ते और घास खाकर अर्चन किया, तीसरे मासमें नवें नवें दिन जलमात्र पीकर, चौथेमें बारहवें बारहवें दिन पवनमात्र पीकर तथा श्वास रोककर ईश्वरका ध्यान किया और पाचवें मासमें श्वास रोककर एक पैरसे वृक्षकी नाई अचल होकर तप करने लगा। ऐसे उग्र तपसे भगवानका आसन डोल गया। भगवान् गरुडपर चढ भक्त ध्रुवके सम्मुख साक्षात् प्रकट हुए और उसकी ध्यानमूर्त्तिको खींच लिया, जिससे घबराकर उसने आखें खोल दीं। सामने वही मूर्त्ति देख उसने दण्डवत् किया और स्तुति करनेकी अभिलाषा करता था परन्तु बालक होनेके कारण स्तुति करना नहीं जानता था। इस अभिप्रायको समझ भगवान्ने अपना शंख बालकके गालोंमें छुआ दिया जिससे वह दैवी वाणीको प्राप्त हो भक्तिपूर्वक भगवान्की स्तुति करने लगा। जब स्तुति कर चुका, भगवान् बोले, "हे राजपुत्र, मैं तेरे हृदयके सङ्कल्पको जानता हू। तेरा कल्याण होगा और जिस पदको आजतक कोई नहीं पहुँचा और जिसका प्रलयतक नाश नहीं होता तथा जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र, तारा और सप्तर्षि आदि सब परिक्रमा करते हैं वह अति दुर्लभ पद मैं तुझे देता हू और तेरा पिता तुझे राज्य देकर वनमें चला जायगा और तू छत्तीस हजार बरस पृथ्वीपर राज्य करेगा। तेरा भाई उत्तम मृगयामें मारा जायगा और उसीके ध्यानमें उसकी माता वनमें जाकर अग्निमें जल मरेगी। फिर यज्ञोंद्वारा मेरा भजन कर और यहाके सुख भोग तू अन्तमें मेरा स्मरण करेगा, तदनन्तर सबसे पूजनीय सप्तर्षियोंसे भी ऊपर मेरे उस पदको प्राप्त होगा जहा जानेसे फिर आवागमन नहीं होता।" ऐसे वर प्रदानकर

भगवान् अपने धामको पधारे और ध्रुवकी अब कुछ राज्याभिलाषा यद्यपि न थी तथापि भगवान्की आज्ञासे अपने पुरको चले गये।

(१३) वेनु *

ध्रुवके वशमें कई पीढी पीछे एक बडे धर्मात्मा राजा अग हुए। अगके सन्तान न थी। ब्राह्मणोंने यज्ञ कराया। यज्ञपुरुषने खीर दी जिसे राजाने अपनी भार्या सुनीथाको खिलाया। समय होनेपर पुत्र हुआ। वही वेनु था। यह लडका बचपनसे ही अपने पिताकी मृत्यु मनाने लगा। शिकारको निकलता था तो पशुओंको तथा दीन जनोंको मारा करता था। इससे जिधरसे यह निकलता, लोग देखकर कहते 'वेनु आता है'। वेनु बडा निर्दय और क्रूर था। खेलते हुए बराबरके बच्चोंको पशुकी तरह मार डालता। राजाने अनेक भाति शिक्षा की, पर इसे बुद्धि न आयी। दुःखी होकर आधी रातको अपनी स्त्री सुनीथाको सोती छोड राजा घरसे चला गया। बहुत खोज हुई परन्तु राजाका, जो कहीं दूर नहीं गये थे, कही पता न लगा। अन्तको ब्रह्मवादी भृगु आदि ऋषियोंने मन्त्रियोंका विरोध होते हुए भी वेनुका ही राज्याभिषेक कर दिया। भयकर वेनुके राजा होते ही प्रजा छिपने लगी। अपनेको सबसे बडा माननेवाला वेनु महात्माओंका अपमान करने लगा और निरकुश मस्त हाथीकी तरह आकाश और पृथ्वीको कँपाता रथपर बैठ घूमने लगा। फिर उसने डौंडी पिटवा दी कि "द्विजो! तुम न तो होम करो, न दान दो, और न भजन करो।" वेनुकी कुचालोंसे लोगोंको दुःखी होते देख सब ऋषि इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि एक ओर तो अत्याचारियों और चोरोंका भय, दूसरी ओर राजाका भय, यह तो वह दशा हुई कि जो दोनों ओरसे जलती हुई-लकडीके बीचमें बैठे हुए कीडेकी हो। अराजकताके भयसे स्वय हमने ही

* लोक वेदतें विमुख भा अधम को वेनु समान।

इसे राजा बनाया, अब जैसे साँप दूध पिलानेवालेको ही काटता है वैसे ही यह स्वभावसे दुष्ट राजा प्रजाका नाश करना चाहता है। अस्तु एकबार चलकर समझा दें, जिससे फिर पापके भागी न हों। ऐसा विचार अपने क्रोधको गुप्त रख मुनि उसके पास गये और नीतियुक्त वाणीसे उसे शान्त कर बोले, "हे राजा, आपकी आयु, बल, लक्ष्मी, और कीर्ति बढानेके लिये हमलोग विनती करते हैं, सुनिये! मन, वाणी, काय और बुद्धिसे धर्माचरण करो, इससे यह लोक मिलता है और निष्काम धर्म करनेसे मोक्ष भी मिलता है। इसलिये प्रजाकी रक्षाका राजधर्म नष्ट न होना चाहिये। धर्म नष्ट होनेसे राजा राजसे भ्रष्ट हो जाता है। दुष्ट कारिन्दों और चोरोंसे प्रजाकी रक्षा करनेसे राजाको दोनों लोकोंमें सुख मिलता है। हे महाभाग, जिस राजमें प्रजा अपने अपने धर्मके अनुसार भगवान्की अर्चा करती है उससे ईश्वर भी प्रसन्न रहते हैं। सो हे महाराज! सब लोग तुम्हारे ही कल्याणके लिये यज्ञद्वारा देवता और वेदमय भगवानका पूजन करते हैं। अत देवताओंका अपमान करना उचित नहीं है।" यह सुन बेनु बोला, तुम लोग अधर्मको धर्म माननेवाले मूर्ख हो, क्योंकि आजीविका देनेवाले पतिको छोडकर जारकी उपासना करते हो। विष्णु कौन है, जिसकी तुम लोग दृढ भक्ति करते हो? विष्णु और सब देवता राजाके शरीरमें रहते हैं। राजा सर्वदेवमय है। हे ब्राह्मणो! मत्सर छोड कर तुम सब यज्ञादि कर्म और बलिसे मेरा पूजन करो। मेरे सिवाय कौन पुरुष आराधना योग्य है?" फिर भी ऋषियोंने उसे अनेक भांति समझाया, पर उस हतभाग्यकी समझमें कुछ न आया। तब ब्राह्मण अपने क्रोधको रोक न सके। सोचा कि इस दुष्टको मार डालना ही उचित है। जीयेगा तो जगतको पीडा देता रहेगा। ऐसा निश्चयकर ब्राह्मणोंने क्रोधकर "हुंकार" शब्दसे राजाको मार डाला।

(१४) पृथुराज*

राजा वेनुके मरनेपर जगत्में अराजकता छा गयी। इसपर ऋषियोंने वेनुके जघेको मथा। अर्थात् वेनुद्वारा स्थापित और तदाश्रित वैश्य समाजको मथा। उमसे एक मनुष्यको राष्ट्रपति के आसनपर बिठाया। इसीलिये उसका नाम "निषाद" हुआ। परन्तु वह महाचाण्डाल निकला। उसे भी ऋषियोंने शापित करके निकाल दिया। फिर बाहु मथा, अर्थात् वेनुद्वारा स्थापित और तदाश्रित क्षत्रियोंमेंसे एक वीर्य्य बुद्धिशाली आत्मवान् पृथु को राजा चुना। पृथुने राज्यका अपूर्व प्रबन्ध किया। इसने धनुष बाण ले पृथ्वी रूपी गौको जिसने अपने स्तनोंमें रसरूपी दूध चुरा लिया था दौड़ाया। अन्तमें चतु समुद्रपयोधरा वसुधराने अपने रस दिये। भूमण्डलमें खेती जोर शोरसे होने लगी। चारों समुद्रोंमें जहाजोंद्वारा वाणिज्य व्यापार बड़े वेगसे बढ़ा। सारे संसारपर राजा पृथुका प्रभुत्व हो गया। भारतका यह सार्वभौम प्रजातंत्र राज्य पहलेपहल राजा पृथुके राष्ट्र-पतित्वमें हुआ। इसीलिये इस भूतलका नाम पृथ्वी पड़ा। राजा पृथु बड़ा भक्त था। इसने भगवान्से वरदान लिया कि आपके चरित और सुयश सुननेको मेरे कानोंमें दस हजार कानोंकी शक्ति हो जाय।

(१५) चित्रकेतु

शूरसेन देशमें† चित्रकेतु नामका चक्रवर्ती राजा था। इसके अनेक रानियां थीं। कोई पुत्र न था। महर्षि अंगिराने त्वष्टृ देवताका चरु बनवाकर यज्ञ किया और उसकी बड़ी तथा सर्व श्रेष्ठ पटरानी कृतद्युतिको उस चरुका अवशिष्ट अन्न दिया और कहा, "हे रानी, इसके खानेसे तुमको एक पुत्र होगा

*पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहसदस काना।

†चित्रकेतु कइ घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

परन्तु यह तुमको हर्ष और शोक देनेवाला होगा"। काल पाकर उस चरुके प्रभावसे कृतद्युतिने एक अति सुन्दर बालक जना। राजाने जातकर्मकर प्रसन्न हो लाखों गाय हाथी, घोडे, सुवर्ण इत्यादि दान दिये। राजाको कुमारसे अत्यन्त प्रीति बढ़ी परन्तु रानीकी सवतोंको सन्तान न होनेके कारण भारी परिताप हुआ। कुमारको उन्होंने विष दे दिया। पुत्रको जब मरा देखा तो राजा और रानी मूर्च्छित हो गिर पडे। रोने पीटनेका शब्द सुन सब सवतें भी बनावटी शोक करने लगीं। नारदजीके सग वही अंगिरामुनि फिर उस समय आये। राजाको मुर्देकी नाई पड़े और शोकसे थकित देख दोनों ऋषियोंने अनेक उपदेश दिये और अंगिराऋषि बोले "हे राजा, जब तुमको पुत्रको इच्छा थी उस समय पुत्रके देनेवाले अंगिरा हम हैं और यह नारदजी हैं। पहले मैं जब आया था, संसारमें तुम्हारी आसक्ति देख तुमको पुत्र दिया। अब तुम जान गये कि पुत्रवालोंको कैसा दुःख होता है। इसी प्रकार स्त्री, घर, धन और अनेक ऐश्वर्य सभी दुःखदायी हैं"। नारदजी बोले, "हे राजा हम तुम्हें शेष भगवान्‌की विद्या देते हैं। सात रात्रि अखंड चिन्तनसे तुझे शेष भगवान्‌के दर्शन होंगे"। फिर नारदजीने सबके देखते उस मरे बालकसे कहा "हे जीवात्मा, अपने शरीरमें प्रवेश कर और शोकपीडित माता पिता बन्धु आदिको देख तथा अपनी शेष आयुको इनके साथ भोग और राज्यको अङ्गीकार कर"। तब शरीरमें प्रवेशकर जीव बोला— "मैं जो कर्मों के वश हो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि अनेक योनियोंमें भटकता फिरता हूं सो मेरे कौनसे जन्ममें यह मेरे माता पिता हुए थे? मेरे मरनेसे जो पुत्र जानकर शोक हुआ है तो शत्रु जान अब हर्ष क्यों नहीं करते? क्योंकि सब सम्बंधी अनुक्रमसे आपसमें शत्रु-मित्र-भावको प्राप्त हुआ करते हैं"। मेरे पीछे अब इस देहसे मेरा कुछ भी संबंध नहीं रहा। मत इन

पितासे भी मेरा कोई सबंध नहीं है। इसलिये मेरे हेतु शोक न करना चाहिये"। इतना कह जीव फिर उस शरीरसे निकल गया। राजाका शोक दूर हुआ। हत्यारी स्त्रियोंने भी लज्जित हो यमुनापर प्रायश्चित्त किया और ज्ञानप्राप्त। चित्रकेतुको नारदजी सङ्कर्षण मंत्र देकर चले गये। राजा तप करके सङ्कर्षण भगवान्‌से वर पाकर कृतार्थ हो गया। नारदके उपदेशसे राजा अन्तको राज्यादि छोड़ विद्याधर हो विमानपर बैठ आकाश मार्गमें घूमने लगा। यही पार्वतीके शापसे वृत्रासुर हुआ, जिसे दधीचिकी अस्थिका वज्र बनाकर इन्द्र ने मारा।

(१६) गज ❀

किसी प्राचीन सतयुगमें क्षीरसागरके मध्यमें त्रिकूट पर्वत था, जिसकी एक कन्दरामें वरुण भगवान्‌का "ऋतुमत" नाम बगीचा था। उसमें एक बड़ा भारी सरोवर था। इसी सरोवरपर किसी समय एक गजयूथपति अपनी हथिनियोंके झुंड सहित झाड़ियोंको तोड़ता और पेड़ोंको गिराता आया, जिसकी गंधसे बनके सब पशु भाग गये। गजराजके मस्तकसे मद चू रहा था। आँखें विघूर्णित थीं। घामसे तपा हुआ और प्याससे व्याकुल था। आते ही सरोवरमें धँसा और सूँड़में भरकर इसने खूब जल पिया और स्नान किया, जिससे उसको शान्ति हुई। फिर वह दयालु गजराज अपनी सूँडसे बच्चों और हथिनियोंको भी जल पिला और नहला रहा था कि उसी समय बलवान् ग्राह (मकर) ने आकर उसका पैर धर लिया। जहाँतक गजराजको बल था वहाँतक उसने खूब पराक्रम किया और इसके सहायकोंने भी उसे निकालनेका बहुत उद्यम किया, पर कोई भी उसे जलसे निकाल न सका। इन महाव्यालोंकी खींचाखींचीमें हजारों बरस बीत गये। जब अपने जीवनसे हताश हो गया और देखा कि

❀ अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ।

मेरे साथी हाथी भी मुझे नहीं उबार सकते, तब उसने अन्तको यही निश्चय किया कि सिवाय परमात्माके कोई शरण नहीं है। ऐसा मनमें दृढ कर भगवानका ध्यान हृदयमें करके यह गज जो पूर्व जन्ममें इन्द्रद्युम्न राजा था भगवानकी स्तुति करने लगा। इस प्रकार आर्त्तनाद सुन हाथमें चक्र ले गरुडतकको छोड भगवान् तुरत गजेन्द्रके सामने आये। आकाशमें चक्रधारी भगवान्को आते देख, गजेन्द्र सूडसे कमल उठाकर दीन वचनों-से पुकारने लगा, "हे नारायण, मैं आपकी शरण हू" इतनेमें भगवान्ने गजराजकी सूड थाम उसे ग्राहके सहित जलसे बाहर खींच चक्रसे ग्राहका मुख फाड गजराजको छुडा लिया। वह ग्राह "हू हू" नामका गंधर्व था जो देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया था। वह भी अपने पूर्वरूपको पा अपने लोकको चला गया और गजराजको भगवान् अपना पार्षद बनाकर अपने संग ले गये।

(१७) दंडकारण्य*

इक्ष्वाकुने अपने कनिष्ठ पुत्रको नीतिपूर्वक दंड देनेकी शिक्षा की, उसका नाम भी 'दंड' रखा और उसे विन्ध्याचल और नीलगिरिके मध्यप्रान्तका राज्य दिया। राजधानीका नाम मधुमत्त हुआ। एक समय वसंतऋतुमें राजा दंड घूमते घूमते शुक्रके आश्रमके पास जा निकले और वहां अति सुहावने वनमें अत्यन्त रूपवती शुक्रकी 'अरजा' नामकी ज्येष्ठ कन्याको देख, उसपर आसक्त हो अपना मनोरथ कहा। इसपर अरजा विनयपूर्वक बोली, "हे राजन्, मैं शुक्राचार्यकी कन्या अरजा हू और तुम मेरे पिताके शिष्य मेरे धर्मके भाई हो। तुमको तो औरोंसे भी मेरे धर्मकी रक्षा करनी उचित है। यदि तुम्हारी

*दंडक वन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिवर कइ हरहू।

पितासे भी मेरा कोई संबंध नहीं है। इसलिये मेरे हेतु शोक न करना चाहिये"। इतना कह जीव फिर उस शरीरसे निकल गया। राजाका शोक दूर हुआ। हत्यारी स्त्रियोंने भी लज्जित हो यमुनापर प्रायश्चित्त किया और ज्ञानप्राप्त चित्रकेतुको नारदने सङ्कर्षण मंत्र देकर चले गये। राजा तप करके सङ्कर्षण भगवान्से वर पाकर कृतार्थ हो गया। नारदके उपदेशसे राजा अन्तको राज्यादि छोड विद्याधर हो विमानपर बैठ आकाश मार्गमें घूमने लगा। यही पार्व्वतीके शापसे वृत्रासुर हुआ, जिसे दधीचिकी अस्थिका वज्र बनाकर इन्द्र ने मारा।

(१६) गज ❀

किसी प्राचीन सतयुगमें क्षीरसागरके मध्यमें त्रिकूट पर्वत था, जिसकी एक कंदरामें वरुण भगवान्का "ऋतुमत" नाम बगीचा था। उसमें एक बडा भारी सरोवर था। इसी सरोवरपर किसी समय एक गजयूथपति अपनी हथिनियोंके झुंड सहित झाडियोंको तोडता और पेडोंको गिराता आया, जिसकी गंधसे वनके सब पशु भाग गये। गजराजके मस्तकसे मद चू रहा था। आँखें विघूर्णित थीं। घामसे तपा हुआ और प्याससे व्याकुल था। आते ही सरोवरमें धँसा और सूँडमें भरकर इसने खूब जल पिया और स्नान किया, जिससे उसको शान्ति हुई। फिर वह दयालु गजराज अपनी सूडसे बच्चों और हथिनियोंको भी जल पिला और नहला रहा था कि उसी समय बलवान् ग्राह (मकर) ने आकर उसका पैर धर लिया। जहांतक गजराजको बल था वहांतक उसने खूब पराक्रम किया और इसके सहायकोंने भी उसे निकालनेका बहुत उद्यम किया, पर कोई भी उसे जलसे निकाल न सका। इन महाबलोंकी खींचाखींचीमें हजारों बरस बीत गये। जब अपने जीवनसे हताश हो गया और देखा कि

❀ अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ।

मेरे साथी हाथी भी मुझे नहीं उबार सकते, तब, उसने अन्तको यही निश्चय किया कि सिवाय परमात्माके कोई शरण नहीं है। ऐसा मनमें दृढ़ कर भगवान्का ध्यान हृदयमें करके यह गज जो पूर्व जन्ममें इन्द्रद्युम्न राजा था भगवानकी स्तुति करने लगा। इस प्रकार आर्त्तनाद, सुन हाथमें चक्र ले, गरुडतकको छोड भगवान् तुरत, गजेन्द्रके सामने आये। आकाशमें चक्रधारी भगवान्को आते देख, गजेन्द्र सूंडसे कमल उठाकर दीन वचनोंसे पुकारने लगा, "हे नारायण, मैं आपकी शरण हूं" इतनेमें भगवान्ने गजराजको सूड थाम उसे ग्राहके सहित जलसे बाहर खींच चक्रसे ग्राहका मुख फाड गजराजको छुडा लिया। वह ग्राह "हूहू" नामका गंधर्व था जो देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया था। वह भी अपने पूर्वरूपको पा अपने लोकको चला गया और गजराजको भगवान् अपना पार्षद बनाकर अपने संग ले गये।

(१७) दंडकारण्य*

इक्ष्वाकुने अपने कनिष्ठ पुत्रको नीतिपूर्वक दंड देनेकी शिक्षा की, उसका नाम भी 'दंड' रखा और उसे विन्ध्याचल और नीलगिरिके मध्यप्रान्तका राज्य दिया। राजधानीका नाम मधुमत्त हुआ। एक समय वसन्तऋतुमें राजा दंड घूमते घूमते शुक्रके आश्रमके पास जा निकले और वहां अति सुहावने वनमें अत्यन्त रूपवती शुक्रकी 'अरजा' नामकी ज्येष्ठ कन्याको देख, उसपर आसक्त हो अपना मनोरथ कहा। इसपर अरजा विनयपूर्वक बोली, "हे राजन्, मैं शुक्राचार्यकी कन्या अरजा हूं और तुम मेरे पिताके शिष्य मेरे धर्मके भाई हो। तुमको तो औरोंसे भी मेरे धर्मकी रक्षा करनी उचित है। यदि तुम्हारी-

---

*दंडक वन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिवर कर हरहू।

प्रबल इच्छा है तो मेरे पिताकी आज्ञासे मुझे वर लो, नहीं तो तुम्हारा भला न होगा।" अरजाकी अरज राजाने न मानी और कामान्ध होकर बलात् उससे अपना मनोरथ पूरा किया और अपने राज्यमें चला गया। अरजा रोती हुई अपने पिताके आश्रममें आयी और पितासे राजा दण्डकी सब अनीति कह सुनायी। शुक्रजी बोले, "देखो, राजा दण्डने कैसी अनीति की है। यह राजा अपने देश और भृत्यादि सहित नष्ट हो जाय और इसके राज्यके चारों ओर एक सौ योजनतक इन्द्र पत्थर बरसाकर सब स्थावर जगमका नाश कर दें। सात रातमें यह सब बातें हो जायँ"। इसी शापसे भूमि निर्जन और निर्वृक्ष हो गयी और इसीसे इसका नाम दण्डकारण्य पड़ा।

(१८) सुरनाथ *

एक समय ऐश्वर्यके मदसे भरी सभामें जब परम पूज्य गुरु वृहस्पति पधारे तो इन्द्रने उनका देह, मन वा वाणीसे भी कोई सत्कार नहीं किया, वह अपने आसनसे हिला भी नहीं। तब विद्वान् और समर्थ गुरु वृहस्पति ऐसा समझकर कि इसको लक्ष्मीका विकार हुआ है चुपचाप सभासे अपने घर लौट गये। उनके चले जानेपर इन्द्रने समझा कि मुझसे अपराध हुआ और फिर मनमें अत्यन्त पछताया। सोचा कि चलकर उनके चरणोंपर सिर धरकर उन्हें मनाऊंगा। इतनेमें वृहस्पति अपनी मायाके प्रभावसे घरमेंसे भी अदृश्य हो गये। इन्द्रने बहुत खोज की, पर पता न मिला। जब दैत्योंको मालूम हुआ तो वे सब अपने गुरु शुक्राचार्य्यकी सम्मतिसे हथियार ले [illegible] चढ दौड़े। सब देवता [illegible] ले ब्रह्माजीके [illegible] शरण मांगी। देव [illegible] देख ब्रह्माजी ये [illegible]

* [illegible] फेरि [illegible] ।
[illegible] ॥

तुमने राजमदसे गुरुका अनादर किया, उसीका फल है कि तुम दैत्योंसे हार गये। दैत्योंपर उनके गुरुका अनुग्रह है। ब्राह्मण, और भगवानका जिनपर अनुग्रह होता है उनका बुरा कभी नहीं होता। अब तुम लोग त्वष्टाके पुत्र तपस्वी विश्वरूपकी शरण जाओ और उनकी आज्ञा शिरोधार्य करो तो तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।" ब्रह्माकी आज्ञासे सब देवता विश्वरूप ऋषिके पास गये और अनेक प्रार्थनापूर्वक उनको राजी कर अपना पुरोहित बनाया और उनकी सहायतासे अपनी राज लक्ष्मी लौटा ली।

(१६) दधीचि *

जब वृत्रासुर इन्द्रादि देवताओंपर दौड़ा, तब देवता अपने अस्त्र-शस्त्रसे युद्ध करने लगे। वह देवताओंके सब अस्त्र शस्त्र लील गया। देवता घबराकर इधर-उधर भागे और फिर सब इकट्ठे हो नारायणकी स्तुति करने लगे। नारायणने दर्शन दिया और कहा कि तुम लोग मत घबराओ, यह तुम्हें मार न सकेगा। मैं जो युक्ति बताता हूँ उससे तुम इसे मारो। दधीचि मुनि बड़े तपस्वी और धर्मके जाननेवाले हैं, तुम उनके पास जाओ और विद्या, व्रत और तपसे दृढ़ हुए उनके शरीरको मांगो, देर मत करो। वह तुमको अपनी अस्थि दे देंगे और उनसे विश्वकर्मा तुमको वज्र नामक शस्त्र बना देंगे, उससे तुम वृत्रासुरका सिर उड़ा दोगे। इतना कह नारायण तो अन्तर्धान हो गये और देवताओंने ऋषिसे प्रार्थना की। दधीचि मुनि प्रसन्न हो बोले कि "हे देवताओ, क्या तुम नहीं जानते कि संसारमें सबको अपना जीवन और देह सबसे अधिक प्यारा है? फिर अपनी देह स्वय

* सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा

सिवि दधीचि हरिचन्द कहानी

प्रबल इच्छा है तो मेरे पिताकी आज्ञासे मुझे वर लो, नहीं तो तुम्हारा भला न होगा।" अरजाकी अरज राजाने न मानी और कामान्ध होकर बलात् उससे अपना मनोरथ पूरा किया और अपने राज्यमें चला गया। अरजा रोती हुई अपने पिताके आश्रममें आयी और पितासे राजा दण्डकी सब अनीति कह सुनायी। शुक्रजी बोले, "देखो, राजा दण्डने कैसी अनीति की है। यह राजा अपने देश और भृत्यादि सहित नष्ट हो जाय और इसके राज्यके चारों ओर एक सौ योजनतक इन्द्र पत्थर बरसाकर सब स्थावर जगमका नाश कर दें। सात रातमें यह सब बातें हो जायँ"। इसी शापसे भूमि निर्जन और निर्वृक्ष हो गयी और इसीसे इसका नाम दण्डकारण्य पड़ा।

(१८) सुरनाथ *

एक समय ऐश्वर्यके मदसे भरी सभामें जब परम पूज्य गुरु बृहस्पति पधारे तो इन्द्रने उनका देह, मन वा वाणीसे भी कोई सत्कार नहीं किया, वह अपने आसनसे हिला भी नहीं। तब विद्वान् और समर्थ गुरु बृहस्पति ऐसा समझकर कि इसको लक्ष्मीका विकार हुआ है चुपचाप सभासे अपने घर लौट गये। उनके चले जानेपर इन्द्रने समझा कि मुझसे अपराध हुआ और फिर मनमें अत्यन्त पछताया। सोचा कि चलकर उनके चरणोंपर सिर धरकर उन्हें मनाऊंगा। इतनेमें बृहस्पति अपनी मायाके प्रभावसे घरमेंसे भी अदृश्य हो गये। इन्द्रने बहुत खोज की, पर पता न मिला। जब दैत्योंको मालूम हुआ तो वे सब अपने गुरु शुक्राचार्य्यकी सम्मतिसे हथियार ले देवताओंपर चढ़ दौड़े। सब देवता इन्द्रको साथ ले ब्रह्माजीके पास गये और शरण मांगी। देवताओंको दुःखी देख ब्रह्माजी बोले, "हे देव!

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

तुमने राजमदसे गुरुका अनादर किया, उसीका फल है कि तुम दैत्योंसे हार गये। दैत्योंपर उनके गुरुका अनुग्रह है। ब्राह्मण, और भगवानका जिनपर अनुग्रह होता है उनका बुरा कभी नहीं होता। अब तुम लोग त्वष्टाके पुत्र तपस्वी विश्वरूपकी शरण जाओ और उनकी आज्ञा शिरोधार्य करो तो तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे।" ब्रह्माकी आज्ञासे सब देवता विश्वरूप ऋषिके पास गये और अनेक प्रार्थनापूर्वक उनको राजी कर अपना पुरोहित बनाया और उनकी सहायतासे अपनी राजलक्ष्मी लौटा ली।

(१६) दधीचि *

जब वृत्रासुर इन्द्रादि देवताओंपर दौड़ा, तब देवता अपने अस्त्र-शस्त्रसे युद्ध करने लगे। वह देवताओंके सब अस्त्र शस्त्र लील गया। देवता घबराकर इधर-उधर भागे और फिर सब इकट्ठे हो नारायणकी स्तुति करने लगे। नारायणने दर्शन दिया और कहा कि तुम लोग मत घबराओ, वह तुम्हें मार न सकेगा। मैं जो युक्ति बताता हूं उससे तुम इसे मारो। दधीचि मुनि बड़े तपस्वी और धर्मके जाननेवाले हैं, तुम उनके पास जाओ और विद्या, व्रत और तपसे दृढ़ हुए उनके शरीरको मांगो, देर मत करो। वह तुमको अपनी अस्थि दे देंगे और उनसे विश्वकर्मा तुमको वज्र नामक शस्त्र बना देंगे, उससे तुम वृत्रासुरका सिर उड़ा दोगे। इतना कह नारायण तो अन्तर्धान हो गये और देवताओंने ऋषिसे प्रार्थना की। दधीचि मुनि प्रसन्न हो बोले कि "हे देवताओ, क्या तुम नहीं जानते कि संसारमें सबको अपना जीवन और देह सबसे अधिक प्यारा है? फिर अपनी देह स्वयं

* सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा

सिवि दधीचि हरिचन्द कहानी

देनेको कौन तैयार होगा ?" देवता बोले कि "आप जैसे महात्मा जो प्राणियोंपर दया करनेवाले परोपकाररत हैं उनको क्या परित्याग करना अशक्य है ? जो मागनेवालोंके सकटको जानते हैं वे समर्थ होनेपर नाहीं नही करते।" मुनि बोले कि "मैंने केवल तुम्हारे मुखसे धर्मकी बात सुननेहीको इतना कहा था। अस्तु, यह देह जो एक दिन मुझे छोड देगी उसे मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये स्वयं छोडता हू, पराये दु खसे दु खी और सुखसे सुखी होना यही महात्माओंका कर्तव्य है।" इतना कह भगवानके स्वरूपमें लीन हो मुनिने देह त्याग दी। इनकी हड्डियों से विश्वकर्माने वज्र बनाया, जिससे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा।

(२०) नहुष *

जब इन्द्रने तपस्वी ब्राह्मण वृत्रासुरको मार डाला तब उसके पीछे "ठहर, ठहर" कहती हुई चाडाली बुढापेसे जर्जर यक्ष्माके कफसे लिप्त, रक्ताक्त वस्त्र पहिरे, सफेद बाल बिखेरे और दुर्गंधसे मार्ग को भरती ब्रह्महत्या दौडी। ब्रह्महत्यासे पीडित इन्द्र आकाश तथा सब दिशाओंमें फिरे, पर कहीं शरण न मिली। अतमें घबराकर ईशान कोणमें मानस सरोवरमें जा घुसे और एक हजार बरस तक कमलनालके तन्तुओंमें छिपे। मनमें हत्यासे छुटकारा पानेका उपाय सोचते रहे। इधर इन्द्रासन भी खाली न रहे इसलिये बृहस्पतिने विद्या, तप, योग और बलसे पूर्ण राजा नहुषको इन्द्र बनाया। कुछ दिन पीछे राजमदसे मत्त नहुषने इन्द्राणीसे कहला भेजा कि अब हम इन्द्र हैं, तुम हमारे पास आओ। इन्द्राणीको बडा दु ख हुआ। उसने बृहस्पतिको बुलाकर सब समाचार कहा। गुरुने धैर्य दिया और कहा कि इन्द्राणी ! तू उसे कहला दे कि "पालकीपर बैठके और ब्राह्मणोंको कहार बनाकर आवे तो मैं तुझे स्वीकार करू।" इन्द्राणीने वैसा ही किया और नहुष भी

* ससि गुरतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुरयान।

ऋषियोंके कंधेपर चढकर चला। जल्दीके मारे अगस्त्यमुनिसे बोला "सर्प सर्प" अर्थात् जल्दी चलो जल्दी चलो। इसपर क्रोधित हो अगस्त्य ऋषिने शाप दिया कि "तू मृत्युलोकमें जाकर सर्प हो जा।" नहुष वहीं स्वर्गसे भ्रष्ट हो सर्प हो गया। पीछे ब्राह्मणोंके बुलानेसे इन्द्र फिर स्वर्गमें गये। जबतक कमलनालमें थे, ईशानकोणके देवता रुद्र और विष्णु पत्नीने ब्रह्महत्यासे उनकी रक्षा की। अब महर्षियोंने अश्वमेधयज्ञ की, विधिपूर्वक दीक्षा दी और यज्ञका अनुष्ठान किया। इन्द्रकी हत्या छूटी और फिर वह इन्द्रासनपर बैठा।

(२१) राजा ययाति *

राजा नहुषके छ पुत्र थे। उनमेंसे एकका नाम ययाति था। बड़े भाईने राज्य जब न लिया तो यह राजा हुए और शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा दैत्यकी कन्या शर्मिष्ठाको रानी बनाकर राज्य करने लगे। शुक्राचार्य्यने ययातिको आज्ञा दी थी कि वह शर्मिष्ठासे सम्भोग न करे परन्तु ऋतुकालमें स्त्रीकी प्रार्थनासे राजा उसे अस्वीकार न कर सके इससे उसे गर्भ रहा। सपत्नी देवयानी रुठकर अपने पिताके घर चली आयी और कामी राजा भी मधुर वाणीसे मनाता उसके पीछे चला आया परन्तु पैर दबानेकी सेवा करके भी उसे प्रसन्न न कर सका। तब शुक्राचार्य्यने कुपित होकर कहा, "हे कामी, मन्द मनुष्योंको विरूप करनेवाला बुढ़ापा तुझे प्राप्त हो।" तब राजा बोले, "हे ब्रह्मन्! आपकी कन्यासे सम्भोगकर मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूं। अत यदि मेरा बुढ़ापा लेकर कोई अपनी जवानी देना स्वीकार करे तो मैं उससे बदल सकूं, ऐसा उपाय कीजिये।" शुक्राचार्य्यने स्वीकार किया, तब ययातिने सबसे बड़े पुत्र यदुसे

* तनय जजातिहि जौबन दयऊ।
पितु अग्या अघ अजस न भयऊ॥

पहले कहा, "हे तात, अपने नानाका दिया हुआ बुढ़ापा मुझसे लेकर अपनी जवानी मुझे दे। हे वत्स! मैं अभी विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हू सो तेरी जवानी लेकर कितने ही वर्ष रमण करूगा" यदु बोला कि "बीच हीमें बुढ़ापा लेकर मैं नहीं रहा चाहता, क्योंकि विषय-सुखको जाने बिना तृष्णा नहीं मिटती।" इसी प्रकार राजाने अपने पुत्र तुर्वसु, द्रुह्य और अनुसे भी कहा परन्तु स्वधर्मको न जाननेवाले और अनित्यको नित्य समझनेवाले नाहीं कर गये। तब उन्होंने गुणपूर्ण पुरु, सबसे छोटे पुत्रसे कहा, "हे वत्स, तू भी अपने भाइयोंकी तरह मत भागियो!" तब पुरु बोला कि "पिताके उपकारोंका बदला कौन दे सकता है? जो पुत्र कहेपर भी न करे तो वह पिताका विष्ठारूप है।" इस प्रकार पुरुने प्रसन्न मनसे पिताका बुढ़ापा ले, उसे अपनी जवानी दे दी। राजा विषय भोग करने लगा। हजारों वर्ष बीत गये, परन्तु विषय सुखसे तृप्ति न हुई। तब ज्ञानके प्रकाशसे अपनी भूल समझ पुत्रोंको राज बाट राजा तपस्या करने चला गया।

(२२) इन्द्र, अहल्या और गौतम *

श्रीरामचन्द्रजी जब मिथिलापुरीके समीप पहुँचे थे तो उस वनमें एक प्राचीन और निर्जन परन्तु रमणीय आश्रम देखकर मुनिसे पूछा भगवन्, यह निर्जन आश्रम किसका है? विश्वामित्रजी बोले हे राम, पूर्वमें यह आश्रम महात्मा गौतमका था, इसमें अपनी पत्नी अहल्याके साथ रहकर मुनिने बहुत कालतक तपस्या की। एक समय मुनिरहित आश्रम देख, उन्हीं मुनिका भेष धारणकर-इन्द्र आया और अहल्याको छलकर, उसका सतीत्व नष्ट किया। अहल्यामें भी उस समय पाप बुद्धि समायी और रतिकालमें यह जान जानेपर भी कि गौतम नहीं हैं, उसने

* पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी
सकल कथा मुनि कही बिसेषी

इन्द्रवेशी इन्द्रका तिरस्कार नहीं किया। उसी समय गौतमका आहट पाकर बोली कि "हे इन्द्र यहासे जल्दी जाओ और मेरी और अपनी रक्षा करो।" जब इन्द्र उस कुटीसे निकल रहा था तभी तपोधन तेजस्वी मुनि हाथमें काठ और कुश लिए स्नान करके आ पहुंचे। मुनिने मुनि वेषधारीको देख सारा वृत्त समझ लिया और क्रोधसे कहा, दुर्मते तूने मेरा रूप धर यह दुराचार किया, इसलिये तू नपुंसक हो जायगा। तू ऐसा कामी है, तेरे सहस्र भग हो जायँगे। फिर अपनी स्त्रीको शाप दिया कि तू इसी स्थानमें सहस्र वर्षतक केवल वायु पीकर अदृश्य रहेगी। जब दशरथके पुत्र राम यहा आवेंगे तब तू लोभ और मोहरहित हो उनका सत्कार करेगी, तब इस दुष्कर्मसे पवित्र हो अपना रूप पा हर्षित हो मेरे पास आवेगी। इन्द्रकी प्रार्थना पर ऋषिने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीके अवतार लेनेपर यही भग सहस्र आंखें हो जायँगी। ऐसा कह गौतम मुनि हिमाचलपर जाकर एक रमणीय शिखरपर तपस्या करने लगे। यह शिलारूपिणी महाभागा अहल्या तुम्हारी बाट जोह रही है।

(२३) सगर और भागीरथी

* अयोध्याके राजा सगरके सतति नहीं थी। इनके दो स्त्रियां थीं, 'केशिनी' और 'सुमति'। राजा सगर दोनों पत्नियोंके सहित हिमवान्के एक प्रदेशमें जाकर तप करने लगे तपके फलसे कुछ दिन पीछे राजाको बडी रानीसे असमजस नामका एक पुत्र हुआ और सुमतिको साठ हजार पुत्रोंका एक तुंबा उत्पन्न हुआ, जिसके बढने और अनेक काल पीछे फूटनेसे सब बालक निकले। उन बालकोंको घृतके कुण्डेमें रख धाइयोंने पाला और बढाया। वे सब बालक बढकर रूपवान और बलवान हुए। उनमेंसे असमजस लडकोंको पकड पकड सरयूमें फेंक देता था और उन्हें डूबते देखकर हँसता था। राजाने उसके

* गाधि सुअन सब कथा सुनाई। जहि प्रकार सुरसरि महि आई

दुश्चरित्रोंसे दुखी होकर उसे देशसे निकाल दिया। उसेअंशुमान नामक एक पुत्र हो चुका था जो बड़ा सज्जन और प्रियभाषी था

एक बार राजाकी इच्छा हुई कि यज्ञ करूं सो हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचमें उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। राजाका पौत्र अंशुमान यज्ञके घोड़ेका रक्षक था। अश्वालम्भनके दिन इन्द्रने उस घोड़ेको हर लिया। इसपर राजाने अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा कि "हे पुत्रो, मैं वेदीपर बैठा हूं। विघ्ननिवारणमें असमर्थ हूं, इसलिये तुम लोग एक एक योजन करके संपूर्ण पृथ्वीमें उस घोड़ेको और हरनेवालेको खोजो।" पुत्रोंने खोजते खोजते कहीं न पाया तो अन्तमें पृथ्वीको खोदना आरम्भ किया। उनमेंसे एक एक पुत्र वज्रसमान भुजाओंसे योजनभर पृथ्वी एक बेर खोद डालते और उनके शूलयुक्त हलोंसे खुदते हुए पृथ्वी बड़ा शब्द करती थी और इस भयकर खुदाईमें राक्षसादि अनेक जीवोंका भयङ्कर नाद हुआ, और बहुतेरे मर गये। उन लोगोंने साठ हजार योजन भूमि खोद डाली, मानों पातालमें खोजनेकी इच्छा हुई। इतनेपर भी अपना मनोरथ न पाकर पिताके पास जाकर बोले, "महाराज, बड़े बड़े बलवान् देव दानवोंको हमने मार डाला, पृथ्वी सब ढूंढ डाली परन्तु चोर न मिला। अब क्या करें?" क्रुद्ध हो राजा बोला, "हे पुत्रो, फिर पृथ्वी खोदो और चोरका पता लगाकर मेरे पास आओ। इस बातपर सब रसातलकी ओर दौड़े और खोदते खोदते ईशानकोणकी ओर पहुँचे। उन्होंने भगवान् कपिलको देखा और उनके पीछे घोड़ा भी बँधा देख उन्हींको चोर समझ बड़े क्रोधसे हाथमें फरसा, कुठारी, वृक्षादि ले बोले कि "खड़ा रह तू ही चोर है। रे दुष्टबुद्धि हमने तुझे पकड़ लिया"। यह कठोर वचन सुन भगवान कपिलने क्रोधसे हुंकार किया और सबकेसब वहीं भस्म हो ढेर हो गये।

जब बहुत दिन बीते और पुत्र न आये, तब सगरने अंशुमानको

पितृव्योंकी और चोरकी खोजमें भेजा। सौम्य अशुमान खोजते खोजते अन्तको वहाँ पहुँचा जहा पितरोंके भस्मका ढेर लगा था और घोडा चर रहा था। अशुमान पितृव्योंकी मृत्युसे दु खित हो विलाप करने लगा और अपने पितरोंको तिलांजलि देनेको जल खोजने लगा, पर कोई जलाशय न मिला। वहा गरुड मिले, उन्होंने सब समाचार सुनाकर कहा कि भगवान कपिलने इनको भस्म किया है, अत लौकिक जलसे उन्हें जलांजलि मत दो, किन्तु हिमाचलकी ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाके जलसे इनको जल क्रिया करनी चाहिये। तुम यह घोडा लो और दादाका यज्ञ पूरा करो, इतना सुन अशुमान घोडा ले चट अपने दादाको यज्ञ शालामें पहुँचा और उसने उनसे सब हाल कह सुनाया। राजा सगर यज्ञ पूरा कर अपने पुरमें आये। गगाके लानेका कोई उपाय न मिला और काल पाकर राजा भी स्वर्गको सिधारे।

पीछे अशुमान राज्यासनपर बैठा और कुछ काल पीछे इसका पुत्र दिलीप जब बडा हुआ तब उसे राज दे हिमाचलपर जा बडी कठिन तपस्या करके अन्तमें स्वर्ग पाया। दिलीप भी गगाके लानेका कुछ उपाय न कर सका। दिलीपके मरनेपर उनके धर्मात्मा पुत्र भगीरथ राजा हुए। इनके कोई सन्तान न थी। इन्होंने मन्त्रियोंको राज्य सौंप गोकर्णमें जा गगाके लानेके हेतु अति कठोर तप आरभ किया। जब हजार वर्ष तप करते बीत गये तब देवताओंके सहित ब्रह्माने आकर कहा कि मैं इस तपस्यासे प्रसन्न हू, वर माग। राजा हाथ जोड बोले, भगवन्! यदि प्रसन्न हों तो सगरके पुत्र मुझसे गंगाजल पावें और उनकी भस्म उसीसे बहायी जाय और वे स्वर्ग जावें और मेरे पुत्र हो। यह सुन ब्रह्माजी बोले, "हे भगीरथ, ऐसा ही होगा। परन्तु इस गगाजलके धारण करनेके लिये तुम शिवजीकी प्रार्थना करो, क्योंकि गगाके आकाशसे गिरनेका आघात पृथ्वी न सह सकेगी इसको थामनेवाला शिवके सिवाय कोई नहीं देख

पडता ।" भगीरथको ऐसा वर दे गंगाको आज्ञा दे, देवताओंको साथ ले ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गये ।

ब्रह्माजीके जानेपर भगीरथने अगूठेपर खडे हो एक वर्ष पर्य्यन्त शिवजीकी आराधना की। वर्ष पूरा होनेपर आशुतोष शिवने राजासे कहा, "हे * नरश्रेष्ठ, मैं तुमपर प्रसन्न हू। जो तुम्हारा प्रिय कार्य्य है सो मैं करूंगा, अपने मस्तकपर गगाको धारण करूंगा।" फिर गगा देवीने अपने मनमें यह विचारा कि मैं अपने वेगसे शिवजीको भी लेकर पातालको चली जाऊंगी और शिवजीने गगाजीकी यह अभिलाषा जान, उसे अपनी जटा मेंही छिपा रखनेकी इच्छाकी । तदनतर गगा शिवजीके मस्तकपर गिरीं और किसी प्रकार भी भूमिपर न जा सकीं, अनेक वर्षों तक जटामडलमेंही घूमती रह गयीं । गगाजीको न निकलते देख भगीरथ राजाने फिर शिवजीको कठोर तपसे प्रसन्न किया। तब शिवजीने प्रसन्न हो हिमालय पर्वतमें विन्दु-सरोवरपर गगाको छोडा। छोडते ही उसके सात सोते हो गये। जिनमेंसे ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएं तो पूर्व दिशाको गयीं और सुचक्षु,सीता और महानद सिन्धु ये तीन पश्चिम दिशाको गयीं और सातवीं धारा भगीरथके रथके पीछे भगी। चलते चलते राजा वहा पहुंचे जहा जह्नु ऋषि यज्ञ कर रहे थे। सो गगाने सामग्रीसहित उनकी यज्ञशालाको बहा दिया। क्रुद्ध हो जह्नु ऋषि सब जल उठाकर पी गये, फिर प्रार्थनापर जह्नु ने प्रसन्न हो अपने शरीरसे गगाको निकाला, तभीसे यह जाह्नवी नामसे प्रसिद्ध हुई। फिर गगा भगीरथके पीछे पीछे सागरको भी पहुंची और उस कार्य्यकी सिद्धिके लिये रसातलको प्राप्त हुई। इस प्रकार भगीरथ यत्नसे गगाको वहा ले गये जहा पितामहों की भस्म पडी थी। तब गगाने अपने जलसे उस भस्मराशिको बहाया और अशुमानके पितरोंने स्वर्ग पाया।

* गाधि सुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

बडे बडे भीषण विशाल गर्त्त, जो सगर-पुत्रोंने खोदे थे, सब भर गये। सगरपुत्रोंके नामसे सागर कहलाये। भगीरथके नामसे गगाजीका नाम भागीरथी पडा। जहा गगाजी सागरसे मिलती हैं, गगा सागर तीर्थ हुआ।

(२४) अम्बरीप और दुर्वासा।

*राजा नाभागका पुत्र अम्बरीप परम वैष्णव और बडा धर्मात्मा था, जिसको ब्राह्मणोंका शाप भी न छू सका। इस हरिभक्त राजाने ज्ञान दृष्टिसे सम्पूर्ण वैभवको नश्वर जान स्वप्नवत् मान लिया था। जो कुछ कर्म करता सब ईश्वरको अर्पण कर देता था। राजाकी इस एकान्त भक्तिसे प्रसन्न हो भगवानने अपने दासकी रक्षाके लिये, शत्रुओंको भय देनेवाला सुदर्शनचक्र दे दिया। फिर इस राजाने रानीके साथ एक वर्षभर अखड एकादशी व्रत धारण किया। व्रतके अन्तमें कार्तिक मासमें त्रिरात्र व्रत नियमानुसार करके भगवान्का पूजनकर ब्राह्मणोंको लाखों गऊए दानकीं। फिर अच्छे स्वादिष्ट भोजनसे ब्राह्मणोंको तृप्तकर आज्ञा ले पारणकी ज्योंही तैयारी की, उसी समय अति तपोरूप भगवान दुर्वासा मुनि आ पहुंचे। राजाने उनकी पूजा कर भोजनके लिये प्रार्थना की और मुनि स्वीकार कर मध्याह्न नित्य कृत्य करने यमुना तटपर गये। वह जो यमुनाजलमें पैठ भगवद् ध्यानमें लगे तो इतना विलम्ब हुआ कि पारणकी द्वादशी एक घडी ही रह गयी और मुनि न लौटे। राजाने इस धर्म सकटमें पड ब्राह्मणोंके साथ विचार किया कि यदि मुनिके आये बिना पारण करता हू तो भी दोष, और द्वादशीमें पारण नहीं करता तो भी दोष होता है। ऐसी दशामें क्या करना चाहिये। अन्तमें निश्चय हुआ कि जलसेही पारण कर लें। अत जलपान कर भगवान्का ध्यान करते हुए राजा दुर्वासा

* लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा।

मुनिके आनेकी बाट जोहने लगा। मुनि भी अपने कृत्यसे फिर राजाके पास आ पहुँचे और राजाने यद्यपि उनका सत्कार किया, तो भी दुर्वासा मुनिने सब जान लिया और क्रोधसे कांपने लगे। हाथ जोड़े खड़े राजासे दुर्वासा मुनि बोले, "अहो! इस अभिमानी अम्बरीषने जो निमन्त्रित कर आतिथ्य किये बिना भोजन किया है इस अपराधका फल मैं अभी देता हूं।" यह कहते हुए अपनी एक जटाको नोच उससे एक कालानलके समान कृत्या उत्पन्न की जो हाथमें खड्ग लिये अम्बरीषकी ओर झपटी, परन्तु अम्बरीष निश्चल खड़े रहे। तब तो सुदर्शनचक्रसे न सहा गया। कृत्या तो जलकर भस्म हो गयी अब दुर्वासापर ही सुदर्शन झपटा। दुर्वासा डरके मारे इधर उधर भागने लगे, परन्तु वे जहांजहां छिपनेके लिये गये वहीं वहीं चक्रको अपने पीछे लगा पाया। जब कहीं शरण न मिली तो घबराकर ब्रह्माजीकी शरण गये। कोरा जवाब मिला। शिवजीने भगवान् विष्णुके पास भेजा। दुर्वासाके दीन वचन सुन भगवान् बोले कि "हे मुनि! मैं तो भक्तोंके अधीन हूं और उनका प्यारा हूं। जिनको मैं ही परम गति हूं उनको छोड़कर मैं अपने शरीर तथा लक्ष्मीको भी नहीं चाहता। जो अपने प्राण, धन, जन सम्पूर्णसे ममता छोड़ मेरे शरण आये हैं उनको मैं कैसे छोड़ सकता हूं। मेरेमें मन लगादेनेवाले भक्त मोक्षको भी परवाह नहीं करते, तब नश्वर पदार्थ उनके आगे कौन वस्तु है? साधु मेरे हृदय हैं, और मैं उनका। इसलिये हे मुनि! मैं एक उपाय यही बताता हूं कि तुमको जिस से यह दुःख उत्पन्न हुआ है उसीके पास जाओ। यद्यपि तप और विद्या ब्राह्मणोंको कल्याणकर हैं तथापि क्रोधी ब्राह्मणोंको वे ही अकल्याणकारी होते हैं। अतः हे ब्राह्मण! आप उसी महाभाग राजासे क्षमा मांगो तब शान्ति होगी। निदान सब जगहसे लौटकर मुनिने दुःखित हो अम्बरीषके पैर पकड़ लिये। मुनिके

रण पकडनेसे, लज्जित, दयास पीडित राजाने भगवानके चक्र
ी स्तुति कर शान्त किया। तब मुनिने राजाको आशीर्वाद
या और प्रशंसा की और कहा, कि "भगवान्के दासोंकी बडाई
ने आज देखी कि तुमने मेरे अपराधको न गिना और मेरे प्राण
चाये। बडा भारी अनुग्रह किया"। अब राजा जो फिर भी
निके आनेकी बाट जोहता रहा था मुनिको खिलाकर तब
ब भोजन किया।

(२५) राजा रन्तिदेव

*राजा रन्तिदेवको जो धन अकस्मात् मिल जाता उसीसे
र्वाह करता था और जो पास होता सो सब दे डालता था,
फर जो नया मिलता उसीको भोगता था। पास कुछ न रहते
ी धैर्य कभी न छोडता था। एकबार कुटुम्ब सहित बहुत
दुखित हो गया, यहांतक कि अडतालीस दिन बीत गये जल-
क पीनेको न मिला। उनचासवें दिन घृत, खीर, लपसी और
जल अकस्मात् ही सवेरे ही प्राप्त हुए। भोजनकी तैयारी हो ही
रही थी कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। राजा बडा त्यागी
और भक्त था उसे आदरपूर्वक अपना भाग खिलाकर विदा करके
शेष अन्न भोजन करनेको ही था कि एक शूद्र आ निकला।
इसने कुछ उसे दे दिया। इतनेमें कुत्ते लिये दूसरा अतिथि आन
पहुँचा। उसने कहा, "हे राजा, मैं और मेरे कुत्ते सब भूखे हैं,
मुझे अन्न दीजिये।" उसने बडे आदरसे बचा अन्न उन्हें देकर
सबको प्रणाम किया। जलमात्र शेष रह गया जिससे एक
मनुष्य तृप्त हो सके। राजा पीनेको ही था कि एक चाण्डाल
आया और बोला, "मुझ नीचको जल दीजिये।" उसकी

*रन्तिदेव जालि भूप सुजाना
धरम धरेउ सहि संकट नाना

हुंकारकमें क्षात्रबलके सामने लगा दिया। विश्वामित्रकी अपार पर अवलंबित सेना नष्ट हो गयी। राज्यश्रीका भस्मावशेष रह गया। ब्राह्मबल, ब्राह्मतेज, जगत्में विजयी होकर फैल गया। वशिष्ठकी अन्तिम विजयका डङ्का बज गया। विश्वामित्रका रङ्ग फीका पड गया। राजाने माना कि सच है, ब्राह्मबलके सामने क्षात्रबल हेच है। मुझे धिक्कार है। मैं भी तप करूंगा। ब्राह्मण हुए बिना न रहूंगा।

वीरव्रती क्षत्रियने क्षत्रियबलसे ब्रह्मबल पानेकी कठिन तपस्या आरम्भ की। दिन, सप्ताह, पखवारे, महीने बीतने लगे। बरसों गुजरे। तपस्यामें विश्वामित्र दृढ रहे। देवता डर गये। उनकी तपस्यामें विघ्न डाला। व्रत तोडा। व्रताग्रही विश्वामित्रने फिरसे तपस्या आरम्भ की। फिर अनेक काल बीते। ब्रह्माने आकर पूछा "राजर्षि! क्या चाहते हो?" विश्वामित्र न बोले, ब्रह्माजी निराश लौट आये। तपस्या जारी रही।

ब्रह्माका आसन फिर डोल गया। आकर पूछा "ब्रह्मर्षि, क्या इच्छा है?"

विश्वामित्र बोले "चाहता हूं कि वशिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहें" ब्रह्माने कहा "एवमस्तु" और अन्तर्धान हो गये।

* * * * *

विश्वामित्र वशिष्ठसे मिलने आये। परन्तु रात हो गयी थी। कुटीसे बाहर जरा खडे होकर बुलानेको थे कि कुछ बातचीत सुन पडी। खडे खडे सुनने लगे।

अरुन्धतीने कहा "भगवन्! इन दिनों संसारमें राजर्षि विश्वामित्रकी तपस्याकी धूम है। सभी प्रशंसा करते हैं।"

वशिष्ठ बोले "सच है, देवी! राजर्षि नहीं अब उन्हें "ब्रह्मर्षि" कहो, क्योंकि ब्रह्माजीने यही वर दिया है। जब ब्रह्माजीकी आज्ञा हुई तब समझो कि उनकी तपस्या ब्राह्मणोंकी तपस्यासे

तुम्हारी इच्छा हो जाओ"। गालव मुनि प्रसन्न होकर बोले "हे गुरो! गुरुदक्षिणामें आपको क्या दू, क्योंकि बिना दक्षिणाके कार्यका फल नहीं प्राप्त होता"। भगवान् विश्वामित्र सेवाकी ही दक्षिणा पा सन्तुष्ट हो चुके थे, इसीसे उन्होंने दक्षिणाकी अभिलाषा न कर बारबार कहा कि 'तुम जाओ'। परन्तु गालव मुनि भी बारबार हठपूर्वक यही कहते रहे कि "क्या दक्षिणा दू ? क्या दू" ? इस हठसे कुछ रुष्ट हो महर्षि विश्वामित्र बोले "अच्छा गालव, चन्द्रमाके समान उजले और एक ओर श्यामकर्ण आठ सौ घोडे लाकर दान करो।"

यह कठिन आज्ञा सुन गालव चिन्तासमुद्रमें डूब गये, आहार निद्रा सब कुछ छूट गया और चिन्तासे सूखकर पीले पड गये, अपने हठपर बहुत पछताये पर कर क्या सकते थे। अन्तमें गरुडजीकी सहायतासे राजा ययातिके यहा पहुंचे। राजाने उनका सत्कार कर आनेका कारण पूछा। गरुडजीने अपने मित्र का सारा हाल कह सुनाया और प्रार्थना की कि गालव मुनिको तपस्याके एक अशके बदले इन्हें आठ सौ श्यामकर्ण घोडे दीजिये। राजा ययाति यों बोले "मैं जैसा पूर्वमें धनवान् था, वैसा अब नही हू। फिर भी मैं इस तपस्वीकी आशाको निष्फल नहीं करना चाहता। अत "हे गालव मुनि, आप इस चार वशकी थाप करनेवाली और सब धर्मोंसे अभिज्ञ मेरी कुमारी कन्याको लीजिये। इसके बदले घोडोंकी तो क्या बात है राजा अपना सारा राज्य दे सकते हैं।"

माधवी नाम्नी उस कन्याको लेकर इक्ष्वाकुवशी अयोध्याके राजा हर्यश्वके पास जाकर गालवने अपना अभिप्राय कहा।

काम-मोहित राजा हर्यश्व दीन भावयुक्त हो बोले "यद्यपि मेरे यहा सैकडों घोडे हैं, परन्तु जैसे आप चाहते हैं वैसे केवल दो सौ हैं। हे गालव, इसलिये मैं इस कन्यासे एक ही पुत्र उत्पन्न करूगा"। हर्यश्वके वचन सुन कन्या बोली "हे मुनि

एक ब्रह्मवादी ऋषिने मुझे वर दिया है कि तुम प्रसवके पीछे कन्या ही बनी रहोगी, इससे आप घोड़े लेकर मुझे राजाको दे दीजिये। इसी प्रकार चार राजाओंके यहासे आपको आठ सौ घोड़े मिल जायँगे और मेरे भी चार पुत्र उत्पन्न हो जायँगे।" निदान राजाने मागे धनका चतुर्थांश देकर कन्या ले ली और व्याह करके एक पुत्र उत्पन्न कर लिया। जो पीछे वसुमना नामका प्रसिद्ध राजा हुआ।

फिर मुनिने आकर पूर्व प्रतिज्ञानुसार कन्या लौटा ली। इसी प्रकार गालव मुनि उस कन्याको राजा दिवोदास और राजा उशीनरके यहा ले गये और एक एक पुत्रके बदले दो दो सौ घोड़े उनसे लिये। अन्तमें छ सौ घोड़े और उसी कन्याको लेकर विश्वामित्रके पास जाकर बोले, "हे गुरुदेव। आपने जैसे घोड़े मागे थे वैसे छ सौ घोड़े उपस्थित हैं और शेषके बदले आप इस कन्याका पाणिग्रहण कर लीजिये। इसके गर्भसे तीन राजर्षियोंने तीन पुत्र उत्पन्न किये हैं, आप भी एक पुत्र उत्पन्न कर लें। इस प्रकार आठ सौ घोड़े पूर्ण हो जायँ और मैं भी जाकर तपस्या करूं"।

विश्वामित्रने गालवका प्रस्ताव मान लिया। विश्वामित्रने उसके गर्भसे 'अष्टक' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। उसे ही घोड़े दे दिये और शिष्यको कन्या लौटाकर तप करने चले गये। गालव मुनि गरुडकी सहायतासे इस प्रकार गुरु दक्षिणा दे प्रफुल्लित हो आप माधवीसे अपनी कृतज्ञता प्रगट कर उसे उसके पिता ययातिके घर पहुंचा गरुडकी अनुमतिसे वनको चले गये।

(२८) गालव और ययाति

* जब गालवमुनिने माधवीको राजाके पास पहुंचा दिया,

* लेइ उसास सोच एहि भाती। सुरपुरतें जनु खसेउ जजाती॥

तब राजा ययातिने फिरसे उसका स्वयंवर करना चाहा। पुरु और यदु भाइयोंके साथ माधवी बहुत घूमी। अन्तमें "वन" को वरणकर तपस्या करने लगी। इधर राजा ययातिने कई हजार वर्ष अपनी आयु भोग पहले राजाओंकी तरह वनमें जाकर शरीर छोडा। फिर स्वर्ग जाकर कई हजार वर्ष वहाके उत्तम सुख भोगे, परन्तु अन्तको मोहमें पड, अभिमानसे मत्त हो वे अपने सहवासी पुण्यात्मा राजर्षि और महर्षियों, देवों और मनुष्योंका मन ही मन अनादर करने लगे। इन्द्रने उनका अभिप्राय जान लिया और सब राजर्षि उन्हें धिक्कारने लगे। उनकी ओर देख स्वर्गीय यह तर्क करने लगे कि " यह पुरुष कौन है? किस राजाका पुत्र है? किस कर्मसे सिद्ध हुआ है? कहा तपस्या की थी? कैसे स्वर्ग पाया? इसे कौन जानता है? स्वर्गवासी आपसमें यों तर्क करने लगे और द्वारपालसे भी पूछने लगे, पर सबने उत्तर दिया कि 'हम इसे नहीं जानते'।

अब राजा ययातिका सिर घूमने लगा, आसनसे भ्रष्ट हो गिरने लगे। अत्यन्त शोक और दुःखसे पीडित होनेसे उनका ज्ञान नष्ट और उज्ज्वल माला मलिन हो गयी। सिरके मुकुट और विचित्र भूषणादि सब गिर पडे, सब अंग शिथिल हो गये। और उस समय उन्हें कोई भी नहीं पहचानता था। सब विषयोंसे रहित हो वे अपने मनमें चिन्ता करने लगे कि 'हाय! यह क्या और क्यों हो रहा है।'

पुण्यहीनोंको स्वर्गसे गिरानेवाले पुरुषने इन्द्रकी आज्ञासे ययातिसे आकर कहा 'हे राजन्, तुमने अभिमानसे सबका अनादर किया है, तुम्हें कोई नहीं जान सकता सो जाओ जल्दी गिरो'। यह सुन नहुषके पुत्र ययातिने कहा, 'साधुओंके बीच गिरूं गा'। वे तीन बार यही कहकर वहा गिरे जहा उसी समय वसुमना प्रतर्द्दन, शिबि और अष्टक ये चारों राजा नैमिषारण्यमें वाजपेय इन्द्रको तृप्त कर रहे थे। राजपुत्रोंने पूछा "आप कौन हैं?

यहां क्यों आये हैं ? और क्या चाहते हैं ? " राजा बोले, " मैं राजर्षि ययाति हूं, पुण्यक्षीण होनेसे स्वर्गसे गिरा हूं ।" राजा लोग बोले, " हे पुरुषर्षभ ! आपकी अभिलाषा पूरी हो। आप हमारे पुण्यका फल ले फिर स्वर्ग जायँ।" ययाति बोले, "मैं क्षत्रिय हूं, प्रतिग्राही ब्राह्मण नहीं हूं, विशेष करके दूसरोंका पुण्य क्षय करनेमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती।" उसी समय ब्रह्मचर्य-परायणा, वनवासिनी माधवी भी आ पहुँची। चारों पुत्रोंने प्रणाम कर विनती की " हे तपोधने ! हम तुम्हारे पुत्र हैं, सो कहो तुम्हारी क्या आज्ञा पालन करें ?" । यह सुन माधवीने हर्षसे गद्गद् हो पिताके पास जा उन्हें प्रणाम कर और पुत्रोंके मस्तकको स्पर्श कर कहा, "हे राजेन्द्र, ये पुत्र तुम्हारे दौहित्र हैं सो यही तुम्हारा उद्धार करेंगे। हे राजन् ! मैं तुम्हारी पुत्री माधवी हूं, इससे मेरे संचित पुण्यका भी आधा ग्रहण करो। मुझे गालवमुनिको समर्पण करते समय जो आपने दौहित्रकी इच्छा की थी उसका भी यही प्रयोजन है। " उस समय गालवमुनि भी वनसे आये और ययातिसे बोले, " हे राजन् ! मेरी तपस्याके अष्टम भागसे तुम फिर स्वर्गको चले जाओ।"

प्रतर्दनादि सब साधु पुरुषोंको ज्ञान उनके वचन सुनते ही मोह और शोकसे रहित हो दिव्य शरीरमाला और भूषण धारण करके ययातिका फिरस्वर्गारोहण हुआ।

(२६) त्रिशंकु

जब महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षिपदके लिये स्त्री-सहित वनमें जाकर उग्र तपस्या कर रहे थे, उसी समय इक्ष्वाकुवंशके राजा त्रिशंकुने अपने पुरोहित महात्मा वशिष्ठमुनिको बुलाकर कहा, " महाराज, मैं ऐसा उपाय करना चाहता हूं कि इसी देहसे स्वर्ग चला जाऊं।" वशिष्ठमुनि बोले कि " यह बात अशक्य है "। तब राजाने गुरुपुत्रोंके पास जाकर अभिलाषा प्रगट की।

यह जानकर कि वशिष्ठने स्वयं अशक्यता मानी है गुरुपुत्रोंने राजाका तिरस्कार किया और बोले कि "जो वशिष्ठ नहीं करा सके, हमसे कब हो सकता है।" इसपर राजाने कहा "अच्छा, अब हम तीसरेके पास जाते हैं, "आपकी स्वस्ति हो।" राजाका यह अनादर वचन सुन ऋषिपुत्रोंने शाप दिया कि " तू चाडाल हो जायगा "।

रात बीतनेपर राजाके वस्त्र और शरीर नीले हो गये, शिखा झड गयी, देहमें भस्म लपट गया, गलेमें हड्डियोंकी माला पड गयी और सब आभूषण लोहेके हो गये। राजाका यह रूप देख उसके सब अनुचर भाग गये। राजा दुखित हो धीरजधर विश्वामित्रके पास आया। ऋषिने पहचान लिया और उनका सत्कार किया। सारे समाचार सुने। राजाको पूर्ण आश्वासन दिया। उन्हें सदेह स्वर्ग भेजनेके लिये यज्ञ आरंभ किये। ऋषियों और देवताओंको निमंत्रण भेजा पर इस यज्ञके निमंत्रणपर वशिष्ठ और उनके पुत्रोंने दुर्वचन कहे। इसपर विश्वामित्रजीने उन्हें शाप दिया। अन्य ऋषियोंने विश्वामित्रके डरसे यज्ञका विधिवत् अनुष्ठान किया। परन्तु जब देवगण न आये तो क्रुद्ध हो विश्वामित्रने अपने तपोबलसे त्रिशंकुको स्वर्ग भेजा। परन्तु वहा पहुंचते ही इन्द्रने उन्हें लौटा गिराया। गिरते हुए त्रिशंकुने विश्वामित्रकी दुहाई दी। राजाकी यह दशा देख विश्वामित्र क्रुद्ध हो बोले, " तिष्ठ तिष्ठ " (ठहर ठहर) और ऋषियों के मध्यमें दक्षिण मार्गमें दूसरे सप्तर्षिमंडल और नक्षत्रमाला बनाने लगे। फिर दूसरा इन्द्र अथवा विना इन्द्रका ही लोक बनाने लगे, देवगणोंका बनाना भी आरंभ किया। तब तो देवता, ऋषि और दैत्य, सब घबराये और विश्वामित्रके पास आकर विनयपूर्वक बोले, " हे तपोधन! यह राजा गुरुके शापसे पतित है, इसलिये सदेह स्वर्ग नहीं जा सकता। " विश्वामित्रजीने उत्तर दिया, " हे देवताओ! मैंने इसे सदेह स्वर्ग पहुंचानेकी

प्रतिज्ञा की है। सो अवश्य होगा। इसके लिये स्वर्ग बना रहेगा। और मेरे बनाये ध्रुव सहित नक्षत्र भी स्थिर रहेंगे, इसमें आपलोग भी सम्मत हूजिये।" देवता बोले, "ऐसा ही होगा।" देवता इस प्रकार आश्वासन दे और उनकी स्तुति कर चले गये। *

(३०) विश्वामित्र और राजा हरिश्चन्द्र

अयोध्याके राजा हरिश्चन्द्र बड़े धर्मात्मा और सत्यव्रती थे। इन्द्र उनका यश सह न सका और किसी तरह उन्हें नीचा दिखलानेका विचार किया। उसने विश्वामित्रको परीक्षाके लिये उभाड़ा। एक रात स्वप्नमें विश्वामित्रने सारी पृथ्वी राजा हरिश्चन्द्रसे दान ले ली और दूसरे दिन सवेरे जाकर उसकी दक्षिणा मांगी। राजाने सारा राज उन्हें सौंप दिया और दक्षिणा चुकानेके लिये कुछ कालकी अवधि मांगी। विश्वामित्रने मान लिया और राजा सकुटुम्ब काशीकी ओर चल पड़ा। मार्गमें अनेक प्रकारके कष्ट सहते सहते जब काशी पहुंचे तो ऋषिजीने उन्हें आ घेरा और दक्षिणाके तकाजे शुरू कर दिये। अतमें राजाने अपनेको और अपनी पत्नीको भी बेच दक्षिणा चुकायी। अपनेको डामके चौधरियोंके हाथ बेचा और उसने उन्हें यह काम सौंपा कि स्मशानपर जितने लोग मुर्दा जलाने आवें सभीसे कफनका टुकड़ा लेकर तब जलाने देना। इन्द्रकी कुटिलता और नीचताका अब भी अन्त न हुआ। राजाका एक मात्र पुत्र रोहित मर गया और रानी उसे जलानेके लिये मरघटपर ले गयी पर सत्यव्रती हरिश्चन्द्रने बिना कर लिये जलाने न दिया, यह जानकर भी कि मेरा ही पुत्र मर गया है, और मेरी ही पत्नी बिलप रही है, दृढ़ राजा हरिश्चन्द्र सत्य और धर्ममार्गसे विचलित न हुए। अतमें रानीने चाहा कि अपने शरीरका वस्त्र आधा फाड़कर दू और

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

वह ऐसा किया ही चाहती थी कि पृथ्वी कांपने लगी और देवताओंने हाहाकार मचाया। उसी समय शिवजीने प्रगट हो सबको समझाया और इन्द्र विश्वामित्रादि सबने राजाकी प्रशंसा की और अपना छल एवं परीक्षा स्वीकार कर राज्य लौटा दिया। पुत्र रोहिताश्व भी जी उठा। *

(३१) शिवि

काशीके राजा शिवि बड़े दयालु और धर्मात्मा थे। इन्होंने सौ यज्ञ करनेका विचार किया। जब बानबे यज्ञ कर चुके तो इन्द्र डरा कि कहीं आठ यज्ञ और करके मेरे पदका अधिकारी न हो जाय। यह सोच अग्निको कबूतर बना आप बाज बन यज्ञमें विघ्न डालनेको राजाकी यज्ञशालामें पहुँचा। कबूतर झपटकर राजाकी गोदमें छिपा। बाज उसका पीछा किये पहुँचा और बोला "आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं। यह कबूतर मेरा आहार है। यदि आप न देंगे तो मैं भूखके मारे मर जाऊंगा और आपको पाप लगेगा। राजा बोले कि "मैं शरणागतको नहीं छोड़ सकता।" अंतमें बाजने कहा कि "इस कबूतरके बराबर तौलमें यदि अपने शरीरका मांस मुझे आप दे दें तो इसे छोड़ सकता हू।" राजाने मान लिया और तराजूके एक पलड़ेपर उस कबूतरको रख दूसरी ओर अपने शरीरका मांस काट काटकर रखने लगे। सारे शरीरका मांस काट डाला, पर पलड़ा भारी न हुआ। तब उन्होंने अपना गला काटना चाहा, उसी घड़ी विष्णु भगवानने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें अपने लोक भेज दिया।

(३२) वाल्मीकि

अध्यात्म रामायणमें लिखा है कि जब श्री रामचन्द्र वनको गये और वाल्मीकि मुनिके आश्रममें पहुंचे तब उन्होंने अपने

* सिवि दधीचि हरिचन्द्र कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥

मुखसे यह वृत्तान्त कहा कि "हे राम, आपके नामका माहात्म्य कौन किस प्रकारसे कहे कि जिसके प्रभावसे मैं ब्रह्मर्षित्वको प्राप्त हो गया हूं। पूर्वकालमें मैं किरातोंमें रहा करता था और उन्हींमें पला। जन्ममात्र द्विजकुलमें हुआ, परन्तु सर्वदा शूद्रोंका आचरण करता रहा और एक शूद्रा स्त्रीसे मैंने कई पुत्र उत्पन्न किये, चोरोंके साथ रहकर चोर हो गया। पथिकोंकी हत्या करता और लूट लेता था। एक दिन सप्तर्षि उस महा वनमें मुझे दीख पड़े। मैं उनपर झपटा और उनको पकड़ना चाहा। तब मुनियोंने मुझे देखकर कहा कि रे द्विजाधम क्यों आता है? तब मैं बोला कि हे मुनिश्रेष्ठो! मैं कुछ हरणको आता हूं। क्योंकि मेरे बहुतसे पुत्र और स्त्री आदि सब भूखे हैं और उन्हीं-की रक्षाके लिये मैं पर्वत और वनोंमें घूमा करता हूं। तब वे निर्भय होकर मुझसे बोले कि 'अच्छा तू अपने कुटुम्बमें आकर एक एकसे पूछ तो आ कि मैं जो पाप बटोरता हूं, उसके भागी तुम होगे या नहीं। तबतक हमलोग निश्चय यहां ही खड़े रहेंगे। मैं गया और अपनी स्त्री और पुत्रोंसे पूछा। सबने उत्तर दिया कि "वह सब पाप तेरा ही है, परन्तु फल जो धनादि तू लाता है उसके भागी हम सब हैं।" यह सुनकर मुझे वैराग्य हुआ और मैं मनमें विचारता हुआ मुनियोंके पास जा चरणोंपर गिर पड़ा और बोला कि मुनीश्वरो! नरकमें बहते हुए मेरी रक्षा करो, वह बोले, "उठ, उठ, तेरा मंगल हो। सत्संगका फल अवश्य ही होता है। हम लोग तुझे कुछ उपदेश देंगे, उसीसे तू पापोंसे छूट जायगा"। हे राम, इतना कहकर उन्होंने मुझे उलटे अक्षरोंमें आपका नाम 'मरा' यहीं बैठकर एकाग्र मनसे जपने और जब तक वे फिर लौटकर न आवें तबतक सदा जपते रहनेको कहा और चले गये। मैंने भी एकाग्र मन होकर जप किया और सब बाहरी विषयोंको भूल गया। निश्चलरूप सर्वसंगरहित बहुत काल

बीतनेसे मेरे ऊपर बाँबी जम गयी। सहस्र वर्ष बीतनेपर वे ऋषि फिर आये और उन्होंने मुझसे कहा कि "निकल आओ"। यह सुन मैं झट उठ खड़ा हुआ। तब मुझसे मुनि बोले कि "तुम वाल्मीकि मुनीश्वर हो, क्योंकि तुम वल्मीकसे उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ इसीसे वाल्मीकि नाम हुआ"। उलटा नाम जपते जपते इस प्रकार मैं ब्रह्मर्षि हो गया *।

(३३) नारद

एक बार व्यासजीके यहाँ देवर्षि नारदजी गये और उन्हें कुछ उदास बैठे देख पूछा कि व्यासजी, आप सब तत्वोंके जाननेवाले हैं, उदास क्यों हैं? व्यासजी बोले कि जो आपने कहा ठीक है, तथापि मेरी आत्मा प्रसन्न नहीं होती, इसमें क्या गुप्त कारण है? इसपर नारदजीने उत्तर दिया कि मेरी समझमें आपने भगवानके निर्म्मल यशरहित धर्म्मादिका वर्णन किया है यही न्यूनता है, ध्यानावस्थित होकर भगवान्‌के चरित्रोंका स्मरण करके वर्णन करो जिससे सब बंधन कट जायँ। हे मुनि, देखो मैं पूर्व जन्ममें वेद वादी ऋषियोंकी किसी दासीका पुत्र था। वहाँ मुनि लोग चातुर्मास्यका व्रत किया चाहते थे। मेरी माताने मुझे उन मुनियोंकी सेवामें रख दिया और मैंने सब बालकपनकी चंचलता छोड़ जितेन्द्रिय हो उनकी सेवा आरंभ की। मेरी सेवासे प्रसन्न हो उन, महात्माओंने मुझपर कृपा की। उन मुनियोंकी जूठन जो बचती वह मैं उनकी आज्ञासे केवल एक ही बार खाया करता। उसीके प्रभावसे मेरे पाप निवृत्त हो गये, मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और भगवद्धर्म्ममें रुचि हो गयी। अन्तमें उन्होंने प्रसन्न हो भगवान्‌के कहे हुए अति गुप्त ज्ञानका मुझे उपदेश किया। जिससे मैंने यह जान लिया कि सम्पूर्ण कर्म्मों को भगवान्‌में अर्पणकर देना यही प्राणियोंको उचित है इससे कर्म्मों को

* वाल्मीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।

निवृत्ति हो जाती है। मुनिगण व्रतपूर्ण करके चले गये। मेरे न र में भक्तिका संस्कार हो गया। मेरी माता एक मूर्ख स्त्री और लोगोंकी दासी थी। मैं एक ही पुत्र था, अतएव वह मुझे बहुत चाहती थी, परन्तु पराधीनतासे कुछ भी नहीं कर सकती थी और मैं भी उस माताके स्नेहबन्धनमें पड़ा पाच वर्षका बालक उस ब्रह्मकुलमें रहने लगा। एक रात्रि गाय दुहने निकली कि सापने काट खाया और वह मर गयी। इसे मैं ईश्वरकी कृपा मान उत्तर दिशाको चल दिया। मार्गमें अनेक देश और शोभित वन पर्वत लाघते एक घोर निर्जन वनमें पहुचा। वहा तपस्या करने लगा। वहा भगवान्के ध्यानमें मन अनुरक्त हुआ। पर शरीरकी अनुपयुक्तता-से ध्यान स्थिर भावसे न रह सकता था, जिससे मैं अत्यन्त विकल हो जाता था। एक दिन मैंने काल पाकर वह शरीर छोड़ा और कल्पान्तमें, जब नारायण जलमें शयन कर रहे थे, ब्रह्माजीके प्राणके साथ मेरे आत्माका भी प्रादुर्भाव हुआ और जब ब्रह्मा इस जगत्‌की रचना करने लगे उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषि तथा मैं प्रगट हुआ। अब इस वीणाको लिये सर्वत्र हरिगुण-गान करता विचरा करता हू। कहीं मेरी गति नहीं रुकती और सर्वदा भगवान् हृदयमें दर्शन देते रहते हैं। भगवान्‌का गुणकीर्तन और सत्सग भवसागरके लिये नौका है, यही मेरे जन्म कर्म की कथा है*।

(३४) घट योनि अगस्त्य ऋषि

एक बार अगस्त्य ऋषिने शिवजीसे कहा कि मेरे पिता मित्रावरुणजी तप कर रहे थे। आकाशमार्गसे रम्भा शृगार किये जाती थी। अचानक पिताजीकी दृष्टि उसपर पड़ी, जिससे उन्हें काम वासना हुई और उन्होंने अपने वीर्य्यको एक

* बालमीकि नारद घट जोना। निज निज मुखनि कही निज होनी।
धइल विन्ध्य जिमि घटज निवारा।

घड़ेमें रख दिया। उसीसे मेरी उत्पत्ति हुई और इसीलिये मैं घटज या घटयोनि भी कहलाया। ऐसे नीच स्थानसे उत्पन्न होने-पर भी मैं इस पदवीको प्राप्त हुआ, जिसका मुख्य कारण सत्संग ही है।

हिमालयकी स्पर्धामें एक युगमें विंध्याचल बढ़कर ऊंचा होने लगा। इतना ऊंचा हो गया कि उसके भयसे देवतातक चिन्तित हुए। उन्होंने अगस्त्यजीसे अपना भय कहा। अगस्त्य जीने दक्षिणकी ओर यात्रा की। जब विंध्यके पास गये तो अपने गुरु अगस्त्यजीको साष्टांग प्रणाम करनेको विंध्य लेट गया। अगस्त्यजीने आशीर्वाद दिया और आदेश किया "बेटा, जबतक मैं दक्षिणसे न लौटूं इसीतरह पड़े रहो।" विंध्य आजतक पड़ा हुआ है, क्योंकि अगस्त्यजी दक्षिणसे अबतक न लौटे।

(३५) अगस्त्य और समुद्र

*एक समय समुद्र किसी चिड़ियाके तीन बच्चोंको बहा ले गया। चिड़िया बड़ी दुखी हुई। और वह मारे क्रोधके, समुद्रको उलच डालनेके संकल्पसे, प्रतिदिन अपनी चोंचसे पानी भर भर-कर बाहर फेंकने लगी। अगस्त्य ऋषिने यह देखकर उससे पूछा। उसने अपना दुखड़ा रो सुनाया। ऋषिराजको बड़ी दया आयी और उन्होंने उस चिड़ियासे कहा कि यह समुद्र बड़ा दुष्ट है, तू इसे रहने दे, मैं कभी इसका बदला लूंगा। कुछ काल पीछे एक दिन अगस्त्यजी समुद्र किनारे बैठे पूजा कर रहे थे। एक लहरने इनकी पूजाकी सामग्री नष्ट कर दी। इसपर अगस्त्यजीको बड़ा क्रोध आया और साथ ही उन्हें उस चिड़ियाकी बात भी याद आ गयी। मारे क्रोधके तीन अंजुलीमें सारा समुद्र पी गये। बहुत दिनोंतक वह सूखा पड़ा रहा। अन्तमें देवताओंके बहुत कहने सुननेपर अगस्त्यजीने लघुशंका करके फिर सारा समुद्र भर दिया।

* कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा।

(३६) परशुराम

* एक समय परशुरामजीकी माता रेणुका गंगाजीपर जल लेनेको गयी थी। वहा उसने गन्धर्वराज चित्ररथको कमलोंकी माला पहने अप्सराओंके साथ क्रीडा करते देखा। तमाशा देखनेमें उसे बहुत देर हो गयी और होमका समय भूल गयी। चित्ररथ गन्धर्वपर इसकी इच्छा भी प्रकट हो गयी। जब इसे होमकी याद आयी और देरका ख्याल आया तो शापसे डरती तुरत आ मुनिके आगे कलश रखकर रेणुका हाथ जोडकर खडी हो रही। व्यभिचारको जान मुनिने क्रोधित हो पुत्रोंसे कहा कि "इस पापिनीको मार डालो," पर जमदग्नि मुनिकी यह बात किसीने न मानी। ऋषिने परशुरामसे कहा और उन्होंने पिताकी आज्ञा मान माता तथा अपने सब भाइयोंको भी मार डाला क्योंकि यह अपने पिताके तप और प्रभावको भली भांति जानते थे। इस बातसे प्रसन्न हो पिताने कहा कि "वर मागो" तब परशुरामजीने यही वर मागा कि "मेरे भाई तथा माता पुन जीवित हो जाय और यह लोग यह बात न जानें कि मैंने इन्हें मारा था।" पिताने उनको अपने तपके प्रभावसे फिर जिला दिया, मानों कोई सोकर फिर उठ बैठे।

इस प्रकार पिताकी आज्ञा पालनेसे परशुरामजीको न तो पाप ही हुआ और न लोकमें किसी तरहका अपयश।

(३७) सहस्रार्जुन और रावण

हैहयवंशी राजा अर्जुनने नारायणके अंशरूप दत्तात्रेयजीको सेवासे प्रसन्न किया, जिससे उसे सहस्रबाहु तथा अणिमादि सिद्धि मिली और उनके प्रसादसे उसकी इन्द्रियोंकी शक्ति, लक्ष्मी,

* परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारा मातु लोग सब साखी॥

तेज, वीर्य, यश, और बल किसीसे खडित नहीं होता था और न वह शत्रुओंसे पराभव पाता था। इसकी गति अव्याहत थी। वायुकी तरह हर कहीं घूमता-फिरता था। एक दिन रेवा नदीमें स्त्रियोंके साथ विहार करता था। वहां मदोन्मत्त हो इसने अपने हजार हाथोंसे नदीके वेगको रोका, जिससे नदीका जल रुककर उलटा बहने लगा और उससे रावणका डेरा बह गया। तब वीरताभिमानी रावण राजाके पराक्रमको न सहकर युद्ध करने गया। सहस्त्रार्जुनने* उसे सहज ही पकड़कर अपनी माहिष्मती नगरीमें कैद कर लिया और फिर कुछ दिन पीछे जैसे बदरको छोड देते हैं वैसे छोड दिया।

एक समय रावण हैहय राजा सहस्त्रार्जुनके नगरमें गया। सहस्त्रार्जुनने देखकर इसे बांध लिया। तब पुलस्त्य मुनिने जाकर उसे वहांसे छुडा दिया।

(३८) सहस्रबाहु और परशुराम

एक दिन हैहय सहस्रबाहुवंशी राजा सहस्त्रार्जुन शिकार खेलते खेलते जमदग्नि मुनिके आश्रममें आ निकला। मुनिने कामधेनुके प्रभावसे अमात्य और सेनासहित उसकी भलीभांति पहुनाई की। ऋषिमें अपनेसे भी अधिक सामर्थ्य देख राजा प्रसन्न तो न हुआ किन्तु उसकी आज्ञासे उसके आदमी उस धेनुको बलात्कारसे बछवे सहित माहिष्मती नगरीमें ले गये। पीछे ऋषिपुत्र परशुरामजी आये और उसकी दुष्टता सुन अत्यन्त क्रोध हुआ और अपना फरसा, धनुष और तरकस आदि ले उसके पीछे झपटे। परशुरामजीको पुरीमें आते सुन राजाने शस्त्र और अस्त्रोंके सहित सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, जिसे परशुरामजीने बिना प्रयास अकेले ही काट गिराया। रणक्षेत्रमें सेना कटती देख राजा क्रोधयुक्त हो आप युद्ध करने आया और एकबारगी पांच

* जानउ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।

भी धनुषपर बाण चढा परशुरामपर छोडने लगा।* परन्तु परशुरामजीने अपने एक ही धनुषसे उसके सभी बाण काट गिराये। फिर वृक्ष और पर्वत ले युद्धमें दौडते सहस्रार्जुनको देख अपने कुठारसे उसकी भुजाए काट डालीं और फिर उसका सिर भी उडा दिया। जब सहस्रार्जुन मर गया तो डरके मारे उसके दस हजार पुत्र भाग खडे हुए। परशुरामने बछवासमेत अपनी गऊ लाकर अपने पिताको दी और सब हाल सुनाया। इसपर पिता जमदग्नि बोले "हे महाबाहु राम! सर्वदेवमय राजाको वृथा मारा, यह तूने बडा पाप किया। ब्राह्मण क्षमासेही पूज्य हैं। राजाका वध ब्रह्महत्यासे भी अधिक है, सो अब तुम यम, नियम, ध्यान और तीर्थयात्रासे इस पापका प्रायश्चित्त करो।

(३६) परशुरामद्वारा क्षत्रियनाश

जब परशुरामजीने सहस्रार्जुनको मार डाला, तब उसके पुत्र बदला लेनेका सुअवसर खोजने लगे। एक दिन परशुरामजी जब भाइयोंके साथ वनमें गये तब अवसर पा वे सब वैर लेनेको आश्रममें आये और ध्यानावस्थित जमदग्निका सिर काटकर ले गये। दूरसे माताका आर्त्तनाद सुन परशुरामजी आश्रममें आये और पिताको मरा देख शोकसे विह्वल और बदला लेनेके विचारसे अधीर हो गये। पिताकी देह भाइयोंको सौंप, हाथमें फरसा ले, क्षत्रियोंके अन्तका विचारकर, माहिष्मतीमें जाकर क्षत्रियोंके सिर काट काट एक बडा पर्वत बना दिया। उन्होंने समस्त अन्यायी क्षत्रियोंका वध करना आरम्भ किया। इसी प्रकार इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया क्योंकि माता रेणुकाने ऋषिके शोकमें इक्कीस बार छाती पीटी थी, फिर कुरुक्षेत्रमें नौ बडे बडे तालाब बनाये। पीछे पिताका सिर ले धडसे जोडकर सर्वदेवमय आत्मरूप ईश्वरका

* सहसबाहु सुरनाथ त्रिसकू। केहि न राजमद दीन्ह कलकू॥

यज्ञ किया। उसमें होताको पूर्व, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्युको पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दी। दूसरे ऋषियोंको अवान्तर दिशाएं दी। कश्यपको पृथ्वीका मध्य भाग,तथा आर्यावर्त्त और शेष पृथ्वी सब सभासदोंको दी। तब ब्रह्मनदी सरस्वतीमें अवभृथ स्नान कर पापमुक्त हुए। जमदग्नि सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये।*

(४०) रावण और कैलास

रावण जब अपने भाई कुवेरसे पुष्पक विमान जीत उसपर सवार स्वामिकार्तिकेयके उत्पत्तिस्थानवाले जङ्गलमें घुसा त्यों ही पुष्पक चलनेसे रुक गया। वह अचरजमें ही था। विकराल कृष्ण पिंगल वर्ण वामनरूप विकट मूर्ति, सदाशिवके मुख्य गण श्रीनन्दीश्वर रावणके पास आकर बोले कि "हे दशग्रीव, तू यहासे चला जा, यहा भगवान् शिव क्रीडा कर रहे हैं। तू अपने विमानको लौटाकर चला जा,।" रावण शिवजीका नाम सुन और नन्दीश्वरका रूप देख तिरस्कारसे हँसा। उसके हँसनेसे क्रोधित हो नन्दीश्वर बोले, "अरे दशानन, तू मेरे वानररूपका अनादर कर हँसा। इसलिये वानर लोग तेरे कुलका नाश करेंगे।" शापपर कुछ भी ध्यान न दे रावण क्रोध कर बोला, "हे रुद्र, जिस पर्वतसे विमानकी गति रुकी, मैं उसको ही उखाड फेंकता हू।" इतना कह उसने बड़ी फुर्तीसे अपनी भुजाओंको पर्वतके नीचे घुसाकर उसे उठा लिया और तौलने लगा। जब पर्वत डगमगा उठा तो शिवके गण कापने लगे और पार्वती भी विस्मित हो शिवके शरीरसे लिपट गयीं। तब तो भगवान् शिवने कौतुक ही पर्वतको अपने पैरके अंगूठेसे दबाया और उसके दबानेसे रावणकी भुजाएं पर्वतके तले मरमरा उठीं और दबनेसे तथा क्रोधसे रावणने ऐसा भयङ्कर नाद किया कि

* मातहिं पितहिं उरिन भये नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जीके।

त्रैलोक्य काँप उठा। देवता, ऋषि, गन्धर्व सब चकित हो गये। हैरान और लाचार हो रावण आशुतोष शिव भगवान्‌को प्रणामकर, सामवेदके मन्त्रोंसे स्तुति करने और रो रो विलख विलख प्रार्थना करने लगा। इस तरह हजार बरस बीत गये। तब शङ्करजीने प्रसन्न हो उसके भुजोंको दाबसे छोडकर कहा, "हे वीर दशानन, मैं तेरी सामर्थ्यसे प्रसन्न हुआ और पर्वतकी दाबसे जो तूने नाद किया उससे त्रैलोक्य भयभीत होकर रो उठा, इससे आजसे तेरा नाम "रावण" विख्यात होगा। अब जैसे चाहे चला जा, हम अनुमति देते हैं।" सदाशिवने उसे अपना प्रसाद 'चन्द्रहास' नामक एक खड्ग और शेष आयुर्बल दिया।*

(४१) रावण और वालि

†एक बार रावण वानरराज बालिको मारनेकी इच्छासे किष्किंधा चला गया परन्तु बालिने उसे अपनी काखमें दबा लिया और उसे चारों समुद्रोंपर घुमा-फिराके छोड दिया। बालिके इस पराक्रमको देख सन्तुष्ट हो रावणने उससे मित्रता कर ली।

(४२) गरुड़ और भुशुण्डिकी लड़ाई

× एक समय जब दशरथके आगनमें श्रीराम बाललीला कर रहे थे, कागभुशुण्डिके मनमें मोह उत्पन्न हुआ तब वे रामचन्द्रके हाथसे पूरीका टुकडा लेकर उड गये। रामने यह ढिठाई देख गरुडको स्मरण किया जिसपर गरुड और कागभुशुण्डिमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमें कागभुशुण्डि घायल होकर तीनों लोकमें

* सुनु मठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुजलीला॥

† ममर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपि वचन विहसि बहरावा॥

× सोइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवइ चह कृपानिधाना॥

भागा, पर गरुडने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा। अन्तमें वह फिर रामकी शरण आया। तब उन्होंने गरुडको निवारण कर उसकी रक्षा की। इसपर गरुडको अभिमान हुआ कि कागभुशुण्डिसे मेरी भक्ति बढ़ी चढ़ी है।

(४३) ताड़काको वरदान

*सरयू और गंगाके संगमके पास पूर्वयुगमें देवताओंके बनाये 'मलद' और 'करुष' दो देश थे। वह देश सुन्दके अधिकारमें थे। उस समय सुकेतु नामका एक वीर्य्यवान और संतानहीन यक्ष था। उसने संततिके लिये महातप किया। ब्रह्माने उसे ताडका नामकी अति रूपवती कन्या दी और उसकन्याको सहस्र हाथीका बल दिया। जब वह युवती हुई तब सुकेतुने सुन्दसे उसे ब्याह दिया। जब अगस्त्यमुनिके शापसे सुन्द मारा गया तब ताडका अपने पुत्र मारीचको साथ ले क्रोधसे मुनिको खाने दौड़ी। मुनिने पुत्रके साथ अपने ऊपर दौड़ते देख मारीचसे कहा तू राक्षस हो और ताडकासे कहा, तू पुरुषको खानेवाली हो और इस रूपको छोड भयङ्कर रूप धारण कर। इस शापसे क्रोधित हो ताड़का अगस्त्यमुनिकी तपोभूमिको उच्छिन्न किये डालती थी। विश्वामित्रजीके बहुत समझानेपर ही श्रीरामचन्द्रने ताडका स्त्रीको मारकर मुनियोंकी रक्षा की।

(४४) कैकेयीद्वारा युद्धमें दशरथकी सहायता

†पूर्वकालमें एक बार देवासुर-सग्राममें इन्द्रने सहायताके लिये महाराज दशरथसे प्रार्थना की राजाने स्वीकार कर लिया, और केकयीसहित सेनाको साथ ले राक्षसोंसे युद्ध करने गये। युद्धके अवसरमें महाराजके रथके धुरेकी कील टूटकर

* "रिषि हित राम सुकेतु सुताकी। सहित सेनसुत कीन्ह बिबाकी"

† दुइ बरदान भूपसन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥

गिर पड़ी पर राजाको इस बातकी कुछ खबर न हुई। कैकेयीने अति धैर्यसे स्वामीकी जीव-रक्षाके लिये कीलके छिद्रमें अपना हाथ डाल दिया और नेत्रोंमें स्वाभाविक श्यामतातक न देख पड़ी। राजाने शत्रुओंको मारनेके पीछे कैकेयीको उस प्रकार बैठे देखा तो आश्चर्ययुक्त हो उस साहससे बड़े प्रसन्न हुए और अपने आप बोले कि जो तुम्हारी अभिलाषा हो वर माग लो। मैं तुम्हें वर देता हू।" कैकयीने कहा कि यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो यह दोनों वर हमारी धरोहरकी भाति अपने पास रहने दीजिये, जब समय होगा तब इसपर माग लूगी। महाराजने "तथास्तु" कहा।

(४५) सीताजीको नारदका आशीर्वाद

*एक बार जानकीजी गिरिजापूजनके लिये जाती थीं। नारदजीसे भेंट हो गयी। जानकीजीने प्रणाम किया। नारदजीने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया कि जाओ इसी वाटिकामें पहले-पहल तुम अपने पतिको देखोगी। इसपर जानकीजीने पूछा कि महाराज मैं उनको कैसे पहचानूँगी। तब नारदजीने कहा कि इस बगीचेमें जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय वही तुम्हारा पति होगा।

(४६) दशरथद्वारा सरवनका वध

†राजा दशरथ कौशल्याजीसे बोले कि पूर्वकालमें युवावस्थामें मृगयामें आसक्त रात्रिके समय महावनोंमें नदीके तीर मैं धनुष बाण ले घूमा करता था। एक बार जलमें महा गम्भीर शब्द हुआ, जिससे मैं समझा कि कोई हाथी पानी पीता है। मैंने शब्दवेधी बाण मारा और साथ ही वहासे आर्त्तस्वरसे यह

---

* सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।

† तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥

शब्द सुन पडा कि "हाय, मैं मारा गया।" तब मैंने समझा कि यह तो कोई मनुष्य है। मैं धीरे धीरे जलके पास चला। उस समय फिर यह शब्द सुन पडा कि "हा विधि! मैंने तो किसीका कोई भी अपराध नहीं किया, फिर किसने मुझे मारा? मेरे पिता-माता जलकी इच्छासे मेरी बाट जोहते होंगे। भयभीत हो मैं धीरे धीरे पास जाकर बोला कि 'हे स्वामिन्, मैं राजा दशरथ हू और अज्ञानके वश मुझसे यह अपराध हुआ है। अत मैं क्षमाके योग्य हू।' इतना कह गद्गद वाणी हो मैं उनके चरणोंपर गिर पडा, तब मुनि बोले 'हे श्रेष्ठ नृप, तुम मत डरो, तुमको ब्रह्महत्या न होगी, क्योंकि मैं तपपरायण वैश्य हू, परन्तु मेरे माता-पिता प्यासले व्याकुल हैं, उन्हें जल पिलाओ, शीघ्रता करो, नहीं तो पिताजी क्रोधित हो तुमको भस्म कर डालेंगे। हे महाराज, तुम उन्हे जल पिलाकर प्रणाम करके पीछेसे अपना अपराध कह देना तो तुम इस अज्ञात पापसे छूट जाओगे। महाराज, मेरे हृदयसे वाणको निकालो, मैं प्राण छोडता हू, मैं बहुत कालतक इसकी पीडा नहीं सह सकता।' यह सुन मुनिकुमारकी देहसे वाण निकाल, जलका भरा कलश ले मैं उसके माता पिताके समीप गया। दोनों अति वृद्ध अधे तथा भूखप्याससे व्याकुल थे मेरे पैरोंका आहट सुन उसके पिता बोले, पुत्र विलम्ब क्यों किया? हमको उत्तम जल दो और हे,वत्स, तुम भी पीओ, जब वह पी चुके, तब मैं धीरेसे उनके चरणोंपर गिरा और विनयपूर्वक मैंने सब समाचार कह दिये और उनसे दीन हो विनती की कि "हे मुनि, मैं वही मुनिघातक नराधम हू और उनकी आज्ञासे यहा आया हू। दया करके शरणागतकी रक्षा कीजिये।" यह सुन दोनों अति दु खित हो भूमिपर गिर पडे और शोकसे विलाप करते बोले, "जहाँ हमारा पुत्र है, वहीं हमें शीघ्र ले चलो। मैं उन अन्ध दम्पतिको उनके आज्ञानुसार घाटपर ले आया। अपने पुत्रको

दोनों हाथोंसे पकड़कर दम्पति विलाप करने लगे। उनकी आज्ञासे शीघ्र मैंने एक चिता बना दी और उन वृद्धोंने अपने मरे हुए पुत्रको गोदमें लिया और उसपर बैठ गये। मैंने उसमें अग्नि लगा दी और वे भस्म होकर स्वर्गको चले गये। चितामें बैठते समय उस वृद्धने मुझसे कहा, 'तुम भी ऐसे ही होगे, अर्थात् तुम भी पुत्र शोकमें मरोगे।

(४७) शवरीको मुनिका आशीर्वाद

* जब शवरीके गुरु परमधाम सिधारने लगे तो शवरीने प्रार्थना की कि मैं भी यह शरीर छोड़ परमधामको जाऊंगी। इसपर उन्होंने कहा कि तू अभी इसी कुटीमें रह। कुछ दिन पीछे यहां राम लक्ष्मण आवेंगे तब तू उनके दर्शन करके परमधाम जाइयो। तबसे शवरी बराबर उनकी बाट जोहती रही।

(४८) वालि, दुंदुभी और ताल

†दुंदुमी नामका दैत्य बड़े प्रचण्ड शरीरका अत्यन्त ही बलवान था। एक बार आधी रातको यह दैत्य किष्किन्धामें आया और बड़े भयकर नादसे वालिको ललकारा। महाक्रोधी वालि सुनकर अधीर हो गया। उसी समय बाहर जाकर सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और उसकी छातीपर लात धर सिर मरोड़कर अलग कर दिया और हाथमें ले उसके बोझका अनुमानकर पृथ्वीपर उसे सहज ही फेंक दिया। पर ऊंचेसे फेंके जानेसे वह एक योजनपर मतग ऋषिके आश्रममें गिरा और उस सिरसे बहुत सा रक्त बहा। यह देख ऋषिने क्रोधकर

---

* सवरी देखि रामु गृह आये। मुनिके वचन समुझि जिय भाये।

† इहां सापवस आवत नाहीं, तदपि सभीत रहउ मनमाहीं।
दुंदुभि, अस्थि ताल दिखराये, बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

शब्द सुन पड़ा कि "हाय, मैं मारा गया।" तब मैंने समझा कि यह तो कोई मनुष्य है। मैं धीरे धीरे जलके पास चला। उस समय फिर यह शब्द सुन पड़ा कि 'हा विधि! मैंने तो किसीका कोई भी अपराध नहीं किया, फिर किसने मुझे मारा? मेरे पिता-माता जलकी इच्छासे मेरी बाट जोहते होंगे। भयभीत हो मैं धीरे धीरे पास जाकर बोला कि 'हे स्वामिन्, मैं राजा दशरथ हू और अज्ञानके वश मुझसे यह अपराध हुआ है। अत. मैं क्षमाके योग्य हू।' इतना कह गद्गद् वाणी हो मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा, तब मुनि बोले 'हे श्रेष्ठ नृप, तुम मत डरो, तुमको ब्रह्महत्या न होगी, क्योंकि मैं तपपरायण वैश्य हूं, परन्तु मेरे माता-पिता प्याससे व्याकुल हैं, उन्हें जल पिलाओ, शीघ्रता करो, नहीं तो पिताजी क्रोधित हो तुमको भस्म कर डालेंगे। हे महाराज, तुम उन्हे जल पिलाकर प्रणाम करके पीछेसे अपना अपराध कह देना तो तुम इस अज्ञात पापसे छूट जाओगे। महाराज, मेरे हृदयसे बाणको निकालो, मैं प्राण छोड़ता हू, मैं बहुत कालतक इसकी पीड़ा नहीं सह सकता।' यह सुन मुनिकुमारकी देहसे बाण निकाल, जलका भरा कलश ले मैं उसके माता पिताके समीप गया। दोनों अति वृद्ध अंधे तथा भूखप्याससे व्याकुल थे मेरे पैरोंकी आहट सुन उसके पिता बोले, पुत्र विलम्ब क्यों किया? हमको उत्तम जल दो और हे वत्स, तुम भी पीओ, जब वह पी चुके, तब मैं धीरेसे उनके चरणोंपर गिरा और विनयपूर्वक मैंने सब समाचार कह दिये और उनसे दीन हो विनती की कि, "हे मुनि, मैं वही मुनिघातक नराधम हू, और उनकी आज्ञासे यहा आया हू। दया करके शरणागतकी रक्षा कीजिये।" यह सुन दोनों अति दुःखित हो भूमिपर गिर पड़े और शोकसे विलाप करते बोले, "जहां हमारा पुत्र है, वहीं हमें शीघ्र ले चलो। मैं उन अन्ध दम्पतिको उनके आज्ञानुसार घाटपर ले आया। अपने पुत्रको

दोनों हाथोंसे पकड़कर दम्पति विलाप करने लगे। उनकी आज्ञासे शीघ्र मैंने एक चिता बना दी और उन वृद्धोंने अपने मरे हुए पुत्रको गोदमें लिया और उसपर बैठ गये। मैंने उसमें अग्नि लगा दी और वे भस्म होकर स्वर्गको चले गये। चितामें बैठते समय उस वृद्धने मुझसे कहा, 'तुम भी ऐसे ही होगे, अर्थात् तुम भी पुत्र शोकमें मरोगे।

(९७) शबरीको मुनिका आशीर्वाद

*जब शबरीके गुरु परमधाम सिधारने लगे तो शबरीने प्रार्थना की कि मैं भी यह शरीर छोड परमधामको जाऊगी। इसपर उन्होंने कहा कि तू अभी इसी कुटीमें रह। कुछ दिन पीछे यहा राम लक्ष्मण आवेंगे तब तू उनके दर्शन करके परमधाम जाइयो। तबसे शबरी बराबर उनकी बाट जोहती रही।

(९८) वालि, दुंदुभी और ताल

†दुदुभी नामका दैत्य बडे प्रचण्ड शरीरका अत्यन्त ही बलवान था। एक बार आधी रातको यह दैत्य किष्किन्धामें आया और बडे भयकर नादसे वालिको ललकारा। महाक्रोधी वालि सुनकर अधीर हो गया। उसी समय बाहर जाकर सींग पकडकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और उसकी छातीपर लात धर सिर मरोडकर अलग कर दिया और हाथमें ले उसके बोझका अनुमानकर पृथ्वीपर उसे सहज ही फेंक दिया। पर ऊचेसे फेंके जानेसे वह एक योजनपर मतग ऋषिके आश्रममें गिरा और उस सिरसे बहुत सा रक्त बहा। यह देख ऋषिने क्रोधकर

* सबरी देखि रामु गृह आये। मुनिके बचन समुझि जिय भाये।

† इहा सापबस आवत नाहीं, तदपि सभीत रहउ मनमाहीं।
दुदुभि अस्थि ताल दिखराये, बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

शब्द सुन पड़ा कि "हाय, मैं मारा गया।" तब मैंने समझा कि यह तो कोई मनुष्य है। मैं धीरे धीरे जलके पास चला। उस समय फिर यह शब्द सुन पड़ा कि 'हा विधि! मैंने तो किसीका कोई भी अपराध नहीं किया, फिर किसने मुझे मारा? मेरे पिता-माता जलकी इच्छासे मेरी बाट जोहते होंगे। भयभीत हो मैं धीरे धीरे पास जाकर बोला कि 'हे स्वामिन्, मैं राजा दशरथ हूँ और अज्ञानके वश मुझसे यह अपराध हुआ है। अतः मैं क्षमाके योग्य हूँ।' इतना कह गद्गद वाणी हो मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा. तब मुनि बोले 'हे श्रेष्ठ नृप, तुम मत डरो, तुमको ब्रह्महत्या न होगी, क्योंकि मैं तपपरायण वैश्य हूँ, परन्तु मेरे माता-पिता प्याससे व्याकुल हैं, उन्हें जल पिलाओ, शीघ्रता करो, नहीं तो पिताजी क्रोधित हो तुमको भस्म कर डालेंगे। हे महाराज, तुम उन्हें जल पिलाकर प्रणाम करके पीछेसे अपना अपराध कह देना तो तुम इस अज्ञात पापसे छूट जाओगे। महाराज, मेरे हृदयसे बाणको निकालो, मैं प्राण छोड़ता हूँ, मैं बहुत कालतक इसकी पीड़ा नहीं सह सकता।' यह सुन मुनिकुमारकी देहसे बाण निकाल, जलका भरा कलश ले मैं उनके माता पिताके समीप गया। दोनों अति वृद्ध अंधे तथा भूखप्याससे व्याकुल थे मेरे पैरोंका आहट सुन उसके पिता बोले, पुत्र विलम्ब क्यों किया? हमको उत्तम जल दो और हे वत्स, तुम भी पीओ, जब वह पी चुके, तब मैं धीरेसे उनके चरणोंपर गिरा और विनयपूर्वक मैंने सब समाचार कह दिये और उनसे दीन हो विनती की कि "हे मुनि, मैं वही मुनिघातक नराधम हूँ और उनकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। दया करके शरणागतकी रक्षा कीजिये।" यह सुन दोनों अति दुःखित हो भूमिपर गिर पड़े और शोकसे विलाप करते बोले, "जहाँ हमारा पुत्र है वहीं हमें शीघ्र ले चलो। मैं उन अन्ध दम्पतिको उनके आज्ञानुसार घाटपर ले आया। अपने पुत्रको

दोनों हाथोंसे पकड़कर दम्पति विलाप करने लगे। उनकी आज्ञासे शीघ्र मैंने एक चिता बना दी और उन वृद्धोंने अपने मरे हुए पुत्रको गोदमें लिया और उसपर बैठ गये। मैंने उसमें अग्नि लगा दी और वे भस्म होकर स्वर्गको चले गये। चितामें बैठते समय उस वृद्धने मुझसे कहा, 'तुम भी ऐसे ही होगे, अर्थात् तुम भी पुत्र शोकमें मरोगे'।

(९७) शबरीको मुनिका आशीर्वाद

* जब शबरीके गुरु परमधाम सिधारने लगे तो शबरीने प्रार्थना की कि मैं भी यह शरीर छोड़ परमधामको जाऊंगी। इसपर उन्होंने कहा कि तू अभी इसी कुटीमें रह। कुछ दिन पीछे यहां राम लक्ष्मण आवेंगे तब तू उनके दर्शन करके परमधाम जाइयो। तबसे शबरी बराबर उनकी बाट जोहती रही।

(९८) वालि, दुंदुभी और ताल

†दुंदुभी नामका दैत्य बड़े प्रचण्ड शरीरका अत्यन्त ही बलवान था। एक बार आधी रातको यह दैत्य किष्किन्धामें आया और बड़े भयकर नादसे बालिको ललकारा। महाक्रोधी वालि सुनकर अधीर हो गया। उसी समय बाहर जाकर सींग पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया और उसकी छातीपर लात धर सिर मरोड़कर अलग कर दिया और हाथमें ले उसके बोझका अनुमानकर पृथ्वीपर उसे सहज ही फेंक दिया। पर ऊंचेसे फेंके जानेसे वह एक योजनपर मतंग ऋषिके आश्रममें गिरा और उस सिरसे बहुत सा रक्त बहा। यह देख ऋषिने क्रोधकर

---

* सबरी देखि रामु गृह आये। मुनिके बचन समुझि जिय भाये।

† इहां सापबस आवत नाहीं, तदपि सभीत रहउ मनमाहीं।
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये, बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

वालिको शाप दिया कि "आजसे जो तू यहां आवेगा तो तेरा मस्तक फट जायगा। और तू मर जायगा।" इसी शापके भयसे वालि उस पर्वतपर नहीं जाता था। सुग्रीवने उस दुंदुभी का पर्वताकार सिर दिखाया। श्रीरामजीने मुस्कुराकर पैरके अगूठेसे उस सिरमें सहज ही एक ठोकर मारी कि जिससे वह दस योजनपर जा गिरा। इस अद्भुत कर्मको देख सुग्रीवने रामचन्द्रकी सराहना की और कहा, "हे रघुवर, देखिये, यह सात तालके वृक्ष हैं, जिनके पत्ते वालि सहज ही हिलाकर गिरा देता है। यदि आप इन सातों वृक्षोंको एक ही वाणसे छेद दें तो मुझे वालिके मारनेका विश्वास हो जाय।" यह सुन श्रीरामचंद्रजीने धनुषपर वाण चढाया और छोड़ा। तब वह वाण सातों तालोंको भेद और पर्वतसे लगकर फिर तरकशमें पूर्ववत् आ गया। यह देख सुग्रीवको बडा अचरज हुआ।

(४६) हेमा और स्वयंप्रभा

*वानर सीताजीकी खोजमें बनवन घूमते घूमते बडे प्यासे हुए और कहीं पानी न मिला। भींगे पक्षियोंको एक गुफासे निकलते देख हनुमान्को आगे कर सब उसमें घुसे। कुछ दूर अंधकारमय मार्ग काटकर उसमें उन्हें एक बगीचा मिला, जिसमें एक सरोवर और फल फूलोंसे लदे वृक्ष और अच्छे वस्त्रादिसे भरे कई घर थे, परन्तु वहां कोई मनुष्य नहीं देख पडा। फिर एक घरमें एक तपस्विनी देख पडी जो ध्यान लगाये एक मैला वस्त्र धारण किये बैठी थी और बडी कान्तिमती थी। वानरोंने कुछ भक्ति और कुछ भयसे उसे प्रणाम किया। तब उसके पूछनेपर हनुमान्जीने रामकी कथा सीताहरण और खोजका सारा

*दूरिते ताहि सबन्हि सिर नावा। पूछे निज वृत्तान्त सुनावा।
तेहि सब आपनि कथा सुनाइ। मैं अब जाव जहां रघुराइ।

वृत्तान्त कहा और अन्तमें बोले कि प्यासके सताये, बिना आज्ञा हम इस विवरमें घुस आये।

यह सब सुन तपस्विनी बोली "हे हनुमानजी, 'हेमा' नामक विश्वकर्माकी कन्या बडी रूपवती है। उसने नृत्यकर महादेवजीको सन्तुष्ट किया। शिवजीने प्रसन्न हो उसे यह दिव्य नगर दे दिया। यह सुन्दरी अनन्तकालतक यहां रही। मैं 'दिव्य नामक गन्धर्वकी कन्या हूं और मेरा नाम 'स्वयंप्रभा' है और हेमासे मेरी मित्रता है। मुझे मोक्ष पानेकी इच्छा है। इसीसे मैं विष्णुकी आराधनामें लगी हूं। हेमाने ब्रह्मलोक जाते समय मुझसे कहा कि 'यहां कोई प्राणी नहीं रहता, तू यहां तप कर, त्रेतायुगमें दशरथके पुत्र होकर परमात्मा भूभार उतारनेको वनमें आवेंगे। उनकी स्त्रीकी खोजमें वानर तेरी गुफामें आवेंगे। उनका सत्कार करके रामजीके पास जाइयो और उनकी स्तुति कीजियो। उससे तू परमपद पा जायगी, सो हे वानरो, अब मैं वहां जाऊंगी। तुम लोग आंखें मूंद लो, आपसे आप गुफाके बाहर हो जाओगे।

(५०) नारदका कुंभकर्णको उपदेश

*जब कुंभकर्णको रावणने जगाकर बुलाया और वह आकर सभामें राजाको प्रणामकर आसनपर बैठा, तब रावण दीनवाणीसे बोला, "भैया कुंभकर्ण? मेरे ऊपर बडा संकट पडा है। दशरथके पुत्र रामने वानरोंकी सहायतासे मेरी सब सेना काट डाली, जान पडता है कि मेरा भी मृत्युसमय निकट आ गया, अब क्या करूं? हे बलवान्, मैंने तुझे इसलिये जगाया है कि तू इनका नाश कर।" तब कुंभकर्ण ठठाकर हँसा और बोला, "हे राजन्! पहले एकान्तमें जो एक दिन हेन

* नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा।
कहतेउँ तोहि समय निरबहा।

तरजनीमें पर्वतके शिखरपर मैं बैठा था मुझे नारदऋषि देख पड़े। मैंने उनसे पूछा कि हे ज्ञानवान्, आप कहांसे आते हैं! यह सुन, नारद बोले, "देवताओंका कुछ गुप्त विचार हो रहा था। वहीं मैं बैठा था और वहींसे आ रहा हूं। विचार यह था कि तूने और तेरे भाईने देवताओंको बहुत कष्ट दिये हैं। वे सब विष्णुके पास गये थे। और उन्होंने भक्ति पूर्वक उनकी बड़ी स्तुति कर प्रार्थना की कि रावण त्रीलोकीको कष्ट दे रहा है, आप इसका वध कीजिये। ब्रह्माजीने पूर्व ही यह संकेत कर रखा है कि इसकी मृत्यु मनुष्यसे होगी, सो आप मनुष्यका अवतार ले, इसे मारिये। इसपर महाविष्णुने "अच्छा" कहा है। उनका संकल्प कभी अन्यथा नहीं हो सकता, उन्होंने रघुकुलमें रामके नामसे अवतार लिया है, वह तुम सब का नाश करेंगे।" इतना कह नारदजी स्वर्गको चले गये। सो हे रावण, यह निश्चय समझो कि रामचन्द्र सनातन ब्रह्म हैं और श्रीसीताजी योगमाया हैं और यह हमको मुक्त करने आये हैं।

(५१) नलनीलको आशीर्वाद

*एक समय समुद्रके किनारे ऋषिलोग शालग्रामका पूजन कर जब आँख बंदकर ध्यान करने लगे तो बालक नलनीलने शालग्रामकी मूर्ति समुद्रमें फेंक दी। इसपर मुनि लोगोंने दयापूर्वक शाप दिया कि तुम लोगोंका छुआ हुआ पत्थर पानीमें न डूबेगा।

(५२) सीताजीका वनवास

श्रीरामचन्द्रजी राज करते थे उस समय एक दिन सभामें अनेक बातें हो रही थीं। गुप्तचरोंकी कथाके बीचमें महाराज

* नाथ नीलनल कपि दोउ भाइ।
लरिकाई रिषि आसिष पाई।

एकसे बोले "हे दुर्मुख, आजकल देशके वासी लोग मेरे और सीताके तथा भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और माता कैकेयीके विषयमें क्या कह रहे हैं, क्योंकि अविचारशील राजाका प्राय अपवाद होता है।" ऐसा सुन दूत हाथ जोडकर बोला कि "हे महाराज, पुरवासी आपकी प्रशसा करते हैं और दशग्रीवके वधकीवात विशेष किया करते हैं"। फिर श्रीरामचन्द्र बोले कि "यह नहीं, वे लोग जो जो कुछ भला या बुरा कहते हैं उसे नि शक होकर सविस्तर कहो, क्योंकि मैं भलेका आचरण और बुरेका परित्याग करूंगा।" ऐसा सुन भद्र फिर बोला कि "महाराज, जहा कुछ लोग बैठे रहते हैं वहा प्राय ऐसा कहा करते हैं कि 'राघवने जो समुद्रमें पुल बांधा यह बडा अद्भुत कर्म किया, जिसपरसे सम्पूर्ण कटकको भी उतार ले गये। ऐसा किसी बडेसे नहीं सुना कि कभी किसीने किया हो, तथा रावणको सपरिवार मारा यह भी बडा उत्कट कर्म किया, परन्तु रावणको मार और निन्दाका विचार न कर उन सीताजीको घर ले आये जिनको रावण गोदीमें उठाकर ले गया और जो राक्षसोंके वशमें इतने दिन रही। इन बातोंपर महाराजको क्रोध न हुआ। सो हे भाइयो, हमलोगोंको भी, अपनी स्त्रियोंके विषयमें ऐसाही सहना पडेगा क्योंकि राजाके अनुसार लोग व्यवहार करते हैं। ऐसा बहुत लोग कहते हैं।" यह सुन श्रीरामने अपने सुहृद्जनोंकी ओर देखकर कहा कि "क्या प्रजा ऐसा कहती है" ? ऐसा सुन जो लोग बैठे थे सबने हाथ जोडकर कहा कि पृथ्वीनाथ, यह बात ऐसी है इसमें सशय नहीं है।

सभा-विसर्जन होनेपर भगवान् रामचन्द्रने भाइयोंको बुलवाया। उन्हें गले लगा, आसनपर बैठनेकी आज्ञा दे सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया कि मेरे विषयमें ऐसा बीभत्स अपवाद हो रहा है जो मेरे मर्मोंको विदीर्ण किये डालता है। लक्ष्मण, तुम तो जानते ही हो कि रावण सीताको ले गया था सो उसे

मैंने नष्ट कर डाला। फिर मेरी ऐसी बुद्धि हुई कि राक्षसके घरमें रही हुई सीताको मैं अयोध्या कैसे ले जाऊं, सो भी तुम्हारे सामनेकी बात है कि सीताने अग्निमें प्रवेश किया और अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, इन्द्र, देवता, ऋषि सबने सीताको निर्दोष ठहराया तथा मेरी बुद्धिसे भी निर्दोष ठहरी तब मैं ले आया, पर लोकमें अपवाद है और निन्दित जन अधम लोकमें गिरा दिये जाते हैं। जबतक उनकी निन्दा शान्त न हो वहीं पड़े रहते हैं। सो इस अपवादपर मैं अपना प्राण दे दूंगा और सीता क्या तुम सबको भी छोड़ दूंगा। सो हे सौमित्रे, कल तुम सीताको रथपर चढ़ा गंगापार वाल्मीकिके आश्रमके समीप छोड़ आओ। पूर्वमें वह ऐसा कहती भी थी कि मैं गंगाजीके तटपर मुनियोंके आश्रमोंको देखूंगी सो मैं तुमको अपने प्राण और चरणोंकी शपथ दिलाता हूं कि इस कार्य्यके सम्बन्धमें मेरी कुछ विनती न करना और जो मुझे इस बातमें रोकेगा वह मेरा अहित होगा। ऐसा कह श्रीरामचन्द्र आंखोंमें आंसूभर सबको विदाकर आप अपने भवनमें चले गये।*

श्रीलक्ष्मणजी बड़े शोकके साथ रथ जोतवाकर जानकीको ऋषि-दर्शनके बहाने ले गये और वहां छोड़कर व्याकुल हो मूर्च्छित हो गये और फिर सीताके बहुत पूछनेपर सब वृत्तान्त कह दिया और बताया कि यह समीप ही महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम है। आप वहीं जाकर रहें। इसपर जानकीजी भी अति विह्वल हुईं और बोलीं कि हे सौमित्रे, मेरा जन्म दुःख भोगनेको ही हुआ है। अस्तु यदि मेरे परित्यागसे आपका अपवाद मिटे तो मुझे स्वीकार है और यह तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्ध है। आपको उचित है कि भाइयोंके समान प्रजागणसे व्यवहार करें जिसमें लोकमें कीर्ति हो। मुझे तो आपहीकी गति है। देखो मैं गर्भवती हूं। इतना सदेसा मेरा महाराजसे कहना और मेरी सासुओंसे मेरा प्रणामपूर्वक कुशल कहना।

तदनन्तर लक्ष्मण चले आये और वाल्मीकि मुनि बालकोंसे संदेसा सुन श्रीजानकीजीको आश्रममें ले गये और उन्हें तपस्विनी स्त्री-जनोंको सौंप दिया। लक्ष्मणजी आकर अत्यन्त खेदित हुए। तब सुमंतने समझाया कि सौमित्रे, एकबार चातुर्मास्यमें दुर्वासा मुनि वशिष्ठके आश्रममें गये और चार महीने वहीं रहे, उसी समय तुम्हारे पिता भी वहीं गये थे। एक दिन मध्याह्नमें कथा-वार्ता होते तुम्हारे पिताने पूछा कि हमारा वंश किस प्रकार चलेगा, राम कितना राज्य भोगेंगे। तब दुर्वासाने कहा कि देवासुर-संग्राममें दैत्योंसे भयभीत होकर देवगण भृगुपत्नीकी शरण गये और उन्होंने अभयदान दिया। तब विष्णुने क्रुद्ध हो चक्रसे भृगुपत्नीका सिर काट लिया। इसपर भृगुने क्रुद्ध हो शाप दिया, कि तुम मनुष्य देहमें अवतार लो और तुमने निरपराध मेरी स्त्रीको मारा सो तुमको भी बहुत कालतक स्त्रीका वियोग हो। ऐसा कह फिर वे विष्णुके प्रसन्नतार्थ स्तव करने लगे। तब विष्णुने दर्शन दे शापको भी अंगीकार किया। सो हे राजन्, वही तुम्हारे राम हुए हैं। यह ग्यारह हजार वर्ष राज करेंगे और इनके दो पुत्र होंगे सो हे लक्ष्मण, तुम सीताजीके विषयमें सोच न करो। वह समाचार तुम्हारे पिताने गुप्त रखनेको कहा था इससे मैंने अबतक इसे मनमें रखा। सो तुम भी भरत और शत्रुघ्नसे इसे प्रकाशित न करना। ऐसा सुन लक्ष्मण हर्षित हुए और साधु साधु कहने लगे।

तदनन्तर लक्ष्मण अयोध्या पहुंचे और रथसे उतर अति दीन भावयुक्त होकर रामचन्द्रके पास चले गये तो देखा कि रामचन्द्र नीचा मुँह किये आँखोंमें आँसू भरे अति दुखित सिंहासन पर विराजमान हैं। यह देख वे बोले कि महाराज मैं आज्ञानुसार जानकीजीको वाल्मीकि मुनिके आश्रमके निकट छोड़ आया हूं। परन्तु ऐसे नरश्रेष्ठको सीताके लिये ऐसा विषाद न करना

*सियनिंदक अघ ओघ नसाये, लोक विसोक बनाइ बसाये।

चाहिये, क्योंकि जिस संसारमें सयोग हुआ है,उसमें एक दिन वियोग भी होहीगा और आपके सताप करनेसे जिस अपवादके भयसे आपने पतिव्रता मैथिलीका त्याग किया है, वही फिर फैलेगा। ऐसा लक्ष्मणका वचन सुन रामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ठीक है तुम्हारे वाक्योंसे मैं सन्तुष्ट हुआ और मेरा सोच निवृत्त हुआ। इस प्रकार सीताकी निन्दाके अपराधको क्षमाकर पुरवासियोंको शोकरहितकर अपने पुरमें बसाया और अन्तमें मोक्ष प्रदान किया।

(५३) गणिका

*सतयुगमें परशु नामका एक वैश्य युवास्थामें श्वासरोगसे मर गया। उसकी नवयौवना स्त्री जीवन्ती पतिके मरे पीछे यौवनके मदसे व्यभिचार करने लगी और गृहस्थी और धर्म मार्गसे विरुद्ध हो गयी। स्वजनोंसे निन्दित हो उनसे दूर जाकर उसने वेश्या-वृत्ति धारण की। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गेका बच्चा बेंचता हुआ उसके द्वारपर आया। वेश्याने मोल ले लिया। उसे कोई सन्तान न थी,सुग्गेको उसने पुत्रवत् पाला। उसे रामनाम पढाया करती थी। इसी पढने-पढानेकी अवस्थामें दोनों एक ही समय मर गये और उस पावन नामोच्चारणके प्रभावसे तर गये।

(५४) अजामील

* कान्यकुब्ज देशमें एक दासीपति ब्राह्मण अजामील था जो दासीके संबंधसे दूषित और आचारभ्रष्ट हो गया था। कैदी पकडता, जुआ खेलता, चोरी तथा ठगी आदि निन्दित कर्मोंसे अपनी जीविका निर्वाह करता और प्राणियोंको पीडा दिया करता था। इसी प्रकारके कुकर्मोंसे अट्टासी बरसका बूढा हुआ। इसके दस बेटे थे। सबसे छोटेका नाम नारायण था।

* गनिका अजामिल गीध व्याध गजादि खल तारेउ घना।

माता-पिताको बड़ा प्यारा था। मूर्ख बुड्ढा अजामील उस बेटेमें ऐसा अनुरक्त था कि मृत्युको भी भूल गया। मरनेके समय भी उसका ध्यान उसी पुत्रमें था। यहांतक कि इसके प्राण लेनेको तीन यमके दूत आये और उन्हें सामने देख बड़े व्याकुलेन्द्रिय अजामीलने दूर खेलमें आसक्त पुत्र नारायणको मरते मरते जोरसे पुकारा। भगवान्‌के पार्षद वहाँ तुरन्त आये और उसके प्राणोंको हृदयसे खींचते हुए यमदूतोंको जबरदस्ती रोकने लगे। तब यमदूतोंने विष्णुके पार्षदोंसे कहा कि यमराजकी आज्ञाको रोकनेवाले तुम कौन हो। यह आजीवन महापातकी जीव अपने अत्याचारों और दुराचारोंका फल भोगने यमालयमें जा रहा है। पार्षद बोले कि "यह अजामील करोड़ों जन्मके प्रायश्चित्त कर चुका। यद्यपि इसने परवश होकर ही भगवान्‌का नामोच्चारण किया तो भी इसका प्रायश्चित्त हो गया क्योंकि शास्त्रविहित प्रायश्चित्तोंसे तो छोटे बड़े पाप नष्ट होते हैं, परन्तु भगवन्नामस्मरणमात्रसे ब्रह्महत्यादि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं और प्राणी जानकर वा बिना जाने, किसी प्रकारसे भी नामस्मरण करते ही शुद्ध हो जाता है, जैसे अग्निमें जाने वा बिना जाने छोटा या बड़ा कोई भी काष्ठ फेंक दो तो वह भस्म हो ही जायगा"। इस प्रकार भगवद्धर्म समझाकर विष्णुदूतोंने अजामीलको यमदूतोंके पाससे निकाल, मृत्युसे छुड़ा दिया। अजामील विष्णु पार्षदोंसे कुछ बोलनेकी चेष्टा करता था कि वे अन्तर्धान हो गये। इस व्यवहारको देख अजामीलको पश्चात्ताप हुआ। सबको छोड़ गंगातटपर आकर भगवद्धर्ममें प्रवृत्त हुआ। अपनी शेष आयु जब अजामील भोग चुका तब फिर वही चतुर्भुज चार विष्णु पार्षद उसे देख पड़े और वह शरीर छोड़ तद्रूप हो विमानपर चढ़ वैकुण्ठ गया।

—* इति शम् *—

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

देखिय रूप नाम आधीना
रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे
आवत हृदय सनेह बिसेखे
नाम रूप गति अकथ कहानी
समुझत सरस न जाति बखानी
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

नन्द-ग्रन्थमाला



१–श्रीमद्भगवद्गीता

मूल १६ पेजी बबइयाँ टाइपोंमें बड़ी सुन्दरतासे छापी गयी है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य केवल लागतमात्र रक्खा गया है। भक्तजनोंको मगाकर अवश्य प्रचार करना चाहिये। जिल्द सहित मूल्य ।=)

२–रामायण

तुलसीकृत रामचरितमानसका शुद्ध पाठ

जिल्द बँधी पोथी

केवल एक रुपयेमें

इस पोथीका पाठ सवत्-१७२१ का लिखी एवं इससे भी पुरानी अन्यत्र छपी पोथियोंसे मिलाकर शोधा गया है। ऐसी शुद्ध पोथी इतने सस्ते दामोंमें ऐसी उत्तम छपाई-बधाईकी और कहीं नहीं मिलती। सर्व साधारणके लाभके लिये और शुद्ध पाठके लिये हमने इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान् और साहित्य मर्म्मज्ञ अध्यापक श्री रामदास गौड़ से कराया है। गोसाईंजीका जीवनचरित्र भी है और अतमें कठिन शब्दोंका एक कोष दिया गया है। ६३५ पृष्ठ का मूल्य केवल लागतमात्र १)

३–विष्णु सहस्र नाम

नित्य पाठ करनेके योग्य पुस्तक मोटे टाइपमें चित्रों सहित छापी गयी है। दाम केवल लागतमात्र रखा गया है। मूल्य सजिल्द =) मात्र

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

देखिय रूप नाम आधीना
रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे
आवत हृदय सनेह बिसेखे
नाम रूप गति अकथ कहानी
समुझत सुखद न जाति बखानी
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी

राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम

नन्द-ग्रन्थमाला



१—श्रीमद्भगवद्गीता

मूल १६ पेजी बबइया टाइपोंमें बड़ी सुन्दरतासे छापी गयी है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य केवल लागतमात्र रखा गया है। भक्तजनोंको मगाकर अवश्य प्रचार करना चाहिये। जिल्द सहित मूल्य।=)

२—रामायण

तुलसीकृत रामचरितमानसका शुद्ध पाठ

जिल्द बँधी पोथी

केवल एक रुपयेमें

इस पोथीका पाठ सवत् १७२१ की लिखी एवं इससे भी पुरानी अन्यत्र छपी पोथियोंसे मिलाकर शोधा गया है। ऐसी शुद्ध पोथी इतने सस्ते दामोंमें ऐसी उत्तम छपाई बधाईकी और कहीं नहीं मिलती। सर्व साधारणके लाभके लिये और शुद्ध पाठके लिये हमने इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान् और साहित्य मर्मज्ञ अध्यापक श्री रामदास गौड से कराया है।

गोसाईंजीका जीवनचरित्र भी है और अतमें कठिन शब्दोंका एक कोष दिया गया है। ६३५ पृष्ठ का मूल्य केवल लागतमात्र १)

३—विष्णु सहस्र नाम

नित्य पाठ करनेके योग्य पुस्तक मोटे टाईपमें चित्रों सहित छापी गयी है। दाम केवल लागतमात्र रखा गया है। मूल्य सजिल्दका =) मात्र



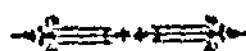
श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका

चौथा खण्ड

मानस-शब्द-सरोवर



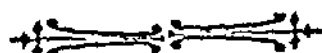
श्रीरामचरित-मानसकी भूमिका



चौथा खण्ड



मानस-शब्द-सरोवर



अंक—गिनती। गोदी। चिह्नांकित, लिखित, लिखा हुआ, मुद्रित।

अंकित—चिह्न किया हुआ।

अंकुर—अंखुआ, कोपल, फुनगी, (क्रिया) अंखुआ निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। 'उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।"

अंकुस—आँकुस। अंकुश हाथीको वशमें रखनेके लिये लोहेका एक टेढ़ा मेढ़ा हथियार।

अंग—शरीर।

अंगदादि—अंगद आदि वानर। विजायठ आदि गहने।

अंगना—स्त्री। गाइ।

अंगरी—कवच, जिरहबख्तर।

अंगव—(क्रिया) सहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

अंगवन—सहना, अंगेजना।

अंघ्रि—पैर, पाँव, वृक्षकी जड़।

अंचल—आँचर। दामन।

अंचव—(क्रिया) पीनेके अर्थमें। इसके सभी रूप 'चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

अंज—(क्रिया) अंजन लगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। अंजि=आँखोंमें लगाकर।

अँजोरी—उजाला।

अंड—अजा, गोल चीज, भूगोल ।
—कटाह, अर्धांड, ब्रह्माण्ड ।
अतर—भीतर (जैसे अतरहित अत-यामी, इत्यादि), भेद।
अतरजामी—अत करणका जानने वाला। अत करणको अपने वशमें रखनेवाला।
अतरधान—(अतर्धान) छिपना ।
अन्तरहित—(या अंतर्हित) असीम। जिसका अत न हो। गायव, गुप्त, अन्तधान ।
अतस्थ—अत करणमें बैठा हुआ ।
अंतावरि—आत, अँतडी।
अम्ब, अ वा—माता ।
अवक—(अम्बक) आख। नेत्रका।
अवर—वस्त्र,कपड़ा। आकाश। एक ओपधि ।
अंबरीप—एक राजाका नाम जो परम वैष्णव था ।
अमोज—कमल ।
अबु—जल ।—द, जल देनेवाले मेघ।—धर,जल धारण करने-वाला, मेघ।—धि, समुद्र ।—पति, जलका स्वामी, वरुण ।—निधि, समुद्र ।
अँवा—आवा, भट्टी जिसमें मिट्टीकी बनी चीजें पकायी जाती हे।
अंस—हिस्सा, भाग । अश ।
असिक—भागका, अशका ।
अकटक—शत्रु विना। वाधारहित काटा विना ।
अकथ, अकथनीय—जो कहा न जा सके।
अकन —(क्रिया) [आकर्ण] कान लगाकर सुननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनु रूप होते हैं।
अकरन—नाहक, बिना प्रयोजन।
अकरुन—करुणा रहित। वेदर्द। निठुर।
अकल—कलारहित। हाथ पाव आदि अङ्ग विना। न चलनेवाला।
अकसर—अकेला ।
अकाजेउ—मरन। काम बिगड़ा। काममें रुकावट पड़नेपर भी।
अकाम—जिसको कुछ चाह न हो। कामनाहीन।
अकाल्हें—ऋतुके विपरीत ।
अकिंचन—दीन, जिसके कुछ न हो।
अकुठ—कडा, अकुठा, नाशरहित वा तीक्ष्ण।
अकुल—निगोटा। कुलरहित।
अकुलाना—विकल हुआ। घवराया।
अखारा (अपारा)—नाच। अखाड़ा। रग भूमि। नाचकी जगह।

अखिल—सब। सकल।

अखड—समूचा, पूरा, नाश न होने वाला।

अग—पहाड़, जो चल न सके।

अगम—जहा पहुचना कठिन या असम्भव है।

अगनित—गिनतीमे बाहर। आगे।

अगर—सुगधित काठका एक भेद।

अगहुड—आगेकी ओर।

अगस्त—अगस्त्य ऋषिका नाम जो मैत्रावरुणिके वीर्यसे घड़ेसे उत्पन्न हुए थे। इन्हें पुलस्त्यका पुत्र भी कहते हैं, इनकी स्त्रीका नाम लोपामुद्रा था। विंध्यने जब अत्यन्त ऊचा होकर सूर्यका मार्ग रोकना चाहा था, यह उसके पास गये। उसने इन्हें साष्टाग दडवत् किया। अगस्त्यजीने उससे कहा कि तुम इसी तरह पड़े रहो जबतक कि हम दक्षिणसे लौट न आवें। विंध्य तबसे पड़ा हुआ है। कहते हैं कि अगस्त्यजीने समुद्रको एक चुल्लूमें पी डाला था। इन्हें कुभज, घटयोनि, घटज आदि भी कहते हैं।

अगाध—अथाह।

अगुन—निर्गुण ब्रह्म। दोष।

अगोचर—इन्द्रियोंकी गतिसे बाहर। अविषय।

अग्य—अज्ञानी मूर्ख।

अग्यात-बिना जाना हुआ।

अग्यान, मूर्खता।

अघ—पाप, दोष। दुःख।

अघटित-जो कभी नहीं हुआ या बना।

अघात—चोट।

अघाती—तृप्त होती। चोट वाला। चोट न करनेवाला।

अघारी—पापोंका शत्रु,दूरकर। दुःख दूर करनेवाला।

अचचल—स्थिर।

अचगरी—खटाइ, दुष्टता। मूर्खता।

अचल—पर्वत। स्थिर।

अच्छ—आख। स्वच्छ। साफ,सुदर। अक्षय।

अछत—होने, बेदाग, रहते।

अछय—जिसका क्षय न हो।

अज—जो जन्मा न हो। ब्रह्म। बकरा। ब्रह्मा।

अजगव—शिवका धनुष। (रामचरितमानसके शुद्ध सस्करणोंमें यह शब्द नहीं है)

अज्ञ—मूर्ख।—**ता**, मूर्खता।

अजर—जो सदा जवान रहे। बुढ़ौती बिना।
अजसी—निन्दित।
अजहुँ, अजहूँ—अब भी।
अजामिल—एक ब्राह्मण जो अत्यन्त नीच काम करता था। किसी महात्माके उपदेशसे उसने अपने पुत्रका नाम नारायण रखा। मरतीबेर अपने पुत्रको पुकारा। अन्त कालमें नारायण नामोच्चारणके प्रभावसे मुक्त हो गया।
अजित—जो जीता न गया हो।
अजिन—मृगछाला
अजिर—आगन।
अजै—अजेय। जो जीता न जासके।
अजेय—अजीत।
अट—(क्रिया) भ्रमण करने, घूमनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।
अटन—(क्रिया) भ्रमण। चलना। अटन, अटारी।
अट्टहास—ठठाकर हँसना,
अतक (आतंक)—डर। रोग। रोब।
अतनु—बिना शरीरके, कामदेव।
अतर्क—बेदलील। तर्कसे बाहर।
अति—बहुत, ज्यादा, अटकलसे बाहर।
अतिथि—मेहमान, पाहुन। अभ्यागत।
अतिसय, अतिशय—बहुत ही। बड़ा।
अतीत—सन्यासी, त्यागी। बीता, रहित। हुआ।
अतीव—अत्यधिक।
अतुल—तुलनारहित, बेअन्दाज।
अतुलित—निरुपम। अत्यधिक।
अत्र—यहा। इस विषयमें।
अत्रि—एक ऋषिका नाम जो ब्रह्माजीके पुत्र थे। अनुसूया इनकी स्त्री थी, चित्रकूटमें स्थान था। रामचन्द्रजी चित्रकूट छोड़ती बेर इनसे मिले थे।
अत्रिप्रिया—अनुसूया।
अथ—तब, तदनतर।
अथयउ—अस्त हो गया।
अथाई—बैठक।
अदभ्र—पूरा, सम्पूर्ण।
अदभुत—अचरज।
अदिति—देवमाता, कश्यपकी स्त्री।
अदेय—जो नहीं दिया जाय।
अदृष्ट—नहीं देखा गया, भाग्य।
अदृश्य—गुप्त। छिपा हुआ।

अद्रि—पहाड़, गिरि ।

अद्वैत—एक, भेद रहित, जिसके समान दूसरा नहीं ।

अध—नीचे या तले ।

अधर—नीचेका होंठ, अन्तर, मध्य, लघु ।

अधगो—गुदेंद्रिय । मलद्वार ।

अधार (आधार)—सहारा ।

अधिकारी—अधिकार योग्य ।

अधिगत—ऊपर गये हुए, स्वर्गीय, मुक्त ।

अधिप—राजा ।

अधिवास—टिकनेका स्थान, रहना, निवासकी जगह ।

अधीस—स्वामी, मालिक ।

अधोमुख—नीचे मुखवाला, सलज्ज ।

अनग—शरीर बिना । कामदेव ।

अन अहिवात, विधवपन ।

अनइस—बुरा । निकम्मा । बुराइ, खुटाई ।

अनइसे—बुराईसे, खुटाइमे ।

अनक (आनक)—मृदग । छोटा । नीच ।

अनख—ईर्षा, द्वेष । क्रोध ।

अनघ—पापरहित, पवित्र । दुःख रहित । शोकरहित ।

अनट—अनुचित, गाठ, ऐठ, छल । अन्याय ।

अनत(अन्यत्र)—दूसरे ठौर । इसके सिवा । फिर । सीमा, हद । और कहीं । (जैसे "पुनि अनत निहारे")

अनन्य—जिसके दूसरा भरोसा न हो । दूसरा नहीं ।

अनपायिनी—नाशरहित,नित्य, दृढ दुःख रहित ।

अनभिज्ञ—अनजान, नादान ।

अनमन, अनमनि (स्त्री)—उदास । बेमनकी । अन्यमनस्क ।

अनयन—बिना आखका, अन्धा ।

अनयास (अनायास),—आपसे आप, बिना परिश्रम । बिना जतन ।

अनल—अग्नि वह्नि, दहमुख, हुताशन, पावक ।

अनवद्य—दोष बिना ।

अनहित—शत्रु । बुरा । बुराई ।

अनादि—आदि रहित । जो जन्म न ले ।

अनामय—नीरोग, भला ।

अनामिका—चौथी उगली, मध्यमा और कनिष्ठिकाके बीच वाली उगली ।

अनारम्भ—सावधान । गर्वहीन । निश्चेष्ट ।

अनिंदिता—जिसकी निन्दा न हुइ हो ।

अनिमा (अणिमा)-अष्टसिद्धियोंमेंसे एक जिसके द्वारा अत्यन्त छोटा रूप धारण कर सकते हैं।
अनिप-सेनापति।
अनिल—वायु, बयार, बतास, पवन मारुत, मरुत, हवा, वात।
अनिर्वाच्य— जो कहा न जाय।
अनिस—बराबर निरन्तर।
अनी—नोक, किनारा, सेना, क्रोध।
अनीक-सेना, कटक, समूह, सेनाका।
अनीस,(अनीश)—ईश्वर नहीं। अनीश्वरवादी। जीव।
अनीह—चेष्टारहित, अनिच्छा। योद्दा। तृष्णा रहित। ब्रह्म।
अनु—पीछे, अधीन, समीप। [जैसे "अनुकहउ" पीछेसे कह दो।] आगे या पीछे। अत्यन्त छोटा।
अनुकथन—बराबर कहना, चर्चा। दोहराना। फिर कहना।
अनुकरन—नक्ल, ज्योंका त्यों करना।
अनुकूल-प्रसन्न। अनुसार।
अनुग-अनुगामी, पीछे चलनेवाला।
अनुगामी—आज्ञाकारी।
अनुग्रह-दया। कृपा।
अनुचर-नौकर, सेवक। दास।
अनुचरी-दासी।
अनुज-छोटा भाई, पीछेसे जनमा हुआ।
अनुजा-छोटी बहिन।
अनुदिन-प्रतिदिन, दिनदिन, सदा।
अनुभव—यथार्थ ज्ञान, विचार। तजरबा। प्रत्यक्ष।
अनुभवति—जानती है। तजरबा करती है। समझती है। प्रत्यक्ष करती है।
अनुमत—सहमत, एकराय।
अनुमान—विचार, अनुसार, प्रमाण, अंदाज।
अनुमानी—नैयायिक। समझकर। अन्दाजा किया।
अनुमोदन—प्रशंसा।
अनुराग—प्यार, मुहब्बत, अल्प ललाई।
अनुरूप—तुल्य, सदृश। अनुसार, लायक।
अनुरोध—रोक। अनुराग, उपकार। अनुसार। आग्रह।
अनुवाद-बार बार कहना। दुहराना।
अनुसंधान—कामना। बन्दोबस्त। खोज।
अनुसर-(क्रिया) अनुसार या पीछे चलनेके अर्थमें। अनुसरइ अनुसरत, अनुसरा, अनुसरि, अनुसरेउ, इ० "चढ़"की तरह।

अनुसासन—आज्ञा ।
अनुसूया—अत्रिमुनिकी भाया ।
अनुहर—(क्रिया) तद्रूपहोने, वैसा ही होने, अनुकूल होनेके अर्थमें । ठीक "अनुसर" की तरह । लायक ।
अनूप
अनुपम } उपमारहित ।
अनृत—झूठा, मिथ्या ।
अनेक—बहुरूप ।
अनैसे—टेढ़े, बुरी नजरसे । कुदृष्टिसे ।
अन्य—और, दूसरा ।
अन्यथा—उलटा, भिन्न, और तरह पर (जैसे, "करइ अन्यथा अस नहिं कोइ)
अन्वय—सम्बन्ध, वंश, कुल ।
अन्वह—निरन्तर, हमेशा, ओघ ।
अपकार—निरादर ।
अपकीरति—अपयश, निंदा ।
अपगा—नदी, दरिया ।
अपडर—झूठा डर वा निज ओरसे भय ।
अपत-पापी, निर्लज । प्रतिष्ठारहित ।
अपभय—अपना डर, झूठ डर । नीच भय ।
अपनी भांति—अपनी ओरसे ।
अपर—दूसरा, बेगाना । (बोली अपर कहेहु राखि नीका)। और ।
अपरना (अपर्णा)—उमा, अम्बिका जगदम्बा, माया, गौरी, पारवती, भवानी, गिरितनया, गिरिजा, सती, शैलकुमारी, शिवा ।
अपरिचित—अनजाना ।
अपरिमित—बेप्रमाण, बेहद ।
अपलोक—अपयश । बदनामी ।
अपवर्ग—मोक्ष, मुक्ति ।
अपवाद, अपबाद—निन्दा, बुरा भला कहना, अपजस ।
अपहर—(क्रिया) छीननेके अर्थमें "चढ" की तरह ।
अपहारी-छीननेवाला । नाश करने वाला ।
अपान—अपना, अपनपौ । एक वायुका नाम ।
अपि—भी, निश्चय ।
अपीह—यह भी ।
अपेल—अचल । जो हटाया न जा सके ।
अप्रतिहत—बिनारोक, अपीड़ित ।
अबध्य—न मरन योग्य, बध न करने योग्य ।
अबला—स्त्री ।

अबाधा—बिना बाधा, अतर्क ।
अबिरल—सघन ।
अब्ज—कमल ।
अभग—बिना टूटा, समूचा ।
अभि—सब ओरसे ।
अभिअंतर(अभ्यंतर)—अन्दरका । भीतरी ।
अभिज्ञ—प्रवीण, ज्ञानी, समझदार ।
अभिजित—एक नक्षत्रका नाम । जीता हुआ ।
अभिनन्दन—सेवा, अनुमोदन, प्रशंसा, स्तुति । सराहना ।
अभिमत—वाछित, चाहा हुआ ।
अभिमान—घमंड, अकड़ ।
अभिराम—सुंदर वा सुखद ।
अभिषेक—जल छिड़कना वा स्नान ।
अभीरू—निडर, निर्भय ।
अभीष्ट—वाछित ।
अभूतरिपु—शत्रु रहित ।
अभेद—भेद रहित, एक ही, समान, एकसा ।
अभ्यागत—पाहुन, आया हुआ, नित्य न आनेवाला, भिक्षुक ।
अभ्र—आकाश, मेघ ।
अमर—देवता, जो कभी न मरे ।
अमर्ष (अमर्षण)—क्रोधी । सहने वाला । क्रोध, रंज ।
अमराई—आमकी बारी, बारी ।
अमरावती—इन्द्रकी पुरी, स्वर्ग ।
अमान—मान रहित वा प्रमाणसे परे वा बाहर ।
अमाना—अभिमान न करनेवाला, उदासीन ।
अमानुष—जो मनुष्यसे न हो सके ।
अमित—बहुत, अनन्त ।
अमिय, अमी, अमृत—पीयूष, सुधा, जो नहीं मरा ।
अमिय मूरि—सजीवन जड़ी ।
अमृषेव—सत्यकी नाइं, सचके जैसा ।
अमेय—अनुपम, अतुल, वेपरमान ।
अमोघ—सफल, जो कभी निष्फल न हो । अचूक । रामबाण ।
अय—लोहा, वज्र, संबोधन ।—मय, लोहेका, लौहमय । वज्रका बना ।
अयन—गृह, घर, सूर्यका भाग ।
अयान—लड़काई, मूर्खता । मूर्ख अनजान ।
अयुत—दस हजार ।
अरगजा—शरीरमें लगानेका एक सुगन्धित लेप जिसमें श्वेत चंदन (४ भाग) तेज पत्ता (एक भाग) नेत्रवाला (२ भाग), खस (४ भाग), नाग-

केशर (३ भाग), अगर (४ भाग) कपूर (४ भाग) बेरकी गुठली (२ भाग) इत्यादि विविध सुगन्ध गुलाब और केवड़े के अर्कमें पिगे रहते हैं। यहां नुमनेका एक उदाहरणमात्र दिया गया।

अरथ (अर्थ)—धन, कारण, हेतु काम्य।

अरधग—आधा शरीर।

अरधजल—भरतीवार।

अरगाई (अरगानी)—अलगकी, जुदा हुई। चुप हुई।

अरति—वैराग्य, नहीं प्रीति, विरक्ति।

अरध—आधा।

अरनि (अरणि)—काठ जिसे रग इसेमे आग निकलती है।

अरनो—आग मथनेकी लकड़ी।

अरन्य (अरण्य)—वन, कानन जगल।

अरविन्द—नेरो, "कमल"।

अरड—रेंड वृक्ष।

अरम (आरम्भ)—प्रारम्भ, आदि। शुरू।

अराती—वैरी, शत्रु।

अरि—वैरी, शत्रु।

अरिमर्दन—शत्रुनाशक, शत्रुघ्न, भानु प्रतापका छोटा भाई।

अरु—और।

अरुझि—उलझ कर।

अरुन (अरुण)—लालरग, सूर्यका सारथी। प्रातःकालका सूर्य।

—चूड, सिखा, कुक्कुट, मुर्गा।

अरुनारे, लाली लिये।

अरुनोदय, भोर, तड़का।

अरुनोपल, लाल, मानिक, लाल पत्थर।

अर्क—मदार वृक्ष। सूर्य्य।

अर्चन—पूजन।

अर्णव—सागर।

अर्पा—दिया। "अर्प" धातु दे डालनेके अर्थमें आती है। इसके सभी रूप "चढ़" धातुर अनुरूप होते हैं।

अर्भक—बच्चा।

अलक—बालोंके पट्टे, काकुल।

अलख (अलक्ष)—जो न देख पड़े। अगोचर, ईश्वर।

अलपित—जो नपा नहीं गया।

अलच्छि—अलक्ष्मी।

अलप (अल्प)—कुछ, थोड़ा, किंचित, छोटा।

अलान—हाथीके बांधनेका रस्सा। सिकड़।

अलि—भँवरा, सखी ।
अलिन्द—भौंरा।
अलिन—भौंरी ।
अलिनी—भमरी, सखिया ।
अलीक—झूठा, असार ।
अलीहा—झूठा ।
अलुझि—उलझकर ।
अलोला—स्थिर ।
अलौकिक—अनोखा, अद्भुत, दिव्य असाधारण, लोकसे भिन्न ।
अलकार—गहना, भूषण । शोभा, साहित्यका एक अग ।
—**कृत**, शोभायमान ।
अलङ्कृति—सजावट ।
अव—नीचे ।
अवकलित—निश्चित,दृढ ।
अवकीर्न (अवकीर्ण)—जिसका व्रत या नियम विगड जाय, भ्रष्टनियम । खोदा हुआ ।
अवगति—ज्ञान ।
अवगथ—अपवाद, बुराई, निंदा ।
अवगाह (अवगाहा)- स्नान, डुबकी । अथाह, अति गहरा, अनत ।
अवग्या। (अवज्ञा)—अपमान । न मानना । अनादर ।
अवघट (औघट)—अडबड, ऊँचा नीचा ।
अवचट (औचट)अवचक,अचानक ।
अवडेर (क्रिया)—त्यागने, धोखा देने, और छोड़नेके अर्थमें। रूप "चढ़" धातुकी तरह ।
अवढर—नीचपर भी दयालु, विना विचार दया करनेवाला ।
अवतस—शिरोभूषण, चूड़ामणि। कानका भूषण ।
अवतर— (क्रिया) नीचे उतरने, उतारने, लेने, अवतार लेनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप ।
अवदात—निर्मल, शुभ्र, सफेद ।
अवद्य—अधम,नीच, न कहने योग्य
अवध—अयोध्या ।
अवधि—हद्द । करार। प्रतिज्ञाकी सीमा । देश कालकी सीमा।
अवधूत—एक प्रकारके साधु,जटिल।
अवनत—झुका हुआ ।
अवनि—पृथ्वी, भूमि ।—**प**, राजा । —**परवनि**, रानी ।—**नीस**, राजा ।
अवयव—हाथ पेर आदि शरीरके अग, किसी वस्तुके विधायक अग ।
अवर्त्त (आवर्त्त) चक्र । घुमाँव । जलका घुमाव जिसे भँवर कहते हैं । राजा आदिका

एक प्रकारका गोल घर देशका भाग।

अवराध—(क्रिया) सेवा, पूजा, करनेके अर्थमें अवराधहु अवराधत, अवराधा, अवराधि, अवराधेउ इत्यादि "चढ़" धातुके अनुरूप।

अवराध्य—सेवक।

अवरेख—(क्रिया) लिखन, निशान, करनेके अर्थमें। अवरेखइ, अवरेखत, अवरेखा, इत्यादि "चढ़" धातुकी तरह।

अवरेखी—लिखी।

अवरेब—कुपच। पेचपाचकी रचना।

अवली—कतार, पंक्ति।

अवलोक—(क्रिया देखनेके अर्थमें) अवलोकइ, अवलोकत, अवलोका, आदि "चढ़" की तरह।

अवलोकय—देखिये।

अवसेषा—बाकी। बचा।

अवशेष—बाकी बचा हुआ, जो बचा।

अवसान—अन्त, नाश, मरण।

अवसि—अवश्य, निश्चय करके। जरूर।

अवसेरि—देर। प्रतीक्षा। उत्कंठा।

अवा—आवा, पजावा।

अवास—आवास, घर, मंदिर।

अबाधी—सुख रूप। बाधाहीन।

अवारी—दुकान। पाती। पंक्ति।

अविकल—ज्योंका त्यों।

अविकारी—विकार रहित। कामादि छः विकार जिसमें न हों।

अविगत—व्यापक।

अविचल—स्थिर।

अविच्छिन्न,अविछीन—निरन्तर। सवदा, जो कभी न टूटे।

अविद्या—मूर्खता, अज्ञान, मोह, माया।

अविनय—ढिठाइ।

अविनासी(अविनाशी)—जिसका कभी नाश न हो।

अविरल—निरन्तर, सघन।

अविवेक—अज्ञान।

अबुध—मूढ़। नासमझ।

अविरोधा—अनुसार। बिना विरोध। अनुकूल।

अव्यक्त—प्रकृति, ब्रह्म, गुप्त, छिपा हुआ।

अव्याहत—न रोकने योग्य, जिसकी कोइ रोक न हो।

अष्टादस—अठारह भार वनस्पति

अस—ऐसा, इस प्रकारका।

असगुन—बुरा चिह्न।
असन—आहार, भोजन।
असनि—वज्र, कुलिश।
असम-जिसके वरावर कुछ न हो। नाबराबर, विषम,ऊबड़खाबड, टेढा।
असमय—विपत्ति समय या अनवसर। बे मौका।
असमसर—नाबराबर या असमान सख्याके और टेढे मेढे लगनेवाले वाण। कामदेव जो पाच वाण रखता है।
असमजस—आगा पीछा। दुविधा। बेमेल। ठीक न बैठनेवाला।
असम्भावना—अनिश्चय। अनहोनी बात। सन्देह।
असमत—प्रतिकूल।
असहाई—सहाय विना।
असाधि—असाध्य। काबूसे बाहर। जो किया न जा सके।
असि—तलवार। ऐसी। है।
असित—काला, स्याम।
असिव- अमगल।
असीम—सीमा रहित, बेहद।
असीस—आशीर्वाद देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते है।
असोक—शोक रहित, प्रसन्न। एक वृक्षका नाम। जिसका पंचाग स्त्री रोगोंमें लाभ कारी होता है। उत्तेजक है। कहते हैं कि कुमारियोंके चरण स्पर्शसे फूलता है।
असुर—दैत्य
असुरसेन-गया तीर्थ या दैत्य सेना। गया नामक असुर।
असौच—अपवित्रता।
अस्व- घोड़ा।
अस्विनीकुमार —सूर्य्यके पुत्रोंका नाम। विबुध वैद्य,देववैद्य।
अस्तुत—स्तुति, भजन, सराहना।
अस्थि—हड्डी, हाड।—मात्र,हाड भर, हड्डी ही बची हुइ।
अह—खेद, आश्चर्य। अहकार, कष्ट, दिन।
अह—[क्रिया,प्रस्तुत रहने या विद्यमान रहनेके अर्थमें]।
१-हो [अस=अह] धातु।
२-होइ [अहइ=है]।
३-होउ। ४ होत। ५ होतिउ।
६-होनहार। ७ होव।
८ होबउ।९-होसि[अहसि=तू है] १०—होहि।

[अहहि, हहि] ११ होहु [अहहु=हो]

अहमिति—हमी, अहकार। मैं इतना बड़ा हू, ऐसा भाव।

अहह—खेद, आश्चय, अतिदु ख। बडा कष्ट है। अहाहा, (प्रेममें) "अहह धन्य लछि-मन बडभागी"। हा। (शोक में) "अहह बधुतें कीन्ह गोटाइ"।

अहि—सर्प—**नी**, सर्पिणी।—**प**, —**पति** सर्पराज, शेषनाग। —**भुज**, सपकीसी भुजावाले, मप खानेवाले। मोर, गरुड।—**राज** मप राज। शेषनाग।

अहीस (अहीश) नागराज, शेषनाग।

अहिवात—सोहाग। सौभाग्य।

अहेर—मृगया, आखेट, शिकार।

अहेरी—शिकारी।

अहो—हे (आदर सूचक)। "अहो कवन मैं परम कुलीना" अचरज, भाग्य दुःख, हर्ष-सूचक।

आ

आक—निश्चय।

आकुरे—अकुर।

आकर—खानि

आकुल—दु खी, व्याकुल, घबराया हुआ।

आकृति—स्वरूप, ढाचा, आकार।

आखर—अक्षर, वर्ण।

आगर—चतुर, सयाना, पूर्ण।

आगरी—कोठरी, चातुरी, नागरी, पूरिता। मुख्य।

आगार—घर।

आगिल—होनिहार।

आचर—(क्रिया) चलने या आ-चरण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" के रूपोंकी तरह होते हैं।

आचरज—आश्चर्य, अचम्भा।

आचरन—चलन, करतूत रीति।

आचरनी—करतूत।

आचार—आचरण।

आचार्य-वेदकी व्याख्या करनेवाला

आतप—ताप, तपन, धूप। घाम।

आतनोति—विस्तृत करता है, फैलाता है।

आतमहन (आत्महन)—अपनी जान मारनेवाला।

आतुर—जल्दबाज,घबराया हुआ।

आदिकवि—वाल्मीकि मुनि।

आदेस—(आदेश) आज्ञा।

आधीन—आज्ञाकारी, वशीभूत।

आन—और, दूसर। मर्याद। शपथ। लाकर। क्रिया, लानेके अर्थमें, 'चड' धातुके अनुरूप।
आनबी—ले आना।
आनन—मुह, मुख।
आपद—आपत्ति, दुःख।
आपन्न विपत्ति सहित।
आभीर—अहीर, गोप।
आमलक—आवला, औंरा।
आमिष—मास, अखाद्य वस्तु।
आयत—चौड़ा, बड़ा, विशाल।
आयतन—घर।
आयसु—आज्ञा।
आयु, आई—वय, उम्र।
आयुध—हथियार। शस्त्र।
आरज—ससुर। श्रेष्ठ।
आरत—(आर्त्त) अत्यन्त दुःखी।
आरति—अति प्रीति।
आरती—नीराजन, दीपक जलाकर सत्कारार्थ सामने घुमाना।
आरव—आहट।
आराती—शत्रु।
आराधन—सेवा, उपासना।
आराध्य—सेव्य, उपास्य, सेवाके योग्य। देखो "अवराध"।
आराम—बगीचा। सुखदाता।
आरुढ—चढ़ा हुआ।
आलबाल—थाला, घेरा।
आलय—घर, गृह।
आलस—(आलस्य), सुस्ती।
आली—सखी, सहेली। लकीर।
आवाहन—मन्त्रद्वारा देवताओंको बुलाना। बुलानेकी क्रिया।
आस्रमी—ब्रह्मचारी गृहस्थ आदि।
आस्रित—आधीन, सेवक।
आसक्त—अत्यधिक लिप्त।
आसा—आसरा। दिशा।
आसावसन—नङ्गा, दिगम्बर, महादेवजी।
आसिष—आशीर्वाद, वर, दुआ।
आसीन—बैठा।
आसु—जल्दी, तत्काल।

इ

इन्द्रजाल—नटविद्या, छल, कपट।
इन्द्रजीत—मेघनाद, जिसने इन्द्रको जीत लिया था।
इन्द्री—हाथ, पैर, मुख आदि १० इन्द्रियोंकी शक्तियां।
इन्द्रीद्वार—हाथ पैर, आख नाक आदि इन्द्रियोंके अंग।
इंदिरा—रमा, मां, लक्ष्मी।
इन्दु—चन्द्रमा।

इंधन—जलावन, लकड़ी उपली आदि ईंधन।
इक अङ्ग—एक पलड़ा।
इच्छाचारी—मनमौजी, मनके अनुसार घूमनेवाला।
इच्छित—चाहा हुआ, वाछित। अनइच्छित—बे चाहा।
इत—इधर, येहां, अवरो, यहांमे।
इतउत—इधर उधर, इधर उधरमे (जैसे, "इतउत चितइ पुष्टि मालीगन।")
इतराई—अभिमान करके, निरादर करके, ऐंठमे। "इतरा" क्रिया "रिसा" के अनुरूप।
इति—इसतरह, इतना, समाप्त।
इतिहास—पुरानी कथा, समाचारादि
इदम्—यह।
इदमित्थम्—यह इसी तरह है, यह ऐसा ही है। ("इदमित्थ कहि जायन सोई।")
इमि—ऐसे, यों।
इव—जैसे।
इष्टदेव—पूज्य देवता।
इह—यहां, यह, इस, इस लोकमें।

ई

ईति—उपद्रव, आपदा। १ अत्यन्त वर्षा, २ सूखा पड़ना, ३ टीड़ीमे नाश, ४ चूहोंसे नाश, ५ चिड़ियोंसे बरबादी, ६ लूट चढ़ाइ, ७ महामारी यह सात ईति हैं
ईंधन—लकड़ी आदि जलावन।
ईरषा—दाह, द्रोह।
ईस—ईश्वर, राजा, शिव।
ईसान—शिव।
ईषना—(ईषणा) लालसा, चाह। वासना।
ईहा—इच्छा। (अनीह-इच्छा रहित)

उ

उअ—(क्रिया) उदय होने, निकलनेके अर्थमें। उअइ, उअत, उआ, उइ, उयेउ इत्यादि "चढ़" की तरह।
उकठ—गठीली, टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी।
उकस—(क्रिया) ऊंचे होने, उठनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप।
उक्ति—वचन,
उग्र—तीव्र, प्रखर।
उघार—खोलनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप।
उचाट—उचाटन,
उच्च—ऊंचा, श्रेष्ठ।
उचित—योग्य, मुनासिब।

उछंग—गोद ।
उजरे—उजड़े, नष्ट होनेसे । उजले, सफेद । "उजा" क्रि० उजड़के अर्थमें ।
उजागर—प्रसिद्ध ।
उजियार—उजेला ।
उजेनी—उज्जयिनी । उज्जैन, मालवा देशकी राजधानी सात पुरियोंमेंसे एक जिसे अवन्तिकापुरी भी कहते हैं । महाकालेश्वर शिवकास्थान और प्रसिद्ध विक्रमादित्यकी राजधानी ।
उडु—तारा ।
उतंग—ऊंचा । उत्तुंग ।
उत—उधर, उस ओर ।
उतकरष—बड़ाई । ऊंचे उठानेकी क्रिया ।
उतकण्ठा—बड़ी चाह, तीव्र अभिलाषा ।
उतपति (उत्पत्ति)—जन्म, पैदाइश ।
उतपात—उपद्रव ।
उतसव—उछाह ।
उदक—जल ।
उदघाटी—खोली, उघारी, उदयाचलकी घाटी ।
उदधि—समुद्र ।
उदभव (उद्भव)—जन्म ।
उदय—प्रकाश, निकलना, चमक ।
—**गिरि**, पहाड़ जिसमें सूर्य देवता निकलते हैं ।
उदर—पेट ।
उदरवृद्धि—जलोदर रोग ।
उदबेग (उद्वेग)—उत्कंठा, भय, क्षोभ
उदार—दाता ।
उदास—बेपरवाह, निरपेक्ष, तटस्थ, बेमनका, रंजीदा ।
उदासी—सन्यासी, उदासीन (देखो)
उदासीन—शत्रुमित्रभाव रहित, तटस्थ, बेपरवाह, विरक्त ।
उदित—निकला हुआ ।
उदगिरि—उदयाचल ।
उद्यम—पेशा ।
उप—ऊपर ।
उपकार—इहसान, निहोरा, भलाई । (प्रत्युपकार=बदला ।)
उपचार—उपाय, सेवा, चिकित्सा, इलाज, यत्न ।
उपज—(क्रिया) पैदा होनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप । उपजा= क्रिया पैदा करनेके अर्थमें "चढ़ा" क्रियाके अनुरूप ।
उपदेस—नुसखा । औषध या रस बनानेकी विधि । मंत्र । नसीहत । नियम ।
उपद्रव—बखेड़ा । उत्पात ।

उपधान—तकिया, सिरहाना। चादर, दुपट्टा।
उपनिषद्—वेदका रहस्यभाग। वेदान्त।
उपपातक—छोटा पाप।
उपवन—बगीचा। क्रीडावाग।
उपबरहन (उपवर्हण)—तकिया,
उपमा—बराबरी।
उपरना—दुपट्टा। चादर।
उपराग चन्द्रमा या सूर्यका ग्रहण। निन्दा। यन्त्रणा।
उपाय, उपायो—उपाय। तदबीर। पैदा किया। रचा।
उपराजा—उत्पन्न किया, रचा। "उपराज" क्रिया पैदा करनेके अर्थमें "चढ" के अनुरूप होती है।
उपल-पत्थर,ओला। बहुमूल्य पत्थर।
उपवास, उपास—भूखे रहनेकी क्रिया। भूखे रहनेका व्रत।
उपवीत—जनेऊ,यज्ञसूत्र।
उपहार—भेंट।
उपहास—ठट्ठा।
उपाज, य,व—(क्रिया) उत्पन्न करने, रचनेके अर्थमें। चढ़की तरह।
उपाई—उपजायी। रची। उपाय।
उपाउ—उपाय।
उपाटी(उत्पाटी)-उखाड़ी। नोच ली।
उपाधि—उपनाम, ख़िताब, उपद्रव। समीप प्राप्त। माया।
उपाये—उत्पन्न किये। उपायसे।
उपारे-उखाड़े। उपार क्रिया,उखा ड़नेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप
उपासक—भक्त, सेवक।
उपासन—भक्ति। उपासना।
उबटि-उबटन लगाके **उबट**-क्रिया लेपनद्वारा मैल छुड़ानेके अर्थमें चढ़की तरह।
उबर-बचकर, बढ़कर। क्रिया, बचने उठनेके अर्थमें, **उबार** क्रिया बचाने, उभारने, बाहर कर-नेके अर्थमें, दोनोंके रूप 'चढ़' की तरह होते हैं।
उभय—दो, युगल, दोनों। (उभय भांति देखा निज मरना)।
उमग-(क्रिया,उमड़ने, जोशमें आने, खुश होनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप। **उमगा** क्रिया उमड़ाने, जोशमें लाने, प्रसन्न करनेके अर्थमें "चला" क्रियाके अनुरूप।
उमा—शिवा, भवानी पार्वती।
उयेउ—उगा, उदय हुआ, निकला।

"उ अ" क्रियाका एकरूप [देखो "उ अ"]

उर—हृदय,कलेजा,छाती। —**ग**=सांप —**गाद**—सर्पोंके खानेवाले,गरुड़ —**गारी**—सर्पशत्रु गरुड।

उरिन (उऋण),—ऋणसे छुटा हुआ।

उर्विजा, उरविजा,—जानकीजी (ऊर्म्मी) पृथ्वीकी पुत्री

उलूक—उल्लू।

उलका—लूका, आग।—**पात**, तारे टूटना।

उसासु—लम्बी सास, ठंडी सास। उच्छ्वास।

उहार—उघार, खोल, पट, परदा।

ऊ

ऊंच—पर्वतादि उत्कृष्ट स्थान। ऊंचा। उत्तम। भला।

ऊना—ऊन,कम,सुस्त। घटी। रज।

ऊमर—गूलर, उदुम्बर।

ऊरु—जाघ, रान। चौड़ा, विशाल।

ए

एकत—एकान्त, अकेले। एकान्त-स्थान।

एक—मुख्य, प्रधान,अलग। सख्या एक।—**त्र**,इकठ्ठा,एक जगह।

एका—मेल,ऐक्यमत। गुट,सलाह।

—**की**, अकेला। अकेले रहनेवाला। एक ही।

एतादृस—ऐसा, इसके जैसा।

एव—ठीक ठीक। बिलकुल।

एवम्—इस तरह, ऐसा।

एवमस्तु—ऐसा ही हो।

एहा—यह, ऐसा, यही।

एहू—यह भी, और भी।

ऐ

ऐक—अटकल।

ऐक्य—एकता, एका।

ऐन(अयन)—घर। स्थान। ठीक। सूर्यका मार्ग।

ओ

ओघ—समूह, ढेर।

ओदन—भात।

ओध,—लगे, पास।

ओडनखाडे— तलवारकी चोट रोकनेमें, पटेबाजीमें।

ओड—(क्रिया) ओट करने,दरवन रोकनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। (ओडियहि हाथ,असनि-हुक घाये।)

ओर—अंत। तरफ।

ओरे—बनौरी। बरफके ओले। उपल।

ओहि—उसे, उसीको।

औ

औघर—अटपट । टेढ़ी ढार । तुरत । एकबारगी ।

क

कक—काक, बगला, सफेद चील । कुहा ।

कंकन—कंगन । चूड़ी ।

कंचन—सोना ।

कंचुकी—चोली,अंगिया । केंचुली ।

कंज—कमल ।

कंटक—कांटा । वैरी ।

कंठाम—कंठके तुल्य । गलेका रंग या आभा ।

कंडु—खाज, खजुरी ।

कंत—पति ।

कंद—मूल । मेघ । समूह । मिसरी ।

कंदरा—गुहा । खोह ।

कंदुक—गेंद । गोला ।

कंथ—कथा, मोटी डार ।

कंधर—कंठ, कंधा, गला ।

कंप—कांपना ।

कंपति—समुद्र ।

कंबु—शंख ।

कंबल—पश्मीना ।

कइकई—कैकेयी । राजा दशरथकी एक रानी जो भरतकी माता थीं और केकय (कश्मीर) के राजाकी लड़की थीं ।

कच—बाल, केश ।

कच्छप—कछुआ ।

कज्जल—काजल । श्यामता । कालख ।—गिरि, कालापहाड़ ।

कटक—दल, सेना । —ई, दल, सेना ।

कटकट—(क्रिया) किचकिचानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं ।

कट्ट—(क्रिया) काटनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप ।

कटाह—कड़ाहा ।

कटि—कमर । —सूत्र, करधनी, मेखला ।

कटु—कडुआ । —क, कडुआसा ।

कड़िहार—कर्णधार । पतवार पकड़नेवाला । खेनेवाला । ठीक दिशामें ले जानेवाला । पार लगानेवाला मल्लाह ।

कत—क्यों, कहां ।—हुं, कहीं भी ।

कति—कितना ।

कथनीय—वर्णनीय । कहने योग्य ।

कदंब—कदमका पेड़ । समूह । झुंड ।

कदराई—कायरता ।

कदली—केला ।

कदा—कब, किस समय ।

कद्रू—दक्ष प्रजापतिकी कन्या, और कश्यपकी स्त्री, नागोंकी माता जिससे विनतासे होड़ लगी थी ।

कनक—सोना, धतूरा ।—**कशिपु**, हिरण्यकश्यप, प्रह्लादका पिता । —**लोचन**, हिरण्याक्ष, प्रह्लादका चचा ।

कनकनी—किनका, थोडा भी । बूंद ।

कनहार—कर्णधार, खेनेवाला, मल्लाह । [देखो कडिहारू]

कपट—छल ।

कपाट—किवाड ।

कपाल—खोपडा ।—**ली**, कपाल रखने या पहननेवाला । शिव । अघोरी ।

कपि—वानर ।—**कुञ्जर**, बड़ा बंदर ।—**न्द**, श्रेष्ठ कपि । कपीन्द्र ।

कपिल—कपिल मुनि साख्य शास्त्रके आदिम आचार्य्य । रक्ताभ भूरा रंग । भूरे बालवाला । कुत्ता । लोबान । सूर्य्य । एक देशका नाम ।

कपिला—भूरी गाय । जोंक ।

कपीस (कपीश)—वानरराज । बन्दरोंका राजा । वानरोंमें श्रेष्ठ ।

कपूत—नालायक बेटा । कुपुत्र ।

कपोत—कबूतर ।

कपोल—गाल ।

कपिंद(कपींद्र)—कपिराज, वानरोंमें श्रेष्ठ ।

कबंध—विना सिरवाला, एक राक्षस का नाम ।

कबार—हुनर, गुण, पेशा, झगड़ा-खगडमगड ।

कबुली—राजीकी गर्मी । पचीभेद ।

कमठ—कछुआ ।

कमनीय—सुघर, सुन्दर ।

कमल—पंकज, जलज । कंवल । —**नाभ**—भगवान जिनकी नाभिसे कमल निकला ।

कमला—लक्ष्मी, रमा ।

कर—हाथ, सूंड । किरण । महसूल । क्रिया, करनेके अर्थमें "कृ" धातुके अनुरूप ।—**गत**, हाथ लगा हुआ ।—**ज**, हाथसे उत्पन्न, अँगुली, नख ।—**तल** हथेली ।—**तार**,—**तारी**, हाथकी ताली, अंगूठा, मुदरी ।

करक,—कड़क, दर्द ।

करष (कर्ष)—खैंच, खिंचाव

होड़। जोश। (क्रिया) सा चनेके अर्थमें "चढ" धातुके अनुरूप।

करदम—कीच, कीचड़, एक मुनिका नाम।

करन (कर्ण)—कान, इन्द्रिय। साधन, कारण। करना।—धार पत वार पकड़नेवाला। खेनेवाला।

करनीया—करनेके योग्य।

करवरे—विपदा। आपदा। अचानक आनेवाला संकट।

करवाल—तलवार, खड्ग।

करष (करषा)—ईर्षा, बैर, होड़, चढाऊपरी। खिंचाव।

करार—इकरार, वादा। कराल, भय करे। विनाश। जलसे ऊंचा तट।

कराल—भयानक। कठोर।

करि—हाथी।—**नी**, हथिनी।

करील—करील वृक्ष।

करुआई—कडुआपन, तिताई।—

करुणा,—दया।—**करति**, गुण कथनपूर्वक विलाप।

करुन—द०

करोर (करोरी)—सौलाख।

कल—गत दिन। आगामी दिन। आराम। सुंदर। मीठा।—**कंठ**, कोकिल।

कला—हुनर। तैरना आदि चौसठ कलाएं। तदबीर। हाव भाव। साठवा अंश।

कलप (कल्प)—(क्रिया) रोरो कर बातें करनेके अर्थमें "चढ"के अनुरूप। ब्रह्माका दिन। एक हजार चतुर्युगी जो चार अरब बत्तीस करोड पृथ्वीके बरसों का होता है। तरह। बदल।—**ना**, तर्क, विचार, ख्याल रोना, रंज।—**तरु**, कल्पवृक्ष। इच्छा पूरी करनेवाला पेड़।

कलपांत (कल्पांत)—महा प्रलय तक। कल्पका अन्त।

कलपित (कल्पित)—माना हुआ। बनाया। झूठ। खयाली बिना प्रमाण।

कलबल—छलकपट, दावघात।

कलभ—हाथी या ऊंटका बच्चा।

कलमल—(क्रिया) कुल बुलाने, रेंगनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं।

कलमले—कलमलाये, चंचल हुए, कुलबुलाये।

कलहंस—सुन्दर हंस। राजहंस।

कलाप—समूह, ढेर।

कलि—युगका नाम है। बखेडा।

कलह।—काल, कलियुग।
—मल, कलियुगके पाप—
सरि कलियुगकी नदी अर्थात्
कर्मनाशा।

कलित—सुन्दर, मनोहर। कलि
योंसे युक्त।

कलिल—पंक। कीचड़। दलदल।

कलुष—पाप।

कलेवर—देह, शरीर।

कलेस (क्लेश)—दुःख, कष्ट।

कलोल—क्रीडा, खेल, आनन्द।
कल्लोल।

कलोलिनि—कलोल करनेवाली,
खेल करनेवाली।
नदी।

कलक—लाञ्छन। लोहेका रस।
मुर्चा।

कवच—बखतर, वर्म, लोहेका वस्त्र
जो लड़ाईमें पहना जाता
है।

कवल—कवर, ग्रास।

कवि—कविता रचनेवाला, पडित,
—त्त, रचना, पद्य।

कविनासा—कर्मनाशा नदी।

कश्यप—एक मुनिका नाम जो
ब्रह्माके पुत्र थे, जिन्होंने
पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस,
असुर, देवता सभी योनि-
के प्राणी पैदा किये।

कस—कैसा, कैसे, क्यों। (क्रिया)
कसौटीपर घिसने या दबानेके
अर्थमें, "चढ" के अनुरूप
[कसे=कसौटीपर परखे]

कसमसा—(क्रिया) घबराने, दम
घुटने, कस जाने, व्याकुल
होनेके अर्थमें। "चढ"-
की तरह।

कहानी—कथा। किस्सा।

कहु—कहीं, किसी स्थानमें।

कांचा—कच्चा। शीशा। काच।

कांजी—राईका उठान। खट्टा।
सिरका।

कांधी—स्वीकार करके, कबूल करके
कंधेपर रखा [—" कांध "
क्रिया कंधेपर रखनेके
अर्थमें "चढ" के अनुरूप
है; संज्ञा कंधेसे बनी हुई]

काउ, काऊ—कभी। किसीसे,
किसीने। क्या किसी
समय भी।

काकपच्छ (काकपक्ष)—सिरके
पट्टे, कौवेका पर। कौवे
के परकी तरह सँवारी
हुई जुल्फें।

काकु—व्यंग वचन, टेढ़ी बोली।
कठोर बातें।

कापासोती—कपेसे फांसतत लिपटी हुई।

काग, कागा—कौआ, काक। का (क्या) गा (गया)=क्या गया?

कागद—कागज।

काग भुसुन्ड—प्रसिद्ध रामभक्त कौआ।

काछ—(क्रिया) धोती या कपड़े पहननेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप। लाग। धोती। वस्त्र पहननेका ढंग।

कातर, कादर—कायर, डरपोक। लाचार, हैरान। बेबस।

कानन—वन, जंगल। कानों तक, कानोंमें, कानोंको, कानोंने।

कानि(कानी)—लज्जा, मान, सकोच। एक आंखवाली।

काम—कार्य, काज। कामना, इच्छा। लालसा। इरादा। विषय-वासनाका देवता। रतिका स्वामी जिसे शिवजीने जला या।—**तरु**, कल्पवृक्ष।—**द, दा**, कामनाका देने वाला। कामता चित्रकूटका एक शिखर।—**दगाई**, कामधेनु।—**ना**, मनोरथ, चाह।—

रूप, इच्छानुसार रूप धरने वाला।

कामारि—कामदेवके बैरी, शिव।

कामिनि—स्त्री, युवती।

कामी—भोगवासनामें लिप्त। स्त्री-लोलुप।

काय—देह, शरीर।

कायर, कातर—डरपोक।

कारज—कार्य। कामधाम। पंच भूतादि सृष्टि।

कारन—प्रयोजन, पिता, निमित्त, प्रकृति। पैदा करनेवाला।—**करन**, प्रेरक शक्ति और हथियार दोनों।

कारक—कर्ता, करनेवाला।

कारमुक—धनुष। कर्मसम्पादक।

कारिख—स्याही। कालख, कजली।

कारि, कारी—काली, श्याम।

कारुनीक—कृपालु, दयालु। करुणामय।

काल—समय। दुर्भिक्ष। भय। मृत्यु। यमराज। काला।—**कूट**, विष। हलाहल।—**निशा**, कालरात्रि। प्रलयकी रात, दीवालीकी रात। मौतकी रात।—**नेमि**, एक राक्षसका नाम जिसने हनुमान्‌को बहकाना चाहा।

कालिका—काली देवी, महाकाली।
काली—श्यामवर्ण।—न, ना, समयवाला, बहुत पुराना।
कास (काश)—श्वासरोग, खाँसी। सरपत, सरहरी।
काशी (काशी)—सात पवित्र पुरियोंमें प्रसिद्ध पुरी, जिसे आजकल बनारस कहते हैं।
काह—क्या, कौन।
काहू—किसीने, कोइ, किसीको।
किंकर—नौकर, दास, सेवक। किंकरी—दासी। चाकरानी।
किंकिनि—क्षुद्र घटिका। घुंघरू।
किंचन—थोड़ा। कुछ।
किंतु—परन्तु, लेकिन, तब भी, जब भी, वरिक।
किंनर—गंधर्वोंके समान एक जाति जिसका रूप देखकर संदेह हो कि यह मनुष्य है वा नहीं। गानेवाली देवजाति, किम्पुरुष।
किंवा—वा, यातो, अथवा, शायद।
किंसुक—पलाश।
कि—क्या, क्यों, कि।
किन—क्यों न, क्यों नहीं। किसने।
किन्नर—एक देव जाति। वानर जाति [देखो किंनर]।
किमपि—कुछ भी।
किमि—क्योंकर, किस भाँति।
किरात—वनचरोंकी एक जाति। किरातिनि, भीलनी।
किरिच—टुकड़ा।
किरीट—राजमुकुट, ताज।
किल—निश्चय, अवश्य।
किलकिला—किलकारका शब्द।
किसलय—नवको पत्ते।
किसु—किसका, किसको।
किसोर—सोलह वर्षकी अवस्थावाला युवा।
कीट—कृमि, कीड़ा।
कीती—कीर्ति, यश।
कीर, कीरा—सुग्गा, तोता। कीड़ा। साँप।
कीरति (कीर्त्ति)—यश। शुहरत।
कील—तृण। काटा
कीस, कीश—वानर, मर्कट, कपि।
कुंचित—घुंघराले।
कुंजर—हाथी।
कुंजित—गूंजा हुआ।
कुंठित—कुंद, बेकाम।
कुंत—बरछी, भाला।
कुंभ—घड़ा, हाथीका मस्तक। —कर्ण घड़ेसे कानोंवाला

रावणका एक भाई।—ज, घड़ेसे जन्मे हुए अगस्त्य मुनि।

कुंवर— राजकुमार।

कु—पृथ्वी। बुरे और नीचके अर्थमें, जब कभी किसी शब्दके पहले लगा दिया जाता है, जैसे "कुमार्ग" बुरा मार्ग, "कुवेष" बुरा वेष, इत्यादि।

कुक्कुट—मुर्गा, ताम्रशिखा।

कुचाह—बुरी घटना, बुरे समाचार, अनिष्ट दृश्य। बुरी खबर। बुरी इच्छा। खोटी वासना।

कुजोगी—विषयी। बेमौके बात वा घटनासे असम्बद्ध।

कुटिल—टेढ़ा। खोटा। कुटना। झगड़ा पैदा करनेवाला।

कुटिलाई—कुटिलपन। खोटाई कपट, छल।

कुटीर—कुटी।

कुठार—फरसा, कुल्हाड़ी।

कुठाहर—नीच जगह।

कुतर्क—व्यर्थकी हुज्जत। उलटे विचार। भ्रांति।

कुत—कुन, कहांसे।

कुदशन—बुरादान, कूटनेका स्थान।

कुदारी—भूमि खोदनेका औजार।

कुदृष्टि—पाप दृष्टि। बुरी निगाह।

कुधर—बुरी भूमि, खराब जमीन। पहाड़।

कुधातु—लोहा सीसा आदि घटिया धातु।

कुपथ, कुपथ्य—अयोग्य भोजन। बदपरहेजी भोजन। —कुपथ,बुरी राह।

कुवलय—कमल, कोई।

कुविहग—बुरा पक्षी, निषिद्ध पक्षी।

कुबेर—यक्षराज, देवधनाध्यक्ष। बुरे समय। बुरी वेला।

कुवेष—खोटा स्वांग, बुरा भेस।

कुमार—वटुक, कुआंरा बालक, राजपुत्र, कुंवर। जिसने कामदेवको भी निंदित ठहराया हो। कुमारी—कुंआरी बिना व्याही, राज कुमारी।

कुमुद—कोई, नरगिस। एक वानर का नाम।—बन्धु, कोई का हितू चन्द्रमा।—कुमुदिनी, कोई,कमलिनी।

कुम्हड़—कोंहड़ा फल।

कुरंग—बुरा रंग। बुरा ढंग। हरिन।

कुररी—कुज। जलाशय पर रहने-वाली एक चिड़िया।

कुराई—पाप कमानेवाली बिल या गड्ढा। ढेर लगवायी।

कुरी—सब जाति, वंश। ढेरी।
कुरुचि—नीच वासना।
कुल—वंश, समूह, घर।
कुलह—टोपी। डैने।
कुलि—सब, कुल।
कुलिस—वज्र, हीरा।
कुलीन—उत्तम कुलवाला।
कुस—कुशा, पवित्र घास। श्रीरामचन्द्रजीके बड़े बेटेका नाम। **—केतु**, राजा जनकके एक भाईका नाम। **—ल**, कल्याण, चतुर, ठीक। **—लाई**, कल्याण, चतुराई, दुरुस्ती। **—ली**, सुखी नीरोग।
कुसमउ—अनवसर, आपतकाल। फूल भी।
कुसुम—पुष्प, फूल। **कुसुमित**—फूला हुआ। प्रफुल्लित।
कुहबर (कोहबर)—कोहबर, वह जगह जहां विवाहकालमें वर दुलहिनको ले जाकर कौतुक रहस्यादि करते हैं।
कुहू—कूक। अमावास्याकी रात। कोयलकी बोली। अंधेरी रात।
कूक—कोयलकी बोली। कोकिलके शब्द।
कूजत—(क्रिया)गुजार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।
कूट—पहाड़। शिखर। हंसी। कुचलकर। व्यंग वचन।
कूड़ि—लड़ाइमें पहिरनेकी लोहेकी टोपी। कुंडी। पथरी।
कूप—कूआ, गड्ढा।
कूर—मूर्ख, उजड्ड, खल, कठोर हृदयवाला।
कूरम (कूर्म)—कछुआ।
कूल—तट, किनारा। वास्तिकी हड्डी। **—द्रुम**, नदी-तटका वृक्ष। जिसका जीवन अनिश्चित हो।
कृत—किया हुआ, रचित। **—कृत्य**, जिसका मनोरथ मिल गया हो। पूर्णकाम, कृतकार्य। **—ग्य**, इहसान माननेवाला। **—युग**, सतयुग। **—निंदक** कृतघ्न, उपकारकी निन्दा करनेवाला।
कृतारथ—मनोरथको पाये हुए। कृतार्थ।
कृतांत—यमराज।
कृपान—तलवार।
कृपिन (कृपण)—सूम, कंजूस। **—ई**, कंजूसी।
कृमि—कीड़ा, कीट।
कृस—दुबला, पीड़ित, दुर्बल। कृश।

कृसानु(कृशानु)—अग्नि, आग।
कृषी—खेती।
केकय—आधुनिक पजाब और कश्मीरके बीच एक प्रातका प्राचीन नाम है, जहा कैकयीका नैहर था।
केकी—मोर।
केतिक—कितनी, कितना।
केतु—नवम ग्रह। पताका। पूछ वाला तारा। ध्वजा।
केते—कितने, कै।
केदलि—केला।
केन—किसने।
केर—का, री, के।
केलि—खेल, विहार।
केवट—कैवर्तक, खेनेवाला, मल्लाह।
केवल—सिर्फ, अकेला, मात्र।
केस—सिरके बाल।
केसरी—सिंह, शेर। हनुमानजी के पिता।
केहरि—सिंह। एक प्रकारका वानर।
केहि—किसे, किसको।
कैकय—केकयदेशके राजाका नाम। काश्मीरके एक प्राचीन प्रान्तका नाम।
कैकेयी—राजादशरथकी रानी, भरतकी माता।
कैटभ—एक दैत्यका नाम।
कैरव—कुमुदनी। श्वेत कमल। चादनी। धूर्त, शठ
कैलाश—हिमालयका एक अत्यन्त ऊचा शिखर जिसपर शिवजी रहते हैं।
कैवल्य—मुक्ति, मोक्ष।
कोक—विष्णु। मेंटक। भेड़िया। रतिशास्त्र। चकई चकवा।
कोकनद—लाल कमल।
कोकिल—कोइल।
कोकी—चकई। चक्रवाकी।
कोष—खजाना, तलवारका म्यान। कोश।
कोछे—कोरामें, गोदीमें। अचलमें।
कोटर—खोडरा। पेड़के तनेके भीतर का बिल।
कोटि—करोड़। पक्ष। धनुषका गोशा। जाति। प्रकार।
कोदण्ड—धनुष।
कोदव—कोदों, एक मोटी जातिका अन्न।
कोप—क्रोध, रिस। कोपी क्रोधी। कोइ भी।
कोपर—एक तरहका बरतन। और कौन?
कोये—आखके ढेले।
कोरि—खोदकर। करोड़।

कोरी—सादी, अछूती, टटकी। कठोर। बांस।

कोल—सूअर। एक जंगली जाति। अंक, गोद।

कोलाहल—गुलगपाड़ा। शोर।

कोविद—पंडित, चतुर।

कोस—दूरीका नाप। कमलका मध्य। खजाना।

कोसल—आजकलके संयुक्त प्रान्तका अधिकांश भाग पहले "कोसल" कहलाता था।
—**पति**, ईश, कोसलके राजा- **पुरी**, अयोध्या,

कोह—(कोहु, कोहू) क्रोध, रिस।
—**वर**, देखो "कुहवर"।

कोही—क्रोधी।

कोहाब—रूठना, मान करना। क्रोध करना।

कौतुक—खेल, दिल्लगी तमाशा।

कौतुकी—खेलवाज, नट।

कौ—पृथ्वीमें।

कौतूहल—तमाशा।

कौमुदी—चांदनी।

कौल—वाममार्गी।

कौसल—अवधपुरवासी। चतुराई।

कौसल्या- राजादशरथकी बड़ी रानी, श्री रामजीकी माता।

कौसिक—विश्वामित्र मुनि। उल्लू।

क्रमनास—कर्मनाशा नदी जिसमें स्नान करने या जिसका जल छूनेसे शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

क्रीडा—खेल। विहार।

क्वचित—कभी, कुछ, कोई, कहीं।

ष, ख

गोस्वामी तुलसीदासजीकी वर्णमालामें "क" के बाद "ष" आता है। उसका उच्चारण "ख" है। आजकलकी शुद्ध पाठवाली रामचरितमानसकी प्रतियोंमें "ख" और "ष" दोनोंका प्रयोग हुआ है। इसीलिये यहां शीर्षकमें ष, ख, दोनों दिखाया है। नीचे दिये शब्दोंमें जहां ष या ख है, एकके होते दूसरेका भी वैसा ही प्रयोग समझकर पाठक शब्दार्थ देखें।

षञ्जन (खञ्जरीट)—एक छोटा पक्षी। यह एक श्याम रंगकी बड़ी चंचल चिड़िया है जिससे नेत्रोंकी उपमा दी जाती है।

षण्ड—टुकड़ा।

पग—पक्षा ।—केतु, भगवान । —नायक गरुड़ ।—हा, व्याधा। पक्षियोंका मारनेवाला ।
पगेस—पक्षियोंका स्वामी । गरुड ।
पगा—तलवार ।
पचा—(क्रिया) लकीर खिंचानेके अर्थमें। इसके रूप 'चढ़' धातुकी तरह होते हैं ।
पचित—पर्चा, जड़ाऊ । खिची हुई ।
पट—ट ।
पटा—(क्रिया) स्थिर रहने, सच होने,निपटने और पूरे पड़नेके अर्थमें । "रिसा" के अनुरूप ।
पटाइ—स्थिर रहती है, ठहरती है । अम्ल, खट्टा चीज ।
पद्योत—जुगनू ।
पन—(क्रिया) खनने या खोदनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं । क्षण । पलभर समय। अत्यन्त थोड़ा समय । टुकड़ा, खंड ।
पत्तर—पोपरी । जोगियोंका बरतन ।
पमार—(पमाह) क्षोभ, मोट, हलचल ।
पर—दूषणका भाई । तीक्ष्ण, तीखा । तृण, घास ।
परउ—खल, छोटा, तुच्छ ।
परभर—क्षोभ । उथलपथल । गुलगपाड़ा ।
परारि (परारी)—परके दुश्मन । श्री रामचन्द्रजी ।
परा—चोखा, तीखा । पका हुआ । साफ साफ ।
पल—दुष्ट, नीच । खरल जिसमें औषधि कूटते हैं ।
पलु—निश्चय करके, सचमुच । खल पाजी, बदमाश, खोटा ।
पस—नीचे जाति । एक जंगली जाति पहाड़ी देशोंमें रहनेवाली । (क्रिया) गिरने और सरकनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं
पसी—गिरी । खिसका । आस्ता बकरा ।
पाग, पँग—(क्रिया) कम होने और घट जानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं ।
पाई—परिखा । किलेके चारों ओरकी नहर । खाय, भक्षण कर जाय ।
पागा—तलवार, खड्ग । घट गया, कम हुआ ।
पाच—(क्रिया) खिंचाने, खींचनेके अर्थमें, "चढ़" के अनुरूप ।
पाटी—खाटी । खाट, चारपाई ।

पकड़ना।

गहबर—सघन, घना। बन। सँकरा। सकुचित। सोच-से भरा।

गहरु—देरी, विलम्ब।

गा—गया, जाता रहा।

गाउँ—गांव। गाऊँ।

गाज—(क्रिया) गरजनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। वज्र। फेन।—न, गर्जन। नाद।

गाड़—गड्ढा, खड्डा। चुभन, गड़न।

गाडर—खस या उशीरकी घास।

गाडर, गाँडर—गडाली, उसीर वा खसवाली। घास।

गाढ़ा—कठिन वा दृढ़।

गात—(गात्र) शरीर, अंग, देह।

गाथ—(क्रिया) गूथने, बांधने, पिरोनेके अर्थमें "चढ़" की तरह। गाथा, कथा, गीत।

गाथा—कथा, कहानी गीत, पद्य।

गादुर—चमगादड़, चमगादुर।

गाधि—विश्वामित्रके पिताका नाम जो प्रसिद्ध राजा थे।

—**सुवन**, राजा गाधिके पुत्र विश्वामित्र मुनि।

गामिनी—गमन करनेवाली, जाने वाली।

गामी—चलनेवाला।

गायक—गानेवाला कथक।

गायगोठ—गायगोष्ठ, गोशाला। ढोर।

गारुडि—सर्पका विष हरनेवाला। सँपेरा।

गाल—कपोल। वाचाल। गप।

—**बजाना**, बढ़ बढ़के बातें करना, डींग मारना।

गालव—एक मुनिका नाम जो विश्वामित्रके अति भक्त शिष्य थे। [देखो गालवकी कथा]

गाहक (**ग्राहक**)—चाहनेवाला, लेनेवाला। पकड़नेवाला।

गाहा—गाथा, गुणगान। गीत। कहानी।

गिरा—गिर पड़ा। वाणी, कविता।

—**ग्राम**, ग्रामीण भाषा, देहाती बोली। वाणीका स्थान या उठनेकी जगह।

गिरि—पर्वत। —**जा**, पार्वती।

—**धारी**, पहाड़ लेकर।

—**न्द्र**, पर्वतराज हिमालय।

—**नन्दिनी**, पार्वती। —**नाथ**, शिव, हिमालय। —**राज**, हिमालय, सुमेरु। शिव।

—**वर**, पर्वत श्रेष्ठ, सुमेरु।

गिरीश—शिव, हिमालय।

गिल—(क्रिया) निगलनेके अर्थमें "चढ़"के अनुरूप।—**गिलई**, निगल जाय, लील जाय।

गीध—जटायु, गिद्ध।

गुंज—(क्रिया) गुंजनेके अर्थमें, चढ़की तरह।

गुंजत—गूंजता है।

गुंजा—घुंघची।

गुडी—गुड्डी, पतंग। गुडिया।

गुदर—(क्रिया) हटने या छोड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी 'चढ़' धातुके अनुरूप होते हैं।

गुदारा—पार उतारनेकी क्रिया, उतारा। गुजारा।

गुन—(क्रिया) समझने, गिननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। चतुराई, त्रिगुण (सत, रज, तम,)। रस्सी। यश, कीर्ति। सुभाव। विद्या।—ग्य,—ज्ञ गुणका जानने-वाला, समझनेवाला।—द, लाभदायक, गुनदायक।—हु, समझो, गुणन करो। लाभ भी। गुण भी।

गुनातीत—तीनों गुणोंसे परे, परमात्मा।

गुनी—गुणवान, विद्वान, समझा।

गुमान—मान, अभिमान, गरूर।

गुमानी—अभिमानी, मगरूर।

गुरु—आचार्य, पुरोहित, भारी। बड़ा।—जन, बड़े लोग।

गुसाईं—मालिक, स्वामी, गोस्वामी।

गुह—निषादराजका नाम।

गुहरा—(क्रिया) पुकारनेके अर्थमें "चढ़ा" क्रियाकी तरह।

गुहरावत—गुहराजा, निषादराज। पुकारता हुआ।

गुहा—गुफा, खोह।

गुहार—रक्षाथ जोरसे बुलानेका शब्द।

गुहारी—दोहाईपर मददपर आया पुरुष। पुकारी।

गूढ़—गुप्त

गृहादी—गृहादि, घर आदि।

गृही—गृहस्थ, घरका स्वामी, घर वाला।

गृहीत—पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ, वशमें।

गे—गये, चले गये, बीत गये।

गेरु—गेरू, लाल रङ्गकी मिट्टी युक्त विशेष पत्थर। गैरिक।

गेह—गृह, घर।

गो—इन्द्रिया। दिशा। वाणी। जल। स्वर्ग। वज्र। गाय। बैल। पृथ्वी। पृष्ठ। गया।—चर, इन्द्रियोंसे जानने

योग्य। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पाँचों विषय। सम्मुख, सामने। —तीत, इन्द्रियोंसे परे। जहाँ इंद्रियाँ न पहुँच सकें।

गोदावरी—बम्बई प्रान्तमें पच्छिमी घाटसे निकली एक नदी जो हैदराबाद (दक्षिण) को पार करती हुई आंध्र प्रदेशमेंसे होकर बङ्गालकी खाड़ीमें गिरती है।

गोपद—गऊका खुर, गायका पैर।

गोप्य—छिपाने योग्य।

गोपर—गोतीत।

गोमती—एक नदी जो हिमालयकी तराईसे निकलती है और संयुक्त प्रांतमें लखनऊ जौनपुर आदि नगरोंमें होती हुई गाजीपुरमें सैदपुरके समीप गङ्गामें मिल गयी है।

गोमायु—गीदड़, सियार।

गोरोचन—गोलोचन, गोमेद।

गोलक—चक्षु, आँख, नेत्र।

गोव—(क्रिया) छिपानेके अर्थमें। —**गोई**, छिपायी। —**गोए**, छिपाये। —**गोया**, छिपाया। **गोय**—छिपाकर। —**गोवहु** छिपाओ। **गोइये**—छिपाइये।

गोविंद—वेदलभ्य। गो रक्षक। वाणीरक्षक।

गोसाईं—गोस्वामी। गुरु। प्रभु।

गौतम—एक ऋषिका नाम जो अहल्याके पति थे। —**नारि**, अहल्या। —**स्राप**, गौतमने इन्द्रको शाप दिया था कि तुम्हें रामचन्द्रजीके व्याहके समय हजार आँखें हो जायँगी।

गौन—गमन, गवन, जाना। देरी।

गौर—गोरा, उजला।

गौरव—यश, बड़ाई।

गौरि—पार्वती।

गौरीस—(**गौरीश**) शिव।

ग्यात—मालूम, ज्ञात।

ग्याता, ज्ञाता—जाननेवाला।

ग्यान—समझ। जानकारी।

ग्यानी—समझदार। जानकार।

ग्रंथ—पोथी। पुस्तक। शास्त्र।

ग्रंथि—गाँठ। उलझन।

ग्रस— / **ग्रह**— (क्रिया) ग्रास करने पकड़ने या खाजानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। —**न**, पकड़ लेना। ले लेना। खा जाना।

ग्राम—गाँव, छोटी बस्ती, पुरा, समूह।

य—गावका। देहाती। ग्रामवासी गवार।

ह—मकर, मगर।

ही—ग्रहण करनेवाला। पकड़ने वाला।

ग्रा—गला, कंठ।

ष्म (ग्रीष्म)—गरमीकी ऋतु।

घ

ट—घड़ा, कलश। हृदय।—ज, कुम्भज ऋषि, अगस्त्यमुनि।

घट—(क्रिया) बनने, बनाये जाने, ठीक होने, और कम होनेके अर्थमें। इसके रूप भी 'चढ़' की तरह होते हैं।

घटब—कम होना, क्षीण होना।

घटयोनि—अगस्त्य मुनि।

घटा—समूह,कम हुआ। काम आया।

घटि—घटी, कमती। घड़ी।

घन—बादल। घना। भारी हथौड़ा।

घमोई (घमोय)—बासका एक रोग जिसमे बाढ़ बन्द हो जाती है। यह बासकी जड़में बहुतसे पतले और घने अकुरके रूपमें निकलता है।

घरनी—घरवाली, गृहिणी। भार्या।

घरफोरी—घर फोड़नेवाली।

घ्रान (घ्राण)—नासिका, नाक। सूघना। गन्ध।

घरिक—घड़ीएक, घड़ीभर। थोड़ी देर।

घवरि—घौर, घौद, गुच्छा। एकत्र होकर।

घहरा—(क्रिया) टूट पड़नेके अर्थमे।—घहरात, टूट पड़ता है।—घहराइहै, टूट पड़ेगा।

घाअ—(क्रिया) चोट या घाव लगनेके अर्थमें। घाये [चोट लगे] "ओड़ियहि हाथ असनिहुक घाये।"

घाउ—घाव।

घाटारोह—घाट बन्द कर देना। घाटावरोध।

घात—धोखा, बहाली, दावपेच, घाव, चोट।—नी, नाश करनेवाली।

घाम—धूप।

घाय—घाव।

घाये—दिये। चोट लगे। घाव खानेपर।

घाल—(क्रिया) डालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

घालक—नाशक, डालनेवाला, मिलोनेवाला, गड़बड़ करनेवाला

घृत—घी।

घुनाच्छर—घुनके काटे हुए चिह्न ।
घुम्मर—(क्रिया) घोंसेकीसी आवाज करनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।
घूर्मि—घूमकर, चक्कर खाकर । —**त**, चक्कर खाये हुए ।
घोर, घोरा—कड़ा, कठिन, घना, कराल । घोड़ा ।

च

चग—कनकौवा, गुड्डी । एक प्रकार का बाजा । जोम ।
चचरीक—भौंरा ।
चड—तेजस्वी । तेज । क्रोध ।
चंद(चद्र)—चाद ।
चदिनी—चादनी ।
चद्र—चन्द्रमा ।—**मा**, चाद । एक ऋषिका नाम जो अत्रिके पुत्र थे । —**मौलि**, महादेवजी जिनके माथेपर चद्रमा विराजते हैं । । —**हास**, तलवार, करवाल, रावणकी तलवारका नाम ।
चद्रिका—चादनी, कौमुदी ।
चंदोवा—वितान, शामियाना ।
च—और । पुन । भी ।
चक, चकई—चकवा, पक्षी । कहते है कि रातको चकई चकवेका जोडा नहीं मिलता । चकई चकवा ।
चकित—अचरजमें । अचम्भेमें । चकराया हुआ ।
चकोर—एक पक्षी जो चन्द्रमासे अति स्नेह रखता है ।
चक्कवइ—चक्रवर्ती ।
चक्र—चक्र जिसका नाम सुदर्शन है, विष्णुका एक हथियार । पहिया । चरखा । चरखी । मडल । गुट । षडयन्त्र । —**वाक**—चकवा पक्षी ।
चक्ष—चक्षु, आंख । नेत्र ।
चतुरानन—चार मुखवाला । ब्रह्मा ।
चतुरग—चार भागमें बटी हुइ सेना । (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल) चौसर, शतरज ।
चपरि—शीघ्र, दबककर, भूमिसे मिलकर ।
चपल—चचल, अस्थिर ।
चपेट—तमाचा, धक्का, झोंक ।
चमर—चवर ।
चर—दूत, चलनेवाला । (क्रिया) भक्षण करनेके या चलनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप ।
चरनपीठ—खड़ाऊ ।
चरफराहि—तड़फड़ाते हैं । चव

लता दिखाते हैं। "चरफरा" धातु चपल होनेके अर्थमें।

चरम (चर्म)—चाम, चमड़ा। ढाल, अंतिम।

चराचर—चल अचल। जड़-चेतन। सब कोई। सारी दुनिया।

चरित—लीला।

चरु—यज्ञभाग, शाकल्य, होम-करनेकी वस्तु। यज्ञका प्रसाद खीर।

चव—(क्रिया) चूने, टपकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

—ई, चुए, टपके। टपकावे।

चह—(क्रिया) चाहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" का तरह होते हैं।

चांक—क्रिया, मुहर लगाने, अंकित करनेके अर्थमें।

चाकी—चकांकित कर दिया, मुहर लगानी।

चाऊ—चाव।

चाका—पहिया।

चाख—नीलकंठ पत्ती। (क्रि०) चखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप।

चाड़—सहारा, आश्रय। जरूरत। "चाड़ नहि सरई"— जरूरत पूरी नहीं हो जाती। काम पूरा नहीं हो जाता।

चातक—पपीहा।

चाप—धनुष। दाब। कमानी।

चापी—दबायी। (क्रिया) दबानेके अर्थमें "चढ़"की तरह। (चापी—दबायी)

चामर—चोर। चावल।

चामुंडा—एक देवीका नाम, एक योगिनीका नाम।

चार—दूत, जासूस।

चारि—चतुर। लबार, गप्पी। चार।

चारिअवस्था—चारों अवस्था—(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय)।

चारिखानि—अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज।

चारिपद—चतुष्पद, पशु, चार पैर वाला। **चारिपद धरमके**—सत्य, शौच, दान, दया।

चारिभांतिभोजन—चार प्रकारके भोजन (लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य)।

चारी—चलनेवाला। दूत। चार।

चारु—सुन्दर, मनोहर, सुहावना।

चाल—(क्रिया) हिलाने चलानेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

—ति, हिलाती, छिद्रमय करता है।

चाह—(क्रिया) देखने, मुकाबला करने, खोजने, इच्छा करनेके अर्थमें। "चद"के अनुरूप।

चाहि—मुकाबला करके। अपेक्षाकृत।

चिंतामनि—वह मणि जिससे मनो वाञ्छित मिले।

चिक्कन—चिकना, फिसलनेवाला।

चित—चेतन, ज्ञान, मन।

चितचेता—सावधान हुआ, चौकन्ना हुआ, चित्तकी सावधानता।

चित्र—मूर्ति। तसवीर। आश्चर्य। कई भांतिका।—**कूट**, एक पर्वतका नाम, श्रीरामचन्द्रका वनविहारस्थल।—**केतु** एक राजाका नाम (देखो कथाभाग।

चितवन, चितौनि—दृष्टि, अवलोकन, नजर। निगाह।

चितेरा—चित्रकार।

चिद—चैतन्य, सजीव, जीवधारी।

चिदानन्द—चैतन्य और आनन्दस्वरूप।

चिन्मय—चैतन्यमय, चैतन्यरू परमात्मा।

चिबुक—ठोढ़ी, ठुड्डी, दाढ़ी।

चिर—विलम्ब, देरसे। बहुत कालतकका—**जीवी**, बहुतकालतक जीनेवाला। मार्कंडेय मुनि।

चिराना—चिरकालीन, पुराना। पुराना हुआ।

चिह्न—चीन्ह, स्मारक वस्तु, दाग। निशान।

चीखा—चखा, स्वाद लिया।

चीता—चित्त। चुना हुआ।

चीन्ह—(क्रिया) पहिचानने, निशानी बतानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चद" की तरह होते हैं।

चीर—कपड़ा। चीरा। काटकर।

चुनौती—उत्तेजना, ललकार, चैलेंज।

चूड़ाकरन—मुडन, मूडन।

चूड़ामनि—सिरमें पहिननेका गहना चोटीकी मणि।

चोखा—अच्छी वस्तु, जल्दी।

चोंप—उत्साह, उमंग, हौसला।

चोरनारि—खराब स्त्री। चोरकी स्त्री।

चौके—पूजनार्थ पचरंग निर्मित सर्वतोभद्रादि। चौक।

ानी—चार कन्दोंकी, चार तनी-
दार, चौगोशी टोपी।
ापन—बुढ़ापा।
ाट—चौहाटा, चौहटा, चौमु
हानी।

छ

, छांड—(क्रिया) छोड़नेके
अथमें "चढ़" के अनु
रूप।
—क्षयरोग। छा गयीं।
क—(क्रिया)मस्त हो जाने,शराबोर
हो जाना, अभिन्नरूपमें मिल
जानेके अथमें। "चढ़" के
अनुरूप।
ाज—(क्रिया)शोभा देने, छा जानेके
अथमें। "चढ़"के अनुरूप।
ट—(क्रिया) चुने जानेके अथमे।
"चढ़" के अनुरूप।
ात—फोड़ा, घाव। ऊपरका आव
रण।
ाति—हानि, कमी।
छत्र—छतरा। चत्रिय।—बध
सारे राज्यभर।—बधु,
चत्रियोंकी सकर जाति।
चत्रियोंमें नीच।
छत्रक—भुइंफाड़, कुकुरमुत्ता।
छद—ढँका।

छवि—सुन्दरता।
छबीले—सुन्दर।
छम—(क्रि०) क्षमा करना, सहने
के अथमें 'चढ़'धातुकी तरह।
छमा—पृथ्वा। सहनशीलता।
सह लेनेका गुण।
छय—चय। हानि। नाश। चई रोग
छयल—जवान, सुन्दर।
छरे—छटे। चुने हुए।
छाके—छके। मस्त। मतवाले।
छाछी—मट्ठा। तक्र।
छाज—(क्रिया)सोहानेके अर्थमें 'चढ़'
की तरह।
छाड—(क्रिया) छोड़नेके अथमे।
"चढ़" का तरह।
छार—राख चार।
छाला—चम, छाल।
छाह, छाहँ—छाया, परछाहीं।
छिति—पृथ्वी।
छिद—छेद।
छीज—(क्रिया) घटने, नष्ट होनेके
अर्थमें।
छीन—दुबला घटा हुआ। (क्रिया)
जबर्दस्ती ले लेने या काटने
के अर्थमें। "चढ़" की तरह।
छीर—दूध।
छुद्र—तुच्छ, छोटा।
छुधित—भूखा।

(यान) नाव।—द, जल देनेवाला, मेघ।—धर, जलको धारण करनेवाला। मेघ। —धि, समुद्र।—पक (जल्पक) बक्की, गप्पी। —पत (जल्पत) वकवाद करता।—पना, बकना, बोलना।—पसि तू बकना है—पहि, बकते हैं। —विहग, जलपक्षी। —मल, जलका मैल, झाड़। —रासि जलका समूह। —रुह, कमल।

जलाशय—नदी, कुवा, जलका स्थान।

जलन्धर—एक दैत्यका नाम।

जल्प—(क्रिया) व्यर्थ बकवाद करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

जवनिका—पर्दा, चिक, झाड़।

जवास—एक प्रकारकी काँटेदार घास। जो जेठ बैसाखमें हरी रहती है।

जस—जैसे, । यश, कीर्ति, बड़ाई।

जसोमति—नन्दरानी, यशोदा।

जह, जहँ, जाहा—जहाँ, जिस जगह।

जहि—जेहि, जिसे। छोड़कर। जीतले।

जहिया—जब, जिस समय।

जाग—यज्ञ, होम। उठ। होशमें आव।

जागबलिक—याज्ञवल्क्य मुनि।

जाच—(क्रिया) मांगने या परखनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। परीक्षा।

जाचक—याचक, भिक्षुक। नाऊ, बारी, ढाढ़ी।

जाचना—मांग।

जाड़—शीत, जाड़ा। जाड्य। जड़ता

जात—जाति। पदा।

जातकर्म—बालकके जन्म लेनेके समयका कर्मकांड।

जातना—यातना, पीड़ा। कष्ट।

जातरूप—सोना।

जातुधान—असुर, दैत्य। राक्षस।

जान—(क्रिया) जाननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। रथ, सवारी।

जानि जाना। पति या पत्नी। जानकर।

जानु—घुटना, जानू।

जापक—जपनेवाला।

जाबालि—एक ऋषिका नाम।

जाम—याम, पहर, प्रहर, ३ घंटा।

जामवंत—जाम्बवान, ऋक्षराज।

जामा—जमा, लग गया। पहिननेका सिया हुआ वस्त्र।

जामाता—जमाई दामाद।
जामिक—यामिक, योगाग, चौकी दार, रक्षक, पहरुआ।
जामिनी—यामिनी, रात।
जाय—व्यर्थ। बेकार। जावे।
जाया—स्त्री।
जाये—उत्पन्न किये, लड़के।
जार—उपपति, भस्म करके।
जारा—जलाया, यार।
जाल—समूह, झरोखा, फंदा। धोखा।
जावक—यावक, महावर।
जासु—जिसका।
जाहि—जिसको।
जिनि—जितनी, जीतकर, जिधर।
जिनइ—जाती, जात लो।
जिनकेरे—जिनके।
जिय—जीव, प्राण, । हृदय।
जिव—जीव, आत्मा, मन।
जिवनमूरि—सजीवना औषधि।
जिसु—जिसका।
जीन—चारजामा, खोगार, काठी, घोड़ेकी पीठपर कसनेका बिछावन।
जीभ—जिह्वा, रसना।
जीय, जीव—जीवा, आत्म, प्राण।
जीह—जीभ। जिह्वा।
जुग—दो, दोनों, जोड़ा, चतुर्युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि) —ल, जोड़ा, दोनों।
जुगुति (युक्ति)—रीति, तरकीब। चतुराई।
जुझ, जूझ—क्रिया, लड़ने या लड़ मरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
जुझाऊ—युद्धके, युद्धवाले, बहादुर।
जुझार—जूझनेवाला, वीर,
जुर, जुड, जुर—(क्रिया) मिलने, जुटने या लड़ने के अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जोड़ा।
जुठार—(क्रिया)जूठा करनेके अर्थमें इसके रूप भी " चढ़ " की तरह होते हैं।
जुड़ा—(क्रिया) शीतल होने, शांत होनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" की तरह होते हैं। जोड़ा हुआ।
जुरे—मिले, प्राप्त हो, मयस्सर हो
जुवती—युवती।
जुवराज—राजका वारिस। राज्यका उत्तराधिकारी।
जुवा—युवा, जवान।—नू, युवा, जवान।
जुहार—दे० जोहार।—प्रणाम।

एक प्रकारकी वंदना। अभिवादन

जू—जी, एक प्रतिष्ठाका पद।

जूथप—सेनापति।

जून—समय। पुराना। जीर्ण। जूर्ण।

जूरी—जोड़कर, समूह, जोड़ा। एक प्रकारका पक्वान्न।

जूह—समूह, सेना। इकट्ठा।

जे—जो, जो लोग।

जेई—जो कोइ। खाइ। खायगा। भोजन करके।

जेऊ—जो भी। कोई।

जेव—(क्रिया) खानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

जोगव—परखने, यत्न करने, राह ताकने, रास्ता देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

जोजन—योजन, चार कोस, आठ मील।

जोटा(जोड़ा)—जोड़ी जुग दोनों।

जोतिष—ज्योतिष, नजूम।

जोती—चमक, उजाला।

जोनी—योनि, कारण, जाति, शरीर।

जोबन—यौवन, जवानी।

जोह—(क्रिया) देखने, निहारने, हेरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

जोषिता—स्त्री, नारी, लुगाई।

जोसि, सोसि—तू जो है, सो है।

जोहार—प्रणाम। (क्रिया) प्रणाम करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

जोह—(क्रिया) देखने, ढूढ़नेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप।

झ

झंप—(क्रिया) छिपने, ढकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झख—मछली, —**केतु**, मछलीका निशानवाला, कामदेव।

झगुलिया, झंगुलिया—बालकोंका कुरता।

झपट—टूटकर, धावा मारकर। धावा, झपट। (क्रिया) टूट-पड़ने, धावा मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झाप—(क्रिया) बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

झारी—समूह। झाड़ी। टोंटीदार लोटा।

झीनो—हलकी, झझरी, बारीक।

झोटिंग—प्रेत। जोटिंग। शिव। भयंकर तपस्या करने

वाला। शिव गण।

झोंटी—चोटी, लट, जटा।

ट

टक—लगातार देखना।

टर—(क्रिया) हटने, टलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। मेंढककी बोली। कर्कश शब्द।

टिड्डिभ (टिड्डी) टिड्डी जो खेतोंमें
टिट्टिभ पड़ती है। टिटिहरी चिड़िया।

टेई—टेयकर, चोखा करके। सान लगायी।

टेर—क्रिया। बुलाने पुकारनेके अर्थमें, चढ़का तरह।

टेर—बान, हठ स्वभाव। (क्रिया) चोखा करने, तेज करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

ठ

ठकुरसोहाती—मीठी बात मुँहदेखी बात। मालिककी सोहानेवाली बात।

ठट्ट, ठट्टा—दल, झुंड।

ठवनि—चाल, अकड़, ऐंठकी चाल।

ठाउ—ठहर, स्थान, अवसर।

ठठ—समूह।

ठाट—रचना, ढांचा।

ठाहर—स्थान, अवसर

ड

डमरुआ—जाड़ेका रोग, गठिया।

डमरू—एक प्रकारका बाजा जो शिवजीको अति प्रिय है।

डरप—(क्रिया) डरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

डस (क्रिया)—डसनेके, काटनेके डंक मारनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डहक—ठगने ठगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" का तरह होते हैं।

डाकिन—डाइन।

डाढ—(क्रिया) जलाने, भस्म करने के अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डाबर—गहिरा, गड़हा।

डार—(क्रिया) डालने या फेंकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डास—(क्रिया) बिछानेके अर्थमें इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डासन—बिछौना, आसन, चटाई।

डिग—(क्रिया) हटने और टलनेके

एक प्रकारकी वंदना। अभिवादन
जू—जी, एक प्रतिष्ठाका पद।
जूथप—सेनापति।
जून—समय। पुराना। जीर्ण। जूण।
जूरी—जोड़कर, समूह, जोड़ा। एक प्रकारका पकान्न।
जूह—समूह, सेना। इकट्ठा।
जे—जो, जो लोग।
जेई—जो कोई। खाई। खायगा। भोजन करके।
जेऊ—जो भी। कोई।
जेव—(क्रिया) खानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
जोगव—परखने, यत्न करने, राह ताकने, रास्ता देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
जोजन—योजन, चार कोस, आठ मील।
जोटा(जोड़ा)—जोड़ी जुग दोनों।
जोतिष—ज्योतिष, नजूम।
जोती—चमक, उजाला।
जोनी—योनि, कारण, जाति, शरीर।
जोबन—यौवन, जवानी।
जोव—(क्रिया) देखने, निहारने, हेरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
जोषिता—स्त्री, नारी, लुगाई।
जोसि, सोसि—तू जो है, सो है।
जोहार—प्रणाम। (क्रिया) प्रणाम करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
जोह—(क्रिया) देखने, ढूंढनेके अर्थमें "चढ़" के अनुरूप।

झ

झप—(क्रिया) छिपने, ढकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
झख—मछली, —केतु, मछलीका निशानवाला, कामदेव।
झगुलिया, झंगुलिया—बालकोंका कुरता।
झपट—टूटकर, धावा मारकर। धावा, झपेट। (क्रिया) टूट-पड़ने, धावा मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
झाँख—(क्रिया) बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
झारी—समूह। झाड़ी। टोंटीदार लोटा।
झीनी—हलकी, झझरी, बारीक।
झोटिंग—प्रेत। जोटिंग। शिव। भयंकर तपस्या करनेवाले

नाला। शिव गण।

झोंटी—चोटी, लट, जटा।

ट

टक—लगातार देखना।

टर—(क्रिया) हटने, टलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। मेंडककी बोला। कर्कश शब्द।

टिटिभ (टिट्टि) टिट्टी जो खेतोंमें
टिट्टिभ पड़ती है। टिटिहरी चिड़िया।

टेई—टेयकर, चोखा करके। सान लगायी।

टेर—क्रिया। बुलाने पुकारनेके अर्थमें, चढ़का तरह।

टेव—बान, हठ स्वभाव।
(क्रिया) चोखा करने, तेज करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

ठ

ठकुरसोहाती—मीठी बात मुँहदेखी बात। मालिकको सोहानेवाली बात।

ठट्ट, ठट्टा—दल, झुंड।

ठवनि—चाल, अकड़, ऐंठकी चालें।

ठाउ—ठहर, स्थान, अवसर।

ठठ—समूह।

ठाठ—रचना, ढाचा।

ठाहर—स्थान, अवसर

ड

डमरुआ—जोड़ोंका रोग, गठिया।

डमरू—एक प्रकारका बाजा जो शिवजीको अति प्रिय है।

डरप—(क्रिया) डरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

डस (क्रिया)—डसनेके, काटनेके डक मारनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डहक—ठगने ठगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" का तरह होते हैं।

डाकिन—डाइन।

डाढ—(क्रिया)जलाने, भस्म करने के अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डाबर—गहिरा, गड्हा।

डार—(क्रिया) डालने या फेंकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं।

डास—(क्रिया) बिछानेके अर्थमें इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डासन—बिछौना, आसन, चटाई।

डिग—(क्रिया) हटने और टलनके

अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।

डिडिमी—डुगडुगी, ढिंढोरा ।

डीठा—देखा । डीठ । दृष्टि । देखा ।

डीठि—दीठ, नजारा दृष्टि ।

डोर—रस्सी ।

डोल—(क्रिया) डोलने, चलने, चलायमान होनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । हृद, तालाव, । जलाशय । पात्र ।

ढ

ढनमन—(क्रिया) ढुलकने, लुढ़कनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं ।

ढढोर—(क्रिया) ढूढने, खोजनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं ।

ढावर—गदला । गहरा ।

ढोट, ढोटा—लडका, बेटा । ढोल । ध्वनि । क्रम ।

त

तक—(क्रिया) ताकने, देखनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं ।

तग्य—ब्रह्मज्ञानी । उसको जाननेवाला ।

तट—किनारा, तीर, समीप ।

तडाग—जलाशय, तालाब ।

तडित—बिजुली ।

ततकाल—उसी समय ।

ततपर—लवलीन । तैयार ।

तत्त्व—सार वस्तु, मूल । नतीजा ।

तत्र—तब, उस दशामें । तहां ।

तथा—तैसे, तिस तरहपर । वैसा, उस तरह ।

—पि तौ भी, तिसपर भी ।

तदपि—तौ भी, तबभी, तिसपर भी ।

तदा—तब, उस समय ।

तनक—किंचित, थोडासा, कुछ ।

तनय—लडका, आत्मज ।

तनु—देह ।—जा, लडकी ।

तनोरुह—रोए, शरीरसे उत्पन्न ।

तप—पूजा, आराधना । गरमी । तपस्या ।

तपसील—तपस्वी । तप करनेवाला ।

तपोधन—तपसी । जिसके पास तपस्याका धन हो ।

तप्त—तपा हुआ, गर्म । क्रोधित । दुःखी ।

तम—अंधियारा । अज्ञान । तमोगुण । अत्यन्त, सबसे बढकर ।

तमक—(क्रिया) क्रोध करने या फुर्ती करनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं ।

तमारि—सूर्य । तमोरि । अंधकार के शत्रु ।

तमाल—सन या तारो जातिका पेड़।
तमी—रात । —चर, निशिचर, राक्षस।
तरंग—लहर।
तरंगिनि, तरंगिनी—नदी।
तरंगी—मौजी। लहरी।
तर—तले। पीछे। अधिक। (क्रिया) तैरने, पार हो जानेके अर्थमें 'चढ़' की तरह।
तरक, तर्क—विचार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं।
तरकस—तीरदान। तीर रखनेकी थैली। त्रोण।
तरज (तर्ज)—तड़प, डपेट। (क्रिया) तड़पनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। डाटकर, दिखाकर। —त (तर्जत) तड़पता है। दिखाते ही। डपटते ही। —न, तड़प, डपेट। —नी, निषेध करनेवाली अगुली।
तरन—तारनेवाला, तैर जानेवाला। पार होनेवाला, मुक्त होनेवाला। —तारन, आप तरने और दूसरोंको तारनेवाला। तरनेवालेको तारनेवाला।
तरनि (तरणि)—सूर्य। धूप।
तरनि—नाव, डोंगी।
तरपन (तर्पण)—तृप्त करना। मन्त्रोंके द्वारा पितरोंको जल देना।
तरल—पतला, चंचल, चोखा।
तरवारि—तलवार।
तरहि (तर्हि)—तब, तिस समय। उस कारण। उस हेतु।
तरि, तरी—तरके, तीरपर लगके। नाव।
तरु—वृक्ष।
तरुन—जवान, ताजा। खिला हुआ।
तरुनई—जवानी।
तरुनी—युवती।
तरुवर—उत्तम वृक्ष।
तरेर—(क्रिया) घूरने, नेत्रोंसे डाटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
तल—तले, नीचे। गच, छत।
तल्प—शय्या, सेज।
तलफ—(क्रिया) तड़पनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

तलाई—तलैया, छोटा तालाव।
तसि—तैसी, यथोचित।
तह, तहा, ताहा,—तहा, तिस जगह।—**चा,** तहा—पर,उस जगह।
तहिआ—तब, तिस समय।
ताती—तात, तार।
ताक—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
ताजी—टटकी, नवीन। अरबी।
ताटक—कर्णफूल।
ताड—(क्रिया) मारने डाटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" की तरह होते हैं।
तात—प्रिय, प्यारा। गरम।
ताते—गरमागरम। उस लिये।
तान—(क्रिया) खींचकर बढ़ने, फैलानेके अर्थमें। "चढ" की तरह।
तानि—तानकर, खींचकर।
ताप—तपन, जलन, ज्वर।
तापस—तपस्वी।
तामरस—कमल।
तामस—क्रोध, क्रोधी।
तार—(या) पार लगाने, उद्धार करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।
तारक—तारनेवाला, रामनाम। एक दैत्य जिसे षण्मुखने मार डाला। आखकी पुतली।
तारन (तारण)—तारनेवाला।
तारय—तारिये।
तारा—तार दिया, पार कर दिया। बालिकी स्त्री, सितारा, आखकी पुतली।
ताल—ताड़का पेड़। बड़ा तालाब।
ताली—कुजी, चाभी। थपोड़ी। तालमें रहनेवाली।
तालू—ताल। ताल वृक्ष। जीभके ऊपर मुहका भीतरी भाग। सिरकी चादी।
तास—स्वर्णखचित वस्त्र।
तिमि—तिस भाति।
तिमिर—तम, अधकार।
तिय—स्त्री, पत्नी।
तिरहुति—मिथिला देश।
तिलाजलि—तिलके साथ जलकी अजुली जो मृतकके नाम दी जाती है।
तिष्ठतु—रहें, ठहरें, बैठें।
तिहुं—तीनों।—**लोक,** तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल)
ती—स्त्री।

तीछी—तीखी, चोखी, रखी।
तीछे—तीखे, चोखे।
तीर—बाण, शर, शिली मुख, नाराच। पास। किनारा।
तीरथपति, तीरथराज, तीरथराजू—तीरथोंका राजा। प्रयाग।
तुंग—ऊंचा।
तुरग—घोड़ा।
तुराई—तोशक। जल्द। वेगसे। तुड़ाकर।
तुरीय—चौथी अवस्था, निर्गुण, ब्रह्म।
तुल—(क्रिया) तौलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
तुसार, तुषार, तुहिन—पाला, ओस।
तूमरि—तुमड़ी, लौआ, तितलौकी।
तून (तूण)—तूनीर, तरकस, त्रोण, तीर रखनेकी थैली।
तूरी—तुल्य, समान। तुरही। रुई।
तूल—रुई, बराबर होना।
तृजग (त्रिजग)—तिर्यक्, तिर्यञ्। टेढ़ा। तीन लोक। पक्षी सर्प आदि-की योनि।
तृन (तृण)—तिनका, घास।
तृसना (तृष्णा)—लालच, लोभ।
तृषा—प्यास, चाह।—पित।
तृषित—लोभी, प्यासा।
तेज—प्रताप, ऐश्वर्य, चमक।
तेति—ते इति, बस वे।
तेते—वे वे, तितने, उतने।
तेपि—वे भी।
तैसी—वैसी, तिसके समान।
तोतरि—तोतली, लड़खड़ी बोली।
तोमर—एक शस्त्रका नाम।
तोयनिधि—समुद्र।
तोर—(क्रिया) तोड़नेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
तोरन—वन्दनवार। वन्दनवार आदिसे बना मिहराब और फाटक।
तोष—सतोष, तृप्ति, प्रसन्नता।
—क, सतोष देनेवाला।
—य, सतोष दे।
—यै, सतोषके लिये, प्रसन्नतार्थ।
त्रय—तीन, ३।
त्रसित—डरा हुआ।
त्राता—रक्षक, बचानेवाला।
त्रातु—बचावे, रक्षा करे।
त्रास—(क्रिया) डरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
त्राहि—रक्षा कर, बचा। पाहि।

दारु, दारू—लकड़ा, काठ। दनई (मद्य)।
दारुन—कठिन। भयानक।
दारुनारी—कठपुतली।
दावन—भस्म करनेवाला। दामन, आचल। दावमे। गवमे।
दावनी—एक भूषण, बेंदी।
दाह—(क्रिया) जलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
दाहा—जलन, जलाया।
दिग—दिशा। —गज, दिशाओंके हाथी जो पृथ्वीको आठों दिशाओंमें दवाये रहते हैं। —पाल, दिशाओंके रक्षक (इन्द्र वरुण, यम कुबेर) —गवर, नगा, शिव।
दितिसुत—दितिके पुत्र दैत्य (हिरण्यकशिपु)।
दिनकर—सूर्य।—दानी, अति उदार।—मनि, सूर्य। —नेश, सूर्य।
दिवस—दिन।
दिव्य—अलौकिक, स्वर्गीय। मनोहर। सुन्दर, स्वच्छ।
दिसा—दिशा।
दिसिकुंजर—दिग्गज (ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अजन, पुष्पदत, सार्वभौम, सुप्रतीक)।
दिसिप, दिसिपति, दिसिराज—दिशाओंके स्वामी
दीप्त—प्रकाशमान। उजेला। —ति प्रकाश।
दीपसखा—ज्योति, लौ।
दीस—देख पडनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हैं।
दुंदुभी—नगाडा, डंका, एक राक्षस का नाम।
दुआर—द्वार।
दुकूल—वस्त्र। उपरना।
दुति—द्युति, चमक। प्रभा।
दुनी—दुनिया। जगत। प्रपञ्च।
दुबिद (द्विविद)—एक वानरका नाम।
दुभावि—दो भाव जाननेवाला।
दुरत—दुष्ट।
दुर, दुराव—(क्रिया) छिपनेके अर्थमें। इन दोनों धातुओंके रूप क्रमश 'चढ'और 'चढ़ाव'के अनुरूप हैं।
दुर्ग—गढ़। कठिन। अति कठिनतासे जाननेयोग्य।

दुजन—अजय, न जीतनेयोग्य ।
दुर्गा— एक शक्तिका नाम । गन ।
दुर्घट—न जीतने योग्य । कठिन-तासे बनेयोग्य ।
दुर्जन—खोटा आदमी ।
दुरतिक्रम—दुस्तर,काठिनतासे पार होनेयोग्य ।
दुर्मद—एक राक्षसका नाम । बड़ा घमटा ।
दुर्वासन }
दुर्वासना } बुरी वासना ।
दुर्वासा—एक ऋषिका नाम ।
दुराधर्ष—जो शत्रुसे न डरे, अति निडर ।
दुराराध्य—आराधनाकरनेमें कठिन ।
दुराशा—खोटी आशा ।
दुरित—पापदोष ।
दुस्तर—काठिनतासे तरनेयोग्य ।
दुसह—असह्य ।
दुहु वा दुहू —दोनों ।
दु,दुर—बुरा, कठिनाइसे होनेवाला ।
दूजा—दूसरा, अन्य ।
दूधमुख—बालक, बच्चा ।
दूषन (दूषण) —दोष, चूक ।
दृग—आंख ।
दृढ—कठोर, कठिन ।—ढाई, कठोरता ।
दृष्टि—निगाह ।
देश—(क्रिया) देनेके अर्थमें इसके रूपे (१०) दीन्ह, (११) देइ, (१४) देइय, (१५) देइहइ, (२१) देहि, दिये, (२२) दान्हेउ, दियेउ, २३, २४ इसी प्रकार ।
देव—देवता । विबुध । इश्वर ।
—क, देवका । ता, सुर ।
—तरु, सुरतरु, कल्पवृक्ष ।
—धुनि, गंग, आकाशवाणी
—ऋषि, नारदादि ।
देवर—पतिका छोटा भाई ।
देवसर— मानसरोवर आदि ।
देवहुती—कर्दम ऋषिकी स्त्री ।
देहरी—डेहरी । दहलीज ।
देहा— देह । शरीर । तन ।
दैव—विधना, भाग्य, होनहार ।
दैहिक—देहज, शारीरिक ।
दोना— द्रोण, वृक्षके पत्तोंका पात्र ।
द्रव—(क्रिया) ढलने, पिघलने, नरम होनेके अर्थमें । इसके सभी रूप 'चढ़' धातुके अनुरूप है । द्रवहु,द्रवहिं इत्यादि ।
द्रव्य—धन । अर्थ । वस्तु ।
द्रुम—पादप, वृक्ष ।
द्रोह— झगड़ा, विरोध ।
द्वापर—तृतीय युग ।

द्वार—जरिया।
द्विज—त्रिवर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जिनका यज्ञोपवीत होता है। जो दो बार जन्मे। दांत। —**राज**, चन्द्रमा। ब्राह्मण। श्रेष्ठ।
द्विविद—एक वानरका नाम।
द्वैत—भेद। द्विविधा।
द्वंद्व—दोनोंका,आपसमें। दो। दोनों।

ध

धधक } धन्धा करनेवाला।
धंधरक } काम काज, उद्यमी।
धनद—धनका देनेवाला। कुबेर।
धनिक—धनी, धनवान।
धनी—धनवान। प्रभु। पति।
धनेस—धनका मालिक, कुबेर।
धन्य—भाग्यवान, श्रेष्ठ। धनी।
धन्या—एक नदीका नाम।
धर—धड़। कबन्ध। भूमि। पकड़। धारण करनेवाला। रखदे। —**की**, धड़की, धकधकाई।
धरनि—पृथ्वी, भूमि।
धरम—पुण्य। न्याय। पवित्र कार्य। —**ध्वज**, पाखंडी। —**धुरन्धर**, धर्ममें दृढ़।
धरषि (धर्षि)—दबाकर। डराकर।
धरा—पृथ्वी। —**सुर**, भूदेव,द्विज।
धवल—श्वेत, उजला।
धाता—ब्रह्मा, विधाता।
धाम—स्थान, घर, मकान।
धार—जलका प्रवाह। बाढ़। धारा चोखापन। समूह। किनारा। छोर। धारण करके, ग्रहण करके। —**रा**,बहाव,प्रवाह। (क्रिया)धारण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
धावन—दूत। चर।
धिग (धिक) छी छी, धिक्कार। घृणा।
धीर—धैर्यवान। साहसी। धीरज वाला।
धुनि, धुनी—ध्वनि, शब्द, नाद। धुनकर। पीटकर दुखसे सिर मारकर। —नदी।
धुरधर—पक्का, पोढ़ा, सच्चा, दृढ़। धुर धारण करनेवाला, बैल।
धुर—मुख्य, सीमा, मूल, जड़, धुरा अचल। ध्रुव परिणाम।
धुरीन—अचल। दृढ़। ध्रुवकी तरह
धूत—ठग। धूर्त।
धूम—धूआ। उपद्रव। हलचल।
धूमउ—धूआं भी, कोलाहल भी।
धूमकेतु—एक राक्षसका नाम।

र—धूलमें भरा।
—धीरज।
—गाय। पृथ्वी।—मति, गोमती नदी। राजा भोजकी घाराका नाम।—धूलि, गोधूलि, सायंकाल।
ञ—धोखा। अचानक।
ती—चैन, जो सबसे आगे फुट जुता रहता है। नेता। नायक। प्रेमिय।
—क्या, या तो, क्या तो। क्या जाने।
ा—(क्रिया) ध्यान करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
व—निश्चय, अवश्य।
ज, ध्वजा—झंडा, पताका, निशान।

न

दन—आनन्द देनेवाला। लड़का, पुत्र, संतान।
दिग्राम—अयोध्यापुरीमें एक गाँव।
दिनी—आनन्द देनेवाली, लड़की। कन्या, श्रीगंगाजीका एक नाम। कामधेनुकी पुत्रीका नाम।
न्दीमुख (नान्दीमुख)—एक प्रकारका श्राद्ध जो प्रत्येक उत्सवके आदिमें किया जाता है।
नक्र—नाक नामका एक प्रकारका जलजन्तु।
नकुल—नेवला, नेउर।
नख—नह, नाखून। बटा हुआ महीन रेशम।
नखत—नखत, तारा।
नगन, (नग्न)—नंगा, वस्त्ररहित।
नट—(क्रिया) नाचने और अस्वीकार करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।
नतरु—नहीं तो, नहीं फिर।
नति—झुकाव। प्रणाम। नम्रता।
नतु—नहीं तो।
नद—बड़ी नदी।
नदीस—समुद्र।
ननिऔरे—ननिहालमें नानाके घर।
नभ—आकाश।
नभग—पक्षी। पक्षियोंके स्वामी, गरुड़।
—नाथ, नभगेस, गरुड़।
नभचर—आकाशमें घूमनेवाले, देवता, मेघ, पक्षी।
नम—(क्रिया) झुकने, प्रणाम करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।
नमत (नमति)—नमस्कार करता है।
नम्र—नरम, कोमल, दीन।
नमामहे—हमलोग प्रणाम करते हैं।

नमामि,नमामी—मैं प्रणाम करता हूँ।

नम्र—झुका हुआ। विनीत। नरम। कोमल। दीन।

नय—नीति, धर्म, न्याय।

नयनपट—पलक।

नयनवत—आरावाला।

नयनागर—नीतिमें चतुर।

नर—मनुष्य, नरावतार, भगवान, अर्जुन। पुरुष।

नरकेसरी—नृसिंह भगवान। मनुष्योंमें सिंहसा वीर।

नरतक—नाचनेवाला।

नरतकी—नाचनेवाली।

नरमद—सुखदायक। ठिठोल, मसखरा।

नरहरि—नृसिंह भगवान। मनुष्योंमें विष्णुके समान। तुलसीदासजाके गुरु बाबा नरहरिदास।

नराच—तीर।

नल—एक वानरका नाम। एक राजाका नाम। नाल। जल आदि बहनेका मार्ग।

नलकूबर—कुबेरके एक पुत्रका नाम।

नलिन—कमल।—**नी**, कमलिनी नीलोफर।

नव—नया।—**जल**, वर्षाका पानी, मेह।

नवधा—नव प्रकारसे,नव प्रकारका—**भक्ति**,देखो नवभक्ति

नवनीत—मक्खन।

नवभक्ति—नव प्रकारकी भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण पादसेवा, अर्चन,वन्दन दास्य, सख्य, आत्म निवेदन)। नवीन भक्ति

नवरस—नव प्रकारके रस(शृङ्गार वीर, करुणा, अद्भुत,हास्य भयानक, वीभत्स, रौद्र शान्त।)

नवल—जवान, नवीन, टटका।

नवसत—नव और सात अर्थात १६ शृङ्गार। (अंगशुचि, मज्जन, वस्त्रधारण, जावक, केशसुधार, मांगमें सेंदुर, भालमें खौर, ठोढ़ीमें तिल बनाना, हाथपावमें मेंहदी, अंगमें अरगजा, नगजटित भूषण, फूलका गहना, पान, मिस्सी, होंठ रँगना, काजल)।

नवीन—नवल, नया।

नस्वर (नश्वर)—विनाशी, नाश हो जानेवाला।

नस—आंत, अँतड़ी।

नसा—(क्रिया) नाश करने या

होनेके अर्थमें। इसके रूप "चट" की तरह होते हैं।

हैं, नहीं, नाहि, नहीं—न होने या निषेध या अभावके अर्थमें।

नहरुआ—एक रोगका नाम, जिसमें शरीरसे सूतके समान कीड़े निकलते हैं।

नहुष—एक राजाका नाम।

नाघ—(क्रिया) लाघने, डाकने, या फांदनेके अर्थमें। इसके रूप "चट" की तरह होते हैं।

नांदीमुख—एक श्राद्ध जो सुख या मंगलके अवसर, विशेषतः पुत्रोत्पत्तिपर किया जाता है।

नाऊ—हज्जाम। नाम।

नाऊं—नाम।

नाक—नासिका। एक प्रकारका जलजन्तु। स्वर्ग।

नाकनटी—अप्सरा।

नाग—सर्प, हाथी, पान।

—पाश, सर्पसंयुक्त फंदा। कुउल्याकार बंधन।

नागर—चतुर। नगरवासी, पौर।

नागरिपु—सिंह वा गरुड़।

नाठी—नष्ट की। भागा। नष्ट हुई। टल गयी। गयी गुजरी, जिसके कोई न हो।

नात—नातेदार।

नाती—कन्याका पुत्र। दौहित्र या पौत्र।

नाथ—स्वामी। एक प्रकारके योगी। पशुके नथुनेसे पिरोया हुआ बन्धन।

नाद—शब्द, गान।

नाना—अनेक, भांति भांति, अनेक प्रकारके। कई।—कार, अनेक आकारके।

नाभि—ढोंढ़ी। एक राजाका नाम।

नायक—स्वामी, सरदार, मालाका सुमेरु।

नारकी—नरकवासी।

नारद—ब्रह्माजीके दसों मानसिक पुत्रोंमेंसे एक देवर्षि जो वाणीके आविष्कारक, गान-विद्यामें निपुण, देवताओं और मनुष्योंके बीच समाचार पहुंचाने और झगड़ा लगानेवाले समझे जाते हैं। कहते हैं कि यह पहले, ब्रह्माके जंघेसे उत्पन्न हुए थे। पूर्वजन्ममें यह ऋषियोंकी दासीके पुत्र थे, उन्हींकी सेवा और जूठनके प्रभाव एवं शिक्षासे भक्ति उत्पन्न

हुई, तपस्या की, वर पाया और शूद्रदेह त्याग देवर्षि हुए। यह कथा उन्होंने स्वयं व्यासजीसे कही।

नारा—कुसुमसे रंगा हुआ सूत। मौंजी। नाला। जल।

नाराच—तीर।

नारायन } **नारायण** } क्षीरसमुद्रशायी भगवान्‌का एक नाम। बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले ऋषि नारायण।

नारि, नारी—स्त्री।

नारे—नाले, बरसाती जलके बहनेके मार्ग।

नाल—नलिका। नल। खातिर, साथ। जूता। घोड़ेके पैरमें लगनेवाला लोहा।

नावरि—छोटी नौका। नाव घुमाना।

नास—नाश, बिगाड़, हानि, सुँघनी।

नासा—नासिका। नष्ट किया।

नासिका—नाक।

नाह—नाथ, पति।

नाहर—शेर। नार, मोटा रस्सा जिससे मोट खींचते हैं।

नाहरू—शेर। चामका टुकड़ा। एक रोगका नाम।

निकट—समीप, नगीच।

निकर—समूह। (क्रिया) निकलनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

निकस—(क्रिया) निकलनेके अर्थमें इसके रूप "चढ़"की तरह होते हैं।

निकाई—भलाई।

निकाम—कामनारहित। बुरा।

निकाय—झुंड। समूह।

निकृष्ट—खराब, तुच्छ।

निकेत—वास स्थान, धाम, घर।

—न, घर।

निकेवल—अकेला। सारांश। मात्र, खालिस।

निकंद—नाश, बरबादी।

—न, नाशक, नाश करनेवाला।

निषंग—तरकस, तून।

निषेध—रोक, बाधा।

निगदित—कथित, कहा हुआ।

निगम—पवित्र लेख, वेद।

निग्रह—रोष, क्रोध। दंड। त्याग।

निगूढ़—अति गुप्त, छिपा हुआ।

निघट—(क्रिया) घटनेके, बहुत कम होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

निचोर—निचोड़। रस।

निजतंत्र—स्वतंत्र।

निजानन्द—स्वरूपानन्द,ब्रह्मानन्द।
निठुर—कठोर, कड़ा।
नित (नित्य)—सदा। जो सदा स्थिर रहे।
नितंब—स्त्रीके कटिके नीचे पीछेका मांसल भाग। चूतड़।
निदर(निदरि)—(क्रिया) निरादर करने या निदर होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।
निदान—अन्त्य। मूल कारण।
निधन—मौत, मृत्यु।
निधरक—बेधड़क। निर्भय।
निधान—खजाना।
निधि—आधार। बहुत धन। खजाना। कोष।
निपट—अति, बहुत।
निपात—नाश। मरण। क्रिया, नाश करने, गिरा देने, मार डालनेके अर्थमें। चढ़ की तरह।
निपुन,(निपुण)—चतुरा, कुशल। दक्ष।
निपुनाई—चतुराई। कुशलता।
निफल—विफल। व्यर्थ।
निबह, (निर्बह)—निबाह (क्रिया) निवाह करने या होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
निबिड—सघन, घना।
निबुक—(क्रिया) छूटने या छोड़ने-के अर्थमें।
निबुकि—फुककर। छोड़कर। छूटकर।
निबृत्ति—संसारका त्याग।
निबेर—(क्रिया) चुकानेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।
निबेही—निबाह दी।
निबंध—संग्रह। प्रबंध।
निव—नीव, नेह, जड़, आधार।
निभ—तुल्य। ऐसा।
निमज्जित—नहाया हुआ, डूबा हुआ, निमग्न।
निमज्जन—स्नान। डुबकी।
निमि—एक राजाका नाम जो जनक के पूर्वपुरुष थे और जो आंखोंके पलकके गिरने, खोलने और बन्द करनेके अधिष्ठाता हैं।—प, पल, पलक।
निमित्त—हेतु। कारण। बहाना।
निमेष—पलकके गिरने भरका समय। निमिष।
नियम—नेम। अटकाव। योगका एक अंग।
नियरा—(क्रिया) निकट आके

अर्थमें। "रिसा" की तरह।
नियोग, नियोगा—आज्ञा।
निर—विना।
निरख—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह।
निरगुन, (निर्गुण)—गुणहीन, मूर्ख। तीनों गुणोंसे परे। ब्रह्म।
निरझर—झरना, सोता।
निरत—लगा हुआ, नियुक्त, लीन।
निरदय—दयारहित।
निवस—(क्रिया) रहनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।
निवार—(क्रिया) रोकनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप।
निवास—रहनेका स्थान। घर।
निवेदन—अर्पण। बताना। दिखाना।
निवेदित—प्रसाद, अर्पित। देकर। बताकर।
निसक—निर्भय। निःशंक।
निस—रात। निस्, विना।
निसगत—रातमें आया हुआ।
निसतार—छुट्टी, फरागत।
निसर—(क्रिया) निकलनेके अर्थमें इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।
निसाचर—राक्षस।
निसाना—ध्वजा, झंडा, निशान, डंका।
निसिन—ताँबा। चोखा।
निसेनी—सीढ़ी।
निसेस, (निःशेष)—शेषरहित, पूरे पूरे। चांद।
निसोत—निराला, केवल। शुद्ध।
निहार—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
निहोर—(क्रिया) इहसान बतानेके अर्थमें, "चढ़"की तरह। विनती, उरहना।
निहोरा—विनती।
नींद—निद्रा।
नीड—घोंसला।
नोत, नीति—न्याय।
नीरज—कमल, जलसे उत्पन्न। रजोगुणरहित।
नीरद—जलद, जलका देनेवाला, मेघ।
नीरधर—जलको धारण करनेवाला, मेघ।
नीरनिधि—समुद्र।
नीलकंठ—महादेवजी, नीले कण्ठवाला। मोर। नीलकंठ नामका पक्षी।
नीलोत्पल—नीला कमल।
नूतन—नया।

नूपुर—घुँघुरु, पैंजनी ।
नृत्य—नाच ।
नृप—नृपति, राजा ।
नृपाल—मनुष्योंका रक्षक, राजा ।
नेई—नींव, जड़ ।
नेऊ—थोड़ासा, कुछ । नींव, जड़ ।
नेग—बन्धान, दस्तूर, विवाहादिमें नाऊ,भाट और पुरोहितादिको देनेका बन्धान ।
नेगी—नेग लेनेवाला ।
नेति—न इति,अनन्त,नहीं इतना ।
नेपथ्य—नाटकका साजघर, शृङ्गार घर ।
नेम—शौच सन्तोषादि नियम,प्रतिज्ञा, योगका एक अंग । आधा ।
नेरे—समीप, नगीच ।
नेव—जड़, मूल ।
नेवत—निमंत्रण देनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।
नेवाज—(क्रिया) आदर करनेके अर्थमें । आदर करने या कृपा करनेवाला ।
नेवाजी—शरणमें ली । कृपा की । कृपा करनेवाला, दयालु । कृपा ।
नेवाजू—दयावान । कृपालु ।
नेह—प्यार, प्रीति, स्नेह ।
नैवेद्य—निवेदन करनेकी वस्तु । वस्तु ।
नोइ,नोई—दुहते समय गौके पिछले पैर बाधकर । दुहते समय गायके पिछले पैर बाधनेकी रस्सी ।

प

पंक—कीच । कीचड़ । जल । —ज, कमल ।—निधि, ताल, समुद्र ।—रुह,कमल ।
पंख—पर, पक्ष, डैना ।
पंगु—लुज, बिना हाथ पैरका ।
पंचबलि—पंचकर्मकी शान्तिकी बलि । पांच बलि वैश्य देव । अन्नकी आहुति । पांच कवर ।
पंचदस—पन्द्रह, १५ ।
पंचम—पांचवा, पंचम स्वर ।
पंचानन—पांच मुँहवाला । शिव । सिंह ।
पंचसबद—पांच प्रकारके शब्द । पंचोंकी आज्ञा ।
पंजर—ठठरी, पिंजरा ।
पंडित—विद्वान । पढ़ालिखा ।
पंथ—राह, मार्ग । रीति ।
पंपासर—एक तीर्थका नाम । एक सरोवरका नाम
पंचारा—एक पंच,
पखान—पाषाण, पत्थर ।
पखार—(क्रिया) धोनेके

इसके रूप "चढ़की" तरह होते हैं।

पग } पैर।
पगु }

पगे—लपेटे, मग्न डूबे हुए।

पच—(क्रिया) पचाने और पकानेके अर्थमें, इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

पचासक—पचासएक, पचासके लगभग।

पछ (पक्ष)—पाख, पन्छ, पखवारा, दल। ओर। सग। पच्छपात। पीछे।

पछताकि—पछतावा करने, पीछेसे किसी बातपर दुःख करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

पछार—(क्रिया) पछाड़नेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

पछिनाई—पछतावा करके।

पछिले—पिछले, पहिलेके पूर्वके।

पच्छपात—पक्षपात। किसी ओर मिल या झुक जानेकी क्रिया।

पटक—(क्रिया) पटकनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप हैं।

—, उपमा, बराबरी, मिसाल।

पटल—परदा, ढक्कन, किवाड़। पटरा।

पटु—चतुर। सुन्दर।

पटोर—रेशमी कपड़ा। रेशमी डोरा। पटुआ।

पठव, पठाव—(क्रिया) क्रमश भेजने, भिजवानेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह।

पढ़—(क्रिया) पढ़नेके अर्थमें, "चढ़" धातुकी तरह।

पतग—सूर्य। पतिंगे। गुड्डी। गेंद। लाल रग देनेवाली एक लकड़ी।

पतन्ति—गिरते हैं, सरकते हैं।

पतति—गिरता है, सरकता है।

पत्र—चिट्ठी। पत्ता, पर्ण, पत्रा।

पताका—छोटी झंडा।

पतिया—(क्रिया) विश्वास करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

पतियान—विश्वास किया, माना।

पति—राजा, स्वामी। प्रतिष्ठा, लाज।

—त, पापी, दोषी, गिरा हुआ।

—देवता, पतिरूपी देवताकी अनन्य भक्ता।

—नी, पत्नी।

—लोक, पतिका निवास स्थान। अहल्याने

सम्बन्धमें गौतम मुनिका आश्रम।— व्रता, पतिका व्रत करनेवाली, पतिको ही सर्वस्व माननेवाली।

पथ—मार्ग, राह।—थिक, बटोही, राही।

पथ्य—गुणकारी भोजन। रोगियोंके खानेयोग्य वस्तु।

पद—चरण। श्लोकार्द्ध। अधिकार। गीत, कविताका चरण।—चर, प्यादे, पैदल चलनेवाले।—चारी, प्यादे।—ज, पैरसे उत्पन्न। पैरोंकी उंगली।—त्राण, पैरोंका रक्षक जूता।—पीठ, खड़ाऊ।

पदुम—कमल। १००००००००००००००० की संख्या।

पदुमराग (पद्मराग)—लालमणि, मानिक, पुखराज।

पन—प्रतिज्ञा। अवस्था।

पनच—कमानका चिल्ला।

पन्नग—सर्प, सांप।

पन्नगारि—सांपका शत्रु। गरुड़। मोर। गिद्ध। नेवला।

पनव(पणव) ढोल, नगारा।

पनस—कटहल।

पनही—जूता।

पनारे—नाले, मोरी। धारा।

पनिघट—पानी भरनेका घाट वा स्थान।

पानि (पाणि)—हाथ।

पनी (प्रणी)—प्रण करनेवाला। दृढ़ प्रतिज्ञावाला।

पय, पयस्—जल। दूध।

पयोद—जलका या दूधका देनेवाला। बादल। थन, स्तन।

पयादहिं—पैरोंसे चलकर ही।

पयोधि, पयोनिधि—समुद्र। क्षीरसागर। दूधका समुद्र।

परंतु—उपरान्त, लेकिन।

पर—और, परे, उपरान्त। अवलम्बित। शत्रु।

पर—(क्रिया) पड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह है।

परख—(क्रिया) परखनेके बाद जोहनेके अर्थमें "चढ़"की तरह।

परत्र—परलोक।

परतीत, (प्रतीत) विश्वास, निश्चय।

परदछिन—फेरी, भांवरी।

परधान, (प्रधान)—मन्त्री, मुख्य, श्रेष्ठ।

परधाम—गोलोक, बैकुण्ठ इत्यादि।

परन, परना—(पर्ण) पत्ता, पत्र, दल।

परब (पर्व)—गांठ, जोड़ (अष्टमी

पवार—(क्रिया) फेंकनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

पवि—वज्र।

पवित्र—शुद्ध।

पश्यामि—मैं देखता हूं।

पषान—पाषाण, पत्थर।

पसाउ, पसाऊ—प्रसाद, प्रसन्नता। कृपा। पसेव।

पसेव—पसीजन, पसीना, स्वेद। प्रस्वेद।

पहार—अचल, भूधर।

पहुनई—आतिथ्य, मेहमानी।

पहँ—पास, निकट।

पाति—पंक्ति। पाती।

पांवड़े—पावके तलेका बिछावन।

पावर—पामर, नीच।

पावरी—पादुका, खड़ाऊ।

पाइक—प्यादा, दूत। मल्ल, पहल-वान।

पाक—रसोई। पका हुआ। एक असुरका नाम जो इन्द्रके हाथों मारा गया।—**रिपु**, शासन, इन्द्र।

पाकरि—पाकर, एक वृक्षका नाम।

पाख—पक्ष। पक्ष। सहाय। बल। ओर। अंग। दल। शरीरार्द्ध।

पाखरी—पखड़ी, पत्ती, छोटे छोटे दल। जड़ी।

पाग—(क्रिया) मग्न होने, लपेटे जाने, सननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

पाट—रेशम, पटुआ। नदी वा समुद्रके वारपारका विस्तार। (क्रिया) पाट देने, भर देनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

पाटमहिषी—पटरानी, विवाहिता स्त्री।

पाटल—वृक्ष विशेष। गुलाबी रंग, हलका लाल रंग। गुलाब।

पाटम्बर—रेशमी कपड़े।

पाठ—सबा, पठन, पढ़ाई। सबक।

पाठक—पढ़ानेवाला। पढ़नेवाला।

पाठीन—पढ़िना मछली।

पात—पत्ता, पत्र।

पातक—पाप, अघ। गिरानेवाला।

पात्र—बरतन। योग्य।

पाती—चिट्ठी। प्राप्त करती।

पाथ—जल।

पाथोज—कमल।

पाथोद—मेघ।

पाथोधि—समुद्र।

पाद—चरण, पैर। श्लोकका चतु-

थांश । चौथाइ ।

पादप—वृक्ष ।

पान—हाथ । पाना ।

पानि, (पाणि)—हाथ ।

पापरत—पापी ।

पापिष्ट—महापापी ।

पामर—नीच ।

पायक—दूत । पैदल । प्यादा ।

पायस—खीर । दूध चावलका पाक ।

पार—(क्रिया) सकने, फेंकने, डालनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं ।

पारथिव (पार्थिव)—मिट्टीका बना । मिट्टीके तत्कालके बने शिवलिंग ।

पारबती, पार्वती—उमा, शिवा, पर्वतकी । पर्वतका पुत्री ।

पारस—एक पत्थरका नाम जिसके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है । स्पर्शमणि । परसमनि ।

पारावत—कबूतर ।

पारिख—पारखी । परखनेवाला । गुना । जाच ।

पाल—(क्रिया) पालने पोषनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़"धातुके अनुरूप होते हैं । गरमी पहुँचाकर पालनेकी विधि । गरम स्थान । नाव को हवा रोककर प्रेरित करनेके लिये बड़े बड़े परदे ।

पालक—पालनेवाला । पोषक । एक साग ।

पालने—पालनेमें, हिंडोलेमें । हिंडोले । पोषण करने ।

पाव—(क्रिया) पानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं । चौथाई ।

पावक—अग्नि । आग । पवित्र करनेवाला ।

पावन—पवित्र । पवित्र करनेवाला ।

पावनी—पवित्र करनेवाली, मिलनी ।

पावस—बरसात । प्रावृट् ।

पाषंड—छल, कपट । दंभ । धर्मका दिखावा ।

पाषान—पत्थर ।

पास—समीप । फांस, फंदा ।

पाहन—पाषाण । पत्थर ।

पाहरू—पहरेदार, रक्षक ।

पाहि—रक्षा करो ।

पाहीं—पास । निकट ।

पाहुन—अतिथि ।

पिंजर—पीठकी हड्डी । मांसरहित शरीरके हाड़ । पिंजरा ।

पिआरा—प्रिय, प्यारा, स्नेही ।

पिक—कोइल, कोकिल, कलकंठ ।

पितर—पितृ। पूरज।
पिता, पितु—बाप, जनक। पैदा करनेवाला।
पिनाक—शिवजीका धनुष जिसे श्रीरामचन्द्रजीने तोड़ा।
पिपीलिका—चींटी।
पिय—पति, प्रिय।
पियर—पीत, पीला।
पियारा—स्नेही।
पियासे—प्यासे।
पिरा—(क्रिया) पीड़ा करने, व्यथा होनेके अर्थमें "रिसा"की तरह।
पिराने—थके, दुखाये।
पिरीते—प्रीतम, प्रियतम। प्यारे।
पिरोजा—अगाली रंगका एक सामान्य मणि।
पिसाच—प्रेत। भूत।
पिसुन—चुगली करनेवाला। पिसून का बहुवचन।
पी—पान करके। पिओ। पिय। स्वामी। पति।
पीत—पीला।
पीन—पुष्ट। मोटा, गुदगर, भरा हुआ।
पीपर—एक वृक्ष,अश्वत्थ। पीपल।
पीयूष—अमृत।
पीर—पीड़ा, दुःख। चूर्ण।
पीवर—पुष्ट। मोटा।
पुंगफल—सुपारी, कसैला।
पुंगव—प्रधान, श्रेष्ठ, बड़ा। बैल।
पुंज—समूह।
पुच्छ—पूंछ, दुम।
पुट—दोना, डिब्बा, अंगली।
पुटि (पुटी)—दोनिया, डिबिया।
पुन्य (पुण्य)—पवित्र, शुद्ध। अच्छे कर्म्म। पवित्र कर्मोंका परिणाम।
पुनि—फिर।
पुनीत—पवित्र।
पुरंदर—सुरेश, मघवा, इन्द्र।
पुर—नगर, पुरा। पूर्ण। भरा।
पुरइन—कुमुदिनि, नलिनी। पद्मिनी
पुरउब—पूरा करना। पूरा करूंगा।
पुरट—सोना। कंचन।
पुरव—(क्रिया) पूरा करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप हैं।
पुरा—पहलेका।
पुराकृत—पूर्व कृत, पहलेका किया हुआ।
पुरातन—पुराना।
पुरान, (पुराण)—ऐतिहासिक पुस्तक। पुराना। पुराण।
पुराना—प्राचीन। पुराण।
पुरारी—शिव, पुरके शत्रु। त्रिपुरासुरके मारनेवाले।

पुरुष—मनुष्य। परमेश्वर।
पुरुषार्थ—पराक्रम,साहस। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष।
पुरोडास—यज्ञभाग। यज्ञका हवि।
पुरोधा—पुरोहित।
पुलक,पुलकावली—रोमांच,रोआँ खड़ा हो जाना।
पुलकित—गद्गद। रोमांचित। प्रसन्न।
पुलस्ति—एक ऋषि पुलस्त्य मुनि।
पुष्ट—तैयार, मोटा, बलिष्ट।
पुष्प—फूल।
पुष्पक—विमानका नाम। जिसपर श्रीरामचन्द्रजी सवार हो लंकासे अयोध्या पधारे। यह कुवेरका था। रावण छीन लाया था।
पुस्तक—पोथी।
पुहुप—पुष्प, फूल।
पुहुमि—पृथ्वी, भूमि।
पूग—सुपारी। पूरा हुआ। समूह।
पूछ—चाह, दरकार। प्रश्न। पूछ कर। क्रिया, पूछनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।
पूज—(क्रिया) पूजा सत्कार करने और पूरा होनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़"धातु-की तरह हैं।
पूजनीय, पूज्य—पूजाके योग्य। सेवायोग्य।
पूत—बेटा। पुत्र। पवित्र। साफ किया हुआ।
पूतरी—आँखका पुतली। पुतली। मूर्ति।
पूप—मालपुआ, पुआ।
पूय—पीप, मवाद।
पूर—(क्रिया) भरनेके और बटनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह हैं। पूरा, पूर्ण।
पूरन (पूर्ण)—पूरा, भरा हुआ।
पूरब (पूर्व)—प्राचीदिशा। पहला। सूर्य उदय होनेवाली दिशा।
पूरुष—पुरुषा बड़े लोग। जेठे लोग।
पूषन—सूर्य, पोषण करनेवाला।
पृथक्—अलग, भिन्न, जुदा।
पृथुराज—स्वायंभुव मनुकी सन्तान राजा अंगका पुत्र। देखो मानस कथा कौमुदी।
पृथ्वी—भूमि, धरती।
पृष्ठ—पीठ। पुस्तकके पत्रका एक ओर। सफहा।
पेख—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातु की तरह होते हैं।
पेन्हाय—(क्रिया) गाय लगानेके अर्थमें। इसके रूप भी

"चढाव" धातुकी तरह हैं।

पेल—(क्रिया) त्यागने, टालने और न माननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

पेपन—प्रेक्षण। देखना। तमाशा।

पै—पर,ऊपर। दोष। दूध। पानी। निश्चय। अवश्य।

पैन—तीक्ष्ण, चोखा। नोकीला। तीखा।

पैसार—पैठार। प्रवेश।

पोच—बुरे, नष्ट, अधम, दुःखित।

पोत—समुद्रयान, बड़ीनाव, जहाज। बालक। एक प्रकारकी गुरिया, मनका, दाना। कर। दंड। मालगुजारी।

पोतक—बच्चा। बालक। पुत्रक।

पोषक—पालक, रक्षक, सहायक।

पोष—(क्रिया) पुष्ट करने और पोसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं।

पोह—(क्रिया) पिरोनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

पौढ, पौढाव—(क्रिया) लेटने और लिटानेके अर्थमें। क्रमशः "चढ़" और "चढ़ाव" का तरह।

पौरुष—बल। साहस।

प्रकाश—उजेला। रोशनी।—क उजेला करनेवाला,फैलाने वाला।

प्रकाश्य—प्रगट करनेयोग्य, उजेले योग्य।

प्रकृति—स्वभाव, गुण, ईश्वरकी शक्ति।

प्रकृष्ट—भला, श्रेष्ठ,उत्तम।

प्रगट—प्रत्यक्ष, स्पष्ट। (क्रिया) प्रगट करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

प्रगल्भ—अहंकारी, शास्त्रविजयी। गंभीर।

प्रघोर—अत्यन्त, अधिक। अत्यंत घोर।

प्रचार—(क्रिया) फैलाने, चलाने, ललकारनेके अर्थमें, इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। चलन, रीति,फैलाव।

प्रचंड—बहुत चढ़कर, बड़ा तेज।

प्रजा—सन्तान, रैयत, मनुष्य।

प्रजार—(क्रिया) जलाने, फूंक देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

प्रजासन (प्रजाशन)—प्रजाका भोजन। साधारण आहार। प्रजाको ही खा जानेवाला।

प्रजेस (प्रजेश)—प्रजापति, दक्ष प्रजापति।
प्रताप—तेज। ऐश्वर्य। शोभा। महिमा।
प्रति—पास, सामने। विरुद्ध। मुकाबलेका (जैसे प्रतिभट) वैसा ही, ज्योंका त्यों। सदृश। हर एक (मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा)। बदला। जैसे प्रति-उपकार।
प्रति उपकार—उपकारका बदला।
—कूला, विरुद्ध, विमुख।
—छांही, परछाहीं, छाया।
—पच्छी, विपच्छी, शत्रु।
—पाद्य, वर्णनके योग्य।
—भट, प्रत्येक वीर, समान वीर।—मा, मूर्ति, ऋस वीर।—मूरति (प्रतिमूर्ति) जैसीकी तैसी मूर्ति। परछाहीं। तसवीर।
प्रत्यूह—विघ्न, बाधा, रुकावट।
प्रद—दानी, देनेवाला। विशेषकर देनेवाला।
प्रदेस—परदेश, अन्यदेश। प्रांत। देशका विशेष भाग।
प्रदोष—सन्ध्या, दिनकी समाप्ति।
प्रनत—दीन, नम्र।
प्रनय—प्रेम।
प्रनव—(क्रिया) नमस्कार करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं।
प्रनाम—नमस्कार।
प्रपच—खेल, धोखा, छल। पाचों भूतोंके मेलमें बनी सृष्टि।
प्रबल—बलवान।
प्रबर—अतिश्रेष्ठ।
प्रबाल—मूगा, विद्रुम।
प्रबोध—ज्ञान, उपदेश।
—क, ज्ञानदाता, उपदेशक।
प्रबध—काव्यरचना। उपाय। बदोबस्त।
प्रभा—प्रकाश, उजेला।
प्रभाउ(प्रभाव)—तेज, प्रताप, बल।
प्रभात—प्रात काल, तड़का।
प्रभु—स्वामी, नाथ, पालक, ईश्वर।
—त्व, स्वामित्व, धन, सम्पत्ति।—ता, बड़ाई, ईश्वरता।
प्रभजन—पवन, हवा।
प्रमदा—युवती, स्त्री।
प्रमाद, प्रमादु—असावधानता। भूल। पागलपन।
प्रमादि—पागल। भुलक्कड़। उन्मत्त होता या पागल करके मद होके।

प्रमान—यथार्थ। उदाहरण। सनृत। मात्रा।

प्रमोद—प्रसन्नता, आनन्द।

प्रयान्ति—प्राप्त होते हैं। निश्चय करके जाते हैं।

प्रयास—परिश्रम, थकावट।

प्रलब—विशाल,बड़ा। बहुत लम्बा।

प्रलय—सृष्टिका नाश। बाढ़।

प्रलाप—बकवाद।

प्रवर्षण—एक पर्वतका नाम। अत्यन्त वर्षा।

प्रवान—प्रमाण (देखो)

प्रवाह—बहाव। धारा।

प्रविस—(क्रिया) पैठने या घुसनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़"-धातुकी तरह हैं।

प्रवीन—चतुर, सयाना।

प्रवेस—पैठ, पहुँच।

प्रश्न—पूछना, सवाल।

प्रसग—साथ, से। मौका। विषय।

प्रससक—प्रशंसा करनेवाला। बड़ाई करनेवाला।

प्रससा—यश, कीर्ति। सराहना।

प्रसन्न—सुखी, आनंदित।

प्रसव—जन्म। बच्चा होना।

प्रसाद—दया। जूठन। प्रसन्नता।

प्रसिद्ध—उजागर।

प्रसीद—कृपा करो। प्रसन्न हो।

प्रसूती—जननी, माता। पैदा करनेवाली।

प्रसून—फूल, पुष्प।

प्रहलाद—दैत्यराज हिरण्यकश्यपके पुत्र जो विष्णुभक्त हो गये हैं। (देखो मानस-कथा कौमुदी।)

प्रहर्ष—विशेष आनन्द।

प्रहार—मार, मारना। चोट।

प्राकृत—नीच, अधम। स्वाभाविक। गँवकी बोली।

प्राची—पूरब दिशा।

प्रात—सवेरा, तड़का। —कृत, सन्ध्यावन्दनादि। सवेरेके नित्य कर्म।

प्रान—श्वास। आयु। जीव।

प्राय—अधिक करके, बहुधा।

प्रावृट
प्राविट } —बरसात।

प्रियतम—अत्यन्त प्यारा। पति।

प्रियवादिनि—मीठा बोलनेवाली।

प्रेत—भूत। —निवास, प्रेतोंके रहनेका स्थान, श्मशान।

प्रेर—(क्रिया) आज्ञा करने, हुक्म देने, भेजने, काम कराने के अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

प्रेरक—आज्ञा करनेवाला। चलानेवाला। प्रवृत्त करनेवाला।

प्रेरित—भेजा हुआ। लगाया हुआ। प्रवृत्त किया हुआ।

प्रोक्त—कहा हुआ। भलीभाँति वर्णित।

प्रौढ़—बड़ा। मोटा। निपुण। यौवन और बुढ़ापेकी मध्य अवस्था।

प्रौढ़ि—पक्की बात। पोढ़ापन। सामर्थ्य, उत्साह।

प्लव—नौका, तरणी।

फ

स्फटिक—पाषाण। बिल्लौर। एक टिकमणि।

फन—फण, नागका मुँह। नागका मस्तक।

फनि, फनी—सर्प, नाग। —क, सर्प, नाग।

फनीस—सर्पराज, नागेश।

फब—(क्रिया) सगत होने, ठीक बैठने, भले लगनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

फरसा—कुठार। परशु।

फराक—चौड़ा, ढीला।

फाट, फाड़, फार—(क्रिया) फटने और फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

फाव—(क्रिया) फबनेके अर्थमें। देखो "फब" ऊपर। इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

फुर—सत्य, यथार्थ।

फुरि, फुरी—सूझकर या सूझी। स्फुरित हुई। उपजी। ध्यानमें आयी।

फुलवाई—फुलवाड़ी। वाटिका। वारी।

फुलाव—(क्रिया) फुलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।

फूट—(क्रिया) टूटने, टुकड़े होनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

फोर—(क्रिया) फोड़ने, तोड़नेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

ब

बक, बंका—टेढ़ा, बाँका। कपटी।

बगा—लुचा। शरीर।

बचक—ठग। —ता, ठगी।

बच—(क्रिया) ठगनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके रूपोंकी तरह होते हैं।

बँचाव—(क्रिया) पढ़वानेके अर्थमें।

इसके सभी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बंदन—झुकना, प्रणाम।

बंदनीय—प्रणाम करनेयोग्य।

बंदनवार—हरी पत्तियोंकी विशेषत आमके पल्लवोंकी लम्बी माला।

बंद्य—प्रणामयोग्य, सराहनीय।

बंदी—भाट, यश-प्रशंसक। कैदी।

बंदीखाना, बंदीगृह—कारागार। कैदखाना।

बंद—(क्रिया) प्रणाम या वंदना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

बंध—प्रबंध, रोक।—**न**, रोक, बांधनेकी वस्तु। रस्सी।

बंध्या—बांझ स्त्री।

बंधु—भाइ, नातेदार।

बंस—वंश, नाश।

बंसी—बांसुरी। मछली मारनेकी लग्घी।

बक—(क्रिया) बकने, बोलनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बक—बकुला, बगला। अल्पना।

बकता—बकनेवाला। व्यास। कहनेवाला।

बक्र—टेढ़ा, बांका। प्रतिकूल।

बकुल—मौलसिरीका पेड़। बगुला।

बखान—(क्रिया) कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बगमेल—पाती। पांतीसे कूच। बगुलोंकी नाईं पंक्ति बंधी चाल।

बगर—(क्रिया) फैलने, बिखरनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह।

बच—वचन। एक औषधका नाम। (क्रिया) बचनेके अर्थमें। "चढ" की तरह।

बचालि—बातें। बातोंसे।

बच्छल, बछल—(वत्सल) दयालु हृदय। बच्चोंपर प्रेम करनेवाला। बच्चोंवाला।

बजनिया—बाजा बजानेवाला।

बज्र—पवि, कुलिश। हीरा। कठोर।

बट—वट वृक्ष। बड़का पेड़। अक्षयवट।—**पार, मार**, राह-बाटमें डाका मारनेवाला, मारनेवाला।

बटाऊ—बटोही। बांटनेवाला।

बटु, बटुक—बालक, कुमार लड़का। ब्राह्मणकुमार।

बटुर—(क्रिया) इकट्ठे होने, सिमिटनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।
बटोर—(क्रिया) समेटने, संग्रह करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ"धातुका तरह होते हे।
बटोही—पथिक, मार्ग चलनेवाला।
बड—बड़ा, ज्येष्ठ। बरगदका पेड़।
बडवानल—समुद्रकी अग्नि।
बढावा—बढाना, अधिक क्रिया। उत्साह। उछाह।
बत—धान, बोली। नाई, तरह।
—कही, बातचीत, बोल चाल। कहासुनी।
बताव - (क्रिया) समझाने, दिखाने, कहनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।
बतास, बतासा—वायु, हवा। एक प्रकारकी शकरा निर्मित मिठाइ।
बत्स—बच्चा। बछरा। पुत्र। बेटा।
बद—(क्रिया) कहने, बदनेके अर्थमें, "चढ़" धातुकी तरह। बुरा, खोटा।
बदरी—बदला, मेघमाला। बैरका, बेर वृक्षका। बेर।
बदामि—मैं कहता हूं।
बध—(क्रिया) मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। मारे जानेकी दशा। मारा जाना। (मेघनाद बध= मेघनादका मारा जाना)।
बधाव—(क्रिया) मरवा डालनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।
बधावा—बधाई। मुबारकबादी। बधाईके गीत और बाजे।
बधिक—व्याधा, चिड़ीमार।
बधिर—बहिरा।
बधू—बहू। पुत्रकी स्त्री। ब्याही स्त्री। स्त्री।
बधूटी—युवती। नयी ब्याही स्त्री।
बन—(क्रिया) बननेके अर्थमें। इसके भा रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।
बनचर—जगली, बनवासी। जलजन्तु। बानर। बनमें रहनेवाला। जलमें रहनेवाला।
बनज—जलसे उत्पन्न वस्तुमात्र। कमल जोंक आदि। बनसे उत्पन्न, फल, पुष्प, जीवजन्तु आदि।
बननिधि—समुद्र।
बनमाला—पुष्प और पत्रोंसे बनी माला।

बनाव—(क्रिया) बनानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बनिक—बनिया, व्यापारी।

बनिता—स्त्री, लुगाइ।

बनै—सुधरै, सवरै। बन पड़े, हो सके। दूलहको, बनेको। वेश धारण करै।

बपु, बपुष—देह, तन।

बबूर—बबूलका वृक्ष।

बम—(क्रिया) कय करनेके अर्थमें। उलटी होने, उगल देनेके अर्थमें। रूप "चढ़" धातुकी तरह।

बमन—छांट, कय, उलटी।

बय—(क्रिया) बोनेके अथम। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बयनी—वचनवाली। वाणी-वाली।

बयर—बैर। विरोध। झगड़ा।

बर—(क्रिया)चुने जाने, वरने, ऐंठने, जलने और नियुक्त किये जानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़"की तरह होते हैं। वरदान। असीस। पति। दुलहा। सुन्दर। श्रेष्ठ। सबसे अच्छा। बरगदका पेड़।

बरज—(क्रिया) रोकने, मना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। कर्य। प्रधान। श्रेष्ठ। बड़ा।

बरजोरा,बरजोरी—बरबस, जबरदस्तीसे। श्रेष्ठ जोड़ी, अच्छा जोड़ा।

बरद—वर देनेवाला,वरदाता, बैल। बरधा।

बरग,बर्ग—जाति, समूह। चौडाइ लम्बाईमें बराबर आयत। प्रकार। किसी अकका उसी अकसे गुणनफल।

बरदान—उपहार। प्रसाद। आशीर्वाद।

बरन—अचर। रंग। जाति। वर्णन करके। बाल्कि। प्रत्युत। (क्रिया) वर्णन करनेके अथमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।—संकर, मिश्रित वर्ण। दो भिन्न जातियोंसे उत्पन्न।

बरनाश्रम—वर्ण और आश्रम। जाति और पथ।

बरबरनी—सुन्दर वर्णवाला, गौरांगी। सुन्दरा।

बरबस—बरजोरासे। बलात्कार।

जबरदस्ती। श्रेष्ठ या अच्छेके वशमें।
बररे—बर्रे। भिड़। हाटा।
बरष (बष)—बरस, साल। (क्रिया) बरसनेके अर्थमें। इस के सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।
बरषा—बरसात, पावस। बारिश। बरसनेकी क्रिया।
बरहि—बर्हि। मोर। मयूर। श्रेष्ठ को। वरको। वरता है। [देखो "वर"]
बराए—छाटे। छाटनेसे। बचाये।
बराव—(क्रिया) चुनने, बचानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।
बरासन—श्रेष्ठ आसन। दुलहेके बैठनेका आसन। श्रेष्ठ अशन, उत्तम भोजन। वरका भोजन।
बराह—सुअर, शूकर।
बरिआर, बरियारा, बरियार—बढ़कर, जबरदस्त। बलवान।
बरियाई—जबरदस्ती। बरजोरी। बलात्कार।
बरियाता—बरयात्ता, बरात।
बरिया—बेला, समय। बारीमें।
बरबंड—बलवान, बली।
बरिस—(क्रिया) बरसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।
बरुन—वरुण देवता। जलके देवता।
बरु—बरिक, चाहे। प्रत्युत।
बरूथ—झुंड, समूह।
बरेषी—मँगनी, सगाई। वर-रचा,
बरोरू—सुन्दर जघावाली स्त्री।
बलकल—वल्कल, वृक्षकी छाल (भोजपत्रादि)।
बलकाव—(क्रिया) झुकाने, पागल बनानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।
बलवान, बलवन्त—बलिष्ट, बली।
बलाक—बकुला। सारस।
बलाहक—मेघ, बादल।
बलि—बखरा, पूजा, निछावर भाग। एक दैत्य राजाका नाम जो प्रसिद्ध महाभागवत दैत्यराज प्रह्लादका पोता और विरोचनका बेटा था। [देखो "मानस कथा-कौमुदी"।]
बलित—घेरा हुआ, लिपटा हुआ।
बलीमुख—वानर, बन्दर।
बल्लभ—प्यारा, प्रिय। अध्यक्ष।

वल्ली—लता । बेल । मामीका डाढ़ा ।

वस—(क्रिया) रहनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं । वश । कब्जा । अधिकार । शक्ति ।

वसन—वस्त्र, कपड़ा ।

वसवर्ती—अधीन ।

वसह—बैल ।

वसाई—वस चलता है । आबादी की ।

वसीठी—दूत, चर, हरकारा । वसिष्ठ ।

वसुधा—पृथ्वी ।

वस्तु—पदार्थ, जिन्स, चीज ।

वह—(क्रिया) बहनेके और ढोनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं ।

वहराव—(क्रिया) अनसुना करने, बहलानेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं ।

वहिनी—भगिनी । बहनेवाली, प्रवाहवाली नदी । ढोनेवाली ।

वहु—बहुत ।—**कालीन,** बहुत पुराना ।—**तक,** बहुतेरे —**धा,** प्राय । बहुत तरहसे । अकसर ।

वहुर—(क्रिया) फिरने, लौटनेके अर्थमें । "चढ़" धातुकी तरह ।

वहोर—फिर । फेरनेवाला । फेरी । क्रिया, लौटानेके अर्थमें । "चढ़" का तरह ।

वाक—एक शस्त्र । एक टेढ़ी छुरा । एक हाथका भूषण । घुमाव ।

वाका—टेढ़ा । कपटी । लड़ाका । छविवाला, सुन्दर ।

वाकी—छवीली, टेढ़ी । कुटिला ।

बाँकुरा—टेढ़ा, कुटिल, वक्र, छवियुक्त ।

वाच—(क्रिया) पढ़नेके अथमें "चढ़" धातुके अनुरूप ।

वाझ—वध्या । ऐसी स्त्री जिसके सन्तान न हो सके ।

वाट—(क्रिया) बाटने या भाग करनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं ।

वाउ (वाऊ)—वायु, हवा ।

वाउर—पागल ।

वाक—वाणी । वचन ।

वाग—वाणी । लगाम । वगीचा । टहला, फिरा ।

वाग—(क्रिया) बकने, घूमने, हवा-

खानेके अर्थमें। "चढ" धातुके अनुरूप।
बागीस—आकाशवाणी। वाणीका अधिष्ठाता। हयग्रीव भगवान। ब्रह्मा।
बागुर—जाल, फंदा।
बाचाल—वक्की, बकवादी। बहुत बोलनेवाला।
बाज—(क्रिया) बजनेके अर्थमें "चढ" धातुकी तरह। श्येन, बाजपक्षी। घोड़ा। लौटना, फिरना, अलग रहना।
बाजने—बाजे।
बाजि—बजकर। घोड़ा।—मेध, अश्वमेध। एक यज्ञ जिसमें घोड़ेका बलिदान होता है।
बाट—बटखरा। भाग। राह। —परइ,बीच राहके डाकापड़े।
बाटिका—बारी, बगीचा।
बाद—(क्रिया) बढ़नेके अर्थमें, इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बढ़नेकी दशा। जलप्रलय। बढ़न्ती, बढ़ती।
बात—बचन, वायु। बाइ।
बाती—बातचीत। बटी हुई। वस्तु। बत्ती।
बातुल—पागल। बाइ चढ़ा हुआ।
बात्सल्य—पुत्रस्नेह। बेटेका प्रेम।
बादले—स्वर्णरचित। जरी या सोनेके कामके कपड़े।
बाद—(क्रिया) झगड़ने, हुज्जत करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। पीछे। झगड़ा। सिद्धान्त।
बादि—व्यर्थ। बोलकर। झगड़ा-कर।—नी, बोलने वाली।
बादी—बोलनेवाला। झगड़ने-वाला। ग्राह।
बाधक—रोकनेवाला।
बाध—विघ्न, रोक।
बाधी—विघ्नकर्त्ता। बाधा डालने-वाला।
बान—बाणासुर दैत्य। स्वभाव। प्रतिज्ञा। तीर। बाण।
बानर—मर्कट। बन्दर।
बाना—प्रतिज्ञा। विरद। अभ्यास। तीर।
बानि—टेव। अभ्यास। विरदा-वली। वाणी। बाना।
बानी—वाणी। सरस्वती। बोली। बात।
बानैत—बीर। बाना फेंकनेवाला।

बाना धारण करनेवाला।
कट्टर प्रतिज्ञा पालनेवाला।

वापिका (वापी)—बावली। एक प्रकारका जलाशय। बावडी।

वापुरी—तुच्छ। निगोड़ी। बेचारी।

बापू—बाप, पिता।

वाम—बायां, विरोधी। उलटा। स्त्री।

वामदेव—शिव। एक मुनिका नाम।

वाम्हन—ब्राह्मण, द्विज।

वाय—पसारकर, फैलाकर। है। वायु।

वायन—बयना। भेट। बयाना। पेशगी। साई।

वायस—काक, कौवा।

वार—(क्रिया) दूर करने, हटाने और मना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

वार—दिन। बेर। बोझ। देर। केश। द्वारा। बालकर।
—**क**, एक बेर।

वारन—हाथी। रोकना, दूर करना। शीघ्र।

वाराबाट
वारहबाट } तहस नहस, बरबाद, नष्ट।

वारहि (वारही), बचपनसे। मना करते हैं। वारा फेरा करते हैं। निछावर करते हैं।

वारि—जल, पानी। निछावर करके। —**चर**, जलके जीव। —**चर केतु**, काम देव, मीनकेतु। मकरध्वज। —**ज**, कमल। —**द**, मेघ, बादल। —**द-नाद**, मेघ नाद। —**धर**, बादल, मेघ। —**धि**, समुद्र।

वारी—जल। फुलवारी। बालिका। निछावर करी। रोकी।

वारीस—समुद्र।

वारुनी—(वारुणी), मद्य, शराब। पश्चिमी दिशा। एक योग या पर्व्वका नाम। बरौनी। दूब।

वारे—लड़के। वार दिये। किसी प्रकारसे। कुँआरे।

वाल—बच्चा। केश।

वालमीक—बांबीसे निकले हुए एक तपस्वी ऋषिका नाम। [देखो "मानस कथा कौमुदी"।]

वाला—स्त्री। युवती। कानमें पहिरनेकी छोटी बाला।

बालि—एक वानरका नाम जो किष्किन्धाका राजा था।
बावन—भगवानका एक नाम। नाटा। ५२ अंक।
बावरी—पागल स्त्री। पगली।
बास—निवासस्थान। गंध। गृ।
बासन—बरतन। निवास।
बासना—इच्छा। चाह।
बासर—दिन।
बासव—इन्द्र।
बासा—घर। सुवासित किया।
बासी—निवासी। एक पहर पहलेकी पकी चीज।
बाहु—बाहु।
बाहन—सवारी।
बाहिज—बाहरी। बाहरका।
बाहिनी—सेना। बहनेवाली नदी। ढोनेवाली।
बिंदु—बिंदी। बूंद। अनुस्वार।
बिंध्या—एक पर्वतका नाम जो मध्य भारतमें पच्छिमसे पूरबतक फैला हुआ है।
बिकट—भयानक। टेढ़ा।
बिकटासी—भयकर मुखवाली। विकटास्या।
बिक्रम—पराक्रम। प्रभाव।
बिकरारा—विकराल। भयङ्कर। बेकरार। तड़पता हुआ।
बिकल—बेकल।
बिकस—खिलकर। प्रसन्नता। (क्रिया) खिलने फैलनेके अर्थमें "चढ़" का तरह।
बिकार—दोष।
बिख्यात—प्रसिद्ध, उजागर।
बिखान, (विषाण)—सींग।
बिखंडन—तोड़ना। भंजन करनेवाला।
बिगत—रहित, हीन। गया हुआ। अभाव।
बिगर—(क्रिया) बिगड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप है। बगैर। बिना।
बिगोव—(क्रिया) नाश करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुका तरह होते हैं।
बिग्रह—विरोध, झगड़ा। शरीर। हठ।
बिघट—(क्रिया) तोड़ने, बनवानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ"धातुका तरह होते हैं।
बिघन, बिघ्न—असगुन, अड़स। रोक।
बिच—बीच, मध्य, में।
बिचक्षण—विलक्षण, अद्भुत, चतुर।

विचर—(क्रिया) चलने, फिरने, घूमनेके अर्थमें। रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

विचल—(क्रिया) चलायमान होने, चंचल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

विचार—(क्रिया) सोचने, ध्यान करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। खयाल। कल्पना। फैसला।

विचित्र—अद्भुत, अनोखा।

बिचेतन—अज्ञान। बेसुध।

बिछुर—(क्रिया) जुदा होने, अलग होनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप।

बिछोह—(क्रिया) छोड़ देने या छुड़ा देनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

विजय—जय, जीत।—**यी**,

विजयी—जय करनेवाला। जीतनेवाला।

विज्ञान—शास्त्रज्ञान, पूरी जानकारी।—**विहान**, ज्ञानका उदयकाल। ज्ञानका सवेरा। अज्ञानहानि।

विज्ञानी—ज्ञानवान, सुबोध। पण्डित।

विटप—वृक्ष, पेड़।

बिडर—(क्रिया) छितराने, फैलने, विरल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। विरल। अलग अलग।

बिडंब—ठगी, छल, झूठ वचन।—**ना**, झूठ झगड़ा, मिथ्यावाद। तंग करना। व्यर्थ कर देना। नकल करना। ढोंग करना। रूप बदलना।

बिढव—(क्रिया) कमाने और बढ़ानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

वितान—चँदवा, मंडप, शामियाना।

बिथक—(क्रिया), चकित होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

बिथुर—(क्रिया) फैलने, छितरानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

विद—ज्ञाता। जाननेवाला।

बिदर—(क्रिया) फटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

बिद्यमान—प्रकट, प्रत्यक्ष।

बिद्या—ज्ञान, शिक्षा।

बिद्रुम—मूंगा, प्रवाल।

बिदा—विसर्जन, रवानगी।

बिदार—(क्रिया) फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं।

बिदित—विख्यात, प्रसिद्ध।

बिदिसि,(बिदिशा)—दिशाके कोण। [देखो, "कोन" "अष्ट कोण"]

बिदुष—पंडित, विद्वान्।

बिदुषी—पंडिता।

बिदूषक—भांड। मसखरा।

बिदेह—वेदान्ती। ब्रह्मज्ञानी।

बिधना—देखो "बिधि"।

बिधवपन—रंडापा।—ना, रांड

बिधवा—जिसका पति मर गया हो। रांड।

बिधात्री—ब्रह्माणी, ब्रह्मा की स्त्री। बनानेवाली। सरस्वती।

बिधाता—ब्रह्मा, विधि, सृजनहार।

बिधान—विधि, पूरी रीति। कानून।

बिधि—ब्रह्मा। क्रम। भाग्य। रीति। चाल।—ना, दैव, विधाता।—वत, यथाविधि। रीतिके अनुकूल।

बिधु—इन्दु, चांद।—धु तुद, राहु। —बदनी, चन्द्रमुखी।

बिधुन्तुद—राहु। चन्द्रमाको तंग करनेवाला।

बिध्वंस—नाश। नष्ट कर, उजाड़-ना।

बिन }
बिनु } बिना, निषेध।

बिनता—गरुड़जीकी माताका नाम। दक्षकी कन्या।

बिनती—प्रार्थना, विनय।

बिनय—(क्रिया) विनती करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बिनस—(क्रिया) नष्ट होने, बिगड़नेके अर्थमें, "चढ़" धातुके अनुरूप।

बिना—छोड़कर, रहित, सिवा।

बिनायक—श्रीगणेशजी। गरुड़जी। बुद्धदेव। गुरु। विघ्न। बाधा।

बिनिश्चित—अति दृढ़। पक्का।

बिनिंदक—प्राय निंदा करनेवाला। विशेष निंदा करनेवाला।

बिनीत—नम्र, झुका हुआ। अति नीतिवान।

बिनोद—खेल।

विप्र—द्विज, ब्राह्मण।
विपरीत—उलटा, प्रतिकूल।
विपिन—वन, जंगल।
विपुल—बहुत, अधिक।
विपुलाई—अधिकता।
विवर—बिल, छेद, माद।
विवर्द्ध—बहुत, बढ़ती।
विवरन—विवर्ण। पीला। वैराग्य। फका। मुरझाया। विस्तृत वर्णन। ब्योरा।
विवस—विकल, व्याकुल।
बिवाकी—नाश, समाप्ति, वारा न्यारा।
विवाद—हुज्जत, झगड़ा, बकवाद।
विविध—अनेक भाँति।
विबुध—देवता, पंडित।—**वन** नंदनवन, देवताओंका वन।—**वैद**, देवताओंके वैद्य, अश्विनीकुमार।
विवेक—विचार। ज्ञान। भले बुरेकी समझ।
विवेकी—समझदार।
विभक्त—भाग किया हुआ, बँटा हुआ।
विभव—संपदा, धन। पालन। मोच।
विभजन,—तोड़नेवाला, नाश करनेवाला।
विभाग—भाग, टुकड़ा, खंड, अंश।
विभाती—प्रकाशित होती है। मालूम होती है।
विभीषन—रावणके सबसे छोटे भाईका नाम।—विशेष भयानक।
विभु—प्रभु, परमेश्वर। व्यापक।
विभूति—सम्पदा, ऐश्वर्य। भस्म।
विभूषन—अलंकार, आभूषण।
विभेद—दुभाव, जुदाई। भिन्नता।
विभो—हे व्यापक।
विमद—मदरहित, बिना घमंड।
विमल—निर्मल, सच्चा, शुद्ध।
विमात्र—सौतेला भाई।
विमाता—सौतेली माँ।
विमान—आकाश-मार्गमें चलने वाली सवारी।
विमुख—विरोधी, प्रतिकूल।
विमूढ—महामूर्ख।
विमोह—मूरखता।
बिया—(क्रिया) जनने, बियानेके अर्थमें। इसके रूप "सिरा", "सिरा" आदिकी तरह होते हैं।
बियोग—बिछोह, जुदाई।
बियोगी—बिछुड़ा हुआ।
बिरक्त—उदास, त्यागी, बैरागी।
बिरच—(क्रिया) रचने, बनानेके

अर्थमें। इसके रूप चढ़ धातुकी तरह होते हैं।

बिरचि—रचकर, बनाकर।

बिरची—बनाई, रची।

बिरज—सात्विकी। निर्मल।

बिरत—समारंभे छूटा हुआ। वैरागी। उदासीन।

बिरति—त्याग, उदासीनता। वैराग्य। अति प्रीति।

बिरथ—बिना रथ। पैदल।

बिरद—यश, स्तुति। प्रतिज्ञा। दंतरहित। बूढ़ा।

बिरल—छितराया हुआ। अलग अलग।

बिरला—कोई, कोई एक, एकाध।

बिरव—बिरवा, बीरो, पौधा। सुनसान।

बिरस—रसरहित, फीका।

बिरहवत—वियोगी, छूटा हुआ। बिरहसे दुःखी।

बिरहाकुल—वियोगसे व्याकुल।

बिरहागी—वियोगाग्नि, जुदाईकी आग।

बिरहित—वियोगप्राप्त, वियोगी। विहीन। बिना।

बिरहिन—बिछुड़ी हुई। वियोगिनी।

बिरही—वियोगी।

बिराग—वैराग्य। त्याग।

बिरागी—त्यागी।

बिराज—(क्रिया)विराजने, सोहनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं।

बिराट—विश्वरूप, ईश्वरका सव-सृष्टिमय रूप। अत्यंत बड़ा।

बिराध—एक राक्षसका नाम जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मारकर गाड़ दिया।

बिरुज—निरोग।

बिरुद्ध—प्रतिकूल। वैरी।

बिरुदावली—यशसमूह। बाने। प्रतिज्ञाएं।

बिरुदैत—प्रतिज्ञावाला। प्राणधारी।

बिरंचि—ब्रह्मा।

बिलंब—देर, अबेर।

बिलक्षण—अद्भुत।

बिलख—(क्रिया) दुखसे पीड़ित होने, रोने, उदास होनेकी दशामें कुछ कहने या शिकायत करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बिलग—अलग, भिन्न। दूसरा।

बिलगा—(क्रिया) अलग होने, जुदा होनेके अर्थमें। "पिरा" "घिरा" आदिकी तरह इसके रूप होते हैं।

विलगाव—(क्रिया) "चढ़ाव" की तरह इसके सभी रूप होते हैं। अलग करनेके अर्थमें।

विलप—(क्रिया) रोकर शिकायत करने या विलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं।

विला—(क्रिया) नष्ट हो जाने, मिट जानेके अर्थमें। इसके रूप "पिरा" "सिरा" की तरह होते हैं।

विलाप—रोदन। अति दुखकी रुलाई।

विलासिनी—प्रसन्न मनवाली। विलास करनेवाली।

विलोक—(क्रिया) देखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातु-की तरह होते हैं।

विलोचन—दोनों आँखें।

विलोव—(क्रिया) मथनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातु की तरह होते हैं।

विवेक—ज्ञान, समझ।

विसद—स्वच्छ। उजला। पवित्र। स्पष्ट। सुंदर। विशद।

विसाल—बड़ा, फैला हुआ।

विसिख—तीर।

विसुद्ध—निर्मल।

बिसेष—अति। ज्यादा। भेद। खास।

बिसोक—शोकरहित। अत्यन्त शोक।

बिस्तर—विस्तार, फैलाव। सेज। (क्रिया) फैलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं।

बिस्राम—ठहराव, आराम। थकान मिटाना।

बिस्व, (विश्व)—जगत।

बिस्वरूप—विश्वरूप, विराट भगवान।

बिस्वामित्र—एक ऋषिका नाम। विश्वके मित्र।

बिस्वास—प्रतीति, एतबार। प्रत्यय। यकीन।

बिषम—टेढ़ा। भयंकर।—ता, असमानता। टेढ़ापन।

बिषय—सुखकी सामग्री। इन्द्रियका सुख। धन। सम्पत्ति। संभोग। क्रीडा।—क संबंधी।

बिषयी—विषयोंका भोगनेवाला।

बिषाद—शोक। दुःख। ताप। रंज। संताप।

बिष्टा—मल, गोबर, लीद।

बिष्णु—ईश्वर।

बिस्नु—विश्वके रक्षक ईश्वर। व्यापक।
बिसम, (विषम)—ऊचा नीचा। टेढ़ा मेढ़ा। चोखा।
बिसमय—अचरज, अचंभा। अभिमान। सन्देह।
बिसमित—चौचक। अचभेमें। विसमयको प्राप्त।
बिहंग—पक्षी।
बिहँस—(क्रिया) हँसनेके अर्थमें। इसके रूप "चर" धातुकी तरह होते हैं।
बिहग—पक्षी।
बिहर—(क्रिया) खेलना, क्रीड़ा करने और फटनेके अर्थमें इसके भी रूप "चर" धातुकी तरह होते हैं।
बिहवल—व्याकुल। बेचैन। अत्यन्त दुःखी। दुःखसे मग्न गला हुआ। तरल।
बिहाय, बिहाई—छोड़कर। भूल कर।
बिहान—भोर। तड़का। विभात।
बिहार—खेल, आनन्द।
बिहारी—बिहार करनेवाला। खेल वाला।
बिहाल—बेहाल, व्याकुल।
बिहित—नियत किया हुआ। आज्ञा। निश्चय रक्खा हुआ।
बिहीन—बिना, रहित। अतिनाश।
बीच—अन्तर, मध्य, मध्य, दरम्यान।
बीचि—लहर, तरंग।
बीज—बाप। पाया।
बीत—(क्रिया) बातना या गुजरनेके अर्थमें। इसके रूप "चर" धातुकी तरह होते हैं।
बीथी—गली, खोरि, सकरी गली।
बीन (क्रिया) चुनना, साफ करने और अलग करनेके अर्थमें। इसके रूप "चर" धातुकी तरह होते हैं।
बीर—भाई। सूर्मा। शूर।
बीरभद्र—शिवजीके प्रधान गणका नाम।
बीरासन—बीरोंकी बैठक। वीरोंकी तरह बैठना।
बीस—विंशति, एक कोड़ी, २०।
बीहड़—कठिन, ऊचा नीचा, टेढ़ा मेढ़ा, ऊबड़खाबड़।
बुंद—बूंद। कण।
बुझाव—(क्रिया) शान्त करने, समझाने, जतानेके अर्थमें। इसके भी रूप "चराव" धातुकी तरह होते हैं।
बुताव—(क्रिया) बुझाने या शान्त करनेके अर्थमें। इसके रूप "चराव" धातुके अनुरूप होते हैं।

बुध- पडित । बुधवार । चद्रमाका पुत्र ।
बुधि—बुद्धि, मति, समझ, विचार ।
बूझ—समझ, ग्यान, समझकर, जानकर, पूछकर । (क्रिया) जानने, पूछने और सम झनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं ।
बूड—(क्रिया) डूबने और मग्न होनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते है ।
बूढ़—बूढा । बडा ।
बूता—वल, पुरुषार्थ, समाई । हौसला ।
बृंद—समूह, दल ।
बृंदारक—सुर, देवता । सुन्दर । उत्तम । अधिक । सम्मान्य । अमर ।
बृक—भेडिया ।
बृत्तान्त—समाचार, हाल ।
बृत्ति—जीविका ।
बृथा—व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।
बृद्ध—बडा, बूढा । बढा हुआ ।
बृद्धि—बढती ।
बृष—बैल । विष्णु । धर्म्म ।
बृषकेतु—बैलको ध्वजावाला । श्री-महादेवजी ।
बृषभ—बैल, साड । राड । उत्तम । बडा ।
बृषली—शूद्रा । दासी ।
बृष्टि—वर्षा । मेह ।
बेग—झोंक । फुरती । शीघ्रता ।
बेचारा—लाचार, गरीब । असमर्थ ।
बेदसिरा—एक मुनिका नाम ।
बेदिक, बेदि—बेदी । यज्ञादिके लिये एक छोटा सा चबूतरा ।
बेध—(क्रिया) छेदनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं ।
बेनु—वेण नामका राजा स्वायभुव मनुके वशमें हुआ । यह नास्तिकोंके फेरमें पडकर बहक गया । यज्ञादि शुभ कर्म्म बन्द कर दिये । प्रजाको पीडा देने लगा । जाति भेदको मिटानेके प्रयत्नमें इसने समाजको उच्छृखल कर डाला । अन्तत ऋषियोंने इसे मार डाला । इसके जघेसे 'निषाद" और बाहुसे "राजा पृथु"को उत्पन्न किया । [पद्म० । मनु० ७।४१॥९। ६६ ६७॥] बास । बीन । बसी ।
बेनी (वेणी)—त्रिवेणी, प्रयाग तीर्थ, स्त्रियोंके गुथे हुए केश ।

बेनु, (बेणु)—बंसी, बांस। एक प्रसिद्ध राजाका नाम।

बेर—देर, अबेर। समय। बैर। बेरका वृक्ष।

बेरा(बेला)—समय, काल। नावोंका बेड़ा।

बेरे—बेड़े। नाव।

बेष—रूप, स्वरूप, बाना, भेस।

बेसर—खच्चर। नथ।

बेसाहु—(क्रिया) खरीदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं।

बेहाल—बेचैन व्याकुल।

बेहु—छेद। वेध।

बैकुण्ठ—विष्णुका धाम।

बैठार—क्रिया, बैठालनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

बैतरनी—यमलोकका नदी। बैतरणी।

बैताल—भूत, प्रेत।

बैद्य—चिकित्सक, रोगका नाश करनेवाला।

बैदिक—वेदका, वेदपाठी, वेदाभ्यासी। वैद्यविद्या सम्बन्धी।

बैदेही—विदेहकी कन्या, सीता।

बैन,(बयन)—बात, वचन।

बैनतेय—विनताके पुत्र। गरुड़।

बैना—वचन। भाजा, बायन। पेशगी। साई।

बैभव—ऐश्वर्य, धन।

बैर—शत्रुता, विरोध। बेरका फल।

बैराग्य—अरुचि, बैराग। विरति।

बैरी—शत्रु।

बैखानस वानप्रस्थ। तीसरे आश्रमवाला।

बैस—वयस, अवस्था, आयु।

बैसा—बैठा, विश्राम किया।

बोध—समझ, ज्ञान।

बोर (क्रिया) डुबोने, बोरने और निमग्न करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" के अनुरूप होते हैं।

बोल—(क्रिया) कहने, बुलाने या बुलवानेके अर्थमें, "चढ़" के अनुरूप। वचन। बातचीत।

बोलि—बुलाकर। बुलवाकर। कहकर।

बोव—(क्रिया) लगाने, जमानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुका तरह होते हैं।

बोहित—जहाज, जलयान।

बौर—चँवर, बाल। आमका मंजरी। आकाशबेल।

बौरा—क्रिया, बौर लगने या पागल हो जानेके अर्थमें "रिसा" के अनुरूप। पगला।

—ई पागल हो जाय। पागल हो गयी। पागल होकर।

बौराह—पागल, सनकी ।
बौरी—पगली ।
ब्या—क्रिया, अनेक अर्थमें "लिखा" की तरह ।
ब्याकुल—घबराया हुआ ।
ब्याज—बहाना, इशारा, हीला । सूद ।
ब्याधा—चिड़िया फँसानेवाला । शिकारी । बहेलिया । आड़में शिकार करनेवाला ।
ब्याप—क्रिया, फैलकर सब जगह समा जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह—क, सब जगह फैला या समाया हुआ ।
ब्याल—अजगर । एक प्रकारका दानवाकार जीव जो अब कम दीखता है । हाथी ।
ब्यास—थोड़ेका विस्तार । चक्कर या वृत्तकी सबसे लम्बी काट या तरास । वेदोंको चार भागोंमें बाटने और पुराणों इतिहासोंका विस्तार करनेवाले महर्षि । पराशर मुनिके पुत्र ।
ब्याह—क्रिया, विवाह करने या करानेके अर्थमें "चढ़" की तरह । विवाह । शादी ।
ब्रन—फोड़ा । जख्म घाव ।
ब्रह्म—ईश्वर, परमात्मा । वेद । व्यापक । ब्रह्मा । तपस्या । ज्ञान । ब्राह्मण ।—चर्य, ब्रह्मचारी दशा । आत्मसंयम आदि नियमोंका पालन करनेवाला । ण्य,न्य, ब्राह्मणका रक्षक । ब्राह्मणको प्रिय । ब्राह्मण जिसे प्रिय हो ।—र्षि ब्राह्मण ऋषि ।—लोक, ब्रह्माका धाम ।
ब्रह्माण्ड—ब्रह्माद्वारा विरचित गड रूप विश्व ।
ब्राह्मण—विप्र । ब्रह्मज्ञानी । ब्राह्मण जाति ।
ब्रीड़ा—लज्जा । सकोच । खिसियाहट । झेंप ।

भ

भग—नाश । नष्ट । बिगड़ा हुआ । टूटा हुआ, । वक्रता । ढिठाई । टूटना । भाग ।
भज क्रिया, नाश करने या तोड़नेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।
भजन—तोड़नेवाला । नाशक । नाशन ।
भड़ारू—भोज्यवस्तु रखनेका स्थान ।
भई—हुई, होगई । भाई ।

भगत, भक्त—भगत। प्रेमी। बँटा हुआ। जिसे बाटा गया हो।
—बछल, बतसल, वत्सल, भक्तों को ऐसा प्यार करनेवाले जैसे गाय बछड़ेको प्यार करती है।
भगति, भक्ति—आराधना, उपासना। सेवा, प्रेम। श्रद्धा।
भगवान, भगवंत—ईश्वर।
भगिनि—बहिन।
भगीरथ—एक राजाका नाम जो श्री गंगाजीको मृत्यु लोकमें लाये।
भच्छ—क्रिया, खाने, भक्षणके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
भज—क्रिया, भजन करने, या भागनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
भजन—गान। जप। गानेका छंद। भगदड़, दौड़।
भजामहे—हम लोग भजते हैं।
भजामि—मैं भजता हूं।
भट—वीर, योधा।
भटभेरे—धक्कमधुक्का। कुश्ती। लड़ाई। भटोंका भिड़ना।
भड़िहाई—चोरी, दगाबाजी। हाँडी उठा ले भागना।
भग्नि—उद्विग्न, कटा हुआ।
भद्र—कल्याण, भला।
भदेसू—भद्दा, कुरूप।
भन—क्रिया, कहने, गान करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
भभर—क्रिया, घबराने, रोमांचित होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
भय—डर।
भयाकुल—डरसे घबराया हुआ।
भयानक—भयंकर, डरावना।
भयंकर—डरावना। भयानक।
भर—क्रिया, पूर्ण करने, पालन-पोषण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
भरता—प्रभु, स्वामी। पालनेवाला। पूरा करनेवाला। पति। भुर्ता, चटनी।
भरद्वाज—एक ऋषिका नाम।
भरन—पालन, पोषण। धारण।
भरनी—पालन पोषण करनेवाली, पूर्ण करनेवाला। एक नक्षत्र जिसमें वृष्टि होनेसे सप मरते हैं।
भरिता—भरनेवाली, पूर्ण करनेवाली। पालन करनेवाला।
भरोस—सहारा, आशा, विश्वास।
भल—अच्छा, उत्तम।

भूतल—धरती, धरातल ।
भूति—ऐश्वर्य । सम्पत्ति । भस्म ।
भूधर—पर्वत, अचल ।
भूप भूपति, भूपाल—राजा ।
भूमि—धरा । धरती ।
भूमिनाग—दिग्गज । शेषनाग । पृथ्वी भरके हाथी या सर्प जाति ।
भूरजतरु—भोजपत्र, एक पेड़का छिलका ।
भूरि बहुत, ढेर ।
भूल—भूलचूक । चूक, गलती । क्रिया, "चढ़" की तरह चूकने के अर्थमें ।
भूष—क्रिया, भूषित करने या सजानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।
भूषन—अलंकार, गहना ।
भूषित—अलंकृत ।
भूसुर—भूदेव । ब्राह्मण ।
भृङ्ग—भौंरा ।
भृंगी—महादेवजीके एक गणका नाम । तिलनी या भौंरा ।
भृकुटि—भौंह ।
भृगु—एक महर्षिका नाम ।
भृगुनाथ—भृगुकुलमें श्रेष्ठ । परशुराम ।
भेई—भेदी, भेदका जाननेवाला । भिगोयी ।
भेऊ—भेव, भेद, मन्त्र । फूट, फुटमत ।
भेक—मेंडक ।
भेद—छिपी बात । फुटमत, फूट ।
भेरी—नगाड़ा । नरसिंहा । तुरही ।
भेव—भेद, मर्म । जुदाई । फूट ।
भेष—रूप । वेष ।
भेषज—औषध, दवा ।
भैया—भाई ।
भोग—विलास । सुख । देवताको नैवेद्य । जो भुगतना पड़े ।
भोगावती (भोगवती)—सर्पोंकी नगरी । गंगाकी उस धाराका नाम जो पाताल में है ।
भोजनखानी—रसोईका घर । जहां सब प्रकारके भोजन प्राप्त हों ।
भोर—प्रातःकाल, विहान । भूल । सन्देह ।
भोरा—भोला, सीधा सादा । मूर्ख । धोखेमें, भूलसे ।
भोरी—भोली । सादी ।
भौतिक—शारीरिक जीवों करके । भूतोंके द्वारा । सांसारिक जड़ पदार्थ सम्बन्धी ।
भौम—मंगल । भूमिका पुत्र । नव ग्रहोंमेंसे एक ग्रह ।

भौहँ—भौं, भृकुटि।
भ्रम—धोखा। सन्देह। भूल। चूक।
भ्राज—क्रिया, चमकने सुहावना लगनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
भ्राजा—सुहाया, शोभित हुआ।
भ्रात -भाई। वीर।
भ्रू—भौं, भृकुटि।

म

मंगना (मंगन)—मांगनेवाला। भिखारी।
मंगल—शुभ, भला।—द्रव्य, मंगलसूचक वस्तु (पुष्प अक्षत, दूब, नारियल, हल्दी, सुपारी आदि)।—मय — आनन्दमय।
मंच—मचान, माचा, ऊँची बैठनेका ठहर।
मंजन (मज्जन)—स्नान, नहान। धोवन। दांतमें मलनेके लिये चूर्ण।
मंजीर—पायजेब। शब्द करनेवाला पैरका आभूषण। मंजीरा।
मंजु—सुन्दर, मनोहर।
मंजुल—सुन्दर। प्रिय।
मंजूषा—सदूक।
मंडन—भूषण, शृंगार।
मंडल—घेरा। गोल चौतरा। समूह।
मंडली—समूह, दल, टोली।
मंडलीक—राजा, मंडलीका सरदार।
मंडित—शोभित। सजाया हुआ।
मंत्र—गुरुका उपदेश। सलाह। भेदकी बात।
मंत्रराज—राम नाम मंत्र। मंत्रोंका राजा।
मंत्री—मंत्र जाननेवाला। सलाहकार। सचिव।
मंद, मंदा—नीच। अभागा। हानि। अधम। घटा हुआ। धीमा। सुस्त। मूर्ख।
मंदर—मन्दराचल। एक पर्वतका नाम।
मंदाकिनी—श्री गंगाजीका उस धाराका नाम जो स्वर्गमें बहता है। चित्रकूटमें बहनेवाली नदी।
मंदिर—घर। देवालय।
मंदोदरि—रावणकी स्त्री।
मइके—माताके घर, नैहर।
मइत्री—मित्रता। प्यार।
मकर—दसवीं राशिका नाम।

मगर । माघ महीना । फरेब ।

मकरी—मगरी । जाल लगानेवाली मकड़ी । एक रोगका नाम । मचली ।

मकरंद—पुष्प रस । फूलोंका रस ।

मकु—बल्कि, किन्तु ।

मख यज्ञ ।

मग—मगगह, मागह । मार्ग । राह । शाकद्वीपीय या पारसी ब्राह्मणोंकी एक जाति जिसे साम्ब भारतमें लाये थे ।

मगन—मग्न । डूबा हुआ । बेसुध ।

मगह—एक देशका नाम, मगध देश ।

मगु—मार्ग । राह ।

मघवा—देवराज, इन्द्र ।

मचला—क्रिया, छैलाने मचल पड़नेके अर्थमें, सिरा, पिरा आदिकी तरह ।

मज्ज—क्रिया, नहाने धोनेके और डूबनेके अर्थमें, "चढ" की तरह ।

मज्जन—नहान, स्नान ।

मज्जा—चर्बी, मेद ।

मझारि, मझारी } मध्य, बीच, भीतर, मे ।

मत—सम्मति, राय, सलाह ।

मत्त—उन्मत्त, मतवाला । अहंकारी ।

मतवारे—नशेमें चूर । दीवाने । पागल ।

मतसर—ईर्षा, डाह, कुढ़न ।

मति—बुद्धि, समझ ।

मते—हिसाबसे, लेखे । रायमें ।

मथ—क्रिया, मथन करने या फेंटनेके अर्थमें, "चढ" की तरह ।

मथानी—बिलोयनी ।

मद—अहंकार, अभिमान ।

मदन—कामदेव ।

मध्य—बीच, भीतर ।

मध्यगति—बिचला, मेल, प्रवेश ।

मध्यदिवस—दोपहर ।

मध्यम—बिचला । उदासीन ।

मधु—चैत्रमास । वसन्त ऋतु । शहद । जल । मीठा । एक दैत्यका नाम ।

मधुकर—भौंरा ।

मधुप—भौंरा ।

मधुपर्क—कांस्यपात्रमें दधि ।

मधुर—मीठा, प्रिय ।

मन—हृदय । आत्मा । दिल । तबीयत ।

मनजात—मनसे उत्पन्न, कामदेव । चिंता ।

मनमथ—मनका मथन करनेवाला। कामदेव।

मनमारे—उदास। उदासीके साथ।

मनलहिं—मनमें, मनसे। इच्छाको।

मनसा—इच्छा, मनोरथ, सम्मति। मनके द्वारा।

मनसि—मनसे, हृदयसे। मानसिक।

मनसिज—कामदेव, मनसे उत्पन्न।

मनाक, मनाग, मनागपि—जरा भी, तनिक भी। थोड़ासा, कुछ भी।

मनि (मणि) जवाहिर। मालाके दाने। सर्पका मणि।

मनिआरा—मणिवाला, जौहरा।

मनु—मानो। ब्रह्माके पुत्र, मनुष्योंके आदि पुरुष, धर्म शास्त्रके प्रणेता। जैसे।

मनुज—मनुष्य, मनुसे उत्पन्न।

मनुजाद—मनुष्योंको खानेवाले राक्षस।

मनुसाई—मरदानगी। पराक्रम।

मनोगत—मनमें प्रविष्ट।

मनोज, मनोभव—मनमें उत्पन्न। कामदेव।

मनोमल—मनका विकार, भीतरका खोटापन।

मनोरथ—इच्छा, कामना, चाह।

मनोरम—सुन्दर, दिलचस्प। जिसमें मन रम जाय।

मनोहर—मनहरन, प्यारा।

मम—मेरा, अपना। ममता।

ममता—अपनायत। मोह। प्यार।

मयंक—चन्द्रमा।

मय—एक मायावी दैत्यका नाम। जब यह किसी शब्दके पीछे आता है तब इसके अर्थ, पूर्वसे मिला हुआ, बना हुआ, तदाकार, तद्रूप, रत इत्यादि होते हैं।

मयन—कामदेव। मदन।

मयना—हिमालयकी स्त्रीका नाम। पार्वतीकी माता। मारे या सिरोही चिड़िया।

मयूष—सुधा, अमृत किरण।

मयन्द—एक वानरका नाम।

मर—क्रिया, मरनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मरकत—नीलम, नीलमणिसा नीला।

मरजाद—मर्यादा। हद। रीति।

मरन—मरण। मौत।

मरनसील—मरनेके स्वभाववाला। मरनेयोग्य।

मरम—मर्म, भेद।

मरद—क्रिया, मलने,

अर्थमें, "चढ़" धातुकी तरह। मर्द। पुरुष।

मरदन—नाश करनेवाला। मसल डालनेवाला। मरदनेकी क्रिया।

मरम—मर्म। भेद। शरीरके वह भाग जिनपर चोट लगनेसे तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

मरमी—भेदी, भेदिया। गुप्त बातोंका जाननेवाला।

मरायल—लतखोर। जो सदा मार खाता रहे।

मराल—हंस।

मरु—एक देशका नाम, निर्जल देश, मारवाड़। रेगिस्तान।

मरुत—वायु। हवा।

मरोर—क्रिया, मरोड़ने या उमेठनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

मल—मैल, तलछट। मैला। पाप।

मलय—सफेद चंदन। सुगंधित। चन्दनगन्ध।

मल्ल—पहलवान, योधा।

मलाकर—मलकी खानि, मैलका ढेर।

मलान—मैल, उदासी। मैला। घृणा। अरुचि।

मलिन / **मलीन**—मैला, अशुद्ध, बुरा।

मष्ट—मौन, चुप। मस।

मसक—मच्छर। पानी भरनेका चमड़ेका थैला। —दंस, मच्छरोंके डंक। मच्छर और डांस।

मसखरी—हँसी, दिल्लगी। मसखरापन।

मसान—श्मशान, मरघट।

मसि—स्याही, कालख।

महत—बड़ा, महान।

महतारी—माता, जननी।

महति—बड़ी, श्रेष्ठ।

महा—बड़ा, श्रेष्ठ।

महागद—महारोग। असाध्य रोग।

महाजन—बड़े लोग, अच्छे लोग, धनी।

महातम—बड़ाई, प्रशंसा।

महान—बड़ा, श्रेष्ठ।

महामोह—अज्ञान। भारी मूर्खता।

महि—पृथ्वी, धरती। —**देव**, महीसुर, विप्र, ब्राह्मण, —**पाल**, भूपाल, राजा।

महिमा—माहात्म्य, बड़ाई।

महिष—भैंस, भैंसा। —**पेस**, भैंसे के स्वामी, यमराज।

महिषी—महारानी, विवाहिता स्त्री। पत्नी। भैंस।

मही—पृथ्वी।

महीप—राजा। जमीदार।

महीपति
महीश्वर } नृप, राजा।

महीसुर—भूसुर, ब्राह्मण।

महेस—महादेवजी।

महोत्सव—बड़ा भारी उत्साह।

महोष—एक प्रकारका पक्षी।

माई—माता। एक ओषधिका नाम।

माख—माष। उरदी। बड़ी जाति की मक्षिका। रोष। क्रोध।

माखी—मक्खी, माछी। रुष्ट हुई।

मागध—वंश प्रशंसक, भाट। मगध देशका रहनेवाला।

माघ—एक महीनेका नाम। एक काव्यके ग्रन्थका नाम।

मच,माच—क्रिया, होने, प्रारम होने, जारी होने, मचने के अर्थ में, "चढ़" की तरह।

मागने—भिखारी। भिक्षार्थ।

माजा—वर्षाके नये जलका फेन।

माझ—मध्य, बीच, अन्दर।

माडवी—श्रीलक्ष्मणजीकी स्त्रीका नाम।

मास—सालन। गोश्त।

माहीं—भीतर, में।

माजा—माजा। वर्षाके नये जलका फेन। मला। माफ किया

माझ—मध्य, बीच।

मात—मा, माता।

मात्र—केवल, सिर्फ, इतना ही। परिमाण।

मातलि—इन्द्रका सारथी।

माती—मतवाली, पगली।

मातु—माता।

माते—मतवाले, उन्मत्त।

माथ
माथा } मस्तक, भाल।

माधव—लक्ष्मीके पति, नारायण। वसंत ऋतु।

माधुरी—मिठाई, मिठास।

मान—सम्मान, प्रतिष्ठा। अहंकार। रूठन।

मान्य—माननेयोग्य।

मान्यता—पूजा, सत्कार, मान।

मानस—तालाब। मन। मन करके। मानसरोवर।

मानसमूल—मानसरोवरसे निकली हुई सरयू नदी।

मानसिक—मन करके, मनसे। मन सम्बन्धी।

मान—क्रिया, मान लेने, स्वीकार करने, अंगीकार करने या कबूल करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

मानिक—माणिक्य, लाल मणि।

मानुष—मनुष्य।
माप—क्रिया, नापने, सामा बद्ध करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
माम्—मुझको।
माय—माता। समाय।
माया—ईश्वरकी शक्ति। भुलावा। छल। नखरा। कपट। इन्द्रजाल।
मायापति—ईश्वर।
मायावी—कपटी, जालिया।
मायिक—मायाका बना। झूठ, छल, कपट।
मायी—मायाका स्वामी। माता।
मार—कामदेव। मारकर। मार दे। एक प्रकारकी मूली।
मार—क्रिया, मारनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।
मारग—(मार्ग) मग, पथ।
मारव—मत बजा शब्द न कर। मालवा देश। मरुस्थलके बीच सजल देश।
मारीच—ताड़काका छोटा लड़का, सुकेतुका नाती और रावणका बन्धु और मन्त्री जिसे विश्वामित्रकी यज्ञरक्षामें श्रीरामचन्द्रजीने बिना फलके बाण मारकर दूर गिरा दिया था, और जो रावणकी सलाह मान, हिरन बन रामचन्द्रजीको छलपूर्वक आश्रमसे अत्यन्त दूर ले गया और उन्हींके हाथों मारा गया।
मारुत—हवा।
मारुति—हनुमानजी। मरुतके पुत्र।
माल—माला, दाम, पाँती। धन दौलत, जमा।
माल्यवत—रावणके मंत्री और नानाका नाम।
मालव—एक देशका नाम। मालवा देश। मालवा देशका रहनेवाला।
माला—माला। हार। समूह।
माली—बागका रक्षक। बागवान। माला बनानेवाला। माला पहननेवाला। समूहका नायक।
माषी—रुष्ट हुए। माखी।
मास—मास, गोश्त। महीना।
मासा—महीना। मांस। माषा। एक तोलेका बारहवां भाग। एक टकका दसवां भाग। छटांक या छटांकका साठवां भाग।
माहुर—विष।

मिट—क्रिया, मिटाने, अभाव कर देने, नष्ट कर देने, साफ कर देनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मित—मर्यादित। बँधा। नपा तुला थोड़ासा। प्रमाणयुक्त।

मित्र—मीत, साथी, दोस्त। सूर्य।

मिताई—मित्रता। साथ। दोस्ती।

मिति—मर्यादा। अन्त। नताजा। नाप तोल। अंदाज। तिथि।

मिथ्या—झूठ, असत्य।

मिथिला—जनकपुर। —लेस, राजा जनक।

मिल—क्रिया, मिलनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मिलाप—मेल। संग।

मिस, मिसि, मिसु—व्याज़, बहाना, सबब।

मीच (मीचु)—मौत, मृत्यु, घातक।

मींज—क्रिया, मलने, मसलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

मीन—मछली। मत्स्य।

मीला—मेल। मिल गया। मिलकर।

मुंड—मूड़, सिर।

मुंडित—मूड़ा हुआ।

मुक्त—छूटा हुआ। जन्म मरण रहित।

मुक्ति—मोक्ष, गति, परमपद।

मुकुट—किरीट। राजा वा देवताओंके सिरकी टोपी।

मुकुल—मुक्त। खुला हुआ, छूटा हुआ।

मुकुता, मुकुताहल—मुक्ता, मोती। मोतियोंका ढेर।

मुकुर—दर्पण, आरसी।

मुकुंद—मुक्तिदाता, भगवान।

मुख्य—श्रेष्ठ। अगुआ। नामी।

मुखर—शब्द। झनकार। वाचाल, बकवादी।

मुखाग्र—मुखाम, जबानी, कंठाग्र। याद।

मुठभेर—समीपकी भेंट। अति निकटसे मिलाप। मुक्का मुक्कीसे भिड़ जाना। मुकाबिला।

मुठिका—मुष्टिका, मुक्का। हलका घूसा।

मुड़—क्रिया, वतरा जाने, झुक जाने, हट जाने, धोखेमें आने, सिरके बाल कट जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

मुड़ाय—क्रिया, सिरके बाल कटवाने और धोखा खा जाने, लुट जाने, ठग जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

भुलवाने, छलने और बेसुध करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह।

मौलि— माथा, मस्तक।

य

य—जिसको।

यक्षराज—कुबेर

यग्य—होम, हवन, जाग।—**पु** श्रीमन्नारायण।

यत्—जितना, जो, जिसका। जाता हुआ, मुक्त।

यत्र—जहां।

यथा—जिस तरह, जैसे। —**तथा**, उसी तरह, जैसे चाहिये वैसे। जिस तिस तरह।

यदा—जब, जिस समय।

यदि—अगर, चाहे, जो।

यदु—एक चन्द्रवंशी प्रसिद्ध राजा का नाम।

यम—यमराज, कृतान्त। योगका एक अंग, संयम।

यमदग्नि—एकऋषिका नाम, परशुरामके पिता।

यवन—म्लेच्छ। यवनदेशवासी मुसलमान।

याग—यज्ञ, हवन।

यामिनी—रात।

यावत—जबतक, जहांतक

युक्त—साथ, सहित।

यूथप—सेनापति, सरदार।

योगी—ऋषि, मुनि, योग करने वाला।

योधा—युद्ध करनेवाला, लड़ाका।

र

रंक—कंगाल, दीन।

रंगभूमि—धनुर्यज्ञकी भूमि, उत्सव का स्थान युद्ध क्षेत्र।

रंच—किंचित, अल्प।

रंजन—हर्षदायक, मनोहर। माया। रंगनेवाला।

रतिदेव—एक राजाका नाम।

रंध्र—छिद्र, छेद, सूराख।

रंभा—केला। एक अप्सराका नाम।

रउरे—आपका। "रउरे अंग जोग जग को है।"

रघु—सूर्यवंशके एक प्रसिद्ध राजाका नाम जिनके वंशमें श्रीरामावतार हुआ। —**नाथ या नायक**, रघुकुलके स्वामी। श्रीरामचन्द्र। —**पति**, श्रीरामचन्द्र। - **वर या राज**, श्रीरामचन्द्र।

रच्छ—क्रिया, रक्षा करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

रच्छक—रक्षक, रखवार। चौकीदार।

रच्छा—रक्षा, निगहबानी।

रच—क्रिया, बनाने या रचनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
रचना—बनाव, बनावट।
रज—रेत, धूल। रजोगुण।
रजक—धोबी।
रजत—रूपा, चांदी।
रजधानी—राजधानी। राजनगर।
रजनी—रात। —चर, निशाचर। असुर।
रजनीमुख—सायकाल।
रजाई—आज्ञा।
रजायसु—राजाकी आज्ञा, राजआदेश।
रजु—रस्सी, लेजुर। रज्जु। धूल।
रट—क्रिया, रटने, घोखने, जपने और धुन बाधनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
रटन। धुन। —न। जप। रट। धुन।
रण—युद्ध, लड़ाई।
रत—तत्पर, मगन, मग्न, डूबा हुआ, लगा हुआ।
रतन—रत्न, बहुमूल्य, जवाहिर।
रतनारे—लाल लाल, लाल रंगके।
रति—प्रीति, स्नेह। कामदेवकी स्त्री का नाम। क्रीड़ा।
रथकान्त—अफ्रिका देश। रथ चला हुआ।
रथाग—पाहया, गाड़ीका चक्र। चक्र, एक शस्त्र। चकवा चकई पक्षी।
रथी—रथका स्वामी, रथपर चढ़नेवाला। रथपर सवार।
रद—दांत। निकम्मा। उल्गार। छांट। उगाल। —पट, दातोंका परदा, दातोंकी आड़ अर्थात् ओठ। होंठ।
रनिवास—रानियोंके रहनेका स्थान। अन्त पुर।
रवि—सूर्य। —तनुजा या नंदिनि, सूर्यकी कन्या, कालिंदी, यमुना।
रमेस—रमापति, नारायण।
रमन—विहार करनेवाला। व्यापार। खेल। मनबहलाव।
रमनी—रमण करनेवाली। स्त्री।
रमा—मा, लक्ष्मी। —विलास, धन, धनका सुख, [illegible] आगम।
रम्य—सुन्दर, रमणीक।
रय—वेग, जल्दी।
रव, रच—क्रिया, [illegible], [illegible] मर्थ, [illegible] "[illegible]" की तरह
रये—रंगे, रंगे, मय, [illegible]
रव—बोल, शब्द,

रवि—सूर्य, सूरज ।

रविकर—सूर्यकी किरणें । सूर्यका ।

रस—विषय, सार, बल, प्रेम, साहित्यके नव रस (शांत, वीर, करुणा, शृंगार, रौद्र, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, हास्य), भोजनके छः रस (मीठा, खट्टा, तीता, नमकीन, कड़वा, कसैला)

रसना—वाणी, जिह्वा, जीभ, रस्सी ।

रसा—भूमि, धरती, पृथ्वी ।

रसातल—पृथ्वीतल, धरातल ।

रसाल—मीठा । आमका पेड़ वा फल । रसभरा ।

रसिक—रसज्ञाता, शौकीन, प्रेमी ।

रह—क्रिया, रहने और ठहरनेके अर्थमें, "चढ" की तरह । मार्ग । रास्ता । एकान्त ।

रहस—एकान्त । अकेलापन । रति । समुद्र । स्वर्ग । (क्रिया), अकेलेमें या एकान्तमें हो जाने या अलग होकर बात करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह । (रहसी रानि राम रुख पाई ।)

रहसि—एकान्तमें । अकेले । गुप्त बात । प्रसन्न होकर ।

रहस्य—गुप्ततत्त्व, भेद, मर्म । भेद की बात ।

रहित—हीन, शून्य, छोड़कर, वर्जित, भिन्न ।

राच—(क्रिया) लगने, रमने, तत्पर होने, लवलीन होने, लिप्त होने, लट्टू होनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

रांध—(क्रिया) उबालने, पकाने, या रसोइ बनानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

राई—राय, राव, राजा । पति, मालिक । एक प्रकारके सरसों की जातिके परन्तु सरसोंसे छोटे दाने ।

राउ, **राऊ** — राव, राजा, प्रधान ।

राउत—सरदार, नायक, स्वामी, अफसर, राजाका घर ।

राउर—आपका । राजाका । महल । राजपुर ।

राका—रात ।

राकेस (राकेश)—पूर्ण चन्द्र ।

राख—(क्रिया) रखने, बचाने, रक्षा करने और सभालनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह । चार । छाइ ।

राखी—छाई । रक्षाके लिये आशीर्वादरूप सूत । रख ली । रक्षा की ।

राग—प्रेम । गान । गानके अधिष्ठाता । रंग । लेप । लगावट ।

राच्छस—राक्षस, दैत्य ।

राच—(क्रिया) रचने, रचाने, मनसूने करने और रचना करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

राज—(क्रिया) विराजने, सोहने, और बैठनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। रियासत। मिलकियत। सम्पत्ति। स्वामित्व। राजाके अधिकारगत देश। थवई, राजगीर, पेशराज। भेद, रहस्य। स्वाधीनता। स्वाधीन देश या वस्ती। राज्य। —**धानी**, राजाका नगर। राजकी प्रधान बस्ती। —**धर्म, नय, नीति**, राज्यके सिद्धान्त। राजाके आचरणकी विधि। राजाका न्याय। —**मराल**, राज हंस।

राजा—राज करनेवाला। स्वामी। धनी। विराजा, शोभित हुआ। शासक।

राजित—विराजित, बैठा हुआ। शोभित।

राजी—पंक्ति, पाँती, श्रेणी। प्रस्तुत तय्यार। प्रसन्न। कुशल।

राजीव—कमल। [देखो]

राजेन्द्र—प्रधान राजा। राजाओंमें इन्द्र।

राता—लाल रंगवाला। रंगा हुआ। रत। मिलता हुआ। लगा हुआ।

राति, **राती**—लाल रंगका। रम गई। लग गई। रात। रात्रिकाल।

रामा—सुन्दरी, मोहिनी, सुख देनेवाली। —**नुज**, रामके छोटे भाई। —**यन**, राम कथा, विशेषकर वाल्मीकि की कही। —**युध**, रामके शस्त्र। धनुवाण।

रामेश्वर—रामद्वारा स्थापित ईश्वर या शिवलिंग।

राय—श्रेष्ठ, राना। सलाह।

रार, **रारि**—झंझट, टंटा, द्वेष, लाग। झगड़ा।

रावन—लंकाका राजा रावण। रोनेवाला। रुलानेवाला। चिल्लानेवाला।

रावरो—आपका। राउर।

रासभ—गदहा, गधा।

रासि (राशि)—समूह, ढेर।

राहु—नवग्रहमें अष्टम ग्रह।

रिच्छेस(ऋक्षेश)—रीछोंका स्वामी।

रिझाव—(क्रिया) प्रसन्न करने और राजी करनेके अर्थमें। "चराव" की तरह। प्रसन्न करनेका काम।

रिन (ऋण)—कर्ज, उधार, देना।
रितु (ऋतु)—मौसिम। —**राज** वसन्त, माधव।
रिपु—शत्रु, वैरी।
रिपुदमन / **रिपुसूदन** } शत्रुओंको मारने वा नाश करनेवाला, शत्रुघ्न, श्रीरामचन्द्रजीके सबसे छोटे भाइ
रिष्ट—हृष्ट, प्रसन्न
रिषि (ऋषि)—सूक्ष्मदर्शी मुनि।
रिषिनायक (ऋषिनायक)—मुनि प्रधान, अत्रि ऋषि।
रिस—क्रोध, खीझ।
रिसा—(क्रिया) क्रोध करनेके अर्थ में। "पिग" आदिके अनुरूप। देखो भूमिका, पहला खंड।
रिसौंहैं—क्रोधयुक्त, गुस्सेसे भरा।
रीछमूक (ऋष्यमूक)—एक पर्वत का नाम।
रीझ—(क्रिया) प्रसन्न होने और राजी होनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। प्रसन्नता। प्रसन्न होकर।
रीता—खाली। सूना। रिक्त। निरर्थक, तत्त्वरहित।
रीति—चाल, प्रचार, प्रकार। ढंग।
रीती—चाल, खाली, सूनी।
रुख—सम्मुख। दृष्टि। इच्छा, भाव।
रुचि—इच्छा। रुझान। प्रवृत्ति। चाह।
रुचिर—सुन्दर, मनोहर।
रुचिराई—सौन्दर्य। मनोहरता।
रुज—रोग, व्याधि।
रुदन—रोना। रुलाइ।
रुद्र—शिवजीका एक नाम। रोता हुआ। भयानक। रोनेपर पिघलनेवाला।
रुधिर—लोहू, खून।
रुह—उत्पन्न, जनित। उगा हुआ।
रूख—वृक्ष, पेड़।
रूप—आकार, स्वरूप।
रूपी—समान, रूपवाला
रूरी—सुन्दरी, मनोहारिणी।
रूखे—खुरखुरे, तेज मिजाज। खड़तल, कोरे।
रेंगाव—(क्रिया), धीरे धीरे चलाने, सरकानेके अर्थमें। "चराव" के अनुरूप।
रे—अरे, ओ, (निरादर सूचक सम्बोधन)। ("रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही")
रेख—रेखा, लकीर।
रेत—बालू, रेता। वीर्य। वीर्यवान।
रेनु (रेणु)—रेत, धूल, गरदा।
रेसू—रीस, डाह, कुढन।

रोक - (क्रिया) रोकने, बाधा करने, मना करने और अटकानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

रोग - व्याधि। दुःख।

रोचन—गोरोचन। हरदा। रुचिकर। मनोहर।

रोद—(क्रिया)(प्रा०) रोनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

रोप—(क्रिया) थापने, जमाने, लगाने, ग्रहण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

रोम—रोआँ, लोम। —पाट, ऊनका कपड़ा।

रोमावलि—रोमराजी, रोओंकी पाँता।

रोव—(क्रिया) रोनेके अर्थमें। "चराव" की तरह।

रोष—क्रोध, कोप।

रोहिनि—रोहिणी। एक नक्षत्रका नाम। छकड़ा। ठेला।

रोहु—रोक, रुकाव। राह।

रौताई—सरदारी।

रौरव—यमपुराके एक घोर नरक का नाम जिसमें रुरु नामके कीड़े काटते हैं

ल

लंकिनी—एक राक्षसीका नाम।

लकेस—रावण।

लंगूर—लांगूल, एक काले मुख और लंबी पूँछवाले बानरकी जाति।

लंपट—लिप्त, तत्पर, अध।

लकुट—लाठी, छड़ी।

लख (क्रिया) लखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

लखाव—(क्रिया) देखनेके और दिखानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

लग—हेतु, वास्ते, लिये। तक। (क्रिया) लगने और छूनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

लगन—लाग, लग्न, तन्मयता।

लगाव—(क्रिया) लगाने मिलाने, और संग देनेके अर्थमें। "चराव" की तरह।

लघु—छोटा थोड़ा, नीच। सुन्दर। —ता, छोटाई। —तापस, छोटे तपस्वी। श्रीलक्ष्मणजी।

लच्छ, लच्छा—लक्ष्य, निशान। उलझन। लड़ियों का समूह।

लच्छ (लक्ष्य)—निशान, ताक। जो देख पड़े देखने योग्य। लाख, १००००००।

लच्छन—चालचलन। भवँरी। निशान।

लच्छि—लक्ष्मी, धन, सपत्ति ।

लछिमन—लखन, श्रीरामचन्द्रके छोटे भाइ ।

लजा—(क्रिया) लजाने और सकुचानेके अर्थमें । सिरा, पिरा आदिकी तरह ।

लजाव—(क्रिया) लजवाने, लज्जित करानेके अर्थमें, "चढ़ाव" तरह ।

लटकनि—झुकन, अदा ।

लट—(क्रिया) लटने, लटकने, मुरझाने, दुर्बल होने, झुकने, घटने, अशक्त होने और झूमनेके अर्थमें । "चढ़" के अनुरूप ।

लड—(क्रिया) लडाइ, झगडा, विरोध करनेके अर्थमें ।"चढ़" की तरह ।

लता—वल्ली, वेल ।

लपट—गमक, गन्ध । लपेट । लपक । ज्वाला ।

लपटाव—(क्रिया) लिपटाने, चिपकानेके अर्थमें ।"चढ़ाव" की तरह ।

लपेट—(क्रिया) लपेटनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

लवार—झूठा, गप्पी ।

लय—लौ । तन्मय । एकजी । नाश सगीतमें स्वर प्रवाह ।

ले—(क्रिया) लेनेके अर्थमें । [इस रूपोंके लिये ले, दे, आदि "ए कारान्त धातुओंके रूप भूमिका पहले खडमें देखिये ।]

लयलीन—लौलीन, एकाग्रमन व्यस्त ।

लरकाई—लडकोंके । लडकपनसे लडकपन ।

लरिकिनी—लडकिया, बालिकायें

लर—(क्रिया) लडनेके अर्थमें "चढ" की तरह ।

लरिका—लडका, बालक । —ई लडकपन ।

ललकि—हुमचकर, उत्साहपूर्वक ।

ललना—स्त्री, सुन्दरी ।

ललाट—माथा, मस्तक ।

ललाम—श्रेष्ठ, सुन्दर । शोभा ।

ललित—सुदर, दर्शनीय । सगें गानेकी एक रागिनीक नाम ।

लव—अश, अल्पकाल । गोपुच्छके रोम । श्रीरामचन्द्रके छोटे पुत्र का नाम ।

लव—(क्रिया) लवने या काटनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह

लवन—नमक, खार, नौनं । —सिंधु, खारी समुद्र ।

लवलेस—अंशका भी अंश । अत्यन्त थोड़ेका थोड़ा भाग ।

लवा—एक छोटी सी चिड़िया । काटा ।

लवाई—नयी ब्यायी गौ । कटाइ ।

लपन—श्रीलक्ष्मणजी ।

लस—(क्रिया) शोभा देने और शोभा पानेके अर्थमें । 'चढ़' की तरह । चिपकाहट ।

लह—(क्रिया) पाने और लेनेके अर्थ में, "चढ़" की तरह ।

लहकौर—ललकारकर । उमगमें । सिठनी । ब्याहका गाला । कोहबरके खेल ।

लहलहाव—(क्रिया) चमचमाने, झलझलाने, लपलपाने और लहगनेके अथम, "चढ़ाव" की तरह ।

लांघ—(क्रिया) पार होने, लाँघ जाने, फाँदनेके अर्थमें । "चढ़" के अनुरूप ।

लाव—(क्रिया) लाने और लगानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

लाख—लाह । सौ हजार, लक्ष १००००० ।

लाग—लगाव, सम्बन्ध । वैर । लिये । वास्ते । (क्रिया) लगनेके अथम, "चढ़" की तरह ।

लाघव—शीघ्रता । आसानी । सहज में । छुटाइ, हलकापन । तुच्छता ।

लाज—लज्जा, सकोच । —वत, लज्जावान । सकोची ।

लाज—(क्रिया) लजाने, और लजवानेके अथमें । "चढ़" की तरह ।

लाजा—लज्जा, सकोच । लावा । खील ।

लाटी—प्यासमे या भूख जानमे ओठोंपर जमी हुइ लस और मुँहके अदरका चिपकाहट या लस । देखो, "लट" ।

लात—पाव । पैर ।

लाध—(क्रिया) पानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

लाभ—फायदा, प्राप्ति ।

लायक—योग्य, उचित ।

लाल—रक्त वर्ण । बेटा । जवाहिर । लड़का । क्रिया, लाड़ करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

लालसा—इच्छा । चाह ।

लाला—लाल । लड़का । लाल मणि । मुहका राल ।

लाली—ललाइ । लड़की । लाड़मे पाली हुइ ।

लच्छि—लक्ष्मी, धन, सपत्ति।

लछिमन—लषन, श्रीरामचन्द्रके छोटे भाई।

लजा—(क्रिया) लजाने और सकुचानेके अर्थमें। सिरा, पिरा आदिकी तरह।

लजाव—(क्रिया) लजवाने, लज्जित करानेके अर्थमे, "चढ़ाव" तरह।

लटकनि—झुकन, अदा।

लट—(क्रिया) लटने, लटकने, मुरझाने, दुबल होने, झुकने, घटने, अशक्त होने और झूमनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप।

लड—(क्रिया) लडाइ, झगडा, विरोध करनेके अथमें।"चढ़" की तरह।

लता—वल्ली, बेल।

लपट—गमक, गन्ध। लपेट। लपक। ज्वाला।

लपटाव—(क्रिया) लिपटाने चिपकानेके अर्थमें।"चढ़ाव" की तरह।

लपेट—(क्रिया) लपेटनेके अर्थमें। "चढा" की तरह।

लबार—झूठा, गप्पी।

लय—लौ। तन्मय। एक जी। नाश। सगीनमें स्वर-प्रवाह।

ले—(क्रिया) लेनेके अर्थमें। [इसके रूपोंके लिये ले, दे, आदि "ए" कारान्त धातुओंके रूप भूमिकाके पहले खडमें देखिये।]

लयलीन—लौलीन, एकाग्रमन। व्यस्त।

लरकाई—लडकोंके। लडकपनसे। लडकपन।

लरिकिनी—लडकिया, बालिकायें।

लर—(क्रिया) लडनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

लरिका—लडका, बालक। —ई, लडकपन।

ललकि—हुमचके, उत्साहपूर्वक।

ललना—स्त्री, सुन्दरी।

ललाट—माथा, मस्तक।

ललाम—श्रेष्ठ, सुन्दर। शोभा।

ललित—सुदर, दर्शनीय। सबेरे गानेकी एक रागिनीका नाम।

लव—अंश, अल्पकाल। गोपुच्छके रोम। श्रीरामचन्द्रके छोटे पुत्र का नाम।

लव—(क्रिया) लवने या काटनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।

लवन—नमक, खार, नौन। —सिंधु, खारी समुद्र।

लवलेस—अंशका भी अंश। अत्यन्त थोडेका थोड़ा भाग।
लवा—एक छोटी सी चिड़िया। काटा।
लवाई—नयी ब्यायी गौ। कटाइ।
लषन—श्रीलक्ष्मणजी।
लस—(क्रिया) शोभा देने और शोभा पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। चिपकाहट।
लह—(क्रिया) पाने और लेनेके अर्थ में, "चढ़" की तरह।
लहकौर—ललकारकर। उमगसे। सिठनी। ब्याहकी गाली। कोहवरके खेल।
लहलहाव—(क्रिया) चमचमाने, झलझलाने, लपलपाने और लहराने के अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह।
लाँघ—(क्रिया) पार होने, लप जाने, फांदनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप।
लाग—(क्रिया) लाने और लगानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह।
लाख—लाह। सौ हजार, लक्ष १००००० ।
लाग—लगाव, सम्बन्ध। बैर। लिये। वास्ते। (क्रिया) लगनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
लाघव—शीघ्रता। आसानी। सहज में। छुटाई, हलकापन। तुच्छता।
लाज—लज्जा, सङ्कोच। —वत, लज्जावान। सकोची।
लाज—(क्रिया) लजाने, और लजवानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
लाजा—लज्जा, सकोच। लावा। खीलें।
लाटी—प्याससे या मूख जानेसे ओठोंपर जमी हुई लस और मुँहके अंदरका चिपचिपाहट या लस। देखो, "लट"।
लात—पाव। पैर।
लाध—(क्रिया) पानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
लाभ—फायदा, प्राप्ति।
लायक—योग्य, उचित।
लाल—रक्त वर्ण। बेटा। जवाहिर। लड़का। क्रिया, लाड करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।
लालसा—इच्छा। चाह।
लाला—लाल। लड़का। लाल मणि। मुँहकी राल।
लाली—ललाई। लड़की। दुलारी। लाड़से पाली हुई।

लावक—लवा । एक पक्षी ।

लावन्य—सुंदरता । नमकीनी । शोभा । बनाव ।

लाव—(क्रिया) लगाने, जमाने और बोनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

लाह }
लाहु } लाभ ।

लिख—(क्रिया) लिखनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

लिलार—माथा, मस्तक ।

लीक } लकीर, रेखा । मर्यादा ।
लीका } परिपाटी, रीति ।

लीन—लिया, प्राप्त किया । तत्पर । मग्न डूबा हुआ ।

लीला—क्रीड़ा, खेल ।

लुका—(क्रिया) छिपनेके अर्थमें । "गिरा" "मिरा" की तरह ।

लुकाव—छिपानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

लुठत—(क्रिया) लोटने, लुढ़कने, छटपटानेके अर्थमें । "चढ़" तरह ।

लुनाई—लावण्य, सुंदरता ।

लुन—(क्रिया) अनाज काटने, निकालने, प्राप्त करने और पानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

लुप्त—अदृष्ट, छिपा हुआ ।

लुब्ध—मिला हुआ, बंधा हुआ । लोभी, लालची ।

लुब्धक—लोभी, लालची । ठग, धोखा देनेवाला ।

लूक—आकाशके टूटे हुए तारे । उवाला, लपट ।

लेखनी—कलम

लेखा—लिखा हुआ । हिसाब किताब । माना, समझा, अनुमान किया ।

लेखे—हिसाबमें, समझमें, जानमें,

लेस—थोड़ासा नामको, अंश । (क्रिया) लगाने, मिलाने, जोड़ने, चिपकानेके अर्थमें "चढ़" की तरह ।

लोई—लोग, जनसमुदाय, कनवस्त्र । रोटी बनानेके लिये आटेका पेड़ा ।

लोक—लोग, मनुष्य । भुवन ।

लोकप } लोकपाल, (इंद्र,
लोकपति } वरुणादि) ।

लोग—मनुष्य, जनसमुदाय ।

लोगाई—स्त्री ।

लोचन—नयन, आंख ।

लोन—नून ।

लोना—सुंदर, प्यारा । नमकीनी ।

लोप—(क्रिया) छिपो और छिपाने के अर्थमें। "चढ" को तरह।
लोभ—(क्रिया) लोभाने, ललचानेके अर्थमें, "चढ" की तरह। लालच।
लोभाय—(क्रिया) लोभाने लल चानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह।
लोभी—लोभ करनेवाला। लालची।
लोमस—एक महर्षिका नाम।
लोल—चचल, चपल,
लोलुप—अति लालची, लम्पट।
लोचन—आंख। नेत्रद्वारा।
लोवा—लवा पची। लोमडी।
लोह—लोहा।
लौकिक—सांसारिक।
लौन—नमक।

श

श्री—शोभा। लक्ष्मी। विष्णु पत्नी। सम्पदा। सु दरता। प्रताप। बड़ाइ।

ष

षट—छ ६।
षष्ठ—छठा। [देखो "स"]

स

स (श)—कल्याण, भला, अच्छा।
सकट—कष्ट, अडस, विपत।
सकन—डरोंमे। निर्भय।
सकल्प—प्रण, प्रतिज्ञा, विचार।
सकर—मिश्रित, मिला हुआ। कल्याणकर्ता।
सका (शका)—सदेह, भ्रम, डर।
संकास (सकाश)—तुल्य,समान। पास।
सकुल—पूर्ण, पूरा भरा।
सकोच—लाज। कमी
सख (शख)—कम्बु। एक जल। जन्तु जिसका बाहरी खाल फूककर बजाया जाता है। मूर्ख।
सग—साथ। मेलजोल।—त,मेल। सिक्खोंकी गुरुद्वारा या धर्मशाला।—म, मिलन। नदियोंके मिलनेका स्थान। मिलनकी क्रिया या जगह।
सग्रह—स्वीकार। जमा करना।
सग्राम—रण, युद्ध।
सगिन } सहेली, सखी।
सगिनि }
सघ—समूह। ढेर।
सघट—मेल, सयोग।
सघरपन (सघर्षण) —घसना। रगड़ा।
संघात—समूह। पूर्णतया नाश।

संहार—नाश, प्रलय। एक नरकका नाम। एक भैरवका नाम।
सछेप (सक्षेप)—साराश।
संजम (संयम)—बचाव। ध्यान, व्रत, नियम।
संजात—पैदा, निकला।
सडसिन—चीमटोंसे। सँडसियोंसे।
संत—साधु, सज्जन।
सतत—सब दिन, सदा।
संतति—सतान।
संतान—लडकेबाले।
सताप—दाह, दु ख, क्लेश।
सतोप—सब्र।
संदेस (सदेश)—समाचार।
सदेह—भ्रम, खुटका।
सदोह—समूह, ढेर।
सध—जोड़। मेल। दरज।
संध्या—दिन और रातकी सधि। साझ।—वन्दन, द्विजातियोंका नित्यका कर्त्तव्य कर्म। पूजा।
संधान—(क्रिया) जोड़ने, चढ़ाने, निशानेपर लगानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
सधि—मेल, जोड, मध्य।
सपति, सपदा—धन, दौलत, विभव।
सपन्न—सयुक्त। धनी।
सपाती—जटायु गीधका बडा भाई।
संपादन—निर्माण, बनाना। कथन।
सपुट—कली। डिबिया। दोना, दोनिया। ढकना बद।
सबल—राहखर्च, कलेवा। पूर्ण बल। मार्ग-व्यय। मार्ग का भोजन।
सवाद—परस्परका वार्ता।
सबुक—घोंघा।
सभल—एक ग्रामका नाम। चेत कर, चैतन हो।
सभव—जन्मा हुआ। होनेयोग्य।
सँभार—बोझ। सभाल। स्मरण। (क्रिया) चेतने, बचा लेने और सँभालनेके अर्थमें "चढ" की तरह।
संभावित—होनेयोग्य।
सभु (शभु)—शिव, महादेव।
सभूत—जन्मा हुआ, पैदा।
समत—एकमत, एकराय।
समति—राय। मत।
सयुग—मेल। सामना। लडाइ।
सयोग—मेलमिलाप।
सँवारी—सजी हुइ, बनायी।
ससय (सशय)—सदेह, भ्रम।
संसर्ग—संगत, साथ, मेल, लगाव।

संसार—जगत ।

संसृति—संसार, जगत । आवा गमन ।

संहर्ता—छीन लेनेवाला ।

संहार—नाश, विनाश, प्रलय ।

स—सहित । साथ ।

सई—एक नदीका नाम ।

सक (शक)—संदेह । सामर्थ्य । (क्रिया) सकनेके अर्थमें "चढ़" की तरह ।

सका—(क्रिया) सकुचाने, डरने, संदेह करने और लजानेके अर्थमें "हिरा" "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह ।

सकरुन—दयायुक्त ।

सकल-सब । कलासहित । समस्त । रूप ।

सकिल—(क्रिया) बटुरने, दबकने, दरने, घटसने, फँसने, एकत्र होने और सिमटनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सकुच—संकोच, लाज, डर । (क्रिया) लजाने और डरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सकुनाधम—असगुन, अति बुरे सगुन ।

सकुनि—एक कुरुवंशके चत्रीका नाम । पक्षी ।

सकृत—एक बेर । एक केवल, कोई ।

सकेल—(क्रिया) समेटने, बटोरने, एकत्र करने,कसने,दबाने-के अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

सकोच—संकोच, लाज, डर,दबाव ।

सकोची—डरी, दबी लजाई । समेटकर । संकोच करने वाला ।

सक्ति (शक्ति)—भगवती, देवी, बल । स्त्री । बर्छी ।

सक्र (शक्र)—सुरपति, इन्द्र ।

सक्रारि—इन्द्रजीत, मेघनाद ।

सखर—खराई सहित, खरके वर्णन सहित । कठोर, कड़ा । चोखाई या खराई सहित ।

सखा—साथी, मित्र ।

सगर—विषयुक्त । एक प्रसिद्ध राजा का नाम । सब जगह ।

सगर्भ—साभिप्राय । मानयुक्त । अभिमानी । गर्भधारण करनेवाली स्त्री ।

सगरे—सब ।

सगलानि—ग्लानिके साथ, घिनसे, अनादरसे ।

सगाई—नाता, अपनायत । विवाह संबंध ।

समता—समानता, बराबरी ।
समदरसी—बराबर देखनेवाला । रागद्वेषरहित ।
समदि—पूजा करके ।
समधी—समान बुद्धिवाला । नातेदार । बराबरका सम्बन्धी । ब्याहमें वर कन्याके पिता ।
समन(शमन)—शान्त करनेवाला, ठंडा करनेवाला, यमराज ।
समय—काल । साइत ।
समर—रण, युद्ध ।
समरथ (समर्थ)—योग्य, शक्तिमान ।
समर्प—(क्रिया) सौंपनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।
समररस—वीररस, लड़ाइका सुख ।
समस्त—सब, कुल ।
समा—समय, काल ।
(क्रिया) समाने, घुसने, और प्रवेश करनेके अर्थमें । रिसा पिरा, सिराकी तरह ।
समागत—जन समाज, सभा । आया हुआ । इकट्ठा ।
समागम—मेल, भेंट । इकट्ठा होना । मिलना । सत्सग ।
समाधान—छुटकारा ।
समाधि—सुख, स्थिरता ।
समान—बराबर, तुल्य ।
समाप—क्रोधयुक्त ।
समास—संक्षेप, छोटा ।
समिध—ईन्धन, लकड़ी ।
समिति—सभा, कमेटी । सेनाका एक गिना हुआ टुकड़ा ।
समीप—पास, निकट ।
समीर—हवा ।
समीहा—इच्छा, पूर्ण इच्छा ।
समुझ—(क्रिया) समझने और जाननेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । बुद्धि । समझ । बूझ । सम्बुद्धि ।
समुझाव—(क्रिया) समझाने और जनानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।
समुदाई—ढेर, समूह ।
समुद्र—सिन्धु ।
समुहा—(क्रिया) सम्मुख होने, सामने आने और मिलनेके अर्थमें । रिसा, पिरा आदिके अनुरूप ।
समूल—मूलसे, जड़से ।
समूह—ढेर ।
समेट—बटोर, जमाकर । क्रिया,

समेत—सहित, साथ ।
सम्प्रति—अब ।
सम्मत—एक मत । राजी ।
सम्मुख—सामने । मुकाबलेमें ।
सम्यक—भलीभांति । भरपूर । सब तरहसे ।
सय—सौ, १०० ।
सयन—सोना । सोनेवाला । शय्या, भाव, कटाक्ष ।
सयाने—बड़े । चालाक । बुद्धिमान ।
सर—सरोवर, तालाब । वाण, तीर । सरकना । (क्रिया) बराबर करने पूरा करने या हो सकनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।
सरग (स्वर्ग)—देवलोक, इन्द्रपुरी ।
सरजू (सरयू)-एक नदी जो हिमालयकी तराइसे निकल कर अयोध्यामें बहती हुइ बिहार और संयुक्त प्रान्तकी सीमापर गंगामें मिल जाती है। इसे घाघरा भी कहते हे ।
सरन (शरण)—रक्षा, पनाह । रक्षक ।
सरनागत—शरणमें आया हुआ । रक्षा चाहनेवाला ।
सरद (शरद)—कार्तिकव्यापी ऋतु । सर्दीका मौसिम । सर देनेवाला । दातवाला ।
सरद्धा (श्रद्धा)—भक्ति, इच्छा, चाह । प्रतीति ।
सरप (सर्प)—साप । चलो, खसको ।
सरपि (सर्पि)-घृत । घी । चलकर, खसककर, बढ़कर ।
सरबरि—बराबरी, समता । ढिठाइ ।
सरबरी (शर्वरी)—रात ।
सरभग (शर्भंग)—एक ऋषिका नाम ।
सरल—सादा, सच्चा, स्वच्छ ।
सरबस—सब कुछ ।
सरस—रसीला, रसवाला ।
सरस—(क्रिया) बढ़ने, गाढे होने, और घना होनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । रसीला । रसभरा ।
सरसा—सरस करनेके अर्थमें, "रिसा" की तरह । सरकी तरह [देखो "सर"]
सरसाव—सरस करानेके अर्थमें, "चढ़ाव" की तरह ।
सरसइ—सारस्वती नदी । भिन जाय । पक जावे । स्वादयुक्त हावे ।
सरसिज } कमल ।
सरसीरुह }

सरब,सर्ब—सब । शिव । विष्णु । —गत,सबमें व्यापक ।—ग्य, सब कुछ जाननेवाला ।—त्र, सभी जगह ।—दा, सदा। —स, सर्वस्व, सब कुछ ।

सराप—गाली । शाप। बुरा मनानेकी क्रिया । (क्रिया) बुरा मनानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

सरासन (शरासन)—कमान । धनुष ।

सरासुर (शरासुर)—बाणासुर नामका दैत्य ।

सराह—(क्रिया) बड़ाई करने, स्तुति करने, प्रशंसा करनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

सरि—नदी । बराबर । जैसा ।

सरित, सरिता — नदी ।

सरिवारी—नदीका जल ।

सरिस—समान, जैसा ।

सरीखा—समान, बरोबर ।

सरीर (शरीर)—देह । तन ।

सरुज—रोगी ।

सरुप—क्रोधी ।

सरोज—कमल ।

सरोरुह—कमल ।

सलज्ज—लज्जित ।

सलिल—पानी ।

सलोक—लोकसहित । यश । श्लोक ।

सलोने—सुन्दर, मनोहर, प्रिय ।

सव (शव)—लोथ, मुरदा ।

सवति—सौत । सौतिन ।

सवद (शब्द)—बोली, वाणी ।

सवरी (शबरी)-भीलनी, एक रामानुरागिनी भीलनी जिसने श्रीरामको बेर खिलाये थे ।

सस (शश)—खरहा ।

ससि (शशि)—चन्द्रमा ।

ससिरस (शशिरस)-सुधा,अमृत ।

ससुर—पति या पत्नीका पिता ।

ससक—डरके साथ । चन्द्रमा ।

सस्त्र (शस्त्र)—हथियार ।

सस्य (शस्य)—तिनका, घास ।

स,सह—समेत । सहन करके । सहित, साथ साथ ।

सह—(क्रिया) सहने,भोगनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

सहगामिनी—सती । साथ जानेवाली । पतिके संग जलनेवाली ।

सहज—साधारण,-सुगम ।

सहत—सहता है । मधु ।

सहनाई—एक प्रकारका मुँहसे बजानेका बाजा ।

सहम—डर, भयसे। अहंकारयुक्त।
सहरोष—क्रोधके साथ।
सहवासिनि (पु० सहवासी)—
साथ रहनेवाली भार्या, पत्नी।
सहस (सहस्र)—हजार, दस सौ,
१०००।
सहसबाहु (सहस्रबाहु)—हजार
भुजावाला। एक राजाका नाम
जिसने परशुरामजीके पिताको
मार डाला था।
सहसमुख (सहस्रमुख)—हजार
मुखवाला शेषनाग।
सहसा—बिना विचारे, झटपट।
हठ। मूर्खता।
सहसाखी—हजार आंखवाला,
इन्द्र। सहस्र नयन।
साखीसहित।
सहसानन—हजार मुखवाला,
शेषनाग।
सहसनयन—इन्द्र, सहस्रनेत्र।
विष्णु।
सहससीस—विष्णु, शेषनाग।
सहानुज—छोटे भाईके साथ।
सहाय—साथ। सहायक, रक्षक।
सहाव—(क्रिया) सहन कराने
भोगानेके अर्थमें। "चढ़ाव"
की तरह।
सहित—समेत। मित्रके साथ।

सहिदानी—साखी। गवाही। चिह्न।
सहकर (सहिदामी=
सौदा)।
सही—निश्चय, ठीक ठीक। हस्ता
चर।
सहेली—सखी।
सहोदर—एक ही उदरसे जन्मे
भाइ या बहिन।
साग—बर्छी, भाला, शूल।
साच—सच्चा, सत्य। ठीक ठीक।
साझ—सन्ध्यासमय।
सात—स्थिर। सतुष्ट।
साति (शान्ति)—स्थिरता,सतोष।
साधा—मिलाया, साना, घोला।
सावर—सावला, श्यामवर्ण।
सासति—दंड, पीड़ा।
साईं—स्वामी, ईश्वर।
साउज—हरिन। वनजन्तु। शिकार।
साक (शाक)—साग, तरकारी।
साकवनिक—कुंजड़ा, खटिक।
भाजी या फल
बेचनेवाला।
साका—सवत। स्मारक। यश।
मारकेकी बात।
साखा (शाखा)—डाली। शाखा।
—मृग, वानर।
साखि (साक्षि)—देखनेवाला।
गवाह। मित्र।

साखोच्चार—वेदकी शाखा-युक्त वंशावली वखान।

सागर—समुद्र।

साज—सामग्री। सजाकर।

साढ़साती—शनिकी साढ़े सात वर्षकी दशा।

सातउ—सातवाँ। सातों।

साता—सात, ७।

सात्त्विक—रोमाच, गद्‌गदभाव।

साथ—संग, सहित।

साथरी—चटाई, आसन।

सादर—आदर-सहित, मानयुक्त।

साध—कामना। लालसा। भला। भले मानस। भिक्षुक। (क्रिया) साधन, अपने ढंगपर लाने, मिलानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

—**क**, अभ्यास करनेवाला। तपस्वी।

—**न**, उपाय, यत्न।

साधु—बहुत ठीक। भला। भले-मानस। भिक्षुक। सन्त।

— **मत**, अच्छा व्योहार, भले लोगोंके विचार।

साध्य—यत्न करनेयोग्य। मिलाने-लायक। काबूमें आने-लायक।

(क्रिया) मिलाने, लपे... अर्थमें, "चढ़" के अनु...

सानुकूल—अनुकूल, मनोनुक...

साप—शाप, बद दुआ। (क्रि... शाप देने, कोसनेके अर्थ... "चढ़" की तरह।

साम—बराबरीके उपाय। संधि... तीसरा वेद। लकड़ीके सि... पर लगा लोहा।

सामद—शांतिदाता, समझानेवाल...

सामुझि—समझ, बुद्धि।

सामुहँ—सनमुख, मुँहके सामने... समुख

सायक—तीर।

सायुज (सायुज्य)—मोक्ष,तन्मय... ब्रह्ममय।

सार—तत्त्व, हीर, मूल। लोटा... साला। पत्नीका भ्राता।... क्रिया बनाने, सँवारनेके... अर्थमें, "चढ़" की तरह।

सारथि—सारथी, रथवान। गाड़ी-वान।

सारद (शारद)—सरस्वती, वाणी। शरदऋतु सम्बन्धी।

सारदी (शारदी)—सरस्वती सम्बन्धी। शरदऋतु सम्बन्धी।

सारा—तत्त्व, मूल। साला। स्त्रीका भाई। पूरा किया। बनाया। समस्त।

सारिका—सिरोही, एक चिड़िया। मैना।

सारिखे—समान, बराबर, तुल्य।

सारी—सिरोही, मैना। स्त्रीकी बहिन। बनाई, पूरा की। चौसर।

सारु—सार, तत्त्व।

सारे—सब। बनाये। पूरा किये।

सारंग—विष्णुका धनुष। भौंरा। मोर। सर्प। घड़ा।

साल—दुःख। शोभा। घर। वर्ष। (क्रिया) चुभनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। —क, दुःखदाई, चुभनेवाला।

साला—स्थान, घर। चुभाया। पत्नीका भाई।

सालि (शालि)—धान। शोभायुक्त। सयुक्त।

साली—सयुक्त। धान। शालासे सम्बद्ध। पत्नीकी बहिन। जुलाहा।

सावक (शावक)—बालक, बच्चा।

सावकरन (श्यामकर्ण)—काले कानवाले सफेद घोड़े। अश्वमेध यज्ञके घोड़े।

सावकास (सावकाश)—सामने छुट्टी।

सावन (श्रावण)—वर्षा ऋतुके एक महीनेका नाम।

साबर (शाबर)—किरातका। किरातके वशमें।

सास्वत (शाश्वत)—अमर, देवता। निरन्तर। नित्य। शिव। सूर्य। व्यास। आकाश। पृथ्वी।

सासु—पति या पत्नीकी माता।

सासुर—ससुराल।

साहस—हिम्मत, हौसला।

साहनी—सेनापति, कप्तान।

सिंगरौर—शृंगवेरपुर,।

सिंगार—सजावट, रचना।

सिंघल—एक उपद्वीपका नाम जिसे आजकल लंका भी कहते हैं। [द्रविड़में द्वीपमात्रको लंका कहते हैं।]

सिंच—(क्रिया) सींचने, तर करनेके अर्थमें। "चर" की तरह।

सिंचाव—(क्रिया) छिड़कने और तर करनेके अर्थमें। "चराव" के अनुरूप।

सिंधु—समुद्र। पंजाबकी एक सरहदी नदी जो सिंधुदेशमें होकर गिरती है। सिंधुदेश।

सिंधुर—हस्ती, गज।
सिंसिपा—शरीफेका वृक्ष, सीसोंका वृक्ष।
सिंह—बाघ। श्रेष्ठ।
सिंहासन—राजाओंके बैठनेकी चौकी। गद्दा। उच्चासन।
सिअ,सिय—(क्रिया)सीनेके अर्थमें, "चढ" की तरह। सीताजी।
सिअन—सिलाई।
सिआर, सियार—सीनेवाला, गीदड। शृगाल।
सिकता—बालू। रेत।
सिख—शिक्षा। चोटी। नोक। चेला।
सिखा (शिखा)—चोटी। टेम।
सिखावन—शिक्षा, उपदेश।
सिखि (शिखि)—केकी, मोर। चोटीदार।
सित—श्वेत, उजला। उजेला।
सिथिल (शिथिल) ढीला, सुस्त। अपाहिज, निकम्मा। निर्बल।
सिद्ध—योगी, त्रिकालदर्शी। ज्ञानी तपस्वी, पूरा, समाप्त,तैयार, सफल। ज्योतिषके एक योगका नाम।
सिद्धि—मनोरथकी पूर्णता। रसका ठीक बन जाना। अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा,प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, यही आठ सिद्धियाँ कहलाती हैं। **अणिमा**=सबसे छोटा बन सकना। **महिमा**=सबसे बड़ा बन सकना। **लघिमा**=सबसे हलका बन सकना। **गरिमा**=सबसे भारी बन सकना। **प्राप्ति**=इच्छानुसार वस्तुएं पा लेना। **प्राकाम्य**=जो चाहे कर सकना। **ईशित्व**=जिसका चाहे उसका मालिक हो सकना। **वशित्व**=जिसे चाहे अपने वशमें कर सकना।
सिद्धांत—निश्चित, ठहराया हुआ। पक्की पोढ़ी बात।
सिधार—(क्रिया) चले जानेके अर्थमें, "चढ" की तरह।
सिधाव—(क्रिया) चले जानेके अर्थमें, "चढाव" की तरह।
सिमिट—(क्रिया) इकट्ठा होने, बटुरने या एकत्र होनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।
सिय—सीताजी।
सियर—शीतल। ठंढा।
सिर—मस्तक,माथा। शीष। मुंड। मूँड।

सिरज,सृज —(क्रिया) बनाने, रचने और उत्पन्न करनेके अर्थमें "चढ़"की तरह ।

सिरा—(क्रिया) मन पड़ने,निबहने और समाप्त होनेके अर्थमें "रिसा"की तरह ।

सिरिस—एक वृक्षका नाम जिसके फूलकी पखड़िया अत्यन्त कोमल होती है।

सिरोमनि—सबश्रेष्ठ, सबके ऊपर सिरमें पहने जानेवाला मणि ।

सिला (शिला)—पत्थर, चट्टान ।

सिलीमुख (शिलीमुख)—भौंरा । तीर ।

सिल्प (शिल्प)—कारीगरी, दस्तकारी ।

सिव(शिव)—कल्याण,महादेवजी । स्यार ।

सिवसैल (शिवशैल) — कैलास पर्वत ।

सिवा (शिवा)—पार्वती । स्यार ।

सिवार—जलमें होनेवाली एक घास ।

सिवि(शिवि) —एक राजाका नाम देखो "कथा" ।

सिविका—पालकी, डोली ।

सिस्न (शिश्न)—पुरुषकी जननेन्द्रिय ।

सिसिर (शिशिर)—पतझड़,माघ-फागुन ।

सिसु (शिशु)—लड़का, बच्चा ।

सिहा—(क्रिया) सन्तुष्ट होने, भिलाषा करने और इर्षा करनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

सींक—तिनका, तृण,शलाका ।

सींच— क्रिया) देखो "सिंच" ।

सीवँ—सीमा। हद । छोर । नोक । यादा ।

सीकर – कण, छींटा, बूंद ।

सीख—उपदेश, शिक्षा ।

सीत (शीत)—जाड़ा पाला, सर्दी । —ल, ठंडा ।

सीना—जानकी ।

सीद—(क्रिया) दुखी करने, दुखी होने, नाश कर देने,नाश हो जानेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।

सीध—सरलता सामना ।

सीप—सिप्पी, सितुही ।

सीम—छोर, अन्त ।

सीय—सीता

सील (शील)—स्वभाव, प्रकृति ।

सीव —सीम, छोर, अन्त ।

सीस—सिर, मस्तक । दर्पण । एक नरम धातु ।

सुंदर—खूबसूरत, रूपवान। प्रिय, अच्छा। —ता, ताई,— छबि, शोभा।
सु—सुन्दर, अच्छा, प्रिय। अच्छी तरह।
सुअर—शूकर, कोल। सूअर।
सुआर—सूपकार, रसोइया। दाल पकानेवाला।
सुआसिनि—सुहागिनि, सधवा।
सुअसन—अच्छा असन।
सुक(शुक)—तोता। शुकदेवमुनि। रावणके एक दूतका नाम।
सुकर्कस—कठोर, तड़ाका, चिड़चिडा।
सुकुमार—निर्बल, कोमल।
सुकृत—पुण्य, भली करनी। पुण्यवान।
सुकृती—पुण्यशील। अच्छा काम करनेवाला। पुण्यवान।
सुक—दैत्यगुरु। शुक्राचार्य। कवि। एक ग्रह। वीर्य। उजला।
सुक्र (शुक्र)—श्वेत, उजला।
सुकेतु } एक यक्षका नाम।
सुकेत } सुन्दर ध्वजावाला।
सुकण्ठ—सुग्रीव। अच्छी गर्दनवाला। मधुरभाषी।
सुख—आनन्द। —कारी, आनन्द जनक—द, सुख देनेवाला।
सुखा—(क्रिया) सूखने और सुखा... के अर्थमें "रिमा"का वाह...
सुखागर—सुखद। सुखका घर...
सुखासन—सुखपाल, सुखसे बै... हुआ।
सुखी—प्रसन्न।
सुखेन (सुषेण)—सुखमे। रावण... वैद्यका नाम।
सुगम—सहज।
सुगाई—कामधेनु। अच्छी तर... गायी।
सुग्रीव—वालिके छोटे भाइ... नाम। अच्छे कंठवाला...
सुगन्ध—गमक, महक। सुवास...
सुघट्ट—सुरचित, सुघर।
सुघटित—अच्छा बना हुआ।
सुचि (शुचि)—पवित्र, शुद्ध।
सुचिन्तन—भला भातिका विचार...
सुछन्द (स्वच्छन्द)—निर्भय, अप... मनका।
सुजन—साधु, भले आदमी।
सुजस—सुन्दरयश। सुकीर्ति।
सुजान—ज्ञानी, चतुर।
सुटुकि—कोड़ा मारकर, चाबु... चलाकर।
सुठि—बहुत, भलीभाति। अच्छा... अच्छाई से।
सुत—पुत्र, बेटा।
सुता—कन्या, बेटी।

सुतीछन (सुतीक्ष्ण) —एक ऋषि-का नाम।
सुतीछो—बड़ी चोखी, धारदार।
सुतन्त्र (स्वतन्त्र)—स्वाधीन। अपने मनका।
सुद्ध (शुद्ध)—निर्मल, श्वेत। बिना भूलका।
सुदेस —सुन्दर, अच्छा देश।
सुधर—क्रिया सुधरनेके अर्थमें, चढ़की तरह।
सुधा—अमृत।
सुधाकर—चन्द्रमा।
सुधार—(क्रिया) ठीक करनेके अर्थ में "चढ़" की तरह। ठीक करनेका काम। अच्छी अवस्थामें लाना।
सुधि—समाचार, हाल।
सुन—(क्रिया) सुननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।
सुनयना—सुन्दर नेत्रोंवाला। जानकीजीकी माताका नाम।
सुनाजू—सुन्दर अनाज।
सुनासीर—इन्द्र।
सुपास—सुख, सुबीता।
सुपैती—निर्मलता, सफाई। तकिया।
सुफल—अच्छा फल। सुपरिणाम।
सुबस—स्वाधीन।
सुबाहु—एक राक्षसका नाम। अच्छी बाहु।
सुबेल—लंकाके एक पर्वत शिखर-का नाम।
सुभ (शुभ) —अच्छा, भला।
सुभग—सुंदर।
सुभगुन—सुलक्षण। अच्छे गुण।
सुभट—वीर, लड़ाके। योद्धा।
सुभ्र (शुभ्र)— उज्ज्वल, सुथरा।
सुभाऊ—स्वभाव। सहजमें।
सुभाय — साधारण। अच्छे भावसे
सुभाव—स्वभाव। सहजही।
सुभुज—सुन्दर बाहुवाला। सुबाहु नामक राक्षस।
सुमति—अच्छी बुद्धि। भला, बुद्धिमान।
सुमन—फूल। सुन्दर मन।
सुमित्रा—लक्ष्मण शत्रुघ्नकी माता।
सुमिर—(क्रिया) याद करनेके अर्थ में। "चढ़" की तरह। —न, स्मरण। याद।
सुमुखि—सुंदर मुखवाली।
सुमृति—धर्मशास्त्र। मीमांसा।
सुमन्त—राजा दशरथके मंत्रीका नाम।
सुमत्र—भली राय।
सुर—अमर, देवता।
सुरगुरु—देवताओंके गुरु। बृहस्पति।
सुरतरु—कल्पवृक्ष।
सुरबीथी—देवमार्ग। आकाशगंगा।

सुरभि—कामधेनु । सुगंधित । वसन्त ।
सुरसर—मानसरोवर ।
सुरसरि—गंगा नदी ।
सुरसा—सर्पोंकी माताका नाम ।
सुरसेनप—देवताओंके सेनापति । सुब्रह्मण्यम् । स्वामि-कार्त्तिकेय ।
सुरा—मदिरा ।
सुराई—वीरता, बहादुरी ।
सुराती—अच्छी रात ।
सुरानीक—देवतोंकी सेना । अच्छी मदिरा ।
सुरारी—राक्षस ।
सुरासुर—देवता और राक्षस । देव दानव ।
सुरुचि—भली चाह ।
सुरंगा—लाल । अच्छा रंग । सुचाल ।
सुलगै—धधके, बले ।
सुलच्छन—सुचलन ।
सुलभ—सहज ।
सुबस—अपने वशका ।
सुवास—सुगंधि, यश ।
सुवासिनि—साविती, सधवा ।
सुहा—(क्रिया) शोभित होनेके अर्थमें । "रिसा" का तरह ।
सुहाग—सौभाग्य, सोहाग ।
सुहावनी—सुन्दरी, प्रिय लगने वाली ।
सुहृद—सुजन, भले लोग ।
सूकर (शूकर)—सूअर ।
सूकरखेत—वाराह चेत्र । सोरों ।
सूख—(क्रिया) सूखनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।
सूच—(क्रिया) जानने, समझनेके अर्थमें । "चढ" की तरह ।
सूचक—बतानेवाला, स्मारक ।
सूझ—(क्रिया) दिखाइ देने, समझ में आने, बुद्धिके दौडनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । बुद्धिकी पहुँच । सूझ ख्याल ।
सूत—रथवान । पौराणिक । डोरा ।
सूत्र—सूत, डोरा । सीध, लक्ष्य । **—धार**, नाटक करनेवालों का नेता ।
सूद्र (शूद्र)—चौथी जाति । सेवा वृत्तिवाले ।
सूध—सरल, सादा ।
सून—सूना, अकेला ।
सूनु—पुत्र, बेटा ।
सूप—दाल । पाक । छाज । **—कारक**, रसोइया, रसोई दार । **—शास्त्र**, पाकशास्त्र ।
सूपोदन—दालभात ।
सूपनखा (शूर्पणखा)—रावणकी बहिन ।

सूल (शूल)—बरछी । पीडा । काटा । भाला ।
सृग—सींग । शाखा । चोटी ।
—बेरपुर, निषादोंका एक गाँव जो गगाजीपर बसा था ।
सृगाल (शृगाल)—सियार ।
सृज—(क्रिया) बनाने और रचनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह ।
से—समान । जैसे । द्वार । सेवन-कर ।
सेज—पलग, बिछौना । शय्या ।
सेत—निर्मल, उजला । पुल ।
सेतु—पुल । सीमा, मर्यादा ।
सेन, सेना—फौज, दल ।—प, सेनापति ।
सेर—शेर । १६ छटाक तोलनेका बाट । भरपेट खाये हुए । तृप्त ।
सेल—बरछी ।
सेव—(क्रिया) सेवा करनेके अर्थमें, "चढाव" की तरह । एक फल ।—क, टहलुआ । नौकर । सेवा करनेवाला ।
—काई, नौकरी । टहल । सेवा ।
सेवा—परिचर्या । औरोंका काम । खिदमत । टहल ।
सेवरी—भीलनी । एक रामकी भक्ता भीलनीका नाम ।
सेव्य—सेवाके योग्य ।
सेष (शेष)—बचा हुआ । शेषनाग ।
सैन—कटाक्ष । सेना ।
सैल (शैल)—पहाड़ ।
सैलजा (शैलजा)—गिरिजा, शिवा ।
सैलराज (शैलराज)—हिमालय पर्वत ।
सो—वह, वे हीं ।—ऊ, नहीं, वे हीं ।
सोई—सो गई । वही ।
सोऊ—वह भी ।
सोक (शोक)—खेद, दुःख ।
सोख—(क्रिया) सोखनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह । ढाठ ।
सोग—शोक, खेद ।
सोच (शोच)—चिन्ता ।
सोचनीय—चिन्ताके योग्य ।
सोध—सुध, पता, खोज । (क्रिया) शुद्ध करने या ठीक करने और पता लगाने या खोजनेके अर्थमें "चढ" की तरह ।
सोन (शोण)—सोनभद्रा नदी । लाल रंग । सोना । सो नहीं ।
सोना—कंचन, सुवर्ण । लाल, सुर्ख । (स० शोण=लाल) ।
सोनित (शोणित)—लोहू, खून ।
सोनिप (छोनिप)—भूमिप राजा ।

करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हिंसक—मार डालनेवाला, दुःख देनेवाला ।

हिहिंना—(क्रिया) घोड़ेके हिनहिनानेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

हींच—(क्रिया) दबोचने, खींचने, मिकोड़ने, मरोरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हुअ—(क्रिया) मारनेके अर्थमें । इसके हुए, हुई (मारा मारा) आदि कुछ ही रूप प्रचलित हैं, जो "चढाव" क्रियाके अनुरूप हैं । परन्तु इस क्रियाका मूल रूप "हत" है—देखिये ।

हकराव—(क्रिया) बुलवानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह ।

हटक—रोक, डाट, मनाही ।(क्रिया) रोकने, डाटनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हट्ट—दूकान, हाट, रास्ता ।

हठ—जबरदस्ती, जिद ।

हठि—जिद करके, जबरदस्ती से । हठ पूर्वक ।

हत—(क्रिया) मारने, नष्ट करने या नाश करनेके अर्थमें । 'चढ़" की तरह ।

हथवासहु—मिलके पकड़ो,हथिया लो । वह बांस भी जिससे नाव खेते हैं ।

हन—(क्रिया) मारने,मार डालने या प्राण हरण करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हनुमत
हनुमान } महावीर, वानरश्रेष्ठ । ठुड्डीवाला ।

हनु—ठोढी, ठुड्डी, चिबुक ।

हनुमत
हनुमत
हनुमान } हनुमान । केसरी-किशोर महावीर । ठोढ़ीवाला ।

हम—मैंका बहुवचन, हमलोग । अहंकार ।

हय—तुरग, बाजी, घोड़ा ।—**गृह, शाला**, घुड़साल । अस्तबल ।

हये
हयो } मारे । हने ।

हर—शिव,शङ्कर । चुरा ले,छीन ले । खेत जोतनेका हल ।—**गिरि**, कैलास पर्वत । (क्रिया) लेने, छीनने और चुरानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह ।

हरद—हलदी । ह्रद । गहरा ताल । झील । जलकुंड । किरण ।

हरनी—हरनेवाली,नाश करनेवाली, मृगी हिरनी ।

हरष (हर्ष)—आनन्द,सुख,प्रसन्नता,

मुरझा। (क्रिया) प्रसन्न होने, मुर्झा होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह।

हरषा—(क्रिया) आनन्दित होने और करनेके अर्थमें "रिसा" की तरह।

हरासू—दुःख, शोक। हताशा। ह्रास, चय।

हरि—राम, कृष्ण, विष्णु। वानर, घोड़ा, सिंह, मोर, कोकिल,हंस सूर्य।

हरिचन्द / **हरिश्चन्द्र**—सत्ययुगके एक सूर्य वंशी राजाका नाम। देखो "कथाकौमुदी"

हरिजाना / **हरियान**—विष्णुकी सवारी गरुड।

हरित—हरे रंगका, हरा। चुराया हुआ, छीना हुआ।

हरी—हरे रंगका। हरि (देखो)

हरीस—कपिराज। सुग्रीव।

हरु, हरुअ—हलका, सुन्क।—आई, हलकापन,सूक्ष्मता।

हलधर—हलको धारण करनेवाले। किसान। बलदेवजी।

हलराव—(क्रिया)उछालने, भूलेकी तरह हाथमें लेकर झुलाने, झोंका देनेके अर्थमें "चढ़ाव" की तरह।

हलोरे—लहरें, जलके हलकोरे, बटोरे, समेटे।

हवाल—हाल, समाचार।

हवि—हव्य, खीर, प्रसाद।

हस्त—कर, हाथ।

हहर—घबराने, उकताने, रजसे धुल जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हहिं—है।

हा—खेद, और दुःख प्रकाशक अव्यय। हाय।

हाटक—कनन, कनक, सोना।

हाटकलोचन—हिरण्याक्ष दैत्य। प्रह्लादका चचा।

हाड—हड्डा, अस्थि।

हानि—हजा, नाश, घटी।

हाय—दुःख,क्लेश, ठंडी सांस। हा।

हार—पुष्पमाला,चन्द्रहार। माला। पराजय। थकावट। (क्रिया) हारने, आशा छोड़ने, थकनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हारी—हार दी, थक गयी। हरने-वाला। चोर, ठग,डाकू।

हास—हँसी, प्रसन्नता, ठिठोली।

हाहाकार—शोक,त्राहि त्राहि,शोर वा कष्टका कोलाहल।

हि—निश्चय, दृढ़।

हिंकर—(क्रिया) पाड़ासे कराहनेके अर्थमें, "चढ़" की

हित—प्यार, मित्रता, प्रेम, उपकार, भलाई। नातेदार, मित्र। लिये। वास्ते। अर्थ। कल्याण, भला। —**कारी**, कल्याण करनेवाला। भलाइ करनेवाला। हितू, प्रेमी।

हिम—पाला, शीत। अगहन पूसकी ऋतु। —**उपल**, वनौरी, ओला। वर्षाके पत्थर। —**कर**, चन्द्रमा। —**वत**, हिमाचल, हिमालय।

हिय, **हिया**—हृदय, हिरदा, हिया, मन।

हिसिषा बराबरी, मुकाबला, चढा उपरी।

ही—हृदय, मन, अन्त करण।—**के**, हृदयके, मनके।

हीन—रहित। विना।

हीरा—एक रत्न, पवि, वज्र।

हुति—आहुति। रही। थी। पारी। तरफसे, सती। बदलेमें, एवजमें।

हुन—होम करने, भस्म करने, बलि करनेके अर्थमें, "चढ" की तरह।

हुमग—उमगसे कूदने, उछलनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह।

हुलस हुलास,—(क्रिया) उत्साहित वा प्रसन्न होने और करने उछलने, उमगके प्राप्त होनेके अर्थम "चढ" का तरह।

हुलास—उत्साह, उमग, अभिलाष मनका उछाल, हर्ष, उद्वेग। —**सी**, उत्साहित की। उमगाई।

हूहा—प्रसन्नताका शब्द। वानरोंके आनन्दका शब्द।

हृदय—हिय। अन्त करण। मन। दिल।

हृदयेस—दिलका मालिक। पति।

हेति—हा इति। हाय यह। हाय इतना। एक राक्षसका नाम।

हेतु, **हेत**—कारण, अर्थ, लिये, अर्थसे।

हेम—सुवर्ण, कचन, सोना।

हेर—(क्रिया) देखने, खोजनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

हेरा—(क्रिया) खोनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह।

हेराव—(क्रिया) खोज करानेके अर्थमें, "चढ़ाव" का तरह।

हेला—खेल, क्रीड़ा, दिल्लगी, गोहार।

है, **हो**—(आदरसूचक सम्बोधन) हे। ओ।

हो—(क्रिया) होनके अर्थमें, इसके सभी रूप उदाहरणकी भाँति भूमिकाके पहले खडमे दिये गये हैं।

होते—उत्पन्न हुए। रहते हुए।

होनी—होनहार, भावी, भव्य।

होम—यज्ञ, हवन।

हृद—गहरा झील। गहरा जलकुड। किरण।

मानस-धातु-कोष



अ

अकुर—अखुआ निकलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। अकुरत, अकुरेउ आदि। उ० "उर अकुरउ गरब तरु भारी।"

अगव—सहनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। अगवत, अँगवइ, अँगइहि। इत्यादि।

अंचव—पीने और कुल्ली करने, खाकर मुँह साफ करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। अँचयेउ, अँचइ। इत्यादि।

अज, आज—अजन लगानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। अजत, अंजेउ, आँजिहि। आदि। उ० यथा सुअजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।

अकन—[आकर्णय] कान लगाकर सुननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। अकनि, अकनेउ, अकनत। इत्यादि। उ० भूपति अकनि राम पगु धारे।

अट—भ्रमण करने, घूमनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। अटत, अटत, अटहिं। इ०। उ० चले राम बन अटन पयादे।

अथव—अस्त होनेके अर्थमें। चढ़ावकी तरह। अथवइ, अथवत, अथवा, अथयेउ। इत्यादि। उ० अथयेउ आजु भानुकुल भानू।

अनुसर—अनुसार या पीछे चलनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। अनुसरइ, अनुसरत, अनुसरा, अनुसरि, अनुसरेउ। इ०।

अनुहर—तद्रूप होने, वैसा ही होने, अनुकूल होनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप, ठीक, "अनुसर" की तरह। अनुहरत, अनुहरइ। इ०। उ० तनु अनुहरत सुचन्दन खोरी।

अन्हा—नहानेके अर्थमें। "रिसा"की तरह। अन्हात, अन्हाहु। इत्यादि। उ० "तात जाउ बलि बेगि अन्हाहू।"

अन्हवाव—नहलानेके अर्थमें । "चढाव"की तरह । अन्हवावा, अन्हवाये । इत्यादि । उ० "उबटि अन्हवाये" ।

अपहर—छीननेके अर्थमें। "चढ" की तरह । अपहरत, अपहरेउ । इ० । उ० अवलोकत अपहरत विषादू ।

अवडेर—त्यागने, धोखा देने, छोड़नेके अर्थमें । रूप "चढ" धातुकी तरह । अवडेरत,अवडेरि । इ० । उ० पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही।

अवतर—नीचे उतरने,उतारने, लेने, अवतार लेनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप । अवतरत, अवतरेउ । इ० । उ० प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।

अवराध—सेवा, पूजा करनेके अर्थमें । "चढ" धातुके अनुरूप । अवराधहु, अवराधत, अवराधा, अवराधि, अवराधेउ । इत्यादि । उ० केहु अवराधहु का तुम चहहू ।

अवरेख—लिखने, निशान करनेके अर्थमें । "चढ़" धातुकी तरह । अवरेखइ, अवरेखत, अवरेखा । इत्यादि । उ० रहि जनु लिखित चित्र अवरेखी ।

अवलोक—देखनेके अर्थमें । अवलोकइ, अवलोकत, "चढ"की तरह । अवलोका । इत्यादि । उ० अवलोकत अपहरत विषादू ।

असीस—आशीर्वाद देनेके अर्थमें । इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । असीसत, असीसहिं । इ० । उ० मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदय समाइ ।

अह—प्रस्तुत रहने या विद्यमान रहनेके अर्थमें । १—हो [अस=अह] धातु । २-होइ [अहइ=है] । ३ होउ । ४-होत । ५ होतिउ । ६ होनहार । ७ होब । ८ होवउ । ९-होसि [अहसि=तू है] १०-होहि [अहहि, हहि] ११ होहु [अहहु=हो] । उ० भयउ न अहइ न होनिहारा, भूप भरत जस पिता तुम्हारा ।

आ

आचर—चलने या आचरण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़"के रूपोंकी तरह होते हैं। आचरइ, आचरत। इ०। उ० जो आचरत मोर भल होइ।

आन—लानेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। आनहु, आना, आनइ। इ०। उ० आनहु सकल सुतारथ पानी।

आराध—सेवा, पूजा करनेके अर्थमें। देखो, "अवराध"। "चढ़"की तरह। आराधत, आराधे। इ०। उ० इच्छित फल बिनु सिव आराधे।

इ

इच्छ—इच्छा करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। इच्छहु इच्छत, इच्छिहहिं। इत्यादि।

इतरा—अभिमान करनेके अर्थमें। इसके रूप 'रिसा"के अनुरूप होते हैं। इतराइ, इतरात, इतराहिं। इ०।

उ

उअउव—उदय होने, निकलनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। उअइ, उअत, उआ, उइ, उयेउ। इत्यादि। उ० उयेउ अरुन अवलोकहु ताता।

उकस—ऊंचे होने, उठनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। उकसइ, उकसत, उकसहिं। इ०। उ० पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।

उजर, उजार—उजड़ने, उजाड़नेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। उजरत, उजरेउ, उजरहिं, उजारहिं, उजारत। इ०। उ० उजरे हरप विषाद बसेरे।

उतर, उतार—उतरने, उतारनके अर्थमें। "चढ़" की तरह। उतरत, उतारत। आदि।

उतरा—तैरने, फैल चलने, ऊपर चढ़नेके अर्थमें। "रिसा"की तरह। उतरात, उतराइ। इ०। उ० छुद्र नदी बहि चलि उतराइ।

उपज, उपजाव—क्रमश पैदा होने और करनेके अर्थमें। "चढ" व "चढाव"के अनुरूप। उपजइ, उपजत उपजहिं, उपजावत, उपजावहिं। इ०। उ० उपजहिं एक सग जग माहीं।

उपराज—पैदा करनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। उपराजइ, उपराजत, उपराजहिं। इ०।

उपाअ, य, व—उत्पन्न करने, रचनेके अर्थमें। "चढाव"की तरह। उपाए, उपायेउ। इत्यादि। उ० जो विरचि निरलेप उपाए। पदमपत्र जिमि जग जल जाए।

उपार—उखाडनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। उपारहिं, उखारत, उखारि। इत्यादि। उ० बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।

उबट—लेपनद्वारा मैल छुड़ानेके अर्थमें। "चढ"की तरह। उबटत, उबटेउ, उबटि। इ०। उ० "उबटि अन्हवाये।"

उबर—बचने, उटनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। उबरत, उबरहिं, उबरेउ, उबरे। इत्यादि। उ० जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ।

उबार—बचाने, उभारने, बाहर करनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। उबारत, उबारा, उबारेउ। इत्यादि। उ० यहि अवसरको हमहिं उबारा।

उमग—उमड़ने, जोशमें आने, खुश होनेके अर्थमें। "चढ"की तरह। उमगेउ, उमगत। इत्यादि। उ० उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू।

उमगाव—उमड़ाने, जोशमें लाने, प्रसन्न करनेके अर्थमें। "चढ़ाव"के अनुरूप। उमगावउ, उमगावत, उमगाउव। इत्यादि।

उव—उगने, निकलनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। उवत, उवेउ। इ०। उ० "उयेउ अरुन अवलोकहु ताता।"

ओ

ओड—ओट करने, रुकने, रोकनेके अर्थमें। "चढ"के अनुरूप। ओड़इ, ओड़त, ओड़िये। इ०। उ० ओड़िय हाथ असनिहुक माये।

गर—गलने,लज्जित होने और नम्र होनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"का तरह होते हैं। गरइ, गरउ, गरत, गरसि। इ०। उ० गरइ गलानि कुटिल कइकेई।

गवन—जानेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गवनइ,गवनउ,गवनत, गवनब। इ०। उ० कहहिं गँवाइअ छिनकु स्रम, गवनब अबहिं कि प्रात।

गह—पकड़ने, धरने, ग्रहण करने और स्वीकार करनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गहइ, गहत, गहब, गहि। इत्यादि। उ० "गहत चरन कह बालि कुमारा।"

गरज या गाज—गरजनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गरजइ,गरजब, गरजेउ। इ०। उ० तिन्हहिं देखि गरजेउ हनुमाना।

गाथ—गूथने, बांधने, पिरोनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गाथइ, गाथउ, गाथत, गाथे। इ०। उ० गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।

गिल—निगलनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गिलइ, गिलत,गिलब। इ०। उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलइ।

गुंज—गूंजनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गुंजइ, गुंजत, गुंजब, गुंजहिं। इ०। उ० मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।

गुदर—हटने या छोड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। गुदरइ, गुदरत, गुदरेहु, गुदरन। इ०। उ० मिलिन जाइ नहिं गुदरत बनई।

गुन—समझने, गिननेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। गुनइ, गुनत, गुनहु, गुनि। इ०। उ० गुनहु लषन कर हमपर रोषू।

गुहराव—पुकारनेके अर्थमें। "चढ़ाव" क्रियाकी तरह। गुहराव,गुहरावत, गुहरावहिं। इ०।

गोव—छिपानेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गोवइ,गोवत, गोवा, गोइय, गोई। इ० ऐसिउ उर गोई।

घव, के अर्थमें। "चढ़"की तरह।

काछ—धोती या कपड़े पहननके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। काछइ, काछउ, काछिअ। इ०। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा।

कूज—गुजार करनेके अर्थमें। इसके रूप भी चढ़की तरह होते हैं। कूजइ, कूजव, कूजसि, कूजहिं। इ०। उ० गुञ्जहिं कूजहिं पवन प्रसगा।

ष

षचाव—लकीर खींचनेके अर्थमें। "चढ़ाव"की तरह। खचाइ, खचाव, खचावा। इत्यादि। उ० रेख षचाइ कहउँ बलु भाषी।

षटा—स्थिर रहने,खर्च होने, निपटने और पूरे पड़नेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। षटाइ षटाउ, षटात,षटाहिं। इ०। उ० सहज एका किन्हके भवन, कबहु कि नारि षटाहिं।

षन—खनन या खोदनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। षनइ षनउ, षनत, षनि। इ०। उ० माहि षनि कुम साथरी सँवारी।

षस—गिरने और सरकनेके अर्थमें। इसकेरूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। षसइ, षसउ, षसत, षसे। इ०। उ०—डोलत धरनि सभासद षसे। षसी माल मूरति मुसुकानी।

षाग, षग—कम होने और घट जानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। षाँगइ, षँगइ, षागत, षागे। इ०। उ० राखौं देह नाथ केहि षागे।

षचा—खिंचाने खींचनेके अर्थमें। "रिसा"के अनुरूप। षचाइ, षचाउ, षचात। इ०। उ० रेष षचाइ कहउँ बलु भाषी।

षोज—तलाश करने, ढूंढ़नेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। षोजइ, षोजत, षोजव। इ०। उ० एहि बिधि षोजत बिलपत स्वामी।

षोव—गुम करनेके अर्थमें। "चढ़ाव"के अनुरूप। षोवइ, षोवउ, षोवत। इत्यादि।

गन,गण—गिननेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। गनइ,गनउ,गनब,गनहिं, गनि, स्त्री० गनी। इ०। उ० गनी जनकके गनकन्ह जोई।

चह—चाहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चउ" की तरह होते हैं। चहइ,चहउ, चहत, चहय, चहहू। इ०। उ० जेहि आगमनु या सुमहु चहहू।

चाक—सुंदर लगाने, अंकित करनेके अर्थमें। "चउ" के अनुरूप। चाकइ, चाकउ,चाकत,चाकय,चाकी। इ०। उ० तिलकरेखा सोभा जनु चाकी।

चाख—चखनेके अर्थमें। "चउ" धातुके अनुरूप। चाखइ, चाखउ,चाखत, चाखहि,चाखा,चाखि। इ०। उ० जो जस करहि सो तस फल चाखा।

चाप, चाप—दबानेके अर्थमें। "चउ" की तरह। चापइ, चापउ,चापत, चापा। इ०। उ० कुररी दसन जीभ तब चापा।

चल, चाल—हिलाने, चलानेके अर्थमें। "चउ" की तरह। चलइ, चलउ, चलत, चलय, चले। इ०। उ० "आगे चले बहुरि रघुराया।"

चह, चाह—देखने,मुआवला करने, खोजने, इच्छा करनेके अर्थमें। "चउ" के अनुरूप। चहइ, चहत, चाहउ, चाहा, चाहि। इ०। उ० "हरि-पद-विमुख परम गति चाहा।" "सीय चकित चित रामहिं चाहा।"

चीन्ह—पहिचानने,निशानी बतानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चउ" की तरह होते हैं। चीन्हइ, चीन्हउ, चीन्हत चीन्हा चीन्हि। इ०। उ० सब रिषि निज नाथहि जिय चीन्हीं।

छ

छँड,छड छंड,छाड—छोड़नेके अर्थमें। "चउ" के अनुरूप। छाड़इ,छाड़उ, छाड़त, छाँड़ेसि, छाँड़ि। इ०। उ० लेइ लेइ दल छाड़ि सब दीन्हें।

छक, छाक—मस्त हो जाने, शराबोर हो जाने, अभिन्न रूपमें मिल जानेके अर्थमें। "चउ" के अनुरूप। छकइ, छकय, छके। इ०। उ० "प्रेमरस छाके"।

छज, छाज—शोभा देने, छा जानेके अर्थमें, "चउ" के अनुरूप। छजइ छाजत, छजय, छजहिं। इ०। उ० "जो कछु करहि उन्हहिं सब छाजा"।

ग्रसइ, ग्रसत, ग्रसब, ग्रससि । इ० । उ० ग्रससि न मो कहेउ हनुमाना ।

घ

घट—बनने, बनाये जाने, ठीक होने और कम होनेके अर्थमें । इसके रू भी "चढ़"की तरह होते हैं । घटइ, घटउ, घटत, घटि, घटे । इ० उ० घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई ।

घहरा—टूट पड़नेके अर्थमें । "रिसा"के अनुरूप । घहराइ, घहराउ, घहरात इ० । उ० घहरात जिमि पवि पात गरजत जनु प्रलयके बादले।

घाअ—चोट या घाव लगनेके अर्थमें । रामचरितमानसमें केवल यही उद हरण मिलता है "ओड़िय हाथ असनिहुक घाये" इसके और रू नहीं मिलते ।

घाल—डालनेके अर्थमें । "चढ़"की तरह । घालइ, घालउ, घाल घालब । इ० । उ० घालइ लिए सहित समुदाई ।

घुम्मर—घौंसेकीसी आवाज करनेके अर्थमें । "चढ़"की तरह । घुम्मर घुम्मरउ, घुम्मरत, घुम्मरब, घुम्मरासि, घुम्मरहिं । इ० । उ निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना ।

च

चर—भक्षण करने या चलनेके अर्थमें । "चढ़" धातुके अनुरूप । चर चरउ, चरत, चरतिउ, चरासि, चरहिं । इ० । उ० जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विस्व प्रतिकूल ।

चरफरा—चपल होनेके अर्थमें । "रिसा"की तरह । चरफराइ, चरफराउ, चरफरात, चरफराहिं । इ० । उ०—चरफराहिं मग चलहिं न घोरे ।

चव—चूने, टपकनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं । चवइ, चवउ, चवत, चवासि, चवहिं । इ० । उ० चव चवइ बरु अनलकन, सुधा होइ बिष तूल ।

चह—चाहनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। चहइ,चहउ, चहत, चहव, चहहू। इ०। उ० केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।

चाक—मुहर लगाने, अंकित करनेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। चाकइ, चाकउ,चाकत,चाकव,चाका। इ०। उ० तिलक-रेख सोभा जनु चाकी।

चाख—चखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। चाखइ, चाखउ,चाखत, चाखहिं,चाखा,चाखि। इ०। उ० जो जस करहि सो तस फल चाखा।

चाप, चाप—दबानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। चापइ, चापउ,चापत, चांपा। इ०। उ० कुबरा दसन जीभ तब चापा।

चल, चाल—हिलाने, चलानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। चलइ, चलउ, चलत, चलव, चले। इ०। उ० "आगे चले बहुरि रघुराया।"

चह, चाह—देखने, मुकाबला करने, खोजने, इच्छा करनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। चहइ, चहत, चाहउ, चाहा, चाहि। इ०। उ० "हरि-पद विमुख परम गति चाहा।" "सीय चकित चित रामहि चाहा।"

चीन्ह—पहिचानने,निशानी बतानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। चीन्हइ, चीन्हउ, चीन्हत चीन्हा चीन्हि। इ०। उ० सब रिषि निज नाथहि जिय चीन्हीं।

छ

छँड, छड छंड, छाड—छोड़नेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। छाड़इ,छाड़उ, छांड़त, छांडेसि, छांडि। इ०। उ० लेइ लेइ दंड छांड़ि सब दीन्हें।

छक, छाक—मस्त हो जाने, शराबोर हो जाने, अभिन्न रूपमें मिल जानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। छकइ, छकव, छके। इ०। उ० "प्रेमरस छाके"।

छज, छाज—शोभा देने, छा जानेके अर्थमें, "चढ़"के अनुरूप। छजइ छाजत, छजव, छजहिं। इ०। उ० "जो कछु करहि उन्हहिं सब छाजा"।

छट, छर—चुने जानेके अर्थमें। "चढ़"के अनुरूप। छटत, छटेउ, छटहिं, इत्यादि। उ० "छरे छबीले छयल सब"।

छम—क्षमा करने, सहनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। छमइ, छमउ, छमव, छमिहहिं। इ०। उ० छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।

छाज—सोहनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। छाजइ, छाजत, छाजहिं। इ०। देखो "छज"।

छाड—छोड़नेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। (देखो "छाड़")।

छीज—घटने, नष्ट होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। छीजइ, छीजउ, छीजत, छीजाहिं। इ०। उ० छीजहिं निसिचर दिन अरु राती।

छीन—जबरदस्ती ले लेने या काटनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। छीनइ, छीनउ, छीनत, छीनि। इ०। उ० एक तें छानि एक लेइ खाहीं "छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज।"

छुह—चित्रित करने या एकपर एक रखनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह छुहइ, छुहउ, छुहसि, छुहे। इ०। उ० "छुहे पुरट घट।"

छेक—घेरने, रोकनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। छेकइ, छेकउ, छेकत, छेकव, छेका। इ०। उ० मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।

ज

जनाव—जताने या बतानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव"की तरह होते हैं। जनावइ, जनावउ, जनावत, जनावहिं। इ०। "भीतर करहु जनाव।"

जमुहा—जम्भाइ लेनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" धातुको तरह होते हैं। जमुहाइ, जमुहाउ, जमुहात, जमुहाव, जमुहाई। इ०। उ० राम राम कहि जे जमुहाहीं।

जर—जलनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़"की तरह होते हैं। जरइ, जरउ, जरत, जरहिं। इ०। उ० सूखहिं अधर जरहिं सब अगू।

जलप—व्यर्थ बकवाद करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जलपइ, जलपउ, जलपत, जलपसि। इ०। उ० कटु जलपसि जड़ कपि मल जाके।

जाच—मागने या परखनेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। जाचइ, जाचउ,

जाचत, जाचव, जाचा। इ०। उ० मुनि कहुँ मैं बर कबहुँ न जाचा।

जान—जाननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जानइ, जानउ, जानत, जानब, जानसि, जानहु, जानहिं। इ०। उ० जे जानहिं ते जानहु स्वामी।

जुझ, जूझ—लड़ने या लड़ मरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जूझइ, जूझउ जूझत, जूझा, जूझे। इ०। उ० बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे।

जुट, जुड, जुर—मिलने, जुडने या लड़नेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जुटइ, जुरहि, जुरे, जुटे। इत्यादि। उ० टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।

जुठार—जूठा करनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। जुठारइ, जुठारउ, जुठारत, जुठारब, जुठारी। इ०। उ० सब उपमा कबि रहे जुठारी।

जुड़ा—शीतल होने, शान्त होनेके अर्थमें, इसके रूप "रिसा" की तरह होते हैं। जुड़ाइ, जुड़ाउ, जुड़ात, जुड़ाव, जुड़ावउँ। इ०। उ० आजु निपाति जुड़ावउँ छाती।

जेव—खानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। जेवइ, जेवउ, जेवत, जेवहिं। इ०। उ० जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी।

जोगव—रक्षा करनेके अर्थमें। "चढाव" के अनुरूप। जोगवइ, जोगवउ, जोगवत, जोगवहिं। इ०। उ० जोगवहिं जिन्हहिं प्रानकी नाईं।

जोव, जोह—देखने, निहारने, हेरने, ढूँढने, प्रतीक्षा करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जोवइ, जोवउ, जोवत, जोवनहार, जोवसि जोहइ, जोहा, जोहसि। इ०। उ० सर हमार प्रभु पग पग जोहा।

जोहार—प्रणाम करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। जोहारइ, जोहारउ, जोहारत, जोहारब, जोहारि। इ०। उ० चले निषाद जोहारि जोहारी।

झ

झंप—छिपने, ढकनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। झपइ, झपउ, झपत, झपहि, झपेउ। इ०। उ० झपेउ भानु कहहिं कुविचारी।

झपट—टूट पड़ने, धावा मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। झपटइ, झपटउ, झपटत, झपटहिं। इ०। उ० झपटहिं करि बल विपुल उपाई।

ट

टर—हटने, टलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। टरइ, टरउ, टरत, टरब, टरहिं। इ०। उ० पद न टरइ बैठहिं सिर नाई।

टेर—बुलाने, पुकारनेके अर्थमें, "चढ़" की तरह। टेरइ, टेरउ, टेरत, टेरब, टेरे। इ०। उ० सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।

टेव—चोखा करने, तेज करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। टेवइ, टेवउ, टेवत, टेवा, टेइ। इ०। उ० कपट छुरी उर पाहन टेई।

ड

डरप—डरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। डरपइ, डरपउ डरपत, डरपहिं। इ०। उ० डरपहिं धीर गहन सुधि आये।

डस—डसने, काटने, डंक मारनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डसइ, डसउ, डसत, डसब, डसहि। इ०। उ० ससय सर्प डसेउ उर ताता।

डहक, डहँक—ठगने, ठगानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डहकइ, डहकउ, डहकत, डहँकि। इ०। उ० डहँकि डहँकि परिचेउ सब काहू।

डाट—डाटने, फटकारनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। डाटइ, डाटउ, डाटत, डाटहिं। इ०। उ० कपि जय सील मारि पुनि डाटहिं।

डाढ—जलानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डाढ़इ, डाढ़उ, डाढ़त, डाढ़ब, डाढ़हिं। इ०।

डार—डालने या फेंकनके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डारइ, डारउ, डारत, डारहिं। इ०। उ० गरि कु धर चड प्रचंड मर्कट भालु गढपर डारहीं।

डास—बिछानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ" की तरह होते हैं। डासइ डासउ, डासत, डासन, डासोंा, डासि। इ०। उ० निज कर डासि नाग रिपु छाला।

डग—हटने और टहलनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। डगइ, डगउ, डगहिं। इ०। उ० डगइ न संभु सरासन कैसे।

डोल—डोलने, चलने, चलायमान होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। डोलइ, डोलउ, डोलत, डोलहिं। इ०। उ० डोलत धरनि सभासद खसे।

ढ

ढनमन—ढुलकने, लुढ़कनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। ढनमनइ, ढनमनउ, ढनमनत, ढनमनी। इ०। उ० रुधिर वमत धरनी ढनमनी।

ढँढोर—ढूढने खोजनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। ढँढोरइ, ढँढोरउ, ढँढोरत, ढँढोरी, ढँढोरहिं। इ०। उ० सारद उपमा सकल ढढोरी।

त

तक—ताकने, देखनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं। तकइ, तकउ, तकत, तकन, तकि। इ०। उ० तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं।

तमक—क्रोध करने या फुर्ती करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। तमकइ, तमकउ, तमकत, तमकि। इ०। उ० तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं।

तर—तरने, पार हो जानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। तरइ, तरउ, तरत, तरहिं, तरिहहिं। इ०। उ० तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।

तरक, तर्क—विचार करनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं । तरकइ, तरकउ, तरकत, तरकब, तरकहिं, तरका । इ० । उ० तरकेउ पवन तनय पल मारी ।

तरज (तर्ज)—तड़पनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं । तरजइ, तरजउ, तरजत, तरजहिं, तजा । इ० । उ० आवत देखि विटप गहि तजा ।

तरेर—घूरने, नेत्रोंसे डाटनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । तरेरइ, तरेरउ, तरेरत, तरेरहिं, तेरे । इ० । उ० मुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नैन तेरे राम ।

तलफ—तड़पनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । तलफइ, तलफउ, तलफत, तलफहिं । इ० । उ० तलफत विषम मोह मन मापा ।

ताक—देखनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । ताकइ, ताकउ, ताकत, ताकहिं, ताका । इ० । उ० जेइ राउर अति अन भल ताका ।

ताड—मारने, डाटनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । ताड़इ, ताड़उ, ताड़त, ताड़हिं, ताड़ब । इ० । उ० सापत ताड़त परुष कहता ।

तान—खींचकर बढ़ाने फैलानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । तानइ, तानउ, तानत, तानहिं , तानी । इ० । उ० बिबिधि बितान दिये जनु तानी ।

तार—पार लगाने, उद्धार करनेके अर्थमें "चढ़" की तरह । तारइ, तारउ, तारत, तारब, तारहिं । इ० । उ० राम एक तापस तिय तारी ।

तुल,तूल—तौलनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । तुलइ, तुलउ, तुलत, तुलहिं । इ० । उ० तुलइ न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग । तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल ।

तोर—तोडनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । तोरइ, तोरउ, तोरत, तोरहिं तोरब, तोरे । इ० । उ० रहउ चढ़ाउब तोरब भाई ।

त्रास—डरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । त्रासइ, त्रासउ, त्रासत, त्रासहिं, त्रासब, त्रासा । त्रासहु । इ० । उ० सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई ।

थ

थक—थकनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । थकइ, थकउ, थकत, थकहिं, थकब, थके । इ० । उ० थके नयन रघुपति छबि देखे ।

थाप—स्थापन करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । थापइ, थापउ, थापत, थापहि, थापि । इ० । उ० लिंग थापि बिधिवत करि पूजा ।

थिर,(थिरा)—ठहरनेके अर्थमें । इसके रूप क्रमश "चढ़" और "रिसाकी तरह होते हैं । थिरइ, थिरउ, थिराहिं, थिरे, थिराइ, थिरात । इ० ।

द

दर्प—अभिमान करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । दपइ, दपउ, दपत, दपहिं, दर्पे, दपा । इ० ।

दल—दलनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । दलइ, दलउ, दलत, दले, दलब, दलहिं । इ० । उ० जिमि करि निकर दलइ मृगराजू ।

दह—जलनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । दहइ, दहउ, दहत, दहत, दहे, दहहिं, दहेउ । इ० । उ० दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहु पूर पिय देहु ।

दाब—दबानेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । दाबइ, दाबउ, दाबत, दाबहिं, दाबि । इ० । उ० हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ।

दाह—जलानेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं । दाहइ, दाहउ, दाहे, दाहहिं । इ० ।

दीस—देख पड़नेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" की तरह होते हैं । दीसइ, दीसउ, दीसत, दीसब, दीसा, दीसहिं । इ० । उ० बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा ।

दुर, दुराव—छिपानके अर्थमें। इन दोनों धातुओंके रूप क्रमशः "चढ़" और "चढ़ाव"की तरह होते हैं। दुरइ, दुरउ, दुरत, दुराहिं, दुरावइ, दुरावहि। इ०। उ० बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये।

दे, देअ—देनेके अर्थमें। इसके रूप (१२) दीन्ह (१३) देइ (१४) देइअ (१५) देइहइ (२१) दीन्हे, दिये, (२२) दीन्हेउ, दियेउ, (२४) दीन्हेहु, दियेहु उ० जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिये दस माथ।

द्रव—ढलने, पिघलने, नम्र होनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप हैं। द्रवइ, द्रवहु, द्रवत, द्रवहिं। इ०। उ० जासु कृपा सो दयालु द्रवहु सकल कलिमल दहन।

ध

धर—रखनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। धरइ, धरउ, धरब, धरहिं। इ०। धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।

धार—धारण करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। धारइ, धारउ, धारत, धारहिं, धारे। इ०।

ध्याव—ध्यान करनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। ध्याव, ध्यावइ, ध्यावउ, ध्यावत, ध्यावहिं। इ०। उ० कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव।

न

नट—नाचने और अस्वीकार करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। नटइ, नटउ, नटत, नटब, नटहिं, नटे। इ०।

नम, नव—झुकने, प्रणाम करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। नमइ, नमउ, नमत, नमहिं, नमिहहिं, नवइ, नवहिं। इ०। उ० सीस नवहिं सुर गुरु-द्विज देखी। जे न नमत हरि गुरु पद मूला।

नस, नसा—नाश होने और करनेके अर्थमें। रूप क्रमशः "चढ़" और "रिसा"की तरह होते हैं। नसइ नसाइ, नसउ नसाउ, नसत नसात, नसब नसाब, नसहिं नसाहि। इ०। उ० काज नसाहहिं होत प्रभाता।

नाँघ—लाँघने, डाँकने या फाँदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होने

हैं। नाँघइ, नाँघउ, नाँघत, नाँघिय। इ०। उ० नाँघि सिंधु एहि पारहिं आवा।

निकर—निकलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निकरइ, निकरउ, निकरत, निकरव। इ०।

निकस—निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निकसइ, निकसउ, निकसत, निकसहिं, निकसि। इ०। उ० निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े।

निघट—घटने, बहुत कम होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निघटइ, निघटउ, निघटत, निघटहिं, निघटि। इ०। उ० जिमि जल निघटत सरद प्रकासे।

निदर—निरादर करने या निडर होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निदरइ, निदरउ, निदरत, निदरहिं, निदरि। इ०। उ० निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने।

निपात—नाश करने, गिरा देने, मार डालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निपातइ, निपातउ, निपातत, निपातब, निपाति। इ०। उ० ताहि निपाति महा धुनि गजा।

निबह, निरबह—निबाह करने या होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। निबहइ, निबहहि निबहत, निबहत। इ०। उ० जो निर्बिघ्न पथ निरबहई।

निबुक—छूटने या छोड़नेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निबुकइ, निबुकउ, निबुकत, निबुकहिं, निबुकि। इ०। उ० निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी।

निबेर—चुकानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निबेरइ, निबेरउ, निबेरत, निबेरहिं, निबेरि। इ०। उ० संसय सकल सकोच निबेरी।

नियरा—निकट आनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। नियराइ, नियराउ, नियरात, नियराब, नियरान,। इ०। उ० बरसहिं जलद भूमि नियराये।

निरख—देखनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। निरखइ, निरखउ, निरखत, निरखहिं, नि[illegible] उ० निरखि राम दोउ गुर अनुरागे।

निवस—रहनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निवसइ, निवसउ, निवसत, निवसहिं, निवसे। इ०।

निवार—दूर करने, हटानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। निवारइ, निवारउ, निवारत, निवारहिं, निवारे, निवारा। इ०। उ० जब हरि माया दूरि निवारी।

निसर—निकलनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। निसरइ, निसरउ, निसरत, निसरब, निसरि। इ०। उ० तन महँ प्रविसि निसरि सर जाहीं।

निहार—देखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निहारइ, निहारउ, निहारत, निहारब, निहारि, निहारे। इ०। उ० सुनत बचन तब अनत निहारे।

निहोर—इहसान बतानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। निहोरइ, निहोरत, निहोरे, निहोरिहइ, निहोरिहउ। इ०।

नेवत—निमत्रण देनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। नेवतइ, नेवतउ, नेवतत, नेवतहिं, नेवते, नेवतेउ। इ०। उ० नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग।

नेवाज—आदर करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। नेवाजइ, नेवाजउ, नेवाजत, नेवाजहि, नेवाजे। इ०। उ० नाम गरीब अनेक नेवाजे।

प

पखार—धोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। पखारइ, पखारउ, पखारत, पखारे, पखारि। इ०। उ० पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार।

पच—पचाने और पकानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पचइ, पचउ, पचत, पचे, पचहिं, पचि। इ०। उ० चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।

पछता, पछिता—पछतावा करने, पीछेसे किसी बातपर दुःख करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। पछिताइ, पछिताउ, पछितात, पछिताने,

पछितइहहि । इ० । उ० सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ।

पछार—पछाड़नेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं । पछारइ, पछारउ, पछारत, पछारा, पछारे इ० । उ० गहेउ चरन धरि धरनि पछारा ।

पटक—पटकनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । पटकइ, पटकउ, पटकत, पटकहिं, पटक, पटकेउ, पटका । इ० । उ० मागत भट पटकहिं धरि धरनी ।

पठव, पठाव—क्रमश भेजने भिजवानेके अर्थमें । "चढाव"की तरह । पठवइ, पठवत, पठवा, पठाइहि, पठावा, पठयेसि, पठये । इ० । उ० पठयेसि मेघनाद बलवाना । राम चालि निज धाम पठावा ।

पढ़—पढ़नेके अर्थमें । "चढ़" धातुकी तरह । पढ़इ, पढउ, पढ़त, पढ़हिं, पढ़े । इ० । वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाइ ।

पतिया—विश्वास करनेके अर्थमें । 'रिसा' की तरह । पतियाइ, पतियाउ, पतियात, पतियाहु । इ० । उ० काज सँवारेउ सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ।

पर—पड़नेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं । परइ, परउ, परत, परत, परे, परउँ । उ० परउ कूप तव बचन लागि सकउ पूत पति त्यागि ।

परख, परिख, परेख—परखने, बाट जोहने, ध्यानसे देखनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । परखइ, परखउ, परखत, परखहिं, परखे, परखेसु । इ० । उ० परिखेसु मोहि एक पखवारा । तब लगि मोहि परेखेहु भाइ ।

परस—छूने, परोसनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं । परसइ, परसत, परसि, परसे । इ० । उ० परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही ।

परहेल—त्यागने, बेपरवा होनेके अर्थमें। "चढ़"की तरह। परहेलइ, परहेलउ, परहेलत, परहेलव, परहेले। इ०। उ० मुद्रा जुवा जीव परहेले।

परा—भागनेके अर्थमें। इसके रूप "रिसा" धातुकी तरह होते हैं। पराइ, पराउ, परात, पराव, परामि, पराहिं, पराने, पराइ। इ०। उ० करहु निकट पुनि दूरि पराई।

परिछ—परिछन करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। परिछइ, परिछत, परिछहिं, परिछे, परिछन। इ०। उ० चली मुदित परिछन करन गजगामिनि बर नारि।

परिहर—छोड़नेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। परिहरइ, परिहरत, परिहरहिं, परिहरेहि, परिहरिय। इ०। उ० अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।

पल—पोषण पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। पलइ, पलत, पलहिं, पलब, पले। इ०।

पलुह—पल्लवित होने, पनपनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। पलुहत, पलुहइ, पलुहहिं। इ०। उ० पलुहइ नारि सिसिर रितु पाइ।

पलोट—चरणसेवा करने, पाँवके पास लोटनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह है। पलोटइ, पलोटत, पलोटब, पलोटा, पलोटहिं, पलोटे। इ०। उ० गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।

पवार—फेंकनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते है। पवारइ, पवारत, पवारे, पवारहि, पवारा। इ०। उ० रज होइ जाइ पषान पवारे।

पाग—तर होने, लपेटे जाने, सननेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पागइ, पागत, पागहिं, पागे, पागा, पागि। इ०। उ० "बचन प्रेमरस पागे।"

पाट—पाट देने, भर देनेके अर्थमें। इसके रूप 'चढ़' की तरह होते हैं। पाटइ, पाटत, पाटहिं, पाटे, पाटेउ। इ०।

पार—सकने, फेंकने, डालनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके

अनुरूप होते हैं । पारइ, पारत, पारब, पारहिं, पारे, पारा । इ० । उ० "को बरनै पारा"

पाल—पालने पोसनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । पालइ, पालत, पालहिं, पाले, पालहु, पालिय । इ० । उ० पालहु प्रजा सोक परिहरहू ।

पाव—पानेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं । पावइ, पावत, पाउब, पावहिं, पाए, पाइय, पाए । इ० । उ० महा महा-मुखिया जे पावहिं ।

पिरा—पीड़ा करने व्यथा होनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह । पिराइ, पिरात, पिराब, पिरान, पिराइय, पिराने । इ० । उ० उठिय होइहहिं पाय पिराने ।

पुरव—पूरा करनेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप । पुरव, पुरवइ पुरवत, पुरवहिं, पुरउब । इ० । उ० जो बिधि पुरव मनोरथ काली ।

पूछ—पूछनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । पूछइ, पूछउ, पूछत, पूछब, पूछहिं, पूछेसि । इ० । उ० पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू ।

पूजि—पूजा सत्कार करने और पूरा होनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह हैं । पूजइ, पूजित, पूजिहिं, पूजब, पूजे । इ० उ० पूजिहि सब मनकामना सुजस रहिहि जग छाइ ।

पूर—भरनेके और उटनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह हैं । पूरइ, पूरत, पूरहिं, पूरे, पूरेसि । इ० ।

पेख—देखनेके अर्थमें । इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं । पेखइ, पेखत, पेखब, पेखहिं, पेखे, पेखनहार । इ० ।

पेन्हाव—गाय लगनेके अर्थमें । इसके रूप भी "चढ़ाव" धातुकी तरह हैं । पेन्हाव, पेन्हावइ, पेन्हावत, पेन्हाउब, पेन्हावसि, पेन्हाइ । इ० । उ० मातु बच्छ सिसु पाइ पेन्हाइ ।

पेल—त्यागने, टालने, और न माननेके अर्थमें । इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं । पेलइ, पेलत, पेलब, पेलि, पेलिहहिं । इ० ।

उ० श्रायहु तात बचन मम पेली। भूलेहु भरत न पेलिहहिं।

पोष—पुष्ट करने और पोसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। पोषइ पोषत, पोषब, पोषहिं। इ०। उ० भानु कमल कुल-पोषनि-हारा।

पोह—पिरोनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। पोहइ, पोहत, पोहब, पोहहिं; पोहे। इ०।

पौढ़, पौढ़ाव—लेटने और लिटानेके अर्थमें। क्रमश "चढ़" और "चढ़ाव" की तरह। पौढ़न पौढ़े, पौढ़ाये, पौढ़ाइय। इ०। उ० करि सिंगार पलना पौढ़ाये।

प्रगट—प्रगट करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। प्रगटइ, प्रगटउ, प्रगटत, प्रगटब, प्रगटे, प्रगटहिं। इ०। उ० यह प्रगटे अथवा द्विज सापा।

प्रचार—ललकारने, चलाने, ललकारनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। प्रचारइ, प्रचारउ, प्रचारत, प्रचारे, प्रचारि, प्रचारहिं, प्रचारे। इ०। उ० देइ देवतन्ह गारि प्रचारी।

प्रजार, पजार—जलाने, फूक देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। प्रजारइ, प्रजारत, प्रजारहिं, प्रजारे, पजारी, पजारा। इ०। उ० नगर फेरि पुनि पूछ पजारी।

प्रनव—नमस्कार करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। प्रनवइ, प्रनवउ, प्रनवत, प्रनवहिं, प्रनवउँ। इ०। उ० प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना।

प्रबिस—पैठने या घुसनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। प्रबिसइ, प्रबिसत, प्रबिसि, प्रबिसहिं, प्रबिसे, प्रबिसेउ इ०। उ० प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।

प्रेर—आज्ञा करने, हुक्म देने, भेजने, काम करानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। प्रेरइ, प्रेरउ, प्रेरत, प्रेरे, प्रेरहिं। इ०। उ० आयंत नाकितनयके प्रेरे।

फ

फब फाब—सगत होने, ठीक बैठने भले लगनेके अर्थमें। "चढ़" की

तरह। फवइ, फवत, फबहिं, फबे, फबी, फाबी। इ०। उ०
कुमतिहिं कसि कुरूपता फाबी।

फाड, फार—फटने और फाडनेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। फारइ, फारव, फारहिं, फारे। इ०। उ० धरि गाल फारहिं उर विदारहिं गल अतावरि मेलहीं।

फुलाव—फुलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। फुलावइ, फुलावउ, फुलावत, फुलाउब, फुलावसि। इ०। उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।

फूट—टूटने, टुकडे होनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। फूटइ, फूटत, फूटब, फूटहिं, फूटे। इ०। उ० रावन आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधिकुंड।

फोर—फोड़ने, तोड़नेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। फोरइ, फोरउ, फोरत, फोरब, फोरे, फोरा। इ०। उ० फोरइ जोग कपारु अभागा।

ब

बच—ठगनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके रूपोंकी तरह होते हैं। बचइ, बचउ, बचत, बचहि, बचेउ। इ०। उ० बचेउ मोहि जवनि धरि देहा।

बँधाव—पढवानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बँचावइ, बँचावत, बँचावसि, बँचावा, बँचाइ, बँचाइय। उ० नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती।

बंद—प्रणाम या बंद करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बंदइ, बंदउ, बंदत, बंदे, बंदहि, बंदि। इ०। उ० बंदि चरन उर धरि प्रभुताई।

बक—बकने, बोलनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बकइ, बकत, बकहिं, बके, बकिहहिं। इ०। उ० भृगुपति बकहि कुठार उठाये।

बखान—कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बखानइ, बखानउ, बखानत, बखानब, बखाने। इ०। उ० कपि सब चरित समास बखाने।

बगर—फैलने, बिखरनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बगरइ बगरत, बगरब, बगरहि, बगरे। इ०।

बच, बँच, बाँच—बचने, बचानेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। बचउँ, बचइ, बचत, बचहिं, बचब, बाचा, बचे। इ०। उ०

(१) बचउँ बिचारि बधु लघु तोरा।

(२) सत्यकेतु कुल कोउ न बाचा।

बटुर—इकट्ठे होने, सिमिटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। बटुरइ, बटुरत, बटुरहि, बटुरे, बटुरेउ। इ०।

बटोर—समेटने,सग्रह करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बटोरइ, बटोरत, बटोरहिं, बटोरे, बटोरी। इ०। उ० सब कर ममता ताग बटोरी।

बताव—समझाने, दिखाने, कहनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बतावइ, बतावउ, बतावत, बतावा, बताईं, बताइ। इ०।

बद—कहने, बदनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। बद, बदइ, बदत, बदहिं, बदे। इ०। उ० मो मन भिरिहि कौन जोधा बद।

बध—मारनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बधइ, बधत, बधब, बधे, बधहिं। इ०। उ० जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ।

बधाव—मरवा डालनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बधावइ, बधावत, बधावा, बधावहिं, बधाए। इ०।

बन—बननेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बनइ, बनउ, बनत, बनिहि, बने, बनेउँ। इ०। उ० बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।

बनाव—बनानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते

हैं। बनावइ, बनावत, बनाये, बनावा। इ०। उ० बहुरि कि प्रभु श्रम बानिहि बनावा।

बम—कै करनेके अर्थमें। उलटी होने, उगल देनेके अर्थमें। रूप "चढ" का तरह। बमइ, बमत, बमहिं, बमे, बमन। इ०। उ० रुधिर बमत धरनी ढनमनी।

बव—बोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बवइ, बवहिं, बवत, बये, बवा, बवउ। इ०। उ० बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।

बर—चुने जाने, बरने, ऐंठने, जलने और नियुक्त किये जानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" की तरह होते हैं। बरइ, बरत, बरहिं, बरव, बरे, बरा। इ०। उ० बरइ सीलनिधि कन्या जाही।

बरज—रोकने, मना करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। बरजइ, बरजत, बरजव, बरजहिं, बरजि, बरजे। इ०। उ० बरजि राम पुनि मोहि निहोरा।

बरन—वर्णन करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ" धातुके अनुरूप होते हैं। बरनइ, बरनव, बरनत, बरनै, बरना, बरनी, बरनहिं। इ०। उ० बरनत बरन प्रीति बिलगाती।

बरष, वर्ष, बरिस, बरस—बरसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बरषइ, बरषत, बरषे, बरषहिं। इ०। उ० (१) ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। (२) जनु तह बरिस कमल सितस्रेनी।

बराव—चुनने, बचानेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बरावइ, बरावत, बराये, बरावहिं। इ०। उ० सीय राम पद-अंक बराये।

बलकाव—भुकाने, पागल बनानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं। बलकावइ, बलकावत, बलकावसि, बलकावा। इ०। उ० जोवनजवर केहि नहिं बलकावा।

बस—रहनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं।

बसइ, बसउ, बसत, बसव, बसहिं, बसे, बसेहु। इ०। उ० बसेउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ।

बह—बहने और ढोनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बहइ, बहत, बहब, बहहिं, बहे। इ०। उ० बहे जात कर भइसि अधाग।

बहराव—अनसुना करने, बहलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बहरावइ, बहरावत, बहराइ, बहरावा। इ०। उ० सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा।

बहुर—फिरने, लौटनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह। बहुरइ, बहुरउ, बहुरत, बहुरहिं, बहुरिहहिं। इ०। उ० बहुरहिं लषन भरत बन जाहीं।

बहोर—लौटानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। बहोरइ, बहोरत, बहोरि। इ०। उ० गइ बहोर गरीब निवाज़।

बाँच—पढ़नेके अर्थमें। "चढ" धातुके अनुरूप। बाँचइ, बाँचत, बाँचब, बाँचे, बाँचि, बाँची। इ०। उ० जनक पत्रिका बाँचि सुनाइ।

बाँट—बाँटने या भाग करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बाँटइ, बाँटत, बाँटहिं, बाँटे, बाँटि। इ०। उ० यह इबि बाटि देहु नृप जाई।

बाग—चकने और घूमनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। बागइ, बागत, बागहिं, बागहीं, बागे। इ०। उ० "एक एकहिं करत न बागहा।

बाज—बजनेके अर्थमें। "चढ" धातुकी तरह। बाजइ, बाजत, बाजहिं, बाजे। इ०। उ० बाजहिं बहु बाजने सुहाये।

बाढ़—बढ़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" धातुकी तरह होते हैं। बाढइ, बाढत, बाढे, बाढहिं, बाढि। इ०। उ० द्विजदेवता घरहिके बा...

बाद—झगड़ने, हुज्जत करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातु... तरह होते हैं। बादइ, बादत, बादहिं, बादे, बादेउ। इ०। उ... बादहिं सूद्र द्विज ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि।

बार—दूर करने, हटाने और मना करनेके अर्थमें। इसके सभी रूप "च... धातुकी तरह होते हैं। बारइ, बारत, बारब, बारे, बारिहहि। इ...

बिगर—बिगड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चर" धातुके अनुरूप हैं। बिगरइ, बिगरत, बिगरे, बिगरहिं। इ०।

बिगोव—नाश करनेके अर्थमें। इसके रूप "नठाव" धातुकी तरह होते हैं। बिगोवइ, बिगोवउ, बिगोवत, बिगोए, बिगोवा। इ०। उ० प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा।

बिघट—तोड़ने, घटवानेके अर्थमें। इसके रूप भी "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिघटइ, बिघटउ, बिघटत, बिघटे, बिघटहिं, बिघटा। इ०।

बिचर—चलने, फिरने, घूमनेके अर्थमें। "चर" धातुकी तरह होते हैं। बिचरइ, बिचरउ, बिचरत, बिचरहिं, बिचरे। इ०। उ० ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना।

बिचल—चलायमान होने, चचल होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिचलइ, बिचलत, बिचलहिं, बिचले। इ०। उ० बिचलत सेन कीन्हि तिन्ह माया।

बिचार—सोचने, ध्यान करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिचारइ, बिचारत, बिचारे, बिचारहिं। इ०। उ० इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं।

बिछुर—जुदा होने, अलग होनेके अर्थमें। "चर" धातुके अनुरूप। बिछुरइ, बिछुरत, बिछुरव, बिछुरे, बिछुरहिं। इ०। उ० बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

बिछोह—छोड़ देने या छुड़ा देनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिछोहइ, बिछोहत, बिछोहब, बिछोहहिं, बिछोहा, बिछोहे। इ०। उ० जेहि दीं हरि पद कमल बिछोह।

बिडर—छितराने, फैलने, विलग होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिडरइ, बिडरत, बिडरहिं, बिडर, बिडरि। इ०। उ० बिडरि चले वाहन सब भागे।

बिढव—कमाने और बढ़ानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बिढवइ, बिढवत, बिढवासि, बिढवा, बिढइ। इ०। उ० बिढइ सुकृत जस कीं देउ भोगू।

बिथक—चकित होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिथकइ, बिथकत, बिथके, बिथकि, बिथकहिं। इ०। उ० सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ।

बिदर, बिदार—फटने और फाड़नेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिदरइ, बिदरत, बिदरहिं, बिदरेउ, बिदरि। बिदारइ, बिदारत, बिदारे, बिदारहिं। इ०। उ० "हृदय न बिदरेउ पंक जिमि"। "फौज बिदारी" "नखन बिदारि"।

बिनव—विनती करनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बिनवइ, बिनवत, बिनवउ, बिनवासि, बिनवहिं, बिनइ। इ०।

बिनस—नष्ट होने, बिगड़नेके अर्थमें। "चढ़" धातुके अनुरूप। बिनसइ, बिनसत, बिनसब, बिनासि, बिनसहिं, बिनसे।

बिया, बिआ—जनने, बियानेके अर्थमें। इसके रूप "पिरा" "मिरा" आदिकी तरह होते है। बियाइ, बियात, बियाब, बियासि, बियाहिं, बियान, बियानेहु। इ०। उ० न तरु बाझ भलि बादि बिआनी।

बिरच—रचने, बनानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिरचइ, बिरचत, बिरचे, बिरचहिं, बिरचि। इ०। उ० बिरचे कनक कदलिके खंभा।

बिराज—बिराजने, सोहनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिराजइ, बिराजहिं, बिराजे, बिराजि। इ०। उ० जेहि तुरगपर रामु बिराजे।

बिलख, बिलखा—दुखसे पीडित होने, रोने, उदास होनेकी दशामें, कुछ कहने या शिकायत करनेके अर्थमें। इसके रूप क्रमश "चढ़" और "रिसा" धातुकी तरह होते हैं। बिलखइ, बिलखत, बिलखहिं, बिलखाहिं, बिलखे, बिलखि। इ०। उ० "जड़ दुख बिलखाहीं"। बिलखि कहेहु मुनि नाथ"।

बिलगा—अलग होने, जुदा होनेके अर्थमें। "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह होते हैं। बिलगाइ, बिलगाउ, बिलगात, बिलगाहिं, बिलगान, बिलगाने। इ०। उ० सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।

बिलगाव अलग करनेके अर्थमें। चढ़ावकी तरह इसके सभी रूप होते हैं। बिलगावइ, बिलगावत, बिलगावहिं, बिलगावसि, बिलगाइय, बिलगाए। इ०। उ० गनिगुन दोष वेद बिलगाए।

बिलप—रोकर शिकायत करने या बिलखनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिलपइ, बिलपत, बिलपहिं, बिलपि। इ०। उ० बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाइ।

बिला—नष्ट हो जाने, मिट जानेके अर्थमें। इसके रूप "गिरा" "सिरा" की तरह होते हैं। बिलाइ, बिलाउ, बिलाहिं, बिलान, बिलाने। इ०। उ० कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

बिलोक—देखनेके अर्थमें। इसके रूप 'चढ़' धातुकी तरह होते हैं। बिलोकइ, बिलोकत, बिलोकहिं, बिलोके, बिलोकि। इ०। उ० सती बिलोके व्योम बिमाना।

बिलोव—मथनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बिलोवइ, बिलोवत, बिलोउब, बिलोवसि, बिलोइ। इ०।

बिस्तर, बिस्तार—फैलानेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। बिस्तरइ, बिस्तारत, बिस्तारहिं, बिस्तरे, बिस्तरेहु। इ०। उ० जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जनमकर हेतु।

बिसर—भूलनेके अर्थमें। इसके रूप 'चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिसरइ, बिसरत, बिसरहिं, बिसरे, बिसरि, बिसरु। इ०। उ० बिसरी देह तपहि मन लागा।

बिसूर—चिन्ता करने, मन ही मन रोनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बिसूरइ, बिसूरत, बिसूरहिं, बिसूरे, बिसूरि। इ०। उ० जानि कठिन सिवचाप बिसूरति।

बिहँस—हँसनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बिहँसइ, बिहँसत, बिहँसहिं, बिहँसे, बिहँसि। इ०। उ० सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।

बिहर—खेलने, क्रीड़ा करने और फटनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातु की तरह होते हैं। बिहरइ, बिहरत, बिहरहिं, बिहरे, बिहरि। इ०।

बीत—बीतने या गुजरनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बीतइ, बीतत, बीतहिं, बीते, बीति। इ०। उ० बीते सवत सहस सतासी।

बीन—चुनने, साफ करने और अलग करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं। बीनइ, बीनत, बीनब, बीनहिं, बीने, बीनि। इ०।

बुझाव—शान्त करने, समझाने, जतानेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़ाव" धातुकी तरह होते हैं। बुझावइ, बुझावत, बुझावसि, बुझावहिं, बुझाइ, बुझाइय। इ०। उ० पूछ बुझाइ खोइ स्रम धरि लघुरूप बहोरि।

बुताव—बुझाने या शान्त करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़ाव" धातुके अनुरूप होते हैं। बुतावइ, बुतावत, बुतावसि, बुताइहिं, बुताइ, बुताइय।

बूझ—जानने, पूछने और समझनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" की तरह होते हैं। बूझइ, बूझत, बूझब, बूझहिं, बूझे, बूझि। इ०। उ० भरत-सुभाव-सील बिनु बूझें।

बूड़—डूबने, मग्न होनेके अर्थमें। इसके रूप 'चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बूड़इ, बूड़त, बूड़हिं, बूड़ि। इ०। उ० बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।

बेध—छेदनेके अर्थमें। इसके भी रूप "चढ़" धातुकी तरह होते हैं बेधइ, बेधत, बेधहिं, बेधे, बेधि, बेधिय। इ०। उ० सिरिस सुमन-कन बेधिय हीरा।

बेसाह—खरीदनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" धातुके अनुरूप होते हैं। बेसाहइ, बेसाहत, बेसाहब, बेसाहहिं, बेसाहि, बेसाहे। उ० आनेहुँ मोल बेसाहि कि मोही।

बैठार—बैठालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। बैठारइ, बैठारत, बैठारहिं, बैठारे, बैठारि, । इ०। उ० उतरु देत मैं सबहिं तब, हृदय बज्र बैठारि।

बोर—डुबोने, बोरने, और निमग्न करनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ़" के अनुरूप

होते हैं। बोरइ, बोरत, बोरहिं, बोरे, बोरि। इ०। उ० नरहिं आनहिं बोरहिं जेइ।

बोल—कहने, बुलाने या बुलवानेके अर्थमें। "चढ" के अनुरूप। बोलइ, बोलत, बोलहिं, बोलन, बोले, बोलि। इ०। उ० (१) बोलत बचन झरत जनु फूला। (२) बोलि किरात छमातक लाहैं।

बोव—लगाने, जमानेके अर्थमें। इसके रूप "चढाव" धातुकी तरह होते हैं। बोवइ, बोवत, बोउब, बोउय, बोइ। इ०।

ब्याप—फैलने, जाहिर होनेके अर्थमें। इसके रूप "चढ" के अनुरूप हैं। ब्यापइ, ब्यापत, ब्यापहिं, ब्यापे, ब्यापि। इ०। उ० ब्यापि रहेउ ससार महँ माया कटक प्रचंड।

भ

भज—नाश करने या तोड़नेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भजइ, भजत, भजनहार, भजइ, भजु, भजे। इ०। उ० नाथ संभु धनु भजनिहारा।

भच्छ—खाने, भक्षण करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भच्छइ, भच्छत, भच्छब भच्छहिं, भच्छि। इ०। उ० कहु महिष मानुष धनु खर अज खग निसाचर भच्छहीं।

भज—भजन करने या भागनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भजइ, भजत, भजहिं, भजे, भजि, भजिय। इ०। उ० जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।

भन—कहने, वर्णन करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भनइ, भनत, भनहिं, भने, भनि, भनिय। इ०। उ० "निगमागम भने।"

भभर—घबराने, रोमांचित होनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भभरइ, भभरत, भभरहिं, भभरि। इ०। उ०। सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान।

भर—पूर्ण करने, पालन पोषण करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। भरइ, भरत, भरहिं, भरे, भरि, भरिय। इ०। उ० भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।

भाग—भागने, चले जानेके अर्थमें ।"चढ़"की तरह । भागइ, भागत, भागहिं, भागे, भागि, भागा । इ० । उ० धावा बालि देखि सो भागा ।

भाज—भागने, दौड़ने, बाटने, और तोड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भाजइ, भाजत, भाजहिं, भाजि, भाजे । इ० । उ० भाजि चले किलकात मुख दधि ओदन लपटाइ ।

भाव—अच्छा लगने, भाने या प्रिय लगनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भावइ, भावत, भावहिं, भावे, भावा, । इ० । उ० भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई ।

भाष—कहनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भाषइ, भाषत, भाषहिं, भाषे, भाषि, भाषा । इ० । उ० कामचरित नारद सब भाषे ।

भास—मालूम होने, जान पड़नेके अर्थमें । 'चढ़" की तरह । भासइ, भासत, भासहिं, भास, भासि । इ० । उ० "रजत सीप महँ भास जिमि ।"

भिर—लटने,भिड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भिरइ, भिरत, भिरहिं, भिरे, भिरि । इ० । उ० भिरे सकल जोरिहि सन जोरी ।

भुला—भूलनेके अर्थमें । सिरा, पिरा, आदिकी तरह । भुलाइ, भुलाउ, भुलात, भुलाय, भुलाहि, भुलान । इ० । उ० फिरेउ महावन परेउ भुलाई ।

भूज—भूनने और भोगनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भूजइ, भूजन, भूजब, भूजे, भूजहि, भूजि । इ० । उ० राजु कि भूजब भरतपुर नृपु कि जियहि बिनु राम ।

भूल—भूल चूक करने या बिसर जानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भूलइ, भूलत, भूलब, भूलहिं, भूले, भूलेहु । इ० । उ० भल भुलिहु ठगके बौराये ।

भूप—भूषित करने या सजानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भूषइ, भूषत, भूषहिं, भूषे, भूषि । इ० । उ० ससिहि भूष अहि लोभ अमीके ।

भ्राज—चमकने, सुहावना लगनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । भ्राजइ,

भ्राजत, भ्राजहिं, भ्राजे, भ्राजि। इ०। उ० मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।

म

मज्ज—नहाने, धोने और डूबनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मज्जइ, मज्जत, मज्जहिं, मज्जे, माज्जि, मज्जिय। इ०। उ० मकर माज्जि गवनहिं मुनि वृंदा।

मर—मरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मरइ, मरत, मरब, मरहिं, मरे, मरि, मरेउ। इ०। उ० जनमत मरत दुसह दुख होइ।

मरद—मरने, मसलनेके अर्थमें। "चढ़" धातुकी तरह। मरदइ, मरदत, मरदहिं, मरदे, मरदि। इ०। उ० एक एक सो मरदहिं तोरि चलावहिं मुंड।

मरोर—मरोड़ने या उमेठनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मरोरइ, मरोरत, मरोरहिं, मरोरे, मरोरि। इ०। उ० महिं पटकत भजे भुजा मरोरी।

मच,माच—होने, प्रारभ होने, जारी होने, मचनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मचइ, मची, माचि, माचहिं, माचे, मचे। इ०। उ० मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा।

मान—मान लेने, स्वीकार करने, अगीकार करने या कबूल करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मानइ, मानउ, मानत, मानहिं, माने, मानि, मानहु। इ०। उ० अजहू मानहु कहा हमारा।

माप—नापने, सीमाबद्ध करने, व्याकुल होने, बेसुध होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मापा, मापइ, मापत, मापहिं, मापे, मापि। इ०। उ० मार्जहिं खाइ मीन जनु मापी।

मार—मारनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मारइ, मारउ, मारत, मारहिं, मारे मारि। इ०। उ० हनूमान अगदके मारे।

मिट—मिटाने, अभाव कर देने, नष्ट कर देने, साफ कर देनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मिटइ, मिटत, मिटब, मिटहिं, मिटे, मिटि, मिटिहि। इ०। उ० तुम्ह सन मिटिहि कि बिधिके अका।

मीज—मलने, मसलने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मीजइ, मीजत, मीजिहि, मीजहिं, मीजि। इ०। उ० अवला बालक वृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहिं।

मुड—कतरा जाने, झुक जाने, हट जाने, धोखेमें आने, सिरके बाल कट जानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। मुड़इ, मुड़ब, मुड़त, मुड़हिं, मुड़े, मुड़ि। इ०। उ० (देखो 'मुर')

मुड़ाव—सिरके बाल कटवाने और धोखा खा जाने, लुट जाने, ठग जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुड़ावइ, मुड़ावत, मुड़ावहिं, मुड़ाइ, मुड़ावा। इ०। उ० मूड़ मुड़ाइ भये सन्यासी।

मुर—मुड़ने, फिरने, लौटने, घूमने और पलटने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुरइ, मुरत, मुरहिं मुरा, मुरिय, मुरे, मुरेउ। इ०। उ० मुरेउ न मन तन टरेउ न टारे।

मुरछ—बेसुध होने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मुरछइ, मुरछत, मुरछहिं, मुरछि। इ०। उ० परेउ मुरछि महि लागत सायक।

मुसुका—मंद हास्य या मुसुकानेके अर्थमें। पिरा, सिरा आदि के अनुरूप। मुसुकाइ, मुसुकात, मुसुकाहिं, मुसुकान, मुसुकाने। इ०। उ० समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।

मेट—मिटाने, नष्ट करने, बरबाद करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मेटइ, मेटउ, मेटत, मेटहिं, मेटे, मेटि, मेटनहार, मेटिय। इ०। उ० तासु वचन मेटत मन सोचू।

मेल—मिलाने, डालने और फेंकने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मेलइ, मेलत, मेलहिं, मेलि। इ०। उ० मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं।

मोच—छोड़ने, गिराने, बहानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। मोचइ, मोचत, मोचहिं, मोचि,। इ०। उ० मंजु बिलोचन मोचति बारी।

मोह—मोहित करने, ठगने, भुलवाने, छलने और बेसुध करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। मोहइ, मोहत, मोहहिं, मोहे, मोहि, मोहेहु। इ०। उ० देखि रूप मोहे नर नारी।

रच्छ—रक्षा करने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। रच्छइ, रच्छत, रच्छहिं,

रच्छि, रच्छे। इ०। उ० करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहु दिसि रच्छहीं।

रच—बनाने या रचने के अर्थमें। "चढ़" की तरह। रचइ, रचत, रचहिं, रचे, रचइ, रचासि, रचि। इ०। उ० रचे रुचिर वर वदनवारे।

रट—रटने, घोखने, जपने और धुन बाधनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। रटइ, रटत, रटहिं, रटि, रटे, रटसि। इ०। उ० रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु।

रअ, रय—रँगने, रमने, मथने, विलोनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। रवइ, रवउ, रए, रएउ, रइ। इ०। उ० "हरि रंग रये"।

रह—रहने और ठहरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। रहइ, रहत, रहहिं, रहे, रहि, रहु, रहेसि। इ०। उ० रहहु तात असि नीति बिचारी।

रहस—अकेले या एकान्तमें हो जाने या अलग होकर बात करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। रहसइ, रहसत, रहसहिं, रहसि, रहसे। इ०। उ० रहसी रानि राम रुख पाइ।

राच—लगने, रमने, तत्पर होने, लवलीन होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। राचइ, राचत, राचहिं, राचे, राचा। इ०। उ० सो बर मिलिहि जाहि मन रांचा।

राध—उबालने, पकाने, या रसोई बनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। रांधइ, रावत, राधहि, राधि, राधे, राधा। इ०। उ० बिबिध मृग-हकर आमिष राधा।

राख—रखने, बचाने, रक्षा करने और सभालनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। राखइ, राखउ, राखत, राखहिं, राखे, राखि, राखउँ। इ०। उ० राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू।

राच—रचने, रचाने, मनसूबे करने और रचना करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। राचइ, राचत, राचहिं, राचेउ, राचि। इ०। उ० मन जाहि राचेउ मिलिहि सो बर सहज सुदर सावरो।

राज—विराजने, सोहने और बैठनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। राजइ, राजत, राजे, राजहि राजिहहि। इ०। उ० राजत बाजत बिपुल निसाना।

रिझाव—प्रसन्न करने और राजी करनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। रिझावइ, रिझावउ, रिझाउब, रिझाए, रिझाउ, रिझाइ। इ०। उ० बातन्ह मनहिं रिझाइ सठ जानि घालेसि कुल खीस।

रिसा—क्रोध करनेके अर्थमें। पिरा आदिके अनुरूप। रिसाइ, रिसात, रिसाव, रिसाहिं, रिसान, रिसाइय, रिसाने। इ०। उ० टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने।

रीझ—प्रसन्न होने और राजी होनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। रीझइ, रीझत, रीझहिं, रीझि, रीझे, रीझिहि। इ०। उ० रीझिहि राज कुँअरि छबि देखी।

रेंगाव—धीरे धीरे चलाने, सरकानेके अर्थमें। "चढाव" के अनुरूप। रेंगावइ, रेंगावत, रेंगाइ, रेंगाइय, रेंगाए, रेंगाउ। इ०। उ० अस कहि सनमुख फौज रेंगाई।

रोव—रोनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। रोवइ, रोवत, रोवहिं, रोए, रोइ, रोइय, रोएउँ। इ०। उ० सोक बिकल सब रोवहिं रानी।

रोक—रोकने, बाधा करने, मना करने और अटकानेके अथम। "चढ" के अनुरूप। रोकइ, रोकत, रोकहिं, रोकहु। इ०। उ० होहु सँजोइल रोकहु घाटा।

रोद्—रोनेके अथम। "चढ" की तरह। रोदइ, रोदत, रोदहिं, रोदि, रोदे। इ०। उ० करि बिलाप रोदति बदति सुता सनेह सँभारि।

रोप—बोने, जमाने, लगाने, ग्रहण करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। रोपइ, रोपत, रोपहिं, रोपें, रोपि, रोपहु। इ०। उ० रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।

ल

लख—देखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लखइ, लखत, लखउ, लखहिं, लखे, लखि। इ०। उ० लखब सनेहु सुभाय सुहाये।

लखाव—देखनेके अथमें। "चढ" की तरह। लखावइ, लखावत, लखाउब, लखावहिं, लखाए। इ०। उ० लता ओट तब सखिन्ह लखाये।

लगाव—लगाने, मिलाने और संग देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लगावइ, लगावत, लगावहिं, लगाउ, लगाइ, लगाए। इ०। उ० पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।

लग—लगने और छूनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लगइ, लगत, लगहिं, लगे, लगि, लगब। इ०। उ० लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा।

लजा—लजाने और सकुचानेके अर्थमें। सिरा, पिरा आदिकी तरह। लजाइ, लजात, लजान, लजाहिं, लजाने, लजाहु। इ०। उ० तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।

लजाव—लजवाने, लज्जित करानेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लजावइ, लजावत, लजावहिं, लजाए, लजाइय। इ०। उ० ठवनि जुवा मृगराज लजाये।

लट—लटने, लटकने, मुरझाने, दुबल होने, झुकने, घटने, अशक्त होने और झूमनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। लटइ, लटत, लटहिं, लटब, लटे, लटि। इ०।

लड़—लड़ाइ, झगड़ा, विरोध करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। [देखो "लर"] लड़इ लड़त, लड़हिं, लड़ब, लड़े, लड़ि। इ०। उ० प्रमुदित महा मुनिबृंद बन्दे पूजि प्रेम लड़ाइकै।

लपटाव—लिपटने, चिपकनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लपटावइ, लपटावत, लपटावहिं, लपटावा, लपटाइ। इ०। उ० सबरी परी चरन लपटाइ।

लपेट—लपेटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लपेटइ, लपेटत, लपेटहिं, लपेटे, लपेटि। इ०। उ० लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।

ले—लेनेके अर्थमें। 'दे' के अनुरूप। लेइ, लेउ, लेत, लेय, लेहु। इ०। उ० देहु कि लेहु अजस करि नाहीं।

लर—लड़नेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लरइ, लरत, लरहिं, लरब, लरे लरि। इ०। उ० लरहिं सुरेस न मानहिं हारी।

लव, लुन—लवने या काटनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। और 'लुन'

"चढ़" की तरहसे। लवइ, लवउ, लाए, लुनिय, लुनइ, लुनत, लुना। इ०। उ० यथा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।

लस—शोभा देने और शोभा पानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लसइ, लसउ, लसव, लसहिं, लसे, लसि, लसा। इ०। उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि।

लह—पाने और लेनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लहइ, लहत, लहहिं, लहे, लहि। इ०। उ० लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाजु प्रयाग।

लहलहाव—चमचमाने, झलझलाने, लपलपाने, और लहरानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। लहलहाइ, लहलहावत, लहलहावहिं, लहलहाए, लहलहावा। इ०।

लाँघ—पार होने, लप जाने, फाँदनेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। लाघइ, लाघत, लाघहिं, लाघे, लाघि। इ०। उ० नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। (देखो नाँघ)

लाव—लाने और लगानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। लावइ, लावत, लाउब, लावसि, लाए, लावहु। इ०। उ० भाइहु लावहु धो' जानि आजु काज बड़ मोहिं।

लाग—लगनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लागइ, लागत, लागब, लागी लागे, लागिहि। इ०। उ० नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे।

लाज—लजाने और लजवानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लाजइ, लाजत लाजहिं, लाजे, लाजि। इ०। उ० कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।

लाध—पानेके अर्थमें। "चढ" की तरह। लाधइ, लाधत, लाधहिं, लाधि लाधा, लाधे। इ०। उ० काहु न इन्ह समान फल लाधे।

लाव—लगाने, जमाने और बोनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। लावहु, लाये, लावा, इ०। उ० भाइहु लावहु धोख जनि आजु काजु बड़ मोहु।

लिख—लिखनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। लिखइ, लिखत, लिखहिं

लिखे, लिखि । इ० । उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू ।

लुका—छिपनेके अर्थमें । "फिरा" "सिरा" की तरह । लुकाइ, लुकात, लुकाहिं, लुकान, लुकाने । इ० । उ० बाज झपट जनु लवा लुकाने ।

लुकाव—छिपानेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह । लुकावइ, लुकावत, लुकाउब, लुकावा, लुकाइ, लुकाए । इ० । उ० तरु पल्लव महँ रहा लुकाइ ।

लुठत—लोटने, लुढ़कने, छटपटानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लुठइ, लुठत, लुठहिं, लुठब, लुठे, लुठा । इ० । उ० जनु महि लुठत सनेह समेटे ।

लुन—अनाज काटने, निकालने, प्राप्त करने, और पानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लुनइ, लुनत, लुनहिं, लुने, लुनि, लुना, लुनिय । इ० । उ० बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ।

लेस—लगाने, मिलाने, जोड़ने, चिपकानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लेसइ, लेसत, लेसहिं, लेसा, लेसि । इ० । उ० एहि बिधि लेसइ दीप, तेज रासि बिज्ञानमय ।

लोप—छिपने और छिपानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । लोपइ, लोपत, लोपहिं, लोपेउ, लोपि । इ० ।

लोभ, लोभाव—लोभाने, ललचानेके अर्थमें । "चढ़" और "चढ़ाव" की तरह । लोभइ, लोभत, लोभहिं, लोभि, लोभे । इ० । उ० जह बसंत रितु रही लुभाई ।

साध—जोड़ने, चढ़ाने, निशानपर लगानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । साधइ, साधत, साधहिं, साधे, साधि । इ० । उ० करतल चाप रुचिर सर साधा ।

सँभार—स्मरण करने, चेतने बचा लेने और सँभालनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सँभारइ, सँभारत, सँभारहिं, सँभारे, सँभारि । इ० । उ० बार बार रघुबीर सँभारी ।

सक, शक—सकनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सकइ, सकत, सकहिं, सके, सकि, सकिय । इ० । उ० प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई ।

सका—सकुचाने, डरने, सन्देह करने और लजानेके अर्थमें। "हिरा" "पिरा" "सिरा" आदिकी तरह। सकाइ, सकात, सकाहिं, सकाने, सकाउ, सकान। इ०। उ० छत्रिय तनु धरि समर सकाना।

सकिल—बटुरने, दबकने, दबने अड़सने, फँसने, एकत्र होने, और सिमटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सकिलइ, सकिलत, सकिलहिं, सकिले, साकिलि। इ०। उ० साकिलि सबन मग चलेउ सुहावन।

सकुच, सकुचा—लजाने, और डरनेके अर्थमें। 'चढ़' और "रिसा" के अनुरूप। सकुचइ, सकुचत, सकुचहिं, सकुचे, सकुचि। सकुचाइ, सकुचात, सकुचाने, सकुचाहि। इ०। सुनत गिरा मन अति सकुचाइ।

सँकेल—समेटने, बटोरने, एकत्र करने, कसने, दबानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सकेलइ, सकेलत, सकेलहिं, सकेलि, सकेला, सकेले। इ०। उ० प्रथम कुमाति करि कपट सँकेला।

सताव—कष्ट देनेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। सतावइ, सतावत, सतावहि, सतावहु, सतावा। इ०। उ० निसिचर निकर सतावहिं मोहीं।

सनकार—सनकियाने या इशारा करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सनकारइ, सनकारत, सनकारहिं, सनकारि, सनकारे। इ०। उ० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।

समर्प—सौंपनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। समर्पइ, समर्पत, समर्पहिं, समर्पि, समर्पे। इ०। उ० आयुध सब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।

समा—समाने, घुसने और प्रवेश करनेके अर्थमें। "रिसा" "पिरा" "सिरा" की तरह। समाइ, समात, समाहिं, समान, समाने, समानेउ। इ०। उ० सुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।

समुझाव—समझाने और जनानेके अर्थमें। "चढाव" की तरह। उ० गहि कर चरन नारि समुझावा।

समुझ—समझने और जाननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। उ० मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे।

समुहा—सम्मुख होने, सामने आने और मिलनेके अर्थमें। रिसा, पिरा आदिके अनुरूप। समुहाइ, समुहात, समुहाहिं, समुहान, समुहाने। इ०। उ० अति भय त्रसित न कोउ समुहाई।

समेट—बटोरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। समेटइ, समेटत, समेटहिं, समेटि, समेटे। इ०। उ० जनु महि लुठत सनेह समेटे।

सर—बराबर करने, पूरा करने, हो सकनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सरइ, सरत, सरहिं, सरे, सरिहहि, । इ०। उ० तोरे धनुष चाड़ नहिं सरई।

सरस—बढ़ने, गाढ़े होने और घना होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सरसउ, सरसत, सरसहिं, सरसि, सरसे। इ०।

सरसा—सरस करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सरसाइ, सरसात, सरसाने, सरसाहिं, सरसाए। इ०।

सरसाव—सरस कराने के अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। सरसावइ, सरसावत, सरसावहिं, सरसाए। इ०।

साप—बुरा मनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सापइ, सापत, सापहिं, सापे, सापि। इ०। उ० सापत ताड़त परुष कहता।

सराह—बड़ाई करने, स्तुति करने, प्रशंसा करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सराहइ, सराहत, सराहब, सराहहिं, सराहसि, सराहे, सराहि। इ०। उ० तुम्हहुँ सराहसि करसि सनेहू।

सह—सहने, भोगनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सहइ, सहत, सहहिं, सहहुँ, सहउँ, सहे, सहि। इ०। उ० खल! तव कठिन वचन सब सहऊँ।

सहाव—सहन कराने, भोगनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। सहावइ, सहावत, सहावा, सहाइ, सहाए। इ०। उ० जेहि विधि मोहि दुख दुसह सहावा।

साध—मिलानेके अर्थमें। "चढ़" के अनुरूप। साधइ, साधउ, साधत, साधा। इ०। उ० तेहि महँ विप्र मास खल साधा।

साध—साधने, अपने ढगपर लाने, मिलानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह।

साधइ, साधत, साधहिं, साधे, साधि, साधा, साधेउँ । इ० । उ० अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा ।

सान—मिलाने, लपेटनेके अर्थमें । "चढ़" के अनुरूप । सानइ, सानत, सानत, सानहिं, सानि, साने, साना । इ० । उ० सील सनेह सरस सानी ।

साप—शाप देनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । (देखो 'साप')

सार—बनाने सँवारनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सारइ, सारत, सारहिं, सारे, सारि । इ० । उ० जातहिं रामतिलक तेहि सारा ।

साल—चुभनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सालइ, सालत, सालहिं, साले, सालि, सालु । इ० ।

सिंच—सींचने, तर करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सिंचइ, सिंचत, सिंचत, सिंचहिं, सिंचि । इ० ।

सिंचाव—छिड़कने और तर करनेके अर्थमें । "चढ़ाव" के अनुरूप । सिंचावइ, सिंचावत, सिंचावहु, सिंचावा, सिंचाइ । इ० । उ० बाय सकल सुगंध सिंचाई ।

सिअ, सिआव, सिय, सियाव—सीने सिलानेके अर्थमें क्रमशः "चढ़" "चढ़ाव" की तरह । सियइ, सियत, सियव, सियावा, सियाए सियावइ । इ० ।

सिधार—चले जानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सिधारइ, सिधारत, सिधारा, सिधारहिं, सिधारि, सिधारे, । इ० । उ० एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ।

सिमिट—इकट्ठा होने, बटुरने या एकत्र होनेके अर्थमें "चढ़" की तरह । सिमिटइ, सिमिटत, सिमिटहिं, सिमिटि, सिमिटे । इ० । उ० सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा ।

सिरज, सृज—बनाने, रचने, और उत्पन्न करनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सिरजइ, सिरजत, सिरजा, सिरजनहार, सिरजहिं, सिरजे । इ० । उ० ताकर दूत अनल जेहि सिरजा ।

सिरा—बन पड़ने, निबहने और समाप्त होनेके अर्थमें । "रिसा" की तरह ।

सिराइ, सिरात, सिराहिं, सिरान, सिराने, सिरानेहु। इ०। उ० जुग सम भइ न राति सिराती।

[सि]हा—सतुष्ट होने, अभिलाषा करने और ईर्षा करनेके अर्थमें। "रिसा" का तरह। सिहाइ, सिहात, सिहाहिं, सिहान, सिहानेउ। इ०। उ० देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं।

[सीं]च—पानी देने, तर करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सींचत, सींचेउ, सींचा, इ०[देखो "सिंच"] उ० पेड़ काटि तैं पालउ सींचा।

[सी]द—दुःखी करने, दुःखी होने। नाश कर देने, नाश हो जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सीदइ, सीदत, सीदहिं, सीदि, सीदे। इ०। उ० सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।

[सु]खा—सूखने और सुखानेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सुखाइ, सुखात, सुखाहिं, सुखाहु, सुखाने, । इ०। उ० सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। "सुखानेउ परना।"

[सुध]ार—ठीक करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सुधारइ, सुधारत, सुधारहिं, सुधारे, सुधारि, सुधारा। इ०। उ० सुनि कटु वचन कुठार सुधारा।

सुन—सुननेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सुनइ, सुनत, सुनहिं, सुने, सुनि, सुना। इ०। उ० सुनि मृदु वचन गूढ़ रघुपतिके।

सुमिर—याद करनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। सुमिरइ, सुमिरत, सुमिरहिं, सुमिरि, सुमिरे, सुमिरा। इ०। उ० सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष मनाइ।

सुहा—अच्छा लगने, भाने, और शोभित होनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। सुहाइ, सुहात, सुहाहिं, सुहान, सुहाने। इ०। उ० तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। "नाहिं नारदहिं सुहाना"।

सूख—सूखनेके अर्थमें। "चढ" की तरह। सूखइ, सूखत, सूखहिं, सूखेउ, सूखा, सूखिय। इ०। उ० सूखत धान परा जनु पानी। "सूखेउ अधर"। "सूख हाड़ ले भाग सठ"।

सूझ—जानने, सूझनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। सूझइ, सूझत, सूझहिं,

सूचि, सूचे, । इ० । उ० सूचत किरन मनोहर हासा । "सूच जनु भावी ।"

सूझ—दिखाई देने, समझमें आने, बुद्धिके दौड़नेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । सूझइ, सूझत, सूझहिं, सूझे, सूझि, सूझा । इ० । उ० सूझहिं रामचरित मनि मानिक ।

सृज—बनाने और रचनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सृजइ, सृजत, सृजहिं, सृजा, सृजि, सृजे । इ० । उ० जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधानकी । "सृजेउ विधाता" ।

सेव—सेवा करनेके अर्थमें । "चढाव" की तरह । सेवइ, सेवत, सेवउ, सेवहिं, सेउन, सेइय, सेए । इ० । उ० सेवहिं लषन सीय रघुवीरहिं ।

सोख—सोखनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सोखइ, सोखत, सोखहिं, सोखि, सोखा । इ० । उ० सायक एक नाभि सर सोखा ।

सोध—शुद्ध करने, ठीक करने और पता लगाने या खोजनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सोधइ, सोधउ, सोधत, सोधहिं, सोधि । इ० । उ० लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ।

सोव—सोनेके अर्थमें । "चढ़ाव" की तरह । सोवइ, सोवत, सोउन, सोवसि, सोवहिं । इ० । उ० अघ सुप्त सोवत सोचु नहिं भीख मागि भल खाहिं ।

सौंप—सौंपने और अधिकारमें देनेके अर्थमें । "चढ" की तरह । सौंपइ, सौंपत, सौंपहिं, सौंपे, सौंपेउ, सौंपि । इ० । उ० "सौंपि नगर सुचि सेवकन" । "सौंपेहु मोहि तुमहि गहि पानी" ।

स्रव—चूने, टपकने, पसीजने, गिरनेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । स्रवइ, स्रवत, स्रवहिं, स्रवे, स्रवि । इ० । उ० सोनित स्रवत सोइ तन कारे । " गजत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी । "

हाक—चलाने या बढ़ाने या भगानेके अर्थमें । "चढ़" की तरह । हाकइ, हाकउ, हाकत, हाके, हाकि, हाकेहु, हाका । इ० । उ० खोज मारि रथ हाकेहु ताता ।

हात—मारनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हातइ, हातत, हातहिं, हाति, हाते। इ०। उ० भीरु प्रतीति प्रीति करि हाती।

हिंस—दुख देने, नाश करने और हिनहिनानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हिंसइ, हिंसत, हिंसहिं, हिंसेउ, हिंसि। इ०। उ० "रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा।"

हिहिंना—घोड़ेके हिनहिनानेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। हिहिंनाइ, हिहिंनात, हिहिंनाहिं, हिहिंनाव। इ०। उ० देखि दाखिन दिसि हय हिहिनाहीं।

हींच—दबोचने, खींचने, सिकोड़ने, बटोरनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हींचइ, हींचत, हींचहिं, हींचि, हींचे, हींचा। इ०।

हुन, हुव—मारनेके अर्थमें। इसके हये, हइ, (मारा, मारी) आदि कुछ ही रूप प्रचलित हैं। जो "चढ़ाव" क्रियाके अनुरूप हैं। परन्तु क्रियाका मूल रूप "हत" है—देखिये। उ० समाम अगन सुभट सोवहिं राम सर निकरा इ हये।

हकराव—बुलवानेके अर्थमें। "चढ़ाव की तरह। हकरावइ, हकरावत, हकरावउ, हकरावसि, हकराने। इ०। उ० मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा।

हरक, हटक—रोकने, डाटनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हटकइ, हटकत, हटकहु, हरकहिं हरकि, हरका। इ०। उ० तुम हटकहु जो चहहु उबारा।

हत—मारने, नष्ट करने या नाश करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हतइ, हतत, हतहिं, हते, हता, हतहु, हति। इ०। उ० प्रभु तातें उर हतइ न तेही।

हन—मारने या मार डालने या प्राण हरण करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हनइ, हनउ, हनत, हनहिं, हने, हनि। इ०। उ० हने निसान पनव बर बाजे।

हर—लेने, छीनने, और चुरानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हरइ, हरत, हरहिं,हरे,हरि, हरी,हरेउ। इ०। उ० इहां हरी निसिचर बैदेही।

हरष, (हर्ष)—प्रसन्न होने, खुश होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हरषइ हरषउ, हरषत, हरषहिं, हरषे। इ०। उ० हरषे सब बिलोकि हनुमाना।

हरषा—आनन्दित होने और करनेके अर्थमें। "रिसा" की तरह। हरषाइ हरषात, हरषाने, हरषाहु। इ०। उ० निरखि राम छबि बिधि हरषाने।

हलराव—उछालने, झूलेकी तरह हाथमें लेकर झुलाने, झोंका देनेके अर्थमें। "चढ़ाव" की तरह। हलरावइ, हलरावत, हलरावहिं, हलराइ, हलराए। इ०। उ० लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ।

हहर—घबराने, उकताने, रजसे घुल जानेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हहरइ, हहरत, हहरहिं, हहरि, हहरे, हहरेउ। इ०। उ० सुर स्वारथी हहरि हिय हारे। "हहरि मरत सब लोगा।"

हार—हारने, आशा छोड़ने, थकनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हारइ, हारत, हारहिं, हारे, हारि, हारहु। इ०। उ० हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।

हिंकर—पीड़ासे कराहनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हिंकरइ, हिंकरत, हिंकरहिं, हिंकरे, हिंकरि। इ०। उ० हिंकरि हिंकरि हय हेरहिं तेही।

हुन—होम करने, भस्म करने, बलि करनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुनइ, हुनत, हुनहिं, हुना, हुनि, हुने। इ०। उ० हुने अनल महँ बार बहु हरषि सापि गौरिस।

हुमग—उमगमें कूदने, उछलनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुमगइ, हुमगत, हुमगहिं, हुमगि, हुमगा। इ०। उ० हुमगि लात तकि कूबर मारा।

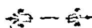
हुलस—उत्साहित होने, प्रसन्न होने, उछलने, उमगके प्राप्त होनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हुलसइ, हुलसत, हुलसहिं, हुलसे, हुलसा, हुलसि। इ०। उ० संभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी।

हेर—देखने, खोजनेके अर्थमें। "चढ़" की तरह। हेरइ, हेरत, हेरहिं, हेरे, हेरि। इ०। उ० अटकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे।

तुलसी-चरित-चन्द्रिका



१-प्रस्तावना



कविन प्रथम हरि कीरति गाई
तेहि मगु चलत सुगम मोहि भाई

जीवनीमें जन्मकाल जन्मदेश और कुलका ठीक ठीक विवरण, जीवनकी महत्वकी घटनाओंका विस्तार साधारणतया आवश्यक सामग्री समझी जाती है। गोस्वामीजी जैसे महात्मा और महाकविकी जीवनीमें इन बातोंको, जिनकी खोजमें बहुत परिश्रम करके भी सफलताकी आशा नहीं हो सकती, हम विशेष महत्व नहीं देते। महापुरुषोंकी कृतिमें ही उनके विचारों और आदर्शोंका चित्र होता है और वस्तुत उनके कुलके इतिहासके विस्तारसे पाठकोंका उतना लाभ नहीं हो सकता जितना उनके विचारोंसे और उनके आदर्शसे सभव है। महापुरुषोंकी कृति आगे आनेवाली सन्तानोंके लिये मार्गोपदेशिका होती है। इस दृष्टिसे उनकी कृतिका परिशीलन ही सबसे अधिक फलदायक और महत्वका काम है।

गोस्वामीजीका जीवनचरित अनेक विद्वानोंने बडी खोजसे लिखा। मतभेदपर बडे ऊहापोहसे विचार किया। कृतियोंका बडा सुन्दर अनुशीलन किया। उनकी खोज, परिश्रम और गंभीर विद्वत्ताको देखते हुए यहा कुछ लिखनेकी न तो ।प्रतीत होती थी और न साहस होता था। यह

भूमिका मानसके स्वाध्यायियोकी सहायताके लिये प्रस्तुत हुई, अत इसमें कुछ उन विद्वानोंकी रचनाओंके अध्ययनका फल और कुछ मानसके स्वाध्यायका निष्कर्ष अपने सरीखे मानसके अध्येताओंके लिये दे देना आवश्यक समझकर मैंने इस खडको प्रस्तुत करनेका साहस किया है।

२—परिस्थिति

"भये लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म्म"

गोस्वामी तुलसीदासजीके जन्मकालमें जौनपुरकी बादशाहतका अन्त हो चुका था, दिल्ली में हुमायूके राज्यका आरभ हो चुका था, परन्तु बेचारे हुमायूको शातिसे राज्योपभोग बदा नहीं था। उसे बगालके अफगानोंसे लडते दस बरस बीते। अन्तमें पठानोंके नेता शेरखाने उसे खदेडा और आप दिल्लीके सिहासनपर जा बैठा। इस प्रकार आजकलका सयुक्त प्रान्त उस समय मुगलों और पठानोंकी परस्पर लडाइयोंका रगभूमि बना हुआ था। देशकी साधारण अवस्था अच्छी न थी. मुसल्मानोका प्रभाव बढ रहा था। नये धर्मके अनुयायी अवश्य अत्याचारमें तत्पर थे। गोस्वामीजीने रावणके अत्याचारोंके चित्रमें अवश्य ही मुसल्मानोंके अत्याचारकी झलक दिखायी है।

जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धरम सुनिअ नाहिं काना
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना।

देशमे मुसलमानोंके आये लगभग तीन सौ बरस हो चुके थे। अकबर जैसा उदार विचारका शासक पैदा नही हुआ था।

मुसलिम धर्म्मके प्रचारके साथ ही साथ उसकी संस्कृतिका और फारसी अरबी तुरकी भाषाओंका संमिश्रण भी हो रहा था। शब्द और मुहाविरे तक हिल मिल गये थे। एक ओर आर्य्य-धर्म्मी मुसलिम बनाये जाते थे तो दूसरी ओर अरबी फारसी तुर्की शब्दोंकी शुद्धि होती जाती थी और आर्य्यवेष धारण कर चलती भारतीय प्राकृत भाषाओंमें सहज ही समा रहे थे। उस समय मुसलमान विधर्म्मी तो थे ही, विदेशी भी थे और उनका शासन भी हिंसापूर्ण था। वह गो ब्राह्मणोंके द्रोही थे। हिन्दुओंद्वारा उनका बहिष्कार होना भी स्वाभाविक था। वह अस्पृश्य थे। उनसे संसर्ग रखनेवाला घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था। यही बात थी कि बादको फैजी जैसे विद्या प्रेमी मुसलिमको हिन्दू बनकर ही संस्कृत पढ़ना संभव हुआ। इतनेपर भी मुसलमानोंका विद्याप्रेम हिन्दुओंमें किसी न किसी प्रकार मिलनेको लाचार करता था। विदेशी मुसलिम भी जब भारतवासी हो जाते थे, तब थोड़ो बहुत आर्य्य संस्कृतिको स्वीकार करनेको लाचार हो जाते थे। अमीर खुसरो इसका अच्छा उदाहरण बहुत पहले हो गया था और मलिक मुहम्मद जायसी तो निश्चय ही दोनों संस्कृतियोंको मिलानेवाला भाषा-का ऐसा बड़ा कवि शेरशाहके ही समय हो गया जिसपर हमें सर्वथा गर्व है। पीछेसे अब्दुर्रहीम खानखाना और रसखान तो मुसलिम होते हुए भी कवितामें शुद्ध हिन्दूभाव रखते थे। मुसलिम संस्कृतिसे उनकी कविता "पद्मपत्रमिवाम्भसा" असंपृक्त है।

जहां मुसलमान अपने धर्मके प्रचारमें साम दान दंड भेद चारों विधियोंसे काम लेता था, वहां हिन्दू भी, यह देखकर कि जिसी किसी रीतिसे मुसलमान हो जानेमें और फिर हिन्दू धर्म्ममें न लौटनेमें हानि है, उस समयके किसी न किसी रूपसे शुद्धिद्वारा पतितोद्धारके लिये तैयार हो गया था। आचार-

मार्गके परम प्रसिद्ध आचार्य्य श्रीरामानुज स्वामी दक्षिणमें अस्पृश्य चाण्डालोंको अपनी शरणमें ले चुके थे। बंगालमें गौरांग महाप्रभु मुसल्मानोंको वैष्णव बना चुके थे। अयोध्यामें स्वामी रामानन्दजी पीपा भक्त, कबीर आदि अस्पृश्यों और मुसल्मानोंको शरणागत कर चुके थे। गुरु नानक भी इसी उदारताके पक्षपाती थे। कबीरदास और कमालने तो मुसल्मानोंके हिन्दू महात्मा बन जानेमें कमाल दिखा दिया था। निदान, जहाँ विधर्म्मके प्रचारसे आर्य्यधर्म्मी पतित होते जाते थे, वहा साधु महात्माओंकी कृपासे पतितोद्धारके उपाय भी खडे होते जाते थे। यद्यपि कट्टर धर्म्मप्राण विद्वान माना तनिक इन सब महात्माओंके चलाये पथोंको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते थे तथापि इनकी लोकप्रियता जनताके बीच पतितोंके वास्तविक उद्धारमें बडी सहायक होती थी।

साम्प्रदायिक भेद बडे तीव्र थे। वैष्णव और शैव आपसमें लडे मरते थे। एक दूसरेके इष्ट देवताओंको बुरा भला कहना एक साधारण सी बात थी। रामचरितमानसमें भुशुण्डिकी कट्टर शिवभक्ति एक नमूना है। सम्प्रदायभेदोंने, जातिभेदोंने एव आपसके भेदप्रभेदजनित कलहोंने सारी आर्य्य जातिको जर्ज्जर कर डाला था। यह भीतरी दुर्बलता भी उन कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण थी जिनके बलपर विदेशी और विधर्म्मी इस देशमें घुस आये, और आर्य्य जातिपर शासन करने लगे।

शासक वर्ग सदासे फूटके बलपर शासन करते आये हैं। उस समयके चतुर शासकोंने अवश्य ही इस नीतिसे काम लिया होगा, क्योंकि उस समय ब्राह्मण अब्राह्मणके झगडे भी जोर पकडे हुए थे। ब्राह्मणोंमें स्वार्थबुद्धि बढी हुई थी और अब्राह्मणोंमें श्रद्धा घट गयी थी, स्वयं ब्राह्मणोंका काम करनेको तय्यार थे। वर्णाश्रमकी जो गिरी दशा आज है, वही तब भी

थी। भेद इतना था कि आज सारे पेशे लुप्त हो गये हैं, तब ऐसी बात न थी। यह सच है कि हिन्दुओंके अनेक पेशे मुसल्मान छीननेमें लगे थे, परन्तु वह इसी देशमें रहते थे। अत यद्यपि हिन्दुओंकी सामाजिक हानि थोड़ीसी थी तथापि देशकी आर्थिक हानि कुछ भी न थी। तो भी वर्णधर्म और आश्रम-धर्ममें अत्यन्त शिथिलता थी। इतना और भी इस स्थलपर कह देना उचित होगा कि यह शैथिल्य कई सहस्र वर्षका है, केवल चार सौ बरसोंका नहीं है।

३–जन्म और बाल्यकाल

"होनहार बिरवानके होत चीकने पात"

भारतके साहित्याकाशके उज्ज्वल चन्द्रमा भक्तों और साहित्य रसिकोंका हृदय अपनी निर्मल कविताज्योत्स्नासे सुशीतल करनेवाले और हिन्दीवाङ्मयके विस्तीर्ण क्षेत्रपर सुधा बरसानेवाले प्रात स्मरणीय गोसाईं तुलसीदासजी ऐसी ही परिस्थितिमें प्रकट हुए। हुमायूंका अशान्त राजत्वकाल था। किसी किसीके मतसे सवत् १५८९ का समय था। परन्तु इस बातका न तो निश्चित प्रमाण है, न आवश्यकता है। गोसाईं जी स्वय युग पैदा करनेवाले महात्मा हुए। उनके जन्म जैसी महत्ताकी घटना किसी सन् सवत्की मुहताज नहीं है। हमें उससे विशेष प्रयोजन भी नहीं। उनके जन्मस्थानके सम्बन्धमें भी झगडे हैं, और झगडा होना स्वाभाविक ही है। होमरका जन्मस्थान बननेको यूनानके सात नगरोंका पारस्परिक झगडा प्रसिद्ध है। कालिदासको अपनानेके लिये काशमीर, पजाब, बगाल, मालवा, आध्र, गुजरात कौन नहीं तैयार है? फिर यदि गोसाईंजीके लिये ऐसे झगडे हों तो आश्चर्य्य ही क्या? माता पिताके नामके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। यह भी निश्चय नहीं कि वह कौन थे, किस जातिके थे। सभवत ब्राह्मण थे

या अच्छे कुलके थे। इन दोनों बातोंसे भी हमें विशेष प्रयोजन नहीं है। जान पड़ता है कि माता पिता दरिद्र ब्राह्मण थे जैसा कि उनके "दियो सुकुल जनम" और "जायो कुल मगन" आदि कथनोंसे स्पष्ट है। बाल्यावस्थामें इनका लाड प्यार नहीं हुआ। कारण चाहे जो हो गोस्वामीजीका लेख स्पष्ट है कि उनके जन्मसे माता पिताको खुशी नहीं हुई, उन्होंने उन्हें तुरन्त ही त्याग दिया था। हमारा तो अनुमान है कि माता पिताने किसी सच्चरित रामभक्त साधु ब्राह्मणको सौंपा जिसने पाला पोसा और इन्हें बड़े होनेपर इनके जन्मका वृत्त बताया होगा। वही देवता गोसाईंजीके गुरु हुए। गुरुजी स्वयं धनवान् न थे। कविने सिवाय "गुरु पितु मातु महेस भवानी"के वन्दनातकमें अपने मातापिताको स्मरण वा प्रणाम नहीं किया है। सारे जगत्‌को प्रणाम करनेवाला माता पिताको भूल जाय इसमें आश्चर्य्य है। शायद माता पिताका पता न था, इसीलिये। परन्तु गुरुको जगह जगह अनेक बार याद किया है। गुरुने ही रामभक्ति बतायी और रामकी कथा समझायी। बाल्यावस्थामें गुरुने पूरा साथ दिया। सदाचार भक्ति ज्ञान वैराग्य गुरुकी कृपासे बालक तुलसीदासमें बहुत छोटी अवस्थासे अङ्कुरित हुए। गुरुने काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, धर्म्मशास्त्र, और वेदान्तकी शिक्षा दी। "होनहार विरवानके होत चीकने पात"। आदिसे काव्य रचनासे इस बालकको प्रेम था। गुरुजी यद्यपि कोई प्रसिद्ध कवि न थे तथापि उनकी प्रगाढ विद्वत्तामें और अगाध ज्ञानमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। फलसे ही वृक्षका अनुमान किया जाता है। गोस्वामीजी सरीखे कवि और मनीषी जिसकी वन्दनामें "कृपा सिन्धु नररूप हरि, महा मोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर" श्रद्धापूर्वक कहे वह कोई साधारण पण्डित नहीं हो सकता। इन्हीं गुरु महाराजकी पूर्वप्रेरणासे युवावस्थामें विद्याध्ययनके उपरान्त नवयुवक

तुलसीदासने विवाह किया होगा। हमारा अनुमान है कि हनुमान चालीसा सरीखी कविता बाल्यकालकी ही रचना थी। गुरुजीके यहा हनुमानजीकी पूजा और स्तुतिमें यह शिष्य अवश्य ही निरत रहा होगा। वाल्मीकिके सिवा और उपाख्यानों और रामायणोंसे भी गुरुजी रामकथा कहा करते थे। गुरुजी रामायणके विशेष प्रेमी और पक्के सदाचारी रामभक्त थे। वाराह क्षेत्रमें उनका स्थान था। गुरुजीके आश्रयमें प्राय जन्मसे पालन पोषण होनेके कारण शिशु तुलसीदासने माता पिताके बदले गुरुके ही वात्सल्य प्रेमका अनुभव कर पाया। गुरुके वात्सल्य भाजन रहकर जबसे होश सभाला तबसे समावर्त्तनतक रामभक्तिका अत्यन्त गहरा संस्कार इनके रगरगमें प्रवेश करता गया।

"मै पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सुकर खेत
समुझी नहि तासि बालपन तब अति रहेउ अचेत

× × × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।"

गुरुने रामकथा इन्हें बार बार सुनायी थी। कथा अनेक प्रकारसे अनेक पुराणों रामायणों और उपाख्यानोंसे इन्हें पढायी गयी। जब इन्होंने गार्हस्थ्यमें प्रवेश किया, इनके मनमें रामकथा अत्यन्त दृढतासे बैठ चुकी थी।

साधुके चेलेपनकी अवस्थामें इन्हें भिक्षाटन अवश्य ही करना पडा था। कवित्त रामायणमें कविने अपनी उस दशाकी भी झलक दिखायी है। सभव है कि गृहस्थाश्रमसे वैरागी हो जानेपर भी भिक्षाकी यह दशा आरभमें आयी हो, परन्तु वर्णनसे अधिकाश बाल्यावस्था ही चित्रित होती है। प्रौढावस्थामें पढे लिखे ब्राह्मणके लिये उतनी लाचारीकी अवस्थाका होना अधिक सुसगत और सभाव्य नहीं जान पडता।

गोस्वामीकी उपाधि कुछ सन्देह उत्पन्न करती है। शायद "गोस्वामी" पदसे और नन्ददासके भाई किसी तुलसीदासके होनेसे, सहज ही यह अनुमान होता है कि यह वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव होंगे। परन्तु गोस्वामीजीकी सारी रचनाएं यही सिद्ध करती हैं कि वह किसी सम्प्रदायके न थे। कट्टर रामो पासक थे अत वल्लभकुली होना सम्भव न था। नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे, पर गोसाईंजीके लिये अनेक गवाहियां सरयूपारीण होनेके पक्षमें हैं। ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थजी भी अपनेको गोस्वामी तुलसीदासजीका वंशज बताते थे। परन्तु हमारे गोस्वामी तुलसीदासजीके कोई सन्तान न थी तो उनके वशज कैसे? स्वामी रामतीर्थका पूर्वनाम गोस्वामी तीरथ राम था और हमारा अनुमान है कि वह अवश्य ही गोस्वामी तुलसीदासजीके वशज थे, परन्तु उनके वह पूर्वपुरुष मानसकार तुलसीदास न थे, नन्ददासजीके भाई सनाढ्य तुलसीदासजी थे।

गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंमें रामोपासना मात्रका प्रति पादन किया है, परन्तु एक भी सम्प्रदायका नाम नहीं लिया है। जान पड़ता है कि उनके गुरुदेव भी किसी सम्प्रदायके न थे। लोग कहते हैं कि उनका नाम नरहरिदास था जिसको एक अद्भुत सकेतसे गोस्वामीजी वन्दनामें प्रकट करते हैं। यह असभव नहीं है। यदि वह गोस्वामी नरहरिदासजी थे तो गोस्वामी पद या तो उन्होंने स्वामी शकराचार्य्यके शिष्योंका परम्परासे ग्रहण किया होगा अथवा विद्वान् साधु थे गोस्वामी पद उनके लिये रूढिसे प्रयुक्त होने लगा होगा, गोस्वामी नर हरिदासजी स्वय पथ और साम्प्रदायिकताके विरोधी रहे होंगे। गोस्वामीजी तो साम्प्रदायिकताके कट्टर विरोधी थे। 'जलपहि कलपित पथ अनेका।"

"साखी सब्दी दोहरा कहि कहनी उपखान,
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं वेदपुरान ॥५५४॥
सुति सम्मति हरि भगतिपथ सजुत विरति विवेक
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कलपहिं पथ अनेक ॥५५५॥

फिर उनका स्वयं किसी सम्प्रदायका होना असंभव है। जो लोग किसी सम्प्रदायके नहीं होते वह साधारणतया स्मार्त्त कहलाते हैं। इन स्मार्त्तोंमें भी जो जिस भावसे भगवान्‌की उपासना करता है अपने इष्टदेवके अनुकूल नाम पाता है। इसी नियमसे गोस्वामीजीको स्मार्त्त वैष्णव कहते हैं। गोस्वामी शब्द उस साधुके लिये उपयुक्त हो सकता है जो इन्द्रियोंको वशमें रखनेका साधन करे। यदि सम्प्रदायवालोंको केवल विशेष सम्प्रदायकी दीक्षा लेनेके कारण स्वामी या गोस्वामी की उपाधि धारण करनेका अधिकार है तो तुलसीदासजी जैसे अपूर्व साधुको जो सच्चे वैरागी और इन्द्रियोंको वशमें रखने-वाले महात्मा हो गये हैं बिना सम्प्रदायके गोस्वामी कहलानेमें रत्तीभर भी अनौचित्य नहीं हो सकता।

नरहरिदासके नामके अनुमानमात्रपर डा० ग्रियर्सन आदिने गोस्वामीजीको रामानन्दी ठहराया है और गुरुवंशावलीतक प्रस्तुत की है। परन्तु तुलसीचरित्रसे कमसे कम यह निश्चित होता है कि वह श्रीरामानन्दजीके शिष्य नरहरिदासजीके शिष्य न थे।

५—वैराग्यका आरम्भिक जीवन

बिनु सतसंग विवेक न होई
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई

गोसाईं जी ससुरालसे निकले तो घर न गये। सीधे राम नामके सतत उपदेश करनेवाले भगवान् शङ्करकी नगरी काशीमें

आये। पहले यहा अपना स्थिर निवास नहीं रखा। यहासे अयोध्या गये और अयोध्यासे चित्रकूट। पहले बारह चौदह बरस अधिकाश चित्रकूट और अयोध्यामें बिताये। उन दिनों जब कभी काशी आते तो प्रहलाद घाटमें प० गगाराम जोशीके यहा ठहरा करते थे।

पहली बार काशीमें गोसाई जी जब प्रहलाद घाटमें ठहरे तो इनका नियम था कि गगापार शौचको जाते और लौटती बेर शौचका बचा जल राहके एक आमके वृक्षकी जडमें छोड दिया करते थे। उस वृक्षपर एक प्रेत रहता था। जलसे उसकी तृप्ति होती थी। एक दिन प्रसन्न हो प्रकट हुआ और बोला "मैं तेरी सेवासे प्रसन्न हू, बोल क्या चाहता है ?"

गोस्वामीजीको विस्मय अवश्य हुआ, पर इनकी इच्छा क्या हो सकती थी! इन्होंने तो इच्छाओंका परित्याग कर दिया था। बोले "मैं तो भगवान् रामचन्द्रके दर्शन चाहता हू, बन पडे तो करा दे।"

प्रेत हैरान हुआ, बोला "यह तो मेरे बसकी बात नहीं है। यह जिसके द्वारा हो सकता है, उसका पता बताता हू।" काशीजीमें अमुक स्थानपर रामायणकी कथामें कोढीका भेष धर हनुमानजी आया करते हैं। उनको पकड। वह अवश्य दर्शन करा सकेंगे।"

गोस्वामीजी वहा पहुँचे। कथा समाप्त होनेपर सबके अतमें एक कोढी उठा। गोसाईंजी उसके चरणोंपर गिर पडे। उसने बहुतेरा चाहा कि इससे बचकर निकल जाऊ पर गोसाई जीने न छोडा। कोढी बोला "भाई, मुझे क्यों तग करते हो, जाने दो।" गोसाई जीने अपना मनोरथ कहा और हठपर अडे रहे। अन्तमें हनुमानजी बोले, "अच्छा, जाओ, चित्रकूटमें दर्शन हो जायँगे।"

अब गोसाई जी अपने मित्रसे तुरन्त विदा हो चित्रकूट चले। बया उतावली थी!

"बहु विधि करत मनोरथ जात न लागी वार"

किसी न किसी तरह चित्रकूट जा पहुँचे। वहा भगवान्के मदिरके ही पास रहने लगे और नित्य दर्शनमें लग गये। परन्तु कुछ कालतक साक्षात्कार न हुआ। एक दिन वनमें अटन करते समय दो घोडोंपर सवार दो राजकुमार देखे जो धनुष बाण लिये शिकारको जा रहे थे। एक तो साँवला था दूसरा गोरा। दोनों बडे सुन्दर थे। देखकर मोहित हो गये परन्तु यह न समझमें आया कि यही भगवान् हैं। उस रात सपनेमें हनुमानजीने ब्राह्मणरूपसे दर्शन दिये और पूछा "कहो महाराज! दर्शन हुए न ?" यह बोले "कहाँ हुए ? अभी भाग्य नहीं जगे।" हनुमानजीने पूछा "क्या दो धनुर्धरोंको नहीं देखा ?" बोले "हा, देखा, एक मृगके पीछे दो सुन्दर राजकुमार सवार घोडा फेंकते चले जाते थे।" ब्राह्मण बोला "अजी, वह तो भगवान् राम और लक्ष्मण स्वय थे!" गोस्वामीजी यह जानकर बहुत पछताये। बोले "क्या फिर ऐसे दर्शन इस अभागीको हो सकेंगे?" हनुमानजी बोले "हे भाग्यवान्, कलियुगमें इतना दर्शन भी किसके भाग्यमें है ?" गोसाईं जीने उस झलकको ही हृदयमें अकित कर लिया। चित्रकूटकी प्रदक्षिणा की और वहा रहने लगे। कुछ दिनों रहकर फिर अयोध्या गये और अयोध्यासे फिर काशी आये। यहा जोशी गगारामके यहा रहने लगे।

जब गोसाईं जी प्रह्लाद घाटपर रहते थे, एक रात उनके घरमें चोर पैठे तो एकाएकी कठिन पहरा देख उन्हें लौट जाना पडा। दूसरी रात फिर वही दृश्य देखा कि एक सुन्दर सावला बालक धनुषबाण धारण किये पहरा दे रहा है। चोर लौट गये। प्रात गोसाईं जीसे चोरोंमेंसे एकने जाकर यह अद्भुत लीला सुनायी तो गोसाईं जीको बडा पछतावा हुआ कि प्रभुको मेरे कारण इतना कष्ट करना पडता है। बस जो कुछ पास था

लुटा दिया। चोर भी गोसाईं जीके शिष्य हो गये। इसके बाद गोसाईं जी पर्य्यटनको निकले।

जब गोस्वामीजी भृगुआश्रम* गये, तो हंसनगर और परसिया होते हुए राजा गभीरदेवके भी अतिथि हुए थे। वहासे गगापार उतरकर ब्रह्मपुरमें † ब्रह्मेश्वर महादेवके दर्शन करके कांत* नामके गाँवमें आये। वहा उन्हें भोजनका कोई पदार्थ न मिला, उस गावके लोग भी बडी क्रूर प्रकृतिके देख पडे। गावके बाहर निकलते निकलते वहीका रहनेवाला एक अहीर मिला जिसके एक अच्छी गोशाला थी और जो साधु ब्राह्मणोंका सत्कार किया करता था। इस अहीरने गोसाईं जी को देखकर दडवत की और अपने घर बडी विनय और आग्रह-से ले गया। इस अहीरका नाम मँगरू था। इसके सत्कारसे प्रसन्न हो गोस्वामीजीने उसे उपदेश दिये, और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा वश बढे, सुखी और समृद्ध रहे और भगवान्के चरणारविन्दमें विश्वास रहे। कहते हैं कि इस वशके अहीर अबतक विद्यमान हैं, भक्त हैं, साधुसेवी हैं और उनका अतिथि सत्कार कान्त ब्रह्मपुरके आसपास प्रसिद्ध है।

वहासे चलकर गोस्वामीजी बेलापतौतमें आये। वहा गोविन्दमिश्र शाकद्वीपीय और रघुनाथसिंह क्षत्रियसे भेंट हुई। उन्होंने बडे आदरसे गोसाईं जीको ठहराया, बहुत सत्कार किया। गोसाईं जी कुछ दिनों यहा ठहरे थे। इस गाँवका नाम उन्होंने बदलकर रघुनाथपुर कर दिया। यह गाँव ब्रह्मपुरसे कोसभरपर है। इसके वहाने भगवान्का नाम भी लेते हैं और रघुनाथसिंहका स्मारक भी चलता है। इस गाँवसे चलकर गोस्वामीजी कैथीमें भी रहे। वहाके प्रधान जोरावर

* जिला बलिया।

† जिला शाहाबाद।

सिंहने भी उनका बहुत सत्कार किया था। वहाँसे घूमते घामते गोसाईं जी पुरुषोत्तमपुरी गये और दर्शनोंके उपरान्त काशी लौटे।

६—श्रीरामचरितमानसका अवतार

संवत सोरह सै एकतीसा,
करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नवमी भौमवार मधुमासा,
अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

कुछ दिनों काशीमें रहकर गोस्वामीजी अयोध्याजी चले गये। वहीं बराबर रहने लगे। संवत् १६३१ की रामनवमीको वहीं श्रीरामचरितमानसका अवतार हुआ। इस समय गोस्वामीजीकी अवस्था मानसमयङ्कके अनुसार तो ७७ वर्षकी थी, परन्तु जन्मकाल १५८९ माननेपर गोस्वामीजीकी अवस्था इस समय ४२ वर्षकी होगी। कविताकी प्रौढ़ता साक्षी है कि रचना अवश्य ही चालीस वरसके ऊपरकी होगी। आरण्य काण्डतककी रचना अयोध्याजीमें ही रहकर हुई होगी।

अयोध्याजीमें कुछ बरस रहनेके बाद गोसाईं जी काशीजी में आकर पहले प्रह्लाद घाटमें स्थिर रीतिसे रहने लगे। वहीं किष्किन्धाकाण्डसे आगेकी रचनाएँ हुईं।

श्रीरामचरितमानसकी रचना यद्यपि संवत् १६३१में गोस्वामीजीने आरम्भ की तथापि रचनासम्बन्धी विचार छात्रावस्थासे ही इनके मनमें था। हनुमानचालीसा तो अवश्य ही युवावस्थाकी रचना है। यह बहुत सम्भव है कि रामचरितके अनेक अंश पहले ही रचे जा चुके हों और नियमपूर्वक ग्रंथ प्रणयनके पुष्ट विचारसे संवत् १६३१की रामनवमीको ही आरम्भसे रचना हुई हो।

जान पडता है कि बीजापुरके आदिलशाह बादशाहके दाना ध्यक्ष श्रीदत्तात्रेयजी रामोपासक थे। यह गुजराती वा महा राष्ट्र सज्जन रहे होंगे। गोस्वामीजीकी इनकी मैत्री होगी। गोस्वामीजीने वाल्मीकीय रामायणकी एक प्रति लिखकर दी। यह बात सवत् १६४१में समाप्त किये हुए वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड) से स्पष्ट होती है जो काशीके सरकारी सरस्वती भवनमें मौजूद है। यह भी स्पष्ट है कि गोसाईजीका अधिक समय इधर ग्रन्थ लिखनेमें गया होगा। सवत् १६४२में जानकी मगल और पार्वतीमङ्गल लिखे गये। सभवत १६३१ से १६४२ तक १० ११ वर्षका समय अयोध्या और काशीमें बीता।

यह सभव नहीं कि गोस्वामीजी जैसे प्रतिभाशाली कवि, चरित्रवान् साधु और भगवान्के सच्चे अनन्यभक्त इतने दिनों तक काशीजीमें रहें और विख्यात न हो जायँ। रामचरित मानसने तो इनकी प्रसिद्धि इतने कालमें बडी दूर दूर फैला दी थी। काशीजी शैवों और वैष्णवोंके परस्परके झगडोंका प्रसिद्ध अखाडा था। उन दिनों विशेष रूपसे साम्प्रदायिक झगडे हिन्दूसमाजको जर्जर कर रहे थे। कबीरपंथ, नानक पथ, दादूपथ आदि अपनी अपनी ढाई चावलकी खिचडी अलग पकाते थे। ब्राह्मण और अब्राह्मणके भी झगडे जोर शोरसे थे। ब्राह्मण अपनी विद्याका तुच्छ "भाषा" में प्रचार नही चाहता था और अपना महत्व अन्य वर्णों और जातियों पर बनाये रखना चाहता था। ऐसी स्थितिमें गोसाईजी ठढे हृदयसे सबमें मेल करानेके लिये उत्सुक थे। उनकी समस्त रचनाए इस प्रयत्नका प्रमाण हैं। वह देखते थे कि आपसकी फूटसे हिन्दूमात्र बाहरी विधर्मियोंके चगुलमें बेतरह फँसे हुए हैं। उन्होंने सब सम्प्रदायोंकी एकताके प्रयत्नमें अपनी लोक प्रियता काशीमें खोयी। जब जब वह असफलतासे घबराते थे काशी छोडकर पर्यटनको चले जाते थे। काशीजीमें कुछ

थोड़ेसे ही सच्चे भक्त विद्वान् और प्रेमी थे जिनसे गोस्वामी जीसे बड़ा स्नेह था। गंगारामके तो गोस्वामीजीने प्राण ही बचाये थे। टोडरमल काशीजीमें एक भारी जमींदार थे। वह गोस्वामीजीके बड़े भक्त थे। उन्हें गोसाइयोंने मार डाला। उनकी मृत्युके पीछे उनके पौत्र कँधई और पुत्र अनन्दराममें झगड़ा हुआ। उसका निबटारा गोसाईंजीने किया। पंचनामा १६६९का है। गोस्वामीजीने नरकाव्य कभी नहीं किया था। इन मित्रकी मृत्युपर ही कुछ दोहे रचे थे। शायद इसलिये कि टोडर रामभक्त और रामोपासक थे।

७—बारह बरसकी जीवनयात्रा

सन्त असन्तनकी असि करनी, जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय जिमि भाई, निज गुन देइ सुगंध बसाई।
ताते सुर सीसन चढ़त, जगवल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहि परसु बदन यहु दंड।

कहते हैं कि उस समय काशीमें एक बड़े प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी श्रीमधुसूदन सरस्वती शंकर मतानुयायी थे। उनसे गोस्वामीजीसे शास्त्रार्थ हुआ था। श्रीमधुसूदनजी श्री गोस्वामीजीके वादसे ऐसे प्रसन्न हुए कि आपसमें शास्त्रार्थके कारण किसी तरहके विरोध भावके उत्पन्न होनेके बदले बड़ा स्नेह हो गया, और उन्होंने गोसाईंजीकी प्रशंसामें यह श्लोक रचा।

"आनंद काननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसी तरुः
कवितामंजरी यस्य राममभ्रर भूषिता

इस शास्त्रार्थका कारण गोपालदासजीने रामायण माहात्म्यमें यह लिखा है कि भाषामें होनेके कारण 'रामचरितमानस' का आदर पंडित समुदायमें न था। पण्डितोंका कहना था कि

यदि मधुसूदन सरस्वतीजी इसे मान लें तो हम भी मानेंगे। मधुसूदन सरस्वतीके शास्त्रार्थके उपरान्त मानसका आदर पडित समुदायमें भी होने लगा।

पडित घनश्याम शुक्ल संस्कृतके अच्छे कवि थे। पर भाषा काव्य रचना भी करते थे। इसमें उन्हें अधिक रुचि थी। इसलिये उन्होंने धर्मशास्त्रके कुछ ग्रन्थ भाषामें लिखे। इसपर किसी पडितने आपत्ति की कि देववाणीमें न लिखनेसे ईश्वर अप्रसन्न होता है। आप संस्कृतमें ही लिखा कीजिये। वह गोस्वामीजीके मिलनेवालोंमें थे, उनसे सलाह ली, तो बोले—

"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिये साच।

काम तो आवे कामरी का लै करे कुमाच॥"

घनश्यामजीने अपनी भाषाकविता जारी रखी।

गोसाईं जी अभी प्रहलाद घाटमें ही रहते थे कि चोरोंका एक बार फिर आक्रमण हुआ। गोसाईं जी कहींसे लौट रहे थे। बहुत रात हो गयी थी। अँधेरेमें चोरोंने घेरा। उन्होंने हनुमानजीका स्मरण कर ज्योंही यह दोहा पढा

बासर ढासनिके ढका रजनी चहु दिसि चोर

दलत दयानिधि देखिये कपि केसरी किसोर

त्योंही हनुमानजीके भीमरूपसे चोर डर गये और अपने प्राण लेकर भागे।

एक बार कोई ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री शृंगार किये सती होनेको जा रही थी। राहमें उस स्त्रीने गोस्वामी जीको देखकर प्रणाम किया। गोस्वामीजीने असीस दी "सौभाग्यवती हो।"

स्त्री रोकर बोली "भगवन्, मैं तो अभागिन हू। अपनी असीस सफल करो कि पति मिले। सती हो जाने रही हू। मेरे नाथ तो चले गये।" गोस्वामीजी रुक गये। सारा

समाचार सुना। उस दीन विधवाको रोका कहा रामकी मरजी थी सो हुई। असीस अनजानतेमें निकल गयी। तुम रामका भजन करके शेष जीवन काटो। सतीत्वसे स्वर्ग ही मिलेगा। स्वर्गका लालच न करो। स्वर्गसे फिर इसी मर्त्यलोकमें लौटना होता है।" पतिव्रता बोली "भगवन्, स्वर्ग नहीं चाहिये, मुझे पतिदेव चाहियें। सती होनेसे मैं उन्हींके पास जाऊंगी।" गोस्वामीजी बोले "तो, रामनाम जपनेसे स्वामी भी मिलेंगे और सब स्वामियोंके स्वामी राम मिलेंगे। तू राम राम जपती शेष जीवन काट दे, सती मत हो। राम भला करेंगे।" स्त्री और साथी राम राम कहते गंगा किनारे पहुंचे। लाश ले जाने वालोंने घाटतक पहुँचा दिया था। यहां वह ब्राह्मण जी उठा था। लोग बंधन खोल रहे थे। उस घटनासे सबको रामनाम पर विश्वास हो गया। शायद तभीसे मुर्देके साथ 'रामनाम सत्य है' कहनेकी प्रथा चल पड़ी है। वह सब गोस्वामीजीके शिष्य हो गये।

इनके चमत्कारोंसे भक्तिसे, और सत्सङ्गके लिये भी लोग इन्हें बहुत घेरने लगे। इसलिये इन्होंने प्रह्लाद घाट छोड़ दिया। कुछ दिनोंके लिये फिर चित्रकूट और अयोध्याकी यात्रा की। यात्राओंसे लौटनेपर हनुमानफाटकपर आकर रहने लगे।

गोस्वामीजी भगवान्को केवल पतितपावन कहकर प्रार्थना ही नहीं करते थे। उनका भगवान्की पतितपावनतामें इतना दृढ विश्वास था कि वह अपने आचरणमें भी विश्वासको बरतते थे। काशीमें एक भंगी था जो अयोध्याजीसे आकर बसा था। वह बड़े प्रेमसे अवध-सरयू जपता था। इससे गोस्वामीजी बहुत प्रसन्न रहते थे और आदर सत्कार करते थे। एक दिन एक हत्यारेने आवाज लगायी "है कोई रामका प्यारा, रामके नामपर इस हत्यारेको भी कुछ भोजन दे।" गोस्वामीजीके कानोंमें यह शब्द प[illegible] ने उसे बड़े प्रेमसे बुलाया गले

लगाया और अपने पास बैठाकर प्रसाद भोजन कराया। उनका मत था कि रामनाम लेनेसे कैसा ही पतित हो परम पावन हो जाता है। इसपर काशीके ब्राह्मण बहुत बिगड़े। गोसाईंजीको भ्रष्ट प्रसिद्ध किया। कुछ ब्राह्मण इनके यहां शास्त्रार्थके लिये आये। गोस्वामीजीने बहुतेरा समझाया बहुत प्रमाण दिये, जब उनके मनमें बात न बैठी, तब गोस्वामीजीने कहा कि "अच्छा बतलाइये, यह हत्यारा शुद्ध हो गया इस बातका कैसा प्रमाण मिले कि आप लोगोंको सन्तोष हो।" उन्होंने निश्चय किया कि "विश्वनाथजीका पत्थरका नान्दी हत्यारेके हाथका भोजन करे तो हम मानेंगे।" कहते हैं कि ऐसा ही हुआ और ब्राह्मण कायल हो गये। परन्तु जो हो गोसाईंजीके लेखोंसे स्पष्ट है कि उनके विरोधी अनेक हो गये थे। लोग इन्हें भ्रष्ट, चाण्डाल, कुजाति, नीच आदि कहते थे और इन्हें गालियां देते थे। सबको एक करनेवालेकी बहुधा ऐसी दशा होती ही है। इतने पर भी गोसाईंजी कभी डरे नहीं। रामनामकी पतितपावनतामें उनका विश्वास अटल रहा। जिस दिन पहले पहल वह भंगी राम राम कहता और अवधलरघू जपता सुन पड़ा था और गोसाईंजीको मालूम हुआ था कि अयोध्याजीका भंगी है उसे बुलाकर उन्होंने गले लगाया था। बहुत सत्कारसे प्रसाद खिलाया था। गोस्वामीजीके ऐसे आचरणोंसे भला ब्राह्मण समुदाय कब प्रसन्न रह सकता था! ऐसे प्रसंगोंपर विरोधकी उपेक्षा करते हुए ही जान पड़ता है कि गोस्वामीजीने यह कवित्त कहे हैं—

मेरे जाति पाति न चहौं काहूकी जाति पाति मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको। लोक परलोक रघुनाथहीके हाथ सब भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको॥ अतिहीं अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग साहनको गोत गोत होत है गुलामको। साधुकै असाधुकै भलेकै पोच सोच कहा काहूके द्वार परौं जो हौं सो हौं रामको॥

"कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै रामको गुलाम खरो खूब है। साधु जानैं महा साधु खल जानैं महा खल बानी झूठी साची कोटि उठत हबूब है। चहत न काहूसों कहत ना काहूकी कछु सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है। तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथहीके रामकी भगति भूमि मेरी मति दूब है॥"

जब विरोधियोंके कारण अधिक अशान्ति होती थी, पर्य्यटनको निकल पड़ते थे। संवत् १६४३ से संवत् १६७३ तकके दशकमें अनुमानतः अधिक समय इन्होंने यात्रामें बिताया। चित्रकूट अयोध्या नैमिषारण्य और व्रजमण्डल घूमे।

चित्रकूटकी यात्रामें एक बार चुनार या विंध्यके राजाने गोस्वामीजीको बड़े आदरसे अपनी राजधानीमें बुलाया कि कुछ सत्सङ्ग हो। गोस्वामीजी बड़े सत्कारसे ठहराये गये। इतनेमें उसी समय सम्राट्की आज्ञासे किसी कारणसे वह राजा पकड़कर दिल्ली भेज दिया गया। गोस्वामीजी बराबर उनके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते रहे। राजाको दंड देनेके बदले सम्राट्ने बहुत सम्मान दिया और उनके अधिकार बढ़ाकर लौटाया। लौटनेपर गोस्वामीजीको राजाने आग्रहपूर्वक कुछ दिनों रोक रखा और इनके सत्संगका अप्रमेय लाभ उठाता रहा।

कहते हैं कि विंध्यकी तराईमें दो और राजा रहते थे। उन दोनोंमें आपसकी प्रतिज्ञा हुई थी कि हमारे लड़के लड़कीसे परस्पर विवाह होगा। संयोगसे दोनोंके लड़कियां हुईं। उनमेंसे एकने लोभवश अपनी कन्याको पुत्र मशहूर किया और जब दोनों बड़े हुए तब विवाह हो गया। गौनेके पीछे जब यह बात खुली तो ठगे हुए राजाने क्रोधमें आकर धोखा देनेवाले राजापर चढ़ाई की। अन्तमें कपटी राजा हारकर भागा और गोसाईंजीकी शरण हुआ। गोसाईंजीने पुरुषरूपधारी राजकन्याको भगवान्‌का चरणामृत पिलाया और सीत प्रसाद खिलाया। वह कन्या पुरुष हो गयी। इतनेमें सेनासहित लड़की

वाला राजा भी वहा पहुँचा। इस चमत्कारसे उनका झगडा निपट गया। परस्पर सन्धि हो गयी। इसीपर गोस्वामीजीने कहा है।

कबहुँक दरसन सन्तके पारस मनी अतीत,

नारि पलटि सो नर भयो लेत प्रसादी सीत।

तुलसी रघुवर सेवतहिं मिटिगो कालेकाल,

नारि पलट सो नर भयो ऐसो दीन दयाल।

विन्ध्यकी तराईमें कुछ दिनों रहकर गोस्वामीजी प्रयाग गये वहा प्रसिद्ध गुरुभक्त मुरारिदेवसे (रसिक मुरारीजीसे) भेट हुई। उनसे बड़ी मैत्री हो गयी। वहीं मलूकदासजीसे भी भेट हुई थी। कहते हैं कि स्वामी दरियानन्दसे भी यहा समागम हुआ था।

चित्रकूट जाकर कुछ काल वहा निवास किया। कहते हैं कि एक दरिद्र ब्राह्मण मदाकिनीके किनारे प्राण देनेपर उतारू था। गोस्वामीजीने पहले उसे विषयकी निःसारतापर बहुत समझाया बुझाया। जब बात उसके मनमें न पैठी तब उसे आत्महत्याके पापसे बचानेको भगवान्‌की स्तुति की। उस समय मदाकिनीमेंसे एक शिला निकल आयी। वह अबतक दरिद्रमोचन शिलाके नामसे विख्यात है और उसके सम्बन्धमें यही कथा कही जाती है।

चित्रकूटमें भगवान्‌के दो बार और दर्शनकी कथा कही जाती है। परन्तु इसमें बहुत कुछ सत्यता नहीं प्रतीत होती। यदि उन्हें चित्रकूटमें दर्शनोंका ऐसा सुभीता था तो चित्रकूट जैसे रमणीक और भगवद्दर्शनप्रदायक स्थानको छोड काशीमें क्यों रहते? चित्रकूटमें गोस्वामीजी उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक रहते थे, जिस प्रकार अयोध्याजीमें।

चित्रकूटमें गोस्वामीजी जिन दिनों वहा थे, सडीलेके स्वामी

नन्दलालजी भी अयोध्याजीके दर्शन करते चित्रकूट आये थे। वह गोस्वामीजीसे मिले। गोस्वामीजीने उन्हें अपने हाथसे लिखकर रामकवच भेट किया। स्वामी नन्दलालजीको अयोध्या जीके महात्मा मुक्तामणिदाससे बडा प्रेम था और गोस्वामी जीसे और मुक्तामणिदाससे अवधके पूर्व निवासमें बहुत गाढी मैत्री थी। स्वामी नन्दलालजीने मुक्तामणिदासजीसे ही गोस्वामीजीकी प्रशसा सुनी थी। इसीलिये इस अवसरपर मिले।

गोस्वामीजी यहासे अयोध्या गये और मुक्तामणिदासजीसे भेट की। यह महात्मा गोसाईजीके मित्र और बडे अच्छे कवि थे। आपके पद गोसाईजीको बहुत पसद थे।

अवधसे गोस्वामीजी नैमिषारण्य आये। यहा ही गोस्वामी जीका कभी गुरुस्थान था। इसी 'सूकर खेत" में उन्होंने गुरु देवसे रामकथा सुनी थी। शूकरक्षेत्रका दर्शन करके कुछ दिन पसकामें रहे। सिवार गाँवमें सीताकूपके समीप भी कुछ दिन रहे। फिर कुछ दिन लक्ष्मणपुर (लखनऊ) में निवास हुआ। वहाके एक निरक्षर निर्धन भाटको अच्छा कवि बना दिया और उसकी जीविकाका सहारा करा दिया।

वहासे थोडी दूरपर मडियाहू गावँमें भीष्म नामक एक भक्त रहते थे। उनके बनाये नखसिखको सुनकर गोस्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए। मडियाहूमें उनसे बहुत प्रेमसे मिले।

वहासे गोस्वामीजी मलीहाबाद आये। वहा एक भाट उनका बडा भक्त था। उसे अपनी लिखी रामचरितमानसकी एक पोथी दी। सुनते है कि यह पोथी उसके वशमें आज भी मौजूद है और पूजी जाती है। वहासे प्रभाती स्नान करते वाल्मीकिके आश्रममें आये। यहा श्री अनन्यमाधवसे मिले। यह भी बडे भक्त और ऊची कोटिके कवि थे। यहा गोसाइ जीने "मैं हरि पतितपावन सुने वाला पद रचा। अनन्यमाधव जीने उत्तरमें यह पद

"तबतें कहाँ पतित नर रह्यो ।
जबतें गुरु उपदेस दीन्हों नाम नौका गह्यो ॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कंचन लह्यो ।
कस न कसि कसि लेहु स्वामी अजन चाहत चह्यो ॥
उभरि आयो विरहबानी मोल महँगे वह्यो ।
खीर नीरते भयो न्यारो नरक तें निर्वह्यो ॥
मल मासन हाथ आयो त्यागि सरवर मह्यो ।
अनन्य माधव दास तुलसी भवजलधि निर्वह्यो ॥"

वहां कुछ दिन रहकर वे ब्रह्मावर्त्त बिठूरमें गंगातटपर आ रहे। वहांसे वाल्मीकिजीके स्थानसे होते सडीलेमें आये। यहा स्वामी नन्दलालजीके यहा कुछ कालतक सत्संग हुआ। एक ब्राह्मण देवता सडीलेमें रहते थे जो गोस्वामीजीके बडे भक्त थे। गोस्वामीजीने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक कृष्णभक्त पुत्र होगा। उनके पुत्र मिश्र वशीधरजी प्रसिद्ध कृष्णभक्त और कवि हुए। मिसरिखके पास एक गाँव जयरामपुर है वहा बड की एक सूखी डाल गाड दी वह हरी हो गयी। उसका नाम वंशीवट रखा और आज्ञा की कि श्रीरामविवाहोत्सवके दिन अगहन सुदी ५ को यहा रासलीला कराया करो। अबतक वहा रासलीला होती है।

रामपुरमें खैरातके नामपर इनकी नाव रोक दी गयी थी। गोस्वामीजीको जब रोकनेका उद्देश्य जान पड़ा तो उन्होंने अपना सब कुछ वहीं लुटा दिया। जमीदारने जब सुना तो उनके पैरोंपर गिरा, बडे आग्रहसे उन्हें अपने घर लाया और सब तरहका सत्कार किया। प्रसन्न होकर उसे भी अपनी रामायणकी एक प्रति दी।

घूमते घामते नैमिषारण्य आदि होते गोस्वामीजी फिर अवध

पुरीको लौटे और कुछ काल यहां बिताकर फिर काशी आये।

काशीमें आकर कुछ दिन शान्तिसे कटे परन्तु जब लोगोंको पता लगा कि गोस्वामीजी लौट आये तो दर्शनोंके लिये पुराने श्रद्धालु और भक्त इकट्ठे होने लगे। विरोधियों और ईर्षालुओंको भी शिरोवेदना होने लगी। स्वार्थ साधनेवाले भी फिर जुटने लगे।

एक ब्राह्मण देवता जीविकाविहीन थे बहुत दुःखी रहते थे। गोस्वामीजीके पास आया करते थे। गंगापार कछारमें उनकी खेती थी। गोस्वामीजीने उनके लिये श्रीगंगाजीसे विनती की। गंगाजीने बहुत सी भूमि उनके लिये छोड दी।

गंगाराम ज्योतिषीके एक लाख रुपये पारितोषिकवाली कथामें दो एक ऐतिहासिक प्रमादोंके कारण कई लेखकोंने सारी बात असत्य ठहरा दी है। गोस्वामीजीने हनुमानजीके अनेक मंदिर बनवाये, यह तो वास्तविक तथ्य अवश्य है। मंदिर मौजूद हैं। रही यह बात कि गोस्वामीजीको इतना धन कहांसे मिला। किसी धनाढ्यने दिया अवश्य। परन्तु देनेवालोंमें एक गंगारामका ही नाम लिया जाता है। और किसी धनी दाताकी चर्चाके अभावमें यह प्रश्न रह जाता है कि ज्योतिषी गंगाराम को इतना धन कहांसे मिला। राजघाटके गहमार क्षत्रिय राजा वाली बात अप्रामाणिक सिद्ध होनेके सिवा शेष सारी कथा स्वाभाविक है। काशीजीमें सदासे देश देशके राजाओंका निवास चला आया है। संभव है किसी ऐसे ही प्रवासी राजाके [राजघाट न सही गायघाट सही] सम्बन्धमें यह कथा हो। बनारसमें राजाओंकी न तो कमी रहा है और न शिकार खेलने का व्यसन किसी कालमें राजाओंके लिये अनोखा था। हां, जो सगुन विचारना, फलित ज्यौतिष वा प्रेतका अस्तित्व ढोंग मानते हों, वह चाहे गोस्वामीजीपर हँस लें, पर गोस्वामीजी इन बातोंको मानते थे, यह बात उनके लेखोंसे स्पष्ट है और

आज भी सभ्य ससारमें इनके माननेवालोंकी सख्या थोडी नहीं है।

सवत् १६६५ के ज्येष्ठ शुक्ल दशमी रविवारको प० गगाराम जोशीको उनके आश्रयदाता राजाने बुला भेजा। राजकुमार शिकार खेलने गये थे। उनके नौकरको शेरने फाड डाला था। राजा साहबको खबर मिली थी कि राजकुमारको शेरने फाड डाला है। राजापर तो वज्रपात हो गया। ज्यौतिषी गगारामको बुलाकर आज्ञा की कि राजकुमारका सच्चा हाल बताओगे तो पारितोषिक मिलेगा, नहीं तो मृत्युदड। राजकुमार जीते लौटे तो एक लाख इनाम। ज्यौतिषीजी घबराये और अपने मित्र गोस्वामीजीके पास आये। सारा समाचार सुनाया। गोसाईंजीने तुरन्त कलम दवात और कागज मागा। स्याही न मिलनेपर कत्थेसे रामशलाका खींची और प्रश्नका उत्तर बताया कि राजकुमार कुशलपूर्वक कल लौट आवेंगे। गगाराम जब उत्तर लेकर गये तो कैद कर लिये गये। शामको राजकुमार घर आया। बात सच्ची ठहरी। राजाके आनन्दका वारपार न रहा। एक लाख रुपये गगारामजीको इनाम मिले। बहुत आग्रह करके उसमेंसे बारह हजार गोस्वामीजीको गगारामने दिये जिससे गोस्वामीजीने काशीजीमें हनुमानजीके बारह मदिर बनवाये। सकटमोचन और अस्सीपरके हनुमानजीके मदिर इस प्रकार बने हुए मदिरोंमें प्रसिद्ध हैं। इस रामशलाका का अब पता नहीं है। जो प्रचलित हैं वह मनगढत हैं।

रामचरितमानस लिखनेसे गोस्वामीजीकी प्रशसा बडी दूर दूरतक पहुँच चुकी थी। रेल तार छापा अखबारका जमाना न था परन्तु काव्यरसिकता आजकलसे कम न थी। स्वय गोस्वामीजी अच्छे तीर्थाटन करनेवाले महात्मा थे। अकबरका प्रभावशाली शासन था। गोसाईं जी उत्तर भारतमें दिल्लीतक अवश्य घूमे होंगे। परन्तु इस कथाके लिये कोई ऐतिहासिक

आधार नहीं मिलता कि अकबर या जहांगीरने गोसाईं जीको दिल्ली बुलवा भेजा और चमत्कार दिखानेको कहा और इनकार करनेपर किलेमें क़ैद कर दिया। फिर बन्दरोंके उपद्रवसे लाचार हो गोसाईं जीसे क्षमा मांगी और उनकी आज्ञासे इस किलेको छोड़ दूसरा बनवाया। सम्भव है कि किसी छोटे मोटे अवि-श्वासी शासकसे पर्य्यटनमें काम पड़ गया हो। कवितासे पता लगता है कि गोस्वामीजी स्वयं कहीं बन्दी हुए होंगे, कहीं घोर सङ्कटमें पड़े होंगे जब हनुमानजीसे भांति भांतिसे कष्ट निवार णार्थ प्रार्थना करनी पड़ी।

गोस्वामीजी कोई काम चमत्कारप्रदर्शनके लिये कभी नहीं करते थे। जहां ऐसी सम्भावना होती वहांसे उनका सरल चित्त उन्हें विरत कर देता था। पतिको जिलानेवाली कथापर कई लेखक कहते हैं कि उन्होंने सौभाग्यवती शब्दको सत्य करके छोड़ा। कविकी रचनासे भी उसके स्वभावका पता लगता है। मानसके रचयिताकी सी सरलता और शालीनता किस लेखकमें पायी गयी है? "आरति विनय दीनता मोरी" का गंभीर चरित्र वान् लिखनेवाला गर्वपूर्वक अपने शब्द "सौभाग्यवती"की सत्यता प्रतिपादन करनेके लिये प्रतिज्ञा कर बैठे कि मैं मुर्देको जिलाकर छोड़ूंगा, कितना असंगत है, यह बात मानवचरित्रके समझनेवाले विचार सकते हैं।

गोसाईं जी दार्शनिक न थे। सीधे सरलचित्त दृढविश्वासी सच्चे भक्त थे। उनके उपदेश अत्यन्त सीधे और मार्मिक होते थे। श्रोताके हृदयमें तुरन्त स्थान कर लेते थे।

एक दिन एक अलखिये फकीरने आकर "अलख, अलख" जगाना आरंभ किया। गोसाईं जीने उसे डांटा

हम लखि लखहिं हमार लखि हम हमारके बीच।
तुलसी अलखहि का लखै राम नाम जपु नीच॥

अलखिया उसी दिनसे उपदेश पा रामनामी वैष्णव हो गया।

एक वेश्या गोसाईंजीकी बडी भक्ता हो गयी। उसे गोस्वामीजीने उपदेश किया। वह अपना पेशा छोड भगवद् भजनमें लग गयी।

बनखडीमें एक प्रेत रहता था। गोस्वामीजीके दर्शन और रामनामके उपदेशसे वह प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया।

८--व्रज-परिव्रजन

"वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाई रूप
मन अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है।"

—प्रियादास।

हनुमान फाटकके आसपासके मुहल्लोंमें अबकी तरह पहले भी मुसलमान अधिक रहते थे। गोस्वामीजीके यहा भक्तोंकी भीड और रामनामपर विश्वास करनेवालोंकी बढती हुई सख्या वहाके कट्टर नौमुसलिम सह नही सके। उन्होंने आये दिन कोई न कोई उपद्रव खडे करने आरंभ किये। गोसाईंजीने देखा कि यहाका रहना हो अब उचित नहीं। वहासे उठकर वह चुपकेसे गोपालमदिरके हातेमें आये। यहा श्री मुकुन्दराय जीके बागके पश्चिमदक्षिणके कोनेमें एक कोठरी आज भी मौजूद है जो गोस्वामीजीकी बैठक कहलाती है और प्रत्येक श्रावण शुक्ला सप्तमीको खोली जाती है। लोग पूजा करते हैं। यहा गोस्वामीजीकी गुफा थी। वैष्णवोंका सान्निध्य था। आसपास हिन्दुओंकी ही बस्ती थी। एकान्त था। यहा भीडसे बचाव था। इसी एकान्तमें विनयपत्रिकाका आरभ हुआ। बिंदुमाधवजीका मदिर पास ही था। उस समय बिंदुमाधव जीकी असली मूर्त्ति [जो अब एक गृहस्थके पास है] मदिरमें विराजमान थी। उसीका ध्यान और स्तुति गोस्वामीजीने की है। पचगगा और कृष्ण भगवानकी भी स्तुति है। राम और कृष्णकी एकता दिखायी है।

इसी समयके लगभग वृन्दावनसे नाभादासजी भी पधारे थे। जिस दिन वृन्दावनको लौटने वाले थे, मिलने आये। गोस्वामीजी विनयमें ऐसे मग्न थे कि नाभाजीकी बड़ी प्रतीक्षापर भी गुफासे न निकले। जब नाभाजी चले गये तब गोस्वामीजीको पता लगा कि एक महात्मा निराश चले गये। नाभाजी वृन्दावनके लिये चल चुके थे। मिलना असम्भव था। गोस्वामीजीने निश्चय कर लिया कि व्रजमंडलकी परिक्रमा भी करनी चाहिये और श्रीनाभाजीके भी दर्शन करने चाहियें। इस विचारसे गोस्वामीजी गोपालमन्दिरसे उठे और गोपालकी क्रीडा भूमिकी ओर चल पड़े।

गोस्वामीजी जिस दिन वृन्दावन पहुँचे, नाभादासजीके यहां साधुओंका भंडारा था। पगतें बैठ चुकी थीं। प्रसाद पत्तलों पर रखे जा रहे थे। सबसे अन्तकी पांतोंके अन्तमें थोड़ी जगह जूतों और खड़ाउओंके पास थी। गोस्वामीजी पहुँचे और वहीं बैठ गये। किसी महात्माने उस पत्तलको जिसपर पैर रखकर स्वयं बैठे थे गोस्वामीजीके लिये बढ़ा दिया कि उसपर बैठें, परन्तु इसी समय प्रसाद आ गया था उसे रखनेको पत्तल न था। उसी पत्तलको झाड़कर प्रसाद लेनेको फैलाया। परसने वालेने कहा, और पत्तल आता है ठहरिये। गोस्वामीजी बोले "किसी साधुके चरणोंसे यह पवित्र हो चुका है इससे अधिक पवित्र पात्र क्या होगा?" श्रीनाभादासजी दूरसे यह चरित्र देख सुन रहे थे। तुरन्त दौड़कर पास आये। गोस्वामीजीको पहचानकर उन्हें गलेसे लगा लिया। बोले "गोस्वामीजी, भक्तमालाका सुमेरु आज मेरे बड़े सौभाग्यसे यहीं मिल गया। मैं तो ढूंढने काशी गया था, पर न पा सका।"

गोस्वामीजीने व्रजमंडलमें घूम घूमकर सूर दर्शन किये। एक जगह कुछ कट्टर अनन्य कृष्णोपासक जमा थे। भगवानके दर्शनोंका समय हो रहा था। पट खुलनेवाले थे। गोस्वामीजी

पर कोई व्यग प्रहार कर रहा था कि अनन्य उपासक अपने इष्टदेवके ही रूपकी उपासना करते हैं और गोस्वामीजी कह रहे थे कि हमारे भगवान्के तो सभी रूप हैं, हां, मैं तो उनके रामरूप पर ही रीझा हू। मैं तो मदनगोपालमें भी रामरूप ही देखता हू। इतनेमें पट खुले तो यह विशेष चमत्कार देख पडा कि कृष्ण भगवानके हाथमें धनुषबाण थे और खासा रामरूपका शृंगार था। इसपर जोरोंसे जयध्वनि हुई।

व्रजमडलमें रहकर गोस्वामीजी अनेक महात्माओंसे मिले। उस समय सूरदासजी गोलोकवासी हो चुके थे। बहुत काल बीत चुका था।

एक दिन एक कृष्णभक्तने कहा महाराज, आप नन्दनन्दन आनन्दकन्दके चरणारविन्दको छोड दशरथनन्दनके चरणोंका उपासना क्यों करते हैं। गोस्वामीजी बाले "महाराज, दशरथ नन्दनकी श्यामसुन्दर मूर्त्तिपर मैं सदासे लुभाया हू। वह अनूप छबि मेरे हृदयमें बस गयी है, आंखोंमें समा गयी है, और रूपोंके लिये जगह कहा है। राजकुमार रामचन्द्रजीके चरणारविन्द मकरदका मेरा मन सदासे अलिन्द रहा है।"

कृष्णभक्त बोला "केवल बारह कलाके अवतार रामचन्द्रजीमें आप इतनी भक्ति करते हैं, सोलहों कलाके अवतार भगवान् कृष्णचन्द्रमें उतनी ही भक्ति क्यों नहीं करते?" गोस्वामीजी गद्गद् कठसे बोले "ओहो! मैं तो अबतक राजकुमारोंके रूप, गुण, शौर्य्य, औदार्य्य और चारित्र्यपर ही मुग्ध था। बारह कलाके अवतार हैं तब तो मेरी श्रद्धा और भक्ति करोडगुनी चढ गयी! अब तो मुझे केवल उनके चरण चाहियें, गोलोक और साकेत लोक भी व्यर्थ हैं।"

कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीकी एक मूर्त्ति दक्षिण देशमें किसी सौभाग्यवान् रामभक्तके यहा विराजमान् थी। भगवान्ने उसे स्वप्न दिया कि मुझे अवध ले चलो। वह भक्त स्वामीके

आज्ञानुसार बड़े आदरसे पालकीमें मूर्त्तिको पधराकर अपने स्थानसे ले चला। राहमें श्रीवृन्दावनमें विश्राम हुआ। यहाँ एक भगवद्भक्त दरिद्र ब्राह्मणने भगवान्से बड़ी उत्कट अभिलाषा प्रकट की कि भगवान् व्रजमें ही विराजें। भक्तभावन अपने सरल निष्कपट दासकी अभिलाषाको पूरा किये बिना कैसे मानते! स्वप्न हुआ कि "मुझे यहीं रहने दो, अब यहीं रहूँगा।" श्रीरामघाटपर उसी विग्रहकी गोसाईंजीकी अनुमतिसे स्थापना हुई और गोस्वामीजीने ही उस भव्य मूर्त्तिका नाम "कौसल्या नन्दन" रखा। वह मूर्त्ति अबतक परम भक्त गोस्वामीजीके वृन्दावननिवासका स्मारक है।

गोस्वामीजीके विचार ऐक्यविधायक थे। अपने वृन्दावन-निवासमें उन्होंने भगवान्के कृष्णावतारके बड़े ही अनुपम पद रचे। यही कृष्णगीतावली है।

६—मित्र टोडरमल जमींदार

तुलसी उरथाला बिमल टोडरगुनगन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥

गोसाईंजी व्रजमण्डलसे लौटे तो फिर काशी आये। इसी समय उनके परम मित्र रामभक्त जमींदार टोडरमलको द्वेषवश गोसाइयोंने मार डाला। गोस्वामीजीको इसका बड़ा रंज हुआ। टोडर अवश्य ही कोई विलक्षण रामभक्त और मानस कारका अनुरागी सेवक और मित्र था, तभी तो जो गोस्वामीजी *नरकाव्य कभी नहीं करते थे उन कट्टर व्रतीके मुखसे भी* इस रामानुरागी मित्रके मरनेपर हृदयके सच्चे उद्गारके रूपमें नीचे लिखे चार दोहे निकल पड़े—

चार गाँवको ठाकुरो मनको महा महीप।
तुलसी या कलिकालमें अथए टोडर दीप॥

हनुमानबाहुकके कवित्तोंमें मिलता है। यह भी पता चलता है कि काशीजीमें प्लेग फैला जोरसे, परन्तु हनुमानजीकी कृपासे शीघ्र ही उसका निवारण हो गया।

गोस्वामीजीके रोगग्रस्त होनेका पता जीवनभरमे केवल हनुमानबाहुकके कवित्तोंसे लगता है। जान पडता है कि एक समय बरसातमें उनके शरीर भरमें फोडे हो गये थे। उस अवसरकी वर्षा ऋतुका सकेत करती हुई रचना भी है। सावनमें मृत्यु भी हुई थी। इससे कुछ लोगोंका अनुमान है कि फोडोंसे ही उनकी मृत्यु हुई। परतु इस कथनका आधार अनुमान ही अनुमान है। अन्त समयकी जो कविता बतायी जाती है वह किसी शारीरिक वेदनाका कोई लक्षण नहीं प्रकट करती। उसमें शान्ति है, भक्ति है, दृढता है, जो वेदनाव्यथित प्राणीमें होनी असगत है। गोस्वामीजी अपने शरीरान्तके समय निश्चय ही नब्बे बरसके लगभग या अधिक अवस्थाके थे। ऐसे अत्यत वृद्ध सदाचारी तपस्वी और साधुके लिये मृत्युका कोई कारण विशेष दिखानेको किसी उग्र रोगकी आवश्यकता नहीं होता। हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजी बडी शान्तिसे राम राम कहते साकेतलोकवासी हुए। कहते हैं कि अत समयमें उन्होंने क्षेमकरीको देखकर यह कवित्त—

"कुकुम रग सुअग जितो मुखचन्दसों चन्दन होंड परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गग विहागिनि वेष कि मजुल मूरति मोद भरी है।
पेषु सप्रेम पयान समै सब साच विमोचन छेमकरी है॥"

और प्रयाणक्षणके पहले यह दोहा कहा था—

"रामनाम जस बरनि कै भयउ चहत अब मौन
तुलसीके मुख दीजिए अब ही तुलसी सौन"॥

कविताका सौंदर्य, विचारकी सुसगति, प्रयाणकालमें भविष्यकी चिन्तासे मुक्ति, अन्त समय तुलसी और सोना मुखमें देनेकी आज्ञा स्पष्ट बताती है कि व्यथाकी विह्वलता नहीं है, पीडाका कष्ट नहीं है, रोगके छूटनेसे जो साधारण सुख मिलता है उसपर भी ध्यान नहीं है। रोगी और दु खी प्राणी घबराकर मृत्युको बुलाता है। यहा तो चलनेकी घडीपर शुभ शकुन उसी प्रकार देखा जा रहा है जैसे कोई शान्तिपूर्वक यात्राके लिये निकल रहा हो। शिष्य सेवक और भक्त लोग घेरे हुए हैं। अस्सीघाटके पास गगातटपर काशीकी पवित्र धरतीकी सुखशय्यापर लेटे हुए महाभागवत अत्यन्त वृद्ध साधुके मुखार-विन्दसे अन्तमें क्या शब्द निकलते हैं, इसकी कितनी बडी उत्सुकता होगी। यह कवित्त यह दोहे तुरन्त लिखे गये होंगे। ऊपर लिखा सवैया तो मृत्युकी प्रतीक्षामें पडे पडे क्षेमकरीको देखकर कवि कह रहा है।

गोस्वामीजीके शिष्य विद्वान और कवि अवश्य थे, इसका प्रमाण मानसमयकसे मिलता है। गोस्वामीजीकी मृत्युतिथि वाला दोहा उनके किसी शिष्यका ही कहाहुआ जान पडता है।

११—गोस्वामीजीका पारिवारिक जीवन

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबधु दिन दानी॥

गोस्वामीजी जन्मके त्यागी थे। यह तो बारबार कहा है कि मेरे पिताने मुझे जन्म देकर त्याग दिया। उन्हें मेरे जन्म लेनेपर वह आनन्द नहीं हुआ जो दम्पतिको पुत्रजन्मपर होता है। यदि मातापिताका किंचित्मात्र सुख उन्हें हुआ होता तो अवश्य ही वह किसी न किसी रूपमें व्यक्त करते। और कुछ नहीं तो जहा वन्दना करते समय "सीयराममय सब जग" जानकर किसीको न छोडा वहा पूज्य मातापिताको क्यों छोड देते। उन्होंने शायद अपनी यादमें मातापिताको

ही साथ पारिवारिक अनुभव विलक्षण है। भाई भाई, स्त्रीपुरुष, मातापिता और सन्तान, बधु और कुटुम्बोंके बीच परस्पर सम्बन्ध, स्नेह, भावोंकी बारीकी, पारस्परिक विनय, क्रोध, भय, उदारता, वात्सल्य, सम्मान आदि किसी बातमें गोस्वामीजीके अनुभवकी कमी नहीं प्रदर्शित होती। जहा कहीं मानवस्वभाव-चित्रण है वहा उन्होंने जिस अनुभवशीलतासे काम लिया है वह और रामायणकारोंसे बहुत बढ़ी हुई है। राजा दशरथसे कैकेयी जब दोनों वर मागती है तो अध्यात्मरामायण तो उन्हें तुरत "निपपात महीतले" कर देता है। वाल्मीकिजी सोचते सोचते मूच्छित कर देते हैं और इतने बड़े गभीर और नीतिज्ञ राजाको आपेसे बाहर कराके अत्यन्त क्रोधसे दुर्वाद कहलाते हैं। गोस्वामीजी बड़े स्वाभाविक ढङ्गसे पहले तो राजाको चिन्तामें डुबो देते हैं, शोकमें मग्न कर देते हैं—

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लागु जनु सोचन॥

फिर उसी दशामें कैकयीसे कटुवाद कराते हैं, जलेपर नमक छिडकवाते हैं। इतनेपर भी राजामें कितना जब्त है, कितना धैर्य्य है, कितना आत्मसयम है कि उसासें लेते हैं,रजकी हद है, पर फिर भी

"बोलउ राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सुहाती।"

राजा नीति नहीं भूले। अबतक निराश नहीं हुए। अब भी कैकेयी राजी की जा सकती है। भरत राजा भलेही हों, पर शायद रामको रखनेपर राजी हो जाय। अभी तो यही निश्चय नहीं है कि "रिस, परिहास, कि साचहु साचा" है। ऐसी परिस्थितिमें एकदम आशा छोड बैठना स्वाभाविक नही है। इसी लिये उसको प्रसन्न करनेवाली विनययुक्त वाणी बोलते हैं। राजाके लिये यह अधिक स्वाभाविक है। मनुष्यस्वभावसे गोस्वामीजीका अधिक परिचय होनेका यह प्रमाण है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

उनके अनुभवपर विचार करके हम यही कह सकते हैं कि गोस्वामीजी केवल कल्पनासे काम नहीं लेते। उनका अनुभव मर्मभेदी है। उनका निसर्गनिरीक्षण जबर्दस्त है। उनकी रचनाओंमें स्त्रीपुरुषके पारस्परिक मनोभावोंके संघर्षकी और सूक्ष्मगतियोंकी केवल कल्पना नहीं सूचित होती, प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभवकी गवाही मिलती है। उनकी कविता व्युत्पत्तिमात्र नहीं है। वास्तविक जीवन है। इसलिये यह सम्भव नहीं कि युवावस्थामें पारिवारिक जीवनका इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव न किया हो। जैसा कहते हैं, बहुत सम्भव है कि सन्तान हुई हो और नष्ट हो गयी हो। पत्नी-परित्यागके अनन्तर पतिवियोगमें या साधारण रोगसे ही पीडित हो पत्नी मर गयी हो। कोई वैरागी या सन्यासी अपनी पूर्वावस्थाका वर्णन पूछनेपर तो करता नहीं, छिपाना अपना कर्त्तव्य समझता है, तो गोस्वामी-जीसे कौन आशा कर सकता है कि जो नर काव्यके इतने विरोधी होते हुए भी अपने पूर्वेतिहासकी कहीं चर्चा करेंगे।

१२—गोस्वामीजीका शील और स्वभाव

आरति विनय दीनता मोरी, लघुता ललित सुबारि न थोरी।

गोस्वामीजी स्वभावके अत्यन्त सरल थे। दीनता भाव तो घुट्टीमें पडा था। बाल्यावस्थाका सत्सग साधुसेवा भिक्षावृत्ति आदिने स्वभावत उन्हें सहनशील, विनम्र दीन और दयनीय बना रखा था। उग्रता, क्रूरता और गर्व तो छू भी नही गया था। गृहस्थीके स्वाथका उनपर कम प्रभाव पडा था। वैराग्यने उन्हें काम, क्रोध, लोभ उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे अवश्य दूर रखा था, परन्तु मनुष्योचित दौर्बल्यका वह अपनेमें बराबर अनु-भव करते थे और इन विकारोंसे बचे रहनेकी बराबर चेष्टा करते थे। पहलेके निरादर फटकारकी उस समय वह याद करते हैं जब राजा महाराजा भी हाथ जोडे उनकी सेवामें ०

स्थित होते हैं। इसपर वह गर्वसे फूलते नहीं, वह जानते कि अब रामने अपनाया है तो सब ही खुशामदें करेंगे। कह हैं कि महाराजा मानसिंह और अब्दुर्रहीम खानखाना सरीख उनके मित्र थे, या यों कहिये कि भक्त थे। किसीने पूछा त आपने कहा

लहै न फूटी कौडिहू को चाहै केहि काज
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज।
घर घर मागे टूक पुनि भूपति पूजे पाय
ते तुलसी तब राम बिनु ये अब राम सहाय

अपने बड्प्पनका गर्व तो छू भी नहीं गया था। रामनाम लेने वाले भगी और हत्यारेको गले लगाते हैं। और लगाए क्यों न प्रभुने तो निषाद शबरी वानर भालु गीध सबको अपनाया था। वसिष्ठने निषादको गले लगाया था। रामनामपर गोस्वामीजीका असाधारण विश्वास जहा छूत अछूतका भेद उडा देता है वहा वर्णाश्रम धर्मका शास्त्रीय विचार हृदयमें ऐसा पक्का पोढा है कि वह यह नहीं चाहते कि लोग अपने अपने धर्म और कर्त्तव्य छोडकर औरोंके करने लग जायँ। गोस्वामीजी विद्वानों और ब्राह्मणोंके बडे पक्षपाती हैं—

"सापत ताडत परुष कहता। विप्रपूज्य अस गावहिं संता"

विप्रोंका शाप, दड, कटुवाद सब कुछ सहकर उनका आदर ही करेंगे। भगवान् स्वय "गोद्विज हितकारी हैं।" "प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना" फिर भगवान्‌के दासानुदास गोस्वामीजी क्या प्रभुगुणानुवर्त्ती न होंगे? मतभेदके कारण उनसे काशीके ब्राह्मण घोर विरोध रखते थे। वह स्वय अपने लिये कहते हैं "विप्र द्रोह जनु बाट पर्यो" ब्राह्मणोंसे द्रोह मानो मेरे हिस्सेमें पडा हुआ है। यह ब्राह्मण

जातिके अन्धपक्षपाती नहीं थे, नहीं तो उनसे बारबार विरोध क्यों होता ? यदि होता भी तो उनके सहज पक्षपातसे मिट जानेकी अधिक सम्भावना थी। एक बात और है। जहां ब्राह्मणोंके दूषणकी भी उपेक्षा करके उनका पक्षपात किया है वहां अनिवार्य्य रीतिसे "विप्र" अर्थात् विद्वान् शब्दका प्रयोग है। गोस्वामीजीका लक्ष्य है कि सब लोग स्वधर्मका ही अनुसरण करें। क्योंकि रामराज्यका यही आदर्श है। जहां परशुरामकी तरह ब्राह्मणने वर्णेतरके धर्मको अपनाया है वहां लक्ष्मणजी जैसे प्रतिभाशाली वर्णेतर बालकसे उन्हें नीचा दिखलवाया है। श्रीरामचन्द्रजी द्वारा व्याजसे ब्राह्मणधर्मका उन्हें उपदेश कराया है।

पातिव्रतपर पूरा जोर देते हुए भी रामभक्तिका अधिकारी स्त्रीपुरुष दोनोंको समान रूपसे समझते थे। यद्यपि मीराबाईको इतिहाससे उनका उपदेश देना नितान्त असंगत सिद्ध होता है, तथापि उनकी रचनासे हो यह बात सिद्ध होती है कि भक्तिके लिये वह किसी प्राणीको अनधिकारी नहीं मानते थे वरन् यदि प्यारेसे प्यारे बाधक हों तो उनका त्याग उचित समझते थे। कहते हैं—

जरउ सो सम्पति सदन सुख सुहृद मातुपितु भाइ

सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ।

उनमें प्रेम हद दरजेको पहुंचा हुआ था। उनके प्रेमके पाशमें बँधकर उनके दर्शनोंको स्वयं दर्शनार्थ लोग दूर दूरसे आते थे। उनका कहना था—

"रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा"

प्रेम रामभक्तिका बीजमन्त्र था। उनसे जिन जिन लोगोंसे मैत्री थी सभी प्राय रामोपासक अथवा भक्त थे। आगरेके बनारसी दास जैनी तक उनसे मैत्रीका सम्बन्ध रखते थे। सूरदाससे

पूर्व समागम बहुत संभव है। परन्तु सूरदासजीका गोलोक वास रामचरितमानसकी रचनाके कुछ ही बरसों पीछे हो गया होगा। गगाराम टोडरमल आदि भी रामोपासक थे। रामाज्ञा-प्रश्न तो रामशलाकाकी रचना और उनके ज्यौतिपकी सफलताके पीछे शायद गगारामजीके आग्रहपर गोस्वामीजीने जल्दी जल्दी सग्रह कर दिया होगा।

गोस्वामीजी भूत प्रेत पिशाचको सिद्ध करनेके विरोधी थे, परन्तु इनके अस्तित्वका केवल विश्वास ही नहीं था, अनुभव भी था। यत्रमत्र टोटका और फलित ज्यौतिषको भी ठीक मानते थे। गणित ज्यौतिष और तत्रके ज्ञानका पता विध्येश्वरीपटलसे लगता है। उसी पुस्तकसे यह भी अनुमान करनेमें हमें सकोच नहीं होता कि तुलसीसतसई गोस्वामीजीके ही दोहोंका सग्रह है। उसमें गणित और ज्यौतिपकी जानकारी जो प्रकट होती है वह किसी अन्य तुलसीकविकी नहीं है। जोशी गगारामके लिये रामाज्ञा प्रश्नकी रचनासे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि गोस्वामीजी प्रश्नोंकी जगह और ज्यौतिपकी उन विधियोंकी जगह जिनमे रामचर्चा न थी, रामचरितवाला रामाज्ञा प्रश्न रखकर सासारिक धधोंमें फँसे प्राणियोंको भी राममक्तिकी ओर प्रवृत्त करते हैं।

गोस्वामीजीमें सब लोगोंको एक करनेकी बडी दृढ प्रवृत्ति है। इसके प्रयत्नमें उनके ही अनेक विरोधी पैदा हो जाने स्वाभाविक हैं। गोस्वामीजीके विरोधियोंकी सख्या काशीजीमें ही अधिक है और वहीं वह अपना जीवन बिताते हैं। काशीजी मतैक्य प्रतिपादनका सदासे अनुपम क्षेत्र चला आया है क्योंकि यहा भारतभरके प्रतिनिधिरूप सभी देश और सम्प्रदायके लोग सदासे रहते चले आये हैं। इसीलिये यह गोस्वामीजीके जीवनके कार्य्यका क्षेत्र है। यहा इन्हें एकसे बढकर एक खलसे वास्ता पडता है और वह ज्यों त्यों निवाहते हैं। खलोंके साथ

व्यवहार तो यह रखते ही नहीं, परन्तु जहां प्रसंगवश कोई सम्बन्ध हुआ भी तो यह डरे नहीं, झुके नहीं, अपने स्वभाव और कर्तव्यपर स्थिर रहे।

खलोंको सुधारनेके सम्बन्धमें एक कथा हमने अपनी बाल्यावस्थामें सुनी थी*। एक बार गोस्वामीजी जाड़ामें आधी रातको कहींसे लौटे आ रहे थे। राहमें चोरोंका एक दल मिल गया। अँधेरेमें इनका आहट पाकर एकने पूछा "तू कौन है?" यह बोले "भाई, जो तुम सो मैं।" कहा "अकेला हो है?" बोले, "हां"। पूछा "तो नये नये निकले जान पड़ते हो। अच्छा! चाहो तो हमारे साथ हो लो।" गोस्वामीजी साथ हो लिये। इन्हें पहरेपर रख सेंध लगायी। जब चोरी करने अन्दर गये तब इन्होंने झोलीमेंसे शंख निकाला और बजाया। चोर भाग खड़े हुए तो यह भी उनके साथ हो भागे। दूसरी जगह घर घरमें पैठे और पहलेकी तरह इन्हें पहरेपर रखा। फिर शंख बजा और जाग और भगदड़ हुई। इसबार किसी चोरने गोस्वामीजीको शंख बजाते देख लिया था। जब एकान्तमें सब एकत्र हुए तो उसने नये चोरपर अपना सन्देह प्रकट किया। गोस्वामीजीने स्वीकार कर लिया कि "शंख मैंने ही बजाया था। तुमने मुझे पहरेपर रखा था कि कोई जोखिम देखना तो तुरन्त बताना। मैंने बहुत जोखिम देखकर ही दोनोंबार शंख बजाया। मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र तुमको चोरी करते देख रहे हैं। दण्ड अवश्य मिलेगा। सो मैंने अपनी झोलीसे तुमको चेतावनी देनेको शंख निकालकर बजा दिया।" गोस्वामीजीकी बातें सुनकर चोर उन्हें पहचान गये और उनके चरणोंपर गिरे। चोरी छोड़ दी और उनके शिष्य हो गये।

---

* यह कहानी स्वर्गीय पितृचरणोंसे प्राप्त हुई थी। उन्होंने शायद प० ...दन पाठकसे सुना था। मगर कहीं किसी जीवनीमें इसका उल्लेख नहीं ...। ले०

खलोंकी वन्दना जो रामचरितमानसमें है उससे अच्छी व्याजनिन्दा क्या होगी। साहित्यदर्पणके अनुसार महाकाव्यमें आरम्भमें खलोंकी निन्दा भी होती है। रामचरितमानसमें महाकाव्यकी प्राय सभी शर्त्तें पूरी की गयी हैं। उनमें खलोंकी व्याजनिन्दा अपूर्व है। अपनेको अत्यन्त अयोग्य ठहराते हुए भी गोस्वामीजी खलोंको-कौआ और बगला और मेंढक ठहराते हैं और अपनेको उनके मुकाबले कोयल और हंस ही बनाते हैं। नम्रताकी भी एक हद होती है। विनयका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य नीचोंके मुकाबलेमें भी अपनेको झूठमूठ नीच बना दे और सराहनासे भी यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य झूठी प्रशंसा करके अपने प्रशंसाके पात्रको इतने ऊंचे उठा दे जितने ऊंचे उठना उसकी शक्तिके नितान्त बाहर हो। गोस्वामीजी ऐसी झूठी प्रशंसा या झूठे विनयके आदी नहीं हैं।

नाभाजीके यहाके भण्डारेमें उन्होंने विनयकी हद कर दी और अपनी नम्रता और शीलकी बदौलत सचमुच भक्तमालके सुमेरु हो गये। परन्तु जहा अत्याचारी कठो जनेऊपर हाथ लगाने आता है, वहा डाटते हैं और अपने तेज और तपोबलका, अपनी शक्ति और प्रभावका पूरा प्रयोग करते हैं। गोस्वामी जीको मारुतिका बडा भरोसा है। उनके और भगवानके बलपर वह सदा अभय विचरते हैं, किसीकी शत्रुताकी परवाह नहीं करते।

"जो पै कृपा रघुपति कृपालुकी बैर औरके कहा सरै।"
होय न बाको बार भगतको जो कोउ कोटि उपाय करै
तकै नीचु जो मीचु साधुकी सो पामर तेहि मीचु मरै
वेद विदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगतिपथ पाँउ धरै

धैर्य्यवान् गोस्वामीजीका धैर्य भी अत्यन्त पीडामें छूट जाता है, वह सब देवताओंकी भी दोहाई देते हैं, सबको मनाते हैं, पर काम आते हैं हनुमान्जी ही। उनकी ही कृपासे पीडा मिटती है। मनोविकार जब कभी सताते हैं, कलियुग जब कभी आखें दिखाता है मारुतिकी दोहाई दी जाती है और हनुमानजी तुरन्त सहायक होते हैं। काम क्रोध लोभ मद मत्सर सभी विनय और प्रार्थनाके बलसे नीचा देखते हैं। सच्चे साधकका, आदर्श साधुका, यह अनुपम जीवन है। गोस्वामीजीने सन्तोंके लक्षण अनेक स्थलोंमें कहे हैं। विचार करनेसे उनका आरोप पूर्णरूपसे नहीं तो मनुष्योचित अनिवार्य्य दुर्बलताओंके साथ साथ स्वयं गोस्वामीजीमें होता है। गोस्वामीजी आदर्श महात्मा हैं, व्युत्पन्न अनुभवी और प्रतिभा सम्पन्न महाकवि हैं और "सीय राम मय" सारे विश्वको माननेवाले रामके अनन्य भक्त हैं और अपने समयके युगान्तर उत्पन्न करनेवाले सुधारक और एकताप्रवर्त्तक हैं।

१३-गोस्वामीजीकी रचनाएं

कीरति भनित भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कहँ हित होई

अपने नब्बे बरससे अधिकके दीर्घ जीवनमें यदि गोस्वामी जीने केवल रामचरितमानस और विनयपत्रिका लिखी होती तो भी उनका यश हिन्दी और हिन्दूके जीवनभर अजर और अमर होता। अपने प्रभु चराचरस्वामीके गुणगानको छोड उन्होंने अपनी वाणीका अन्यत्र कहीं दुरुपयोग नहीं किया।

भगत हेतु निज भवन बिहाई
सुमिरत सारद आवत धाई
रामचरितसर बिनु अन्हवाये
सो स्रम जाइ न कोटि उपाये

'कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना'
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना
हृदय सिंधु मति सीप समाना,
स्वाती सारद कहहिं सुजाना
जो बरषइ बर बारि बिचारू
होहिं कबित मुकुता मनि चारू
जुगुति बेधि पुनि पोहियहि रामचरित बर ताग
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग

कविकी प्रतिभा बहुधा बाल्यावस्थासे ही चमकती है। साधुके सत्संगमें, रामकी चर्चामें, सत्शास्त्रोंके अध्ययनमें बाल्य काल बितानेवाला बालक गुरुकी सेवामें रहते ही रहते कविता का प्रेमी हुए बिना नहीं रह सकता। गोस्वामीजीने बाल्या वस्थामें ही हनुमानचालीसा जैसी छोटी स्तुतिकी कविता अवश्य लिखी होगी। **हनुमानचालीसामें** होनहार कविकी रचना की मधुरता शब्दयोजना और अलंकार सराहनीय है। रामचरितमानसकी अनमोल चौपाइयोंका पूर्वरूप यहां झलकता है। सम्भव है कि **संकटमोचनका** मूल रूप भी [जिसके कई रूप देखे गये हैं] इसी कालमें रचा गया हो। **विंध्येश्वरी पटलसे** जवानीका पता लगता है। गुरुने अवश्य ही कुछ ज्यौतिषकी भी शिक्षा दी थी। मानसमें भी अनेक स्थलोंमें ज्यौतिषकी उपमा साक्षी है।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी रचनाके पहले किसी काव्यग्रंथकी रचनामें हाथ नहीं लगाया था। पहलेकी कविताएँ प्रायः फुटकर होंगी। इन्हीं फुटकर चीजोंके नाम दे देकर, सम्भव है कि स्वयं कविने या उनके शिष्योंने एकाधके नाम ग्रंथ स्थिर करके दे दिये हों। रामचरितमानसकी रचनाके पीछे भी फुटकर

कविताकी रचना होती रही है और इसीप्रकार प्राय नामकरण भी होते रहे हैं। ग्रथके रूपमें स्वय ग्रन्थकारने मेरी रायमें रामचरितमानस, रामगीतावली, विनयपत्रिका, जानकीमगल, पार्वतीमगल और रामलला नहछू, यही छ ग्रथ लिखे हैं। राम गीतावली तो भजनोंमें रामकथा गानेके लिये रची गया। जानकी मगल, पार्वतीमगल और रामलला नहछू स्पष्ट इसलिये लिखे गये कि ब्याह आदिके समय गाये जायँ। रामचरितमानस यदि "स्वान्त सुखाय" "मोरे हिय प्रबोध जेहि होई' लिखा गया है, तो विनयपत्रिकाका उद्देश्य नामसे ही स्पष्ट है। दोहावली, सतसई, कवित्तरामायण, रामाज्ञा, वैराग्यसंदीपिनी, कृष्ण गीतावली, बरवैरामायण और हनुमानबाहुक, यह भिन्न भिन्न समयोंपरकी लिखी स्फुट कविताओंका शायद स्वय ग्रथकारने सग्रह किया या कराया होगा। रामशलाका एक विशेष अवसर पर खींची हुई प्रश्नशलाका होगी। उसे ग्रन्थोंमें गिनाना भूल है। हमने विविध शलाकाएं जो छपी देखी हैं वह लोगोंकी अपनी गढत हो सकती हैं। ज्योतिषी गगारामकी प्राण रक्षिकाशलाका उनमेंसे कौन है, या उनमेंसे कोई है या नहीं, यह निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हू।

ऊपर जिन सत्रह ग्रथोंकी चर्चा हुई है उनके अतिरिक्त नीचे लिखे ग्रथ और भी उनके लिखे बताये जाते हैं।

(१) छन्दावलीरामायण, (२) छप्पयरामायण, (३) कड़खा रामायण, (४) रोलारामायण, (५) झूलनारामायण, (६) कुड लियारामायण, (७) कलिधर्मनिरूपण, (८) रामलता, (६) नामकला कोषमणि, (१०) मगलावली, (११) मगलरामायण, (१२) गीताभाष्य, (१३) ज्ञानकोष परिकरण, (१४) राममुक्तावली और (१५) ज्ञानदीपिका।

इन पद्रह ग्रथोंमेंसे अनेकके लिये यह सभव है कि तुलसी नामधारी अन्य कवियोंके हों, और कुछके लिये अधिक सभावना

यह है कि तुलसी नामधारी दो या अधिक कवियोंकी रचनाएं संग्रहकर्त्ताओंके प्रमादसे मिलजुल गयी हों, इनमेंसे एक गोस्वामीजी भी हों। पछाहीं भीख मांगनेवालियां "तुलसीदास भजो भगवाने" वाले भजन गाती हैं और राधास्वामी पंथवाले तुलसी साहबके शब्द और भजन सुरत शब्द और योगकी क्रियाओंके सम्बन्धमें जो कहते हैं उनकी शैली निराली और विषय निराला है। वह कोई और ही साधु "तुलसी"की चीजें हैं।

१४—गोस्वामीजीकी लिपि

"संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार"

गोस्वामीजीको साकेतवासी हुए तीनसौ बरस हो गये तो भी उनके हाथकी लिखी पुरानी पोथियाँ मिल जानी चाहियें। कहते हैं कि मलीहाबादमें जो ग्रन्थ एक सज्जनके पास है गोस्वामीजीके हाथकी ही लिपि है, परन्तु जिनके पास वह पोथी है वह उसकी पूजा इतनी श्रद्धासे करते हैं कि उसे सूर्यके प्रकाशसे भी बचाते हैं। सभाने बड़े व्यय और परिश्रमसे प्राचीन प्रतियोंकी खोज करायी,परन्तु सिवा राजापुरवालीके और कोई प्रति गोस्वामीजीके हाथकी लिपी नहीं मिल सकी। राजापुरवाली पोथीके पक्षमें भी कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि गोस्वामीजीके हाथकी लिपी निश्चय ही है। संवत् १६६७ के लिखे पंचनामेके सिवा वस्तुतः कोई लिपि उनके हाथकी लिखी और प्रामाणिक किसीको अबतक उपलब्ध नहीं हुई है। पंचनामेमें भी आरंभकी छः पंक्तियां ही उनके करकमलकी लिखी जान पड़ती हैं। हमारी समझमें यह छः पंक्तियां ही अवश्य प्रामाणिक मानी जानी चाहियें। इसे ही ठीक समझकर हम उनकी लिपिके सम्बन्धमें यहां अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

काशीके सरकारी सरस्वती भवनमें तुलसीदासजीके हाथकी लिखी वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डकी एक प्रति

नवमी भौमवार मधुमासा

अवधपुरी यह चरित प्रकासा ”

अर्थात् वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड लिखे जानेसे दस बरस पहले रामचरितमानसकी रचना गोस्वामीजीने अयोध्याजीमें आरम्भ की थी। फिर आगे किष्किन्धाकाण्डमें मंगलाचरणमें कहते हैं—

“मुक्ति जनम महि जानि, ग्यानखानि अघहानि कर

जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न ’

इस सोरठापर मानसप्रेमी यह कल्पना करते हैं कि किष्किन्धा काण्डकी रचनाके समय गोस्वामीजी काशीमें रहने लगे थे। यद्यपि ठीक समयका पता नहीं लगता तथापि इतना अनुमान करनेमें कोई बहुत भारी भूल नहीं हो सकती कि संवत् १६३६-३७ के लगभग गोस्वामीजी अवश्य ही काशीमें रहे होंगे। उनकी जीवनीसे यही पता लगता है कि उनका शेष जीवन काशीजीमें ही बीता। इस आधारपर यह कोई असम्भव कल्पना नहीं जान पड़ती कि रामचरितमानस समाप्त करके गोस्वामीजीने वाल्मीकीय रामायण लिखना आरम्भ किया हो। मानस सा महाकाव्य रचनेमें पांच छः बरस लग जाना भी कोई आश्चर्य-की बात नहीं है। परन्तु वाल्मीकीय रामायणकी पोथी प्रति लिपिमात्र थी। उसका बरस दो बरसमें समाप्त हो जाना सहज था। इसीलिये मैं ऐसा समझता हूं कि यह उत्तरकाण्ड मानस कार तुलसीदासजीके हाथका लिखा है। दत्तात्रेयवाली प्रशस्ति पीछेसे लिखी गयी है। यदि दत्तात्रेय समाह्वय की प्रथमा प्रेरणा-सूचक नहीं है तो अवश्य ही यह शार्दूलविक्रीडित जाली है। मेरी समझमें इसका जाली होना अधिक सम्भाव्य है। सरस्वती-भवनमें इस पोथीके दर्शन करके यही परोक्ष धारणा हुई।

राजापुरवाली पोथी गोस्वामीजीके हाथकी लिखी है, ऐसा सभी समझते हैं। वाल्मीकीय रामायणकी लिपि देखी तो मेरी

गोस्वामी तुलसीदास लिखित वाल्मीकीय उत्तरकांड ।

(तु० च० च० पृ० ५३ के सामने ।)

नवमी भौमवार मधुमासा
अवधपुरी यह चरित प्रकासा "

अर्थात् वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड लिखे जानेसे दस बरस पहले रामचरितमानसकी रचना गोस्वामीजीने अयोध्याजीमें आरम्भ की थी। फिर आगे किष्किधाकाण्डमें मंगलाचरणमें कहते हैं—

"मुक्ति जनम महि जानि, ग्यानखानि अघहानि कर
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न '

इस सोरठापर मानसप्रेमी यह कल्पना करते हैं कि किष्किधाकाण्डकी रचनाके समय गोस्वामीजी काशीमें रहने लगे थे। यद्यपि ठीक समयका पता नहीं लगता तथापि इतना अनुमान करनेमें कोई बहुत भारी भूल नहीं हो सकती कि संवत् १६३६-३७ के लगभग गोस्वामीजी अवश्य ही काशीमें रहे होंगे। उनकी जीवनीसे यही पता लगता है कि उनका शेष जीवन काशीजीमें ही बीता। इस आधारपर यह कोई असंभव कल्पना नहीं जान पड़ती कि रामचरितमानस समाप्त करके गोस्वामीजीने वाल्मीकीय रामायण लिखना आरम्भ किया हो। मानस सा महाकाव्य रचनेमें पाँच छः बरस लग जाना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परन्तु वाल्मीकीय रामायणकी पोथी प्रतिलिपिमात्र थी। उसका बरस दो बरसमें समाप्त हो जाना सहज था। इसीलिये मैं ऐसा समझता हूँ कि यह उत्तरकाण्ड मानसकार तुलसीदासजीके हाथका लिखा है। दत्तात्रेयवाली प्रशस्ति पीछेसे लिखी गयी है। यदि दत्तात्रेय समाहृय की प्रथमा प्रेरणासूचक नहीं है तो अवश्य ही यह शार्दूलविक्रीडित जाली है। मेरी समझमें इसका जाली होना अधिक सम्भाव्य है। सरस्वतीभवनमें इस पोथीके दर्शन करके यही परोक्ष धारणा हुई।

राजापुरवाली पोथी गोस्वामीजीके हाथकी लिखी है, ऐसा सभी समझते हैं। वाल्मीकीय रामायणकी लिपि देखी तो मेरी

समझमें उससे भिन्न ठहरी। इसपर अपनी पूर्व धारणाके अनुसार सन्देह हुआ कि यह वाल्मीकीय रामायण ही मानसकारके हाथकी लिखी न होगी। राजापुरवालीहीपर सन्देह क्यों करू? राजापुरवाली पोथीके कुछ पन्नोंकी फोटोसे मिलान किया। दोनोंकी लिपियोंमें फिर अन्तर पाया।

मैंने स्वय जाकर राजापुरवाली पोथी देखी। प्राय सब बातें वैसे ही पायीं जैसी पहलेके देखनेवालोंने लिखी थीं। अन्तके पन्नेपर एक ही ओर लिखा है। इति नहीं लगी है। दूसरी ओर कहा जाता है कि सादा है। ऐसा ही प्रकाशमें देखनेसे भी अनुमान होता है, क्योंकि अब उस पन्नेकी रक्षाके लिये उसपर एक मोटा कागज चिपकाया हुआ है। पंडित रामगुलामने जब देखा था कहा जाता है कि तब कागज चिपकाया न था। प०रामगुलामजीने दूसरी ओर सादा ही पाया था। अनुमान यह किया जाता है कि जब स्वय ग्रथकारने लिखा था, तो उसे इतिके उपरान्त अपने लेखक होनेका निर्देश करनेकी आवश्यकता क्या थी? तुलसीदासजी सिवा अपनी छाप कवितामें देनेके अन्तमें यह क्यों लिखते कि इसको लिखा भी मैंने ही है? अपनी रचना के अन्तमें "बकलम खुद" लिखने या "सही" करनेका तो कभी न रवाज था और न है। अत यदि अन्तमें किसी लेखकका नाम नहीं लिखा है तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पोथी शायद स्वय ग्रथकारकी लिखी होगी। या, किसी औरने लिखा पर समाप्त न कर पाया। समाप्त करनेपर ही तो नाम लिखता। यह युक्ति राजापुरवालीपर ठीक बैठती है। क्या आश्चर्य है कि लेखक इतिवाला अश लिखकर अपना नाम देता। परन्तु किसी अनिवार्य कारणसे उस अशके लिखनेकी नौबत ही न आयी। रसा रसातलमें रसाका सशोधन "रातु" करना यह लेखकके लेख प्रमादपर होना भी असभव नहीं है। सबसे बडी बात जो उस पोथीके ग्रंथकारके हाथकी लिखी

होनेका समर्थक है, वह परम्परा है जो कहती आयी है कि राजा-पुरवाली पोथी अवश्य ही गोस्वामीजीकी लिखी है। राजापुरके गोस्वामीजीके स्थान, बल्कि जन्मस्थान होनेकी परम्परा भी इससे कम मूल्यकी नहीं है।

कुछ भावुक भक्तोंका यह कहना है कि अयोध्याकाण्डकी इति स्वयं गोस्वामीजीने नहीं लगायी, क्योंकि भरत चरित अपार है उसकी इति नहीं है। यहाके बदले अरण्यकाण्डमें आठवें दोहेपर फलस्तुति दी है और वहीं अयोध्याकाण्डकी समाप्ति है। यह युक्ति इसलिये निराधार दीखती है कि अयोध्याकाण्डके अन्तमें फलस्तुति मौजूद है और उसका अन्त वहीं न होता तो विधिपूर्वक श्लोक देकर अरण्यकाण्डका आरभ न करते और

"पुर नर भरत प्रीति म गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई"

न कहते।

अब हमारे सामने गोस्वामीजीके हाथकी लिखी कही जाने वाली दो पोथिया हैं, एक सस्कृतकी दूसरी हिन्दीकी। सस्कृत वालीमें अन्तमें "लिखित तुलसीदासेन" है और सवत् १६४१ का समय दिया है। दूसरी राजापुरवालीमें इति नहीं है, लेखकका नाम नहीं है, समय भी नहीं दिया गया है, परन्तु परम्परागत कथा है कि ग्र थकारकी ही लिखी है। तीसरी चीज गोस्वामीजीके हाथकी संवत् १६६७ की लिखी पचनामेकी पाच पंक्तिया हैं, जिसमें गोस्वामीजीके जाब्तेके दस्तखत तो नहीं हैं, परन्तु उनके लेखमें उनकी छाप मौजूद है। यह पंचनामा ही एक तीसरी चीज है जिससे हम कुछ निर्णयको पहुँच सकते हैं। इसीको पच मान सकते हैं।

समानताकी बातोंपर पहले विचार कीजिये। दोनों नागरी अक्षरोंमें लिखी पोथिया हैं। दोनों प्राय ऐसे कालकी लिखी हैं लिपिमें विशेष अन्तरकी सभावना भी नहीं है। नागराक्षर लिखनेवाले जब लिखते हैं तब न, ग, म, स आदि

गोस्वामी तुलसीदास लिखित वाल्मीकिय उत्तरकांड ।

(तु० च० च० पृ० ५५ के सामने ।)

होनेका समर्थक है,वह परम्परा है जो कहती आयी है कि राजापुरवाली पोथी अवश्य ही गोस्वामीजीकी लिखी है। राजापुरके गोस्वामीजीके स्थान,वल्कि जन्मस्थान होनेकी परम्परा भी इससे कम मूल्यकी नहीं है।

कुछ भावुक भक्तोंका यह कहना है कि अयोध्याकाण्डकी इति स्वयं गोस्वामीजीने नहीं लगायी, क्योंकि भरत चरित अपार है उसकी इति नहीं है। यहांके बदले अरण्यकाण्डमें आठवें दोहेपर फलस्तुति दी है और वही अयोध्याकाण्डकी समाप्ति है। यह युक्ति इसलिये निराधार दीखती है कि अयोध्याकाण्डके अन्तमें फलस्तुति मौजूद है और उसका अन्त वहीं न होता तो विधिपूर्वक श्लोक देकर अरण्यकाण्डका आरंभ न करते और

"पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई"

न कहते।

अब हमारे सामने गोस्वामीजीके हाथकी लिखी कही जाने वाली दो पोथियां हैं, एक संस्कृतकी दूसरी हिन्दीकी। संस्कृत वालीमें अन्तमें "लिखित तुलसीदासेन" है और संवत् १६४१ का समय दिया है। दूसरी राजापुरवालीमें इति नहीं है, लेखकका नाम नहीं है, समय भी नहीं दिया गया है, परन्तु परम्परागत कथा है कि ग्रंथकारकी ही लिखी है। तीसरी चीज गोस्वामीजीके हाथकी संवत् १६६७ की लिखी पंचनामेकी पांच पंक्तियां हैं जिसमें गोस्वामीजीके जाव्तेके दस्तखत तो नहीं हैं परन्तु उनके लेखमें उनकी छाप मौजूद है। यह पंचनामा ही एक तीसरी चीज है जिससे हम कुछ निर्णयको पहुँच सकते हैं। इसीको पंच मान सकते हैं।

समानताकी बातोंपर पहले विचार कीजिये। दोनों नागरी अक्षरोंमें लिखी पोथियां हैं। दोनों प्राय ऐसे कालकी लिखी हैं कि लिपिमें विशेष अन्तरकी संभावना भी नहीं है। नागराक्षरोंमें अच्छे लिखनेवाले जब लिखते हैं तब न, ग, म, स आदि कई अक्षर

ऐसे हैं कि सभी सुलेखकोंके प्राय समान ही होते हैं, कलम और स्याहीका भेद भले ही प्रतीत हो पर बनावटके भेद इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण परीक्षणसे पता नही लगता। निदान दोनों पोथियोंकी लिखावटमें क, ग, ट, ठ, प, फ, म, ल, य, ह, यह दस अक्षर प्राय समान हैं। भाषाभेद होनेके कारण राजापुरवालीमें ऋ, ख, ङ, ञ, ण, श, इन छ अक्षरोंका, एव क्ष, ज्ञ, श्र, ष्य, आदि सयुक्ताक्षरोंका अभाव है।

इस तरह दोनोंमें चालीस समान अक्षरोंमे दसकी लिखावटमें कोई विशेष भेद देखनेमे नहीं आता। शेष तीसकी लिखावटमें इतना भेद है कि विचारशील पाठक स्वय देख सकते हैं। कुछ उदाहरण यहा हम देते हैं।

(१,२,६ ११,) अ—दोनोमें कुछ भिन्न है। काशीवाली प्रतिमे खडी रेखाके निम्नांशमें हल् सा पाया जाता है।

(३ ४)इ—राजापुरवालीमें आजकलकी सी है। राजापुरवालीमें ऊपरी एक तिहाई रेखाका अभाव है।

(५-६)उ—दोनोंके "उ" का अन्तर देखनेसे प्रतीत हो जाता है।

(७ ८) ए—देखनेसे अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(१३) ख—राजापुरवालीमें "ख" की जगह "प" का प्रयोग है। इसके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि हिन्दीकी लिपिके तत्कालीन नियमके अनुसार "ख" की जगह "प" ग्रन्थकार लिख सकता है।

(१५) घ—राजापुरकी पोथीमें यह अक्षर एक ही रूपमें दीखता है। काशीवालीमें इसके दो रूप व्यवहारमें आये हैं।

(१६) च—राजापुरवाली पोथीमे "च" की प्रधान ऊपरी रेखा स्पष्ट है। काशीवालीमें स्पष्ट नहीं है।

(१७) छ—दोनोंमें स्पष्ट भिन्नता है। पाठक मिला लें।

(१८) ज—"ज" की वक्र रेखा पडी रेखासे स्पष्ट नोक बनाती हुई काशीवाली प्रतिमें मिलती है। राजापुरवालीमें

यह युक्ति भी पेश की जा सकती है कि गोस्वामीजीने राजापुर-वाली पोथी किसी धनवान्के लिये न लिखी होगी। काशीवाली प्रति शायद उन्होंने दत्तात्रेय नामक धनसम्पन्न राजाके दानाध्यक्षके लिये लिखी थी। अतः अधिक सावधानी और मनोयोगसे लिखी होगी। परन्तु इस युक्तिके लिये गोस्वामीजी जैसे निःस्पृह, निरपेक्ष त्यागीके जीवनमें स्थान नहीं हो सकता। यह बात प्रसिद्ध है कि वह भगवद्भक्तोंको मानते थे, भक्तोंसे प्रसन्न होकर प्रसादरूप अपनी पोथी दे डालते थे। परन्तु विशुद्ध प्रेमसे लिखी हुई चीज जितनी सुन्दर हो सकती है, उतनी यश, वा धन-के लोभसे लिखी हुई नहीं हो सकती। तुलसीदासजी प्रकाण्ड विद्वान् थे, महाकवि थे, पण्डित थे, परन्तु संस्कृत व्याकरणके भारी विद्वान् नहीं थे। यह बात उनके मंगलाचरणोंसे स्पष्ट हो जाती है। यही बात काशीवाली प्रतिसे भी प्रकट होती है। साधारण लेखक जो पोथियोंके लिखनेका पेशा करते थे, वह भी अपना नाम और तिथि लिखा करते थे, परन्तु वह नकल करनेमें 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' वाली कहावतका जैसे पालन करते

सन्देहका कारण है। यह कथा बिलकुल बिना प्रसंग प्रक्षिप्त है। इतना अप्रासंगिक वर्णन मानसकार जैसे कविसे होना असम्भव है। एक युक्ति हम मानते हैं, कि गोस्वामीजीने अपने जीवनकालमें ही रामचरितमानसके पाठमें अनेक बार फेरफार किया होगा। क्षेपकोंका उन्हींके कलमसे बनाया जाना नितान्त असम्भव नहीं है। परन्तु आजकल जितने क्षेपक देखे जाते हैं उनकी रचना स्वयं कहे देता है कि हम गोस्वामीजीके नहीं हैं। तापस-वाले क्षेपकमें एक तो रचना मूल मानसके टक्करकी है, दूसरे इस ढंगसे मिलायी गयी है कि आठ अर्धालियोंकी संख्या दो दोहोंके बीच बनी रहे। इस युक्तिसे भी यह तो निश्चय ही ठहरा कि तापसवाला अंश क्षेपक है और अप्रासंगिक है। परन्तु उसकी आवश्यकता दरसानेको जितने प्रयोजन बताये जाते हैं, एक भी पुष्ट नहीं है। इन कारणोंसे राजापुरवाली पोथीपर हमारा संदेह और भी दृढ़ हो जाता है।

सकता है कि सभव है कि काशी और राजापुरकी पोथियोंके लिखनेमें कालका बहुत अन्तर पड गया है। इसपर भी हमें विचार कर लेना उचित है। राजापुरवाली पोथीमें लिखनेकी तिथि नहीं दी गयी है। सवत् नहीं मालूम, इसलिये सवत् १६३१से लेकर सवत् १६८०तकके बीचकी लिखी अवश्य होगी, यदि यह पोथी गोस्वामीजीने लिखी है। लिखावटमें अन्तर आनेके लिये उनचास बरस बहुत होते हैं। काशीवाली प्रति रामचरित मानस आरभ करनेके दस ही बरस पीछे लिखी गयी। यदि हम मान लें कि राजापुरवाली सवत् १६३१ में लिखी गयी—क्योंकि इससे पहले लिखा जाना सभव न था—तो दस बरसमें गोस्वामीजीकी लिखावट अधिक सुन्दर और गठित हो सकती है। परन्तु इ द आदि कई अक्षर राजापुरवालीके अधिक सुन्दर हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि दस बरस पीछे अक्षर भद्दे हो जायँ। सब अगोंपर और अक्षरोंपर विचार करनेसे काशीवाली लिपि देखनेमें निस्सन्देह अधिक सुन्दर ज़ँचती है। पर अलग अलग अक्षरोंपर विचार करनेसे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि काशीवाली लिपि राजापुरवाली लिपिका विकास हो। अब मान लीजिये कि राजापुरवाली पोथी ग्रन्थकारकी ही लिखी है, परन्तु काशीवाली प्रतिके दस बीस बरस पीछेकी है। तो भी यही कठिनाई पडती है कि काशीवाली प्रतिके ज,अ आदि कई अक्षर अधिक सुन्दर हैं। इनका विकास राजापुरवालीमें नहीं दीखता। सब बातोंपर विचार करके जब लिखावटके सौन्दर्यमें काशीवाली प्रति अच्छी जँचती है तो दस बीस बरस पीछे जिस सौन्दर्य्य-विकासकी आशा एक ही सुलेखककी लिपिमें की जा सकती है, उसका तो अभाव ही दीखता है। अत यह मान लेना मेरी समझमें प्राय अयुक्त है कि दोनों पोथिया एक ही व्यक्तिकी लिखी हुई हैं।*

* राजापुरवाली पोथीमें तापसके मिलनेवाली कथाका होना भी

यह युक्ति भी पेश की जा सकती है कि गोस्वामीजीने राजापुर-वाली पोथी किसी धनवान्के लिये न लिखी होगी। काशीवाली प्रति शायद उन्होंने दत्तात्रेय नामक धनसम्पन्न राजाके दानाध्यक्षके लिये लिखी थी। अत अधिक सावधानी और मनोयोगसे लिखी होगी। परन्तु इस युक्तिके लिये गोस्वामीजी जैसे नि स्पृह, निरपेक्ष त्यागीके जीवनमे स्थान नहीं हो सकता। यह बात प्रसिद्ध है कि वह भगवद्भक्तोंको मानते थे, भक्तोंसे प्रसन्न होकर प्रसादरूप अपनी पोथी दे डालते थे। परन्तु विशुद्ध प्रेमसे लिखी हुई चीज जितनी सुन्दर हो सकती है, उतनी यश, वा धन-के लोभसे लिखी हुई नही हो सकती। तुलसीदासजी प्रकाड विद्वान् थे, महाकवि थे, पडित थे, परन्तु सस्कृत व्याकरणके भारी विद्वान् नही थे। यह बात उनके मगलाचरणोंसे स्पष्ट हो जाती है। यही बात काशीवाली प्रतिसे भी प्रकट होती है। साधारण लेखक जो पोथियोंके लिखनेका पेशा करते थे, वह भी अपना नाम और तिथि लिखा करते थे, परन्तु वह नकल करनेमें 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' वाली कहावतका जैसे पालन करते

सदेहका कारण है। यह कथा बिलकुल बिना प्रसग प्रक्षिप्त है। इतना अप्रासगिक वर्णन मानसकार जैसे कविसे होना असभव है। एक युक्ति हम मानते हैं, कि गोस्वामीजीने अपने जीवनकालमे ही रामचरितमानसके पाठमें अनेक बार फेरफार किया होगा। क्षेपकोंका उन्हीके जीवनमे बढ़ाया जाना नितान्त असभव नहीं है। परन्तु आजकल जितने क्षेपक देखे जाते हैं उनकी रचना स्वय कहे देती है कि हम गोस्वामीजीके नहीं हैं। लापस-वाले क्षेपकमें एक तो रचना मूल मानसके टक्करकी है दूसरे इस ढगसे मिलायी गयी है कि आठ अधालियोंकी सख्या दो दोहोंके बीच बना रहे। इस युक्तिमे भी यह तो निश्चय ही ठहरा कि लापसवाला अश क्षेपक है और अप्रामाणिक है। परन्तु उसकी आवश्यकता दरसानेको जितने प्रयोजन बताये जाते हैं, एक भी पुष्ट नही है। इन कारणोंसे राजापुरवाली पोथीपर हमारा सदेह और भी दृढ हो जाता है।

थे वैसे ही व्याकरणसे प्राय इतने अनभिज्ञ होते थे कि अपने नाम तिथि आदि भी शुद्ध नहीं लिख सकते थे। काशीवाली प्रति स्पष्ट ही किसी पेशेवर लेखककी लिखी नहीं है।

गोस्वामीजी राम कथाके इतने अनुरागी थे कि उनके जीवनके प्रत्येक क्षण इसीमें बीतते थे। उनकी तो धारणा थी कि—

कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना

उन्होंने अपने रामभक्त मित्र टोडरमल्को छोड और किसीके लिये कभी कोई रचना नहीं की। इसलिये मुझे यह विश्वास नही होता कि दत्तात्रेयवाली प्रशस्ति उन्होंने लिखी होगी। परन्तु उनको उस रामायणके लेखक होनेमें कोई असगति नही दीखती। उन्होंने तो वाल्मीकिक वन्दना की है—

वन्दउँ मुनिपद कजु रामायन जिन निरमयेउ
सखर सुकोमल मजु दोषरहित दूषनसहित

आरभमें "यद्रामायणे निगदित"में इसी रामायणका हवाला है, यद्यपि रामचरितमानस, नानापुराण निगमागम सम्मत है और "क्वचिदन्यतोपि" इसका मूल है। गोस्वामीजीने जितनी कविता की है सभी रामभक्तिपरक। इन बातोंपर ध्यान रखकर जब हम देखते हैं कि सवत् १६४१ में काशीजीमें बैठकर किसी विद्वान् सस्कृतज्ञ "तुलसीदास" ने वाल्मीकीय रामायणकी सुन्दर प्रतिलिपि की, हमें यह कहनेमें कोई विशेष युक्ति नहीं दीखती कि यह तुलसीदास कोई और थे जो गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे, जब कि किसी अन्य सुलेखक और विद्वान् समकालीन काशीवासी तुलसीदासकी कहीं कभी चर्चा भी सुननेमें नहीं आयी। सुतरा, यह न माननेका कोई सुदृढ कारण नहीं दीखता कि काशीवाली वाल्मीकीय

उत्तर काण्डकी यह प्रति प्रात स्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदासजी ही लिखी है। साथ ही, राजापुरवाली प्रतिके तुलसीदासजीके हाथकी लिखी होनेमें अवश्य ही सन्देहके लिये बहुत जगह रहती है।

तुलसी सुधाकरकी भूमिकामें स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदीने अपनी यह धारणा प्रकट की है कि तुलसी सतसई किसी तुलसी नामक अन्य कविकी रचना है, जो शायद कायस्थ था और जो गणित और ज्यौतिषके विषयका अधिक अनुरागी था। यह धारणा सुधाकरजीकी ही है। सर्वसम्मत नहीं है। * सुधाकरजी भी इस दूसरे तुलसीकी कल्पना काशी जीमें नहीं करते। उनके मतमें भी सतसईकार तुलसी कहीं पश्चिमीय प्रान्तके थे। इसलिये काशीके सरस्वतीभवनवाली पोथीके लेखक कोई पश्चिम प्रान्त निवासी दूसरे तुलसीदास थे, यह भी कष्ट कल्पना होगी। हम तो तुलसी सतसईके दोहों का रचयिता मानसकार गोस्वामीजीको ही मानते हैं।

पचनामेकी लिखावट साधारण प्रकारकी है। पोथीकी लिखावटके सौन्दर्य्यकी उसमें कोई आशा नहीं कर सकता। उसमें सभी अक्षर आये भी नहीं हैं। परन्तु जितने आये हैं उनका रग ढग खिचाव और विशेषन "तुलसी" में काशीवाली प्रतिसे अधिक सादृश्य है। ब, क्ष, क, य, ध, र, ज और क भी मिलता है। विचारपूर्वक निरीक्षणसे मेरी तो यही धारणा होती है कि काशीवाली पोथी गोस्वामीजीकी लिखी है और राजापुरवालीके गोस्वामीजीकी लिखी होनेमें मुझे सन्देह है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके हाथकी लिखी सप्रमाण पोथी मेरी रायमें सरस्वती भवन काशीकी यही उत्तरकाण्ड वाल्मी-

* श्री बा० शिवनन्दन सहायने लिखा है कि गोस्वामीजीकी शिष्य-परम्परामें प० शेषदत्तजीने सतसईको गोस्वामीजीकी रचनाओंमें गिनाया है। यह भी सग्रह ग्रथ है। इसमें और दोहावलीमें बहुतसे दोहे एक

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखित मंगलाचरण पंचनामेपर।

(तु० च० च० पृ० ६१ के सामने।)

उत्तर काण्डकी यह प्रति प्रातःस्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदासकी ही लिखी है। साथ ही, राजापुरवाली प्रतिके तुलसीदासजीके हाथकी लिखी होनेमें अवश्य ही सन्देहके लिये बहुत जगह रहती है।

तुलसी सुधाकरकी भूमिकामें स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदीने अपनी यह धारणा प्रकट की है कि तुलसी सतसई किसी तुलसी नामक अन्य कविकी रचना है, जो शायद कायस्थ था और जो गणित और ज्यौतिषके विषयका अधिक अनुरागी था। यह धारणा सुधाकरजीकी ही है। सर्वसम्मत नहीं है। * सुधाकरजी भी इस दूसरे तुलसीकी कल्पना काशीजीमें नहीं करते। उनके मतमें भी सतसईकार तुलसी कहीं पश्चिमीय प्रान्तके थे। इसलिये काशीके सरस्वतीभवनवाली पोथीके लेखक कोई पश्चिम प्रान्त निवासी दूसरे तुलसीदास थे, यह भी कष्ट कल्पना होगी। हम तो तुलसी सतसईके दोहोंका रचयिता मानसकार गोस्वामीजीको ही मानते हैं।

पचनामेकी लिखावट साधारण प्रकारकी है। पोथीकी लिखावटके सौन्दर्यकी उसमें कोई आशा नहीं कर सकता। उसमें सभी अक्षर आये भी नहीं हैं। परन्तु जितने आये हैं उनका रंग ढंग लिखावट और विशेषतः "तुलसी" में काशीवाली प्रतिसे अधिक सादृश्य है। अ, क्ष, क, य, ध, र, ज और क भी मिलता है। विचारपूर्वक निरीक्षणसे मेरी तो यही धारणा होती है कि काशीवाली पोथी गोस्वामीजीकी लिखी है और राजापुरवालीके गोस्वामीजीकी लिखी होनेमें मुझे सन्देह है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके हाथकी लिखी सप्रमाण पोथी मेरी रायमें सरस्वती भवन काशीकी यही उत्तरकाण्ड वाल्मी-

---

* श्री बा० शिवनन्दन सहायने लिखा है कि गोस्वामीजीका शिष्य परम्परामें पं० शेषदत्तजीने सतसईको गोस्वामीजीकी रचनाओंमें गिनाया है। यह भी संग्रह ग्रंथ है। इसमें और दोहावलीमें बहुतसे दोहे एक

कीय रामायणकी पोथी है। इसके अन्तमें गोस्वामीजीके हस्ताक्षर हैं। उन्हींके कलमसे उनका नाम है। पाश्चात्य देशोंमें कविके हस्ताक्षरका बड़ा मूल्य होता है। कई लाख दाम लगते हैं। लोभियोंने बड़ा जाल बनाकर धन कमाया है। हमारे देशमें ऐसे अनमोल और दुर्लभ रत्नोंका आदर ही नहीं है।

भूमिकाके पाठकोंके सुभीतेके लिये काशीवाली पोथीके तीन पृष्ठ, राजापुरवाली पोथीके तीन पृष्ठ, पचनामेकी फोटो-प्रति हम इस पुस्तकमें देते हैं। विचारवान् पाठक स्वय मिला कर देखें और अपने अपने विचार लिपिके प्रश्नपर स्वय स्थिर कर लें।

इसमे सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी बहुत सुन्दर लिखते थे। पोथियोंको स्वय लिखकर तय्यार करनेका उन्हें शौक था। पचनामेमें जल्दीके लिखे अक्षर हैं। पोथियोंमें सावधानीसे सुन्दर अक्षर लिखे गये हैं। इसलिये सौन्दर्य्यकी दृष्टिसे पचनामेकी लिखावटका मिलान पोथियोंसे न होना चाहिये।

१५—मानसका शुद्ध पाठ

सतपच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं
दारुन अविद्या पच जनित विकार श्री रघुपति हरैं।

पिछले प्रकरणमें लिपिके सम्बन्धमें हमने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे राजापुरवाली अयोध्याकाण्डकी प्रतिका महत्व अन्य प्राचीन प्रतियोंके बराबर ही ठहरता है। उसे गोस्वामी-जीके हाथकी लिखी पोथी माननेको हम तय्यार नहीं हैं। उसके पुरानेपनमें, उसके पाठकी शुद्धिमें और सब तरहसे सम्मान योग्य होनेमें कोई सन्देह नहीं है। वह है भी एक ही काण्ड, अत पूरे रामचरितमानसकी पाठ शुद्धिकी जाचमें उससे आधी से कम ही सहायता मिलती है। नागरी प्रचारिणी सभाने उसे

प्रामाणिक मानकर पाठ संशोधन अवश्य किया, परन्तु और पुरानी प्रतियोंसे भी मिलाकर पाठ शुद्ध किया है। पाठकी शुद्धिके सम्बन्धमें यही रीति समीचीन हो सकती है। हमने प्रस्तुत संस्करणमें संवत् १७२१की लिखी पोथीको प्रधानता दी है।

जिस तरह गोस्वामीजीकी यह पोथी लोकप्रिय हो गयी उसी तरह इसके पाठके साथ भी मनमाना अत्याचार हुआ। जिस पंडित समुदायका जीवनभर उनसे विरोध रहा, उसने बदला लेकर ही छोडा। उन्होंने ग्रामीण भाषा और प्राकृतमें लिखा, पर पंडितोंने शोध शोधकर उनकी ग्रामीणता और प्राकृत-पन दूर कर दिया। जहांतक पद्यप्रबन्धमें गुंजायश थी, छन्दोभंग और यतिभंगदोष नहीं होते थे, वहांतक तो पंडित सम्पादकोंने तद्भवोंका बहिष्कार कर डाला। जहां कहीं उनकी "भद्दी भाखा"का प्रयोग समझमें नहीं आया, वहां संशोधन भी कर डाले। जहां उनकी रायमें गोस्वामीजीने कथाएं छोड दी थीं, वहां क्षेपकोंके रूपमें उन्होंने कथाएं भी पद्यबद्ध करके मिला दीं। क्षेपक इतने अधिक मिलाये गये, संशोधन इतने हुए, तत्समोंकी ऐसी भरमार हुई कि **रामचरितमानसका** रूप बदलकर जबर्दस्ती "तुलसी"कृत रामायण प्रकाशित होने लगे। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र वाला संस्करण ऐसे संस्करणोंका सिरमौर हुआ। किसी प्रकाशकने मौका नहीं खोया। रामायणसे लाभ उठाना आसान था क्योंकि गोस्वामीजीने न तो कोई कापीराइट रखी थी और न अपनी कृतिकी दुर्दशापर लडने आये।

यद्यपि अवधी भाषाके व्याकरणका उन्होंने बडी कडाईसे निर्वाह किया है, बिन्दु विसर्ग भी नहीं छोड़ा है, तथापि इतना अवश्य मानना पडेगा कि गोस्वामीजी लिखावटके सम्बन्धमें अत्यन्त कट्टर न होंगे। मनुष्योचित विपर्यय और समयानुसार मत-

भेद उनके लिये भी कोई असाधारण बात न होगी। यही कारण है कि मक्षिकास्थाने मक्षिका रखनेवालोंके पाठोंमें भी भेद है। गोस्वामीजीने रामचरितमानसका आरंभ संवत् १६३१में किया। इसके अनन्तर वह लगभग उनचास बरस और जिये। इतना काल एक ग्रंथकारके लिये बहुत है कि वह अपनी पूर्व कृतिको आवश्यकतानुसार सुधारे, स्वयं पाठान्तर करे, स्वयं यथास्थान क्षेपकोंका समावेश करे। समयके साथ साथ अधिकाधिक प्रौढता आती है। अनुभव बढ जाता है, रचना अधिक प्रगल्भ हो जाती है। अतः यदि गोस्वामीजीने पाठमें पीछेसे हेरफेर भी किया होगा तो उससे रामचरितमानसका सौन्दर्य्य अधिकाधिक बढा ही होगा। पीछेसे सुधारा हुआ पाठ अधिक चुस्त और सुन्दर होगा। अवश्य ही पुरानी प्रतियोंमें उसका समावेश हो चुका होगा, क्योंकि जितनी प्रतियां हमें आज उपलब्ध हैं, उनके साकेतवासके पीछेकी हैं। इसलिये हमारे लिये पुरानी प्रतियां अवश्य ही अधिक प्रामाणिक हैं।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसको समाप्त करके अन्तमें चौपाइयोंकी संख्या इस प्रकार निर्धारित की है—

सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जे नर उर धरैं,
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति हरैं।

हम शंकावलीवाले खंडमें यह दिखा आये हैं कि सतपंचका अर्थ संख्यावाचक है, "अच्छे पंच" नहीं है। "अंकाना वामतो गतिः" की रीतिसे सतका अर्थ १०० और पंचका ५ लेकर ५१०० श्रीरामचरणदासजीने भी किया है। परन्तु महन्तजीने सीधे चौपाई न कहकर इसे अनुष्टुप श्लोकोंकी संख्या बतायी है। उनकी कल्पना है कि बत्तीस बत्तीस अक्षरसमूह गिनकर गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी श्लोकसंख्या कुल पांच हजार एक सौ बतायी है। यद्यपि यह पोथियोंके अक्षरोंके गिननेकी

पुरानी विधि है, समीचीन है, तथापि इस विधिका प्रयोग अनेक कारणोंसे हिन्दीमें सभव नहीं है, जिनमेंसे सबसे प्रबल कारण यह है कि स्वय गोस्वामीजी अनेक शब्दोंके दो दो रूप लिखते थे, "धरमु" और "धर्म" "करमु" और "कर्म" इनमें एक ही शब्दके कहीं दो अक्षर गिने जायँगे, कहीं तीन। किसी लेखकने एक तरहपर लिखा, दूसरेने दूसरी तरहपर। अत इस तरह गिनती करनेमें असख्य भूलें हो सकती हैं। साथ ही दो चार पृष्ठोंकी अक्षर-सख्या गिनकर औसत लगाकर लगभग पूरी पृष्ठ-सख्यासे गुणा करनेपर जो सख्या उपलब्ध होती है वह सहज ही दस हजारके लगभग होती है। उदाहरणके लिये इडियन प्रेसके डिमाइ आकारवाले रामचरितमानसके तीसरे पृष्ठकी अक्षर सख्या गिनिये। ५६० होती है। मान लीजिये कि औसत ५०० हो है, तो कुल पृष्ठ सख्या ५६७ से गुणा करनेपर और श्लोक सख्या निकालनेपर ८८५६ ठहरता है। मानसमयकमें इससे मिलती जुलती हुई व्याख्या यों दी हुई है—

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु

छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हजारु

अर्थात् "चौपाइयोंकी सख्या ५१०० है और छन्द सोरठा दोहा सब मिलाकर दस कम दस हजार हैं।" गिननेकी कठिनाई श्लोकाक्षरोंके हिसाबसे यहा भी वही है। बाबू इन्द्रनारायण सिहने भी ९९९० श्लोक ही अर्थ किया है। मिरजापुरके कवि-वर प० महावीरप्रसादजी मालवीयने अपनी हालकी छपी टीकामें छन्दोंकी सख्याका विस्तृत विवरण दिया है। उसमें सभी छन्दोंके चार चरण गिननेपर छन्दोंकी अर्धालिया उन्हें कुल ९६ मिलीं। चौपाई छन्दके अतिरिक्त उन्हें चार ही डिल्ला छन्द मिले। लकाकाडमें डिल्लेकी नौ द्विपदिया हैं। इन्हें भी चौपाइयोंके साथ गिनें तो मालवीयजीके अनुसार

४५६८ चौपाइया हुई । ६४ चौपाइयोंकी अर्धालिया इनके अतिरिक्त हैं। यदि अर्धालियोंको भी पूरा छन्द मान लें तो सख्या ४६६२ मिलती है। इक्यावनसौ होनेके लिये इसमें ४३८ की फिर भी कमी है। हम इक्यावन सौकी सख्या ग्रंथकारकी दी हुई और विलकुल ठीक मानते हैं। ऐसी दशामें हमें माल वीयजीकी सख्याको ही अशुद्ध मानना पडता है। तो क्या मालवीयजीकी प्रतिमे ४३८ चौपाइयों*ी कमी है? यह कल्पना ठीक नहीं है, क्योंकि पाठ तो भरसक प्रामाणिक संस्करणोंसे मिलाया हुआ है। तो क्या इक्यावन सौ चौपाइयोंकी श्लोक-सख्या तो नहीं है? चार चरणोंकी एक चौपाईमें यदि समस्त गुरु हों तो बत्तीस और समस्त लघु हों तो चौसठ अक्षर होंगे। दोनोंमेंसे एक तरहकी एक भी चौपाई रामचरित मानसमें नहीं है। बत्तीस अक्षरोंके हिसाबसे श्लोक सख्या वही हुई जो चौपाइयोंकी सख्या दी हुई है—अर्थात् ४५१३। चौसठ अक्षरोंके हिसावसे ठीक दूनी अर्थात् ६२२६ होती है। इक्यावन सौके लगभग पहुँचानेके लिये ३६ अक्षरोंकी एक चौपाईका मध्यमाक रखना पडेगा जिसमें आठ ही लघु हों और २८ गुरु। परन्तु औसत वह सख्या होती है जो अधिकाश मिले। ३६ अक्षरोंकी चौपाई तो खोजे न मिलेगी। औसत चौपाईमें ४८ अक्षरोंका होना अधिक सभाव्य है। इसलिये ५१००की संख्या श्लोक-सख्या तो कदापि नहीं हो सकती। मालवीयजीने पिगलकी प्रथाके अनुसार ही गिनती की है। "चौपाई" का अर्थ ही है "चार चरणोंवाली" अत उसके ठीक ठीक चार चरण ही गिने। अर्धालियोंको अलगाते गये। हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजीने द्विपदी भी लिखी है और चौपदी भी। यदि आज कलके प्रसिद्ध कवि मिलिन्दपाद, शकर, चौपदे आदि छन्दोंकी नयी गढन्त करनेके अधिकारी हैं, तो कविकुल चूडामणि गोस्वामीजीको इतना भी अधिकार नहीं कि वह

अर्धालियोंकी सृष्टि कर सकें ? अर्धाली शब्द तो गोस्वामीजीने कहीं लिखा ही नहीं है। परन्तु द्विपदी छन्द उन्होंने इतने लिखे कि पीछेके पिंगलकारोंको लाचार हो अर्धालीकी रचना करनी पड़ी।

दो दोहोंके बीचमें जितनी चौपाइयाँ हैं, गिननेमें यदि द्विपदियोंकी सम संख्या हुई, तो चार चार चरणोंकी एक एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। यदि विषम संख्या हुई तो दो दो चरणोंकी एक एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। उदाहरणार्थ बालकाण्डके तेरहवें और चौदहवें दोहेके बीचमें सभाकी प्रतिमें ११ अर्धालियाँ वा द्विपदियाँ हैं। विषम संख्या होनेसे इन्हें ११ चौपाइयाँ गिनना पड़ेगा। परन्तु पादटिप्पणीमें एक अर्धाली और दी हुई है। संवत् १७२१वाली पोथीमें यह अर्धाली भी १३ १४ दोहोंके भीतर है, अर्थात् ग्यारहके बदले बारह द्विपदियाँ हैं। बारह सम संख्या है। उपर्युक्त नियमानुसार इस तरह १३ १४ दोहोंके बीचमें ११ नहीं, छः चौपाइयाँ हैं। इस तरह गिनती करनेमें जहाँ जहाँ अर्धालियाँ हैं वहाँ वहाँ चौपाइयोंकी संख्या बढ़ जाती है। इस तरह गिनती करनेसे सारे रामचरितमानसमें चौपाइयोंकी संख्या इक्यावन सौके लगभग हो जाती है। रामचरितमानसमें यत्रतत्र कई चौपाइयाँ हैं जिनमें १५ १५ मात्राएँ हैं। इन्हें अलग गिनना चाहिये। इन्हें भिन्न प्रकारकी द्विपदियाँ मानकर अलग देनेसे एजेंसीद्वारा प्रकाशित पाठमें ५१०८ की संख्या आती है। तात्पर्य यह कि केवल आठ चौपाइयाँ अधिक हैं। कहीं एकाध अर्धालीके क्षेपक ठहर जानेसे सात आठ चौपाइयोंकी घटती बढ़ती सहजमें हो सकती है और ठीक ५१०० की संख्या सहजमें मिल सकती है। मेरी रायमें गोस्वामीजीने इसी प्रकार चौपाइयोंको गिनकर यह स्पष्ट संख्या दे दी है। यह भी असंभव कल्पना नहीं है कि ग्रन्थकी सम ... इक्यावन सौकी

हो परन्तु पीछेसे कहीं कहीं अत्यन्त आवश्यकता देखकर गोस्वामीजीने एकाध चौपाई चढ़ायी हो अथवा अनावश्यक देख कर एकाध चौपाई घटा दी हो। हमने जो उदाहरण अपनी गणना विधिके सम्बन्धमें दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभावाली प्रतिमें जहा ग्यारह द्विपदिया हैं, अर्थात् ग्यारह चौपाइया हैं, वहा एक अर्धालीके वढ जानेसे १२ अर्धालिया या छ चौपाइया ठहरती हैं। चौपाइयोंकी सख्यामें पाचकी कमी आ जाती है। इस तरह वढानेसे सख्या घट सकती है और घटानेसे, चौपदीकी द्विपदी गिनना आवश्यक हो जानेसे, सख्या वढ भी सकती है। हम इस आठकी वढतीको इसी दृष्टिसे इस प्रसगमें नगण्य समझते हैं और जो पाठ हमने दिया है उसे ही प्रामाणिक समझते हैं और सतपचका अर्थ इक्यावन सौ ही मानते हैं।

अव रही अविद्या पचकी व्याख्या। यहा पच क्या है? महत श्रीरामचरणदासजीके अनुसार अविद्या पचपर्वा है। पाच प्रकारकी है, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र। तमसे अविवेक, मोहसे चित्तविभ्रम, महामोहसे भोगलिप्सा, तामिस्रसे क्रोध और अन्धतामिस्रसे आत्महत्या, यह पाच विकार उत्पन्न होते हैं। यह पाचों अविद्याओंसे उत्पन्न पाच दारुण विकार हैं, जिनको श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं।

१६—लोकसंग्रह अवतारका हेतु

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वत

त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ भ० ४।८

अनुकरण प्राणिमात्रकी प्रकृति है। स्वभावपर मौखिक उपदेशका प्रभाव कम पड़ता है, वास्तविक आचरणका, उपदेशके उदाहरणका, अधिक पडता है। मूर्खपर तो मौखिक उपदेश प्राय उलटा प्रभाव डालता है। शान्तिके वदले क्रोध उत्पन्न

करता है। श्रेष्ठोंका आचरण मूर्ख और पण्डित दोनोंके लिये आदर्श उदाहरणका काम देता है, दोनोंको सुधारता है। शिक्षाकी स्वाभाविक विधि चरितका उदाहरण है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥३॥२१॥

संसारके शिक्षकमात्रके लिये श्रीमद्भगवद्गीताका यह सूत्र उनके पूर्ण दायित्वकी चेतावनी देता है, त्यागियों, वैरागियोंको लोकसंग्रहकी आवश्यकता बतलाता है, और साथ ही अवतारोंका उद्देश्य भी प्रमाणित करता है। यह स्वाभाविक है कि बड़ोंके आचरणको लोग प्रमाण मानें और उसीके अनुकूल स्वयं आचरण करने लगें।

अवतारका हेतु जो भगवान्ने स्वयं गीतामें बताया है यह स्पष्ट कर देता है कि जब जब धर्म्मका ह्रास होता है, अधर्म्म बढ़ता है, साधु संकटमें पड़ते हैं, खल और दुष्ट उपद्रव मचाते हैं, तब तब भगवान् अवतार लेकर साधुओंकी रक्षा करते हैं, खलोंका संहार करते हैं, धर्म्मका पुनः संस्थापन करते हैं, और भगवान्के दिव्य जन्म कर्म्मको जो लोग तत्त्वतः जानते हैं, अर्थात् जो आदर्शको समझकर स्वयं तदनुकूल धर्म्माचरण करते हैं वह देहत्यागके पीछे परमात्माको ही प्राप्त होते हैं। [४।७ ६।] अवतारके द्वारा परमात्मा न केवल दुष्टोंका नाश और साधुओंकी रक्षा करता है, प्रत्युत सदाचार और नीतिका स्वयं उदाहरण बनकर लोकको सदाचार और नीति-धर्म्मकी व्यावहारिक शिक्षा भी देता है। इसीको गीतामें "लोकसंग्रह" कहा है। बड़ोंको देखा देखी, उसीके आचरणको प्रमाण मान कर सब लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं, जब यह स्वाभाविक है, तब तो एक ओरसे जहां बड़े लोगोंपर सदाचारी होनेकी जिम्मेदारी आती है वहां यह भी स्पष्ट हो जाता है कि

हो परन्तु पीछेसे कहीं कहीं अत्यन्त आवश्यकता देखकर गोस्वामीजीने एकाध चौपाई बढ़ायी हो अथवा अनावश्यक देख कर एकाध चौपाई घटा दी हो। हमने जो उदाहरण अपनी गणना-विधिके सम्बन्धमें दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभावाली प्रतिमें जहां ग्यारह द्विपदिया हैं, अर्थात् ग्यारह चौपाइया हैं, वहा एक अर्धालीके बढ जानेसे १२ अर्धालिया या छ चौपाइया ठहरती हैं। चौपाइयोंकी सख्यामें पाचकी कमी आ जाती है। इस तरह बढानेसे सख्या घट सकती है और घटानेसे, चौपदीकी द्विपदी गिनना आवश्यक हो जानेसे, सख्या बढ भी सकती है। हम इस आठकी बढतीको इसी दृष्टिसे इस प्रसगमें नगण्य समझते हैं और जो पाठ हमने दिया है उसे ही प्रामाणिक समझते हैं और सतपचका अर्थ इक्यावन सौ ही मानते हैं।

अब रही अविद्या पचकी व्याख्या। यहा पच क्या है? महत श्रीरामचरणदासजीके अनुसार अविद्या पचपर्वा है। पाच प्रकारकी है, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र। तमसे अविवेक, मोहसे चित्तविभ्रम, महामोहसे भोगलिप्सा, तामिस्रसे क्रोध और अन्धतामिस्रसे आत्महत्या, यह पाच विकार उत्पन्न होते हैं। यह पाचों अविद्याओंसे उत्पन्न पाच दारुण विकार हैं, जिनको श्रीरामचन्द्रजी हर लेते हैं।

१६—लोकसंग्रह अवतारका हेतु

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वत

त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ भ० ४।८

अनुकरण प्राणिमात्रकी प्रकृति है। स्वभावपर मौखिक उपदेशका प्रभाव कम पडता है, वास्तविक आचरणका, उपदेशके उदाहरणका, अधिक पडता है। मूर्खपर तो मौखिक उपदेश प्राय उलटा प्रभाव डालता है। शान्तिके बदले क्रोध उत्पन्न

करता है। श्रेष्ठोंका आचरण मूर्ख और पंडित दोनोंके लिये आदर्श उदाहरणका काम देता है, दोनोंको सुधारता है। शिक्षाकी स्वाभाविक विधि चरितका उदाहरण है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥३॥२१॥

संसारके शिक्षकमात्रके लिये श्रीमद्भगवद्गीताका यह सूत्र उनके पूर्ण दायित्वकी चेतावनी देता है, त्यागियों, वैरागियोंको लोकसंग्रहकी आवश्यकता बतलाता है, और साथ ही अवतारोंका उद्देश्य भी प्रमाणित करता है। यह स्वाभाविक है कि बड़ोंके आचरणको लोग प्रमाण मानें और उसीके अनुकूल स्वयं आचरण करने लगें।

अवतारका हेतु जो भगवान्ने स्वयं गीतामें बताया है यह स्पष्ट कर देता है कि जब जब धर्म्मका ह्रास होता है, अधर्म्म बढ़ता है, साधु संकटमें पड़ते हैं, खल और दुष्ट उपद्रव मचाते हैं, तब तब भगवान् अवतार लेकर साधुओंकी रक्षा करते हैं, खलोंका संहार करते हैं, धर्म्मका पुनः संस्थापन करते हैं, और भगवान्के दिव्य जन्म कर्म्मको जो लोग तत्त्वतः जानते हैं, अर्थात् जो आदर्शको समझकर स्वयं तदनुकूल धर्म्माचरण करते हैं वह देहत्यागके पीछे परमात्माको ही प्राप्त होते हैं। [४।७-६।] अवतारके द्वारा परमात्मा न केवल दुष्टोंका नाश और साधुओंकी रक्षा करता है, प्रत्युत सदाचार और नीतिका स्वयं उदाहरण बनकर लोकको सदाचार और नीति धर्म्मकी व्यावहारिक शिक्षा भी देता है। इसीको गीतामें "लोकसंग्रह" कहा है। बड़ोंको देखा देखी, उसीके आचरणको प्रमाण मानकर सब लोग वैसा ही आचरण करने लगते हैं, जब यह स्वाभाविक है, तब तो एक ओरसे जहां बड़े लोगोंपर सदाचारी होनेकी जिम्मेदारी आती है वहां यह भी स्पष्ट हो जाता है कि

लोकको ज्ञान देनेका सबसे सरल मार्ग चरित्रके आदर्शका प्रत्यक्षीकरण है। अवतारका सबसे उत्तम हेतु यही है। वाल्मीकि नारदसे भी यही पूछते हैं कि इस समय इस लोकमें सबसे अधिक चरित्रवान् और सब प्राणियोंके हितमें निरत कौन है? चरित्रके लिये ही रामायण नामक आदि महाकाव्यकी रचना हुई। मर्य्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रकी जीवनीसे राजनीति, समाजनीति, पारिवारिक धर्म्म, पुरुषोत्तमता, आप द्धर्म्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना सबकी पूरी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है। आर्य्यका किस अवस्थामें क्या धर्म्म है, क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्म्म है, क्या विकर्म्म है, सब रहस्योंकी कुजी मिल जाती है, सब प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनुधरहीं।

कवि भी अपने युगका शिक्षक होता है। सच्चा कवि अपने युगके लोगोंको ऐसा मार्ग दिखाता है जिससे वह उन्नतिपर अग्रसर हों। गोस्वामीजी जिस युगमें उत्पन्न हुए थे उसके लिये रामायणसे अच्छी शिक्षा किसी और ग्रथमें मिल नहीं सकती। राजनीतिप्रकरणमें पाठक देखेंगे कि आज भी रामायणसे अच्छी शिक्षा भारतवासियोंके लिये किसी दूसरे ग्रथसे मिल नहीं सकती। यहा कथाछलसे नीति नही कही गयी है। यहा तो सच्चे आदर्शजीवनसे और स्वय मर्य्यादापुरुषोत्तमके चरित और मुखारविन्दसे समस्त धर्म्म और नीतिकी शिक्षा दी गयी है। पचतत्र और हितोपदेशसे राजनीतिक चालोंकी शिक्षा भले ही मिल जाय मगर कौए, कुत्ते, गधे, स्यार, सिह, वानर, मृग आदि पशुओंकी झूठी कहानियोंसे इन पशुओंके चरित्रका किसी मनुष्यपर प्रभाव नहीं पड सकता। मनुष्य तो ऐसे आदर्शके मनुष्यको देखता है जो रूपमें सबसे सुन्दर है, बलमें सबसे बलवान् है, धर्म्म और नीति मूर्त्तिमान है, शस्त्रास्त्रधारी वीरोंमें अग्रणी है, समरमें परम पुरुषार्थी है, पराक्रममें ससारविजयी

है, चरित्रमें सूर्य्यसे अधिक ज्योतिर्मय है, यश और कीर्त्तिमें उपमारहित हैं, समुद्रसे अधिक गंभीर, आकाशसे अधिक असीम हैं, परन्तु आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श बन्धु, आदर्श सुहृद्, आदर्श राजा और आदर्श आचार्य्य भी हैं। प्रत्येक युगमें उद्धारके लिये कोई न कोई महान आत्मा देशकी डगमगाती नावका कर्णधार हो जाता है। गोस्वामीजी अपने युगके ऐसे ही महान आत्मा थे जिन्होंने अपने युगके उद्धारके लिये इस परमपावनी कथाको लोकप्रिय भाषामें अत्यन्त मधुर शब्दोंमें गाया। वह भगवान्‌के परम भक्त थे, संसारसे विरक्त थे, परन्तु फिर भी भक्तोंका परम कर्त्तव्य देशका उद्धार उन्होंने इसी रामचरितमानसद्वारा किया है। रामचरितमानस-का अवतार भी रामनवमीको होना सकारण है, सहेतुक है। आगेके प्रकरणोंसे यह स्पष्ट होगा कि रामचरितमानस किस प्रकार लोकसंग्रहका प्रतिपादक है।

१७—गोसाईंजीके राजनैतिक विचार

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारतरीति,

तुलसी सठकी को सुनै, कालि कुचालिपर प्रीति ॥५४५॥

हमारी संस्कृतिमें धर्म्म शब्द अत्यन्त व्यापक है। अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंकी सिद्धि धर्म्ममें हो है। कोई नीति हमारे यहा परमार्थसे अलग नहीं की जा सकती। देशकी राजनीति धर्म्मका अनिवार्य्य अंग है, उसकी कोई अलग स्थिति ही नहीं है।

रामायणकी कथा भारतवर्षके परम अभ्युदयकी कथा है। दक्षिणमें राक्षसोंका प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि वह सारे भारतमें साम्राज्य फैलानेके इच्छुक हो जाते हैं। उनका परम पराक्रमी राजा महात्मा रावण, जिसकी राजधानी लंकामें है, समरक्षेत्रमें देवों और नागोंको भी परास्त कर देता है। अनु-

रोका तो वह राजा ही था। गन्धर्वोंके राजा कुवेरको लडाईमें नीचा दिखाकर उससे पुष्पक विमान छीन लेता है। शिवजीकी राजधानी कैलासतकको अछूता नहीं छोडता। हिमाद्रिसे उत्तरकुरुतक देवोंको, गन्धमादनसे काश्यप सरोवरतक नागोंको, कैलाससे गन्धमादनतक गन्धर्वोंको और कन्या कुमारीसे हिमाद्रितक मानवोंको, उसने अपने पशुबलसे अधीन कर लिया था। मानव, दानव, नाग, देव, गन्धर्व सभी अधिपति उसे कर देते थे। जो ऋषि मुनि त्यागी-तपस्वी और किसीके राजमें छेडे नहीं जाते थे, रावणके साम्राज्यमें उन्हें भी कर देना ही पडता था। सारे जम्बूद्वीपमें जातियों और राष्ट्रोंका परस्पर व्यवहार-विनिमय उसने बन्द कर दिया। ऐसे कडे कर बैठाये और ऐसी कडाईसे उगाहने लगा कि सारी प्रजा अकुला उठी। रावण पडित था, तपस्वी था, विद्वान् था, बलवान् था, परन्तु भारी प्रभुता हाथ लगी, सिर फिर गया, उद्दडता आ गयी, उच्छ्रखलतासे अत्याचार करने लगा, अपनी अर्जित प्रभुताकी रक्षाके लिये उसने उचित अनुचितका विचार छोड दिया। मनमाने आचरण करने लगा। शत्रुओंको पराजित करके उनको बलहीन कर दिया। किसीको सिर उठानेका साहस न रहा। उसकी नीति थी कि—

छुधाछीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आइ

तब मारिहौं कि छाडिहौं सबहि भाति अपनाइ

रावणने अपनी वह धाक जमायी कि उसका खुल्लमखुल्ला मुकाबिला असभव हो गया। उसके जासूस सारे जम्बूद्वीपमें फैले हुए थे। किसी विरोधीका जीवन सुरक्षित न था। भारत वर्षमें तो रावण भीतरी लडाइयोंसे पूरा लाभ उठाता था। क्षत्रियों और ब्राह्मणोंमें घोर सघर्ष था। परशुराम एक एक क्षत्रियके प्राणोंके पीछे पडे थे। इनकी जबर्दस्तीसे अच्छे अच्छे

छत्रधारी कांपते थे। इस भीतरी युद्धके कारण भारतवर्षके राज्योंकी छीछालेदर थी। रावण जब धावा बोलता था दो एकको छोड सभी सीस झुका देते थे। रावण भी चालका आदमी था। जो तुरन्त नम्र नहीं होते थे, उन्हें झुकानेके लिये मौं ढूंढता था, और जब अवसर पाता था तो उन्हें पीसे बिना न रहता था।

रावणकी राजधानी लंकाके समीप भारतके मानवोंका ही राज था, भारतीयोंसे ही भिडनेका मौका था। यदि भारतमें अपने बलवान बैरी बना लेता तो उसका शीघ्र ही विनाश हो जाता। इसीलिये उसने भारतके अनेक पराक्रमी राजाओंसे मैत्री कर रखी थी। रघु, अर्जुन, वालि उससे अधिक बलशाली थे। उसने परीक्षा कर ली थी, इसी लिये इनसे मैत्री कर रखी थी। देवों, गन्धर्वों और नागोंकी सीमा इसकी राजधानीसे इतनी दूर थी कि इनसे सीधे समर छिडना कठिन था। लंकापर इनके द्वारा चढाई होना दुर्घट था। अवधके राजाओंसे और इन्द्रसे भी बराबर मेल रहता था। इसलिये यों कहना चाहिये कि कोसलका राज्य देवों और राक्षसोंके बीच मध्यस्थ राज्य था।

देवतागण बराबर रावणकी पराजयकी चिन्तामें रहा करते थे। असुरोंसे युद्धमें इन्द्रने राजा दशरथकी सहायता ली थी। राजा दशरथने असुरोंको रणमें नीचा दिखाया। उसी समय कैकेयीने राजाकी सहायता की थी। उसी समयके दोनों वरदान थे। शायद उसी समय इन्द्रने रावणकी पराजयकी चर्चा दशरथसे की होगी। राजा दशरथने इन्द्रके लिये रावणकी मैत्री तोड़ना उचित नहीं समझा। जबतक पूरी तैयारी न हो ले, भिड जानेमें जोखिमकी बात थी। परशुरामजी मार्गके कांटे थे। राजा दशरथके तबतक कोई सन्तान भी न थी। तो भी देवताओंने तैयारी की। अपने आदमी और सैनिक दक्षिण

भारतके सभी राज्योंमें भेज दिये। दक्षिण भारतके वानर-राज्योंको धीरे धीरे मिला लिया।

इधर भगवान् रामचन्द्रके प्रकट होते ही देवताओंको पूरा भरोसा हो गया। उन्हें निश्चय हो गया कि अब धरतीका उद्धार अवश्य होगा। राजा दशरथकी भारी शका उस दिन मिट गयी जिस दिन परशुरामजी बातोंमें ही पराजित हो तपोवनको चले गये। ब्राह्मणों क्षत्रियोंकी भीतरी लड़ाइया उसी क्षण मिट गयी। अब अबाध रूपसे रावणसे भिडनेकी गुप्त तैयारिया होने लगीं। युवराज-पदवाले झगडोंमें देवताओंका पूरा हाथ था। राजा दशरथ कैकेयीसे विवाह होते समय यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि कैकेयीका ही पुत्र राजा होगा। परन्तु बडे बेटे हुए भगवान् रामचन्द्र। जब समय निकट आया। उन्होंने बडी चतुराईसे भरत शत्रुघ्नको भरतके ननिहाल भेज दिया, कुछ दिन पीछे कैकेयीको बिना जनाये उन्होंने युवराजपद श्रीरामचन्द्रको देनेका निश्चय किया। बन्दोबस्त करते एक पाख बीते, पर किसी न किसी ढगसे यह बात कैकेयीसे छिपायी गयी। यौवराज्याभिषेकके एक दिन पहले मथराने यह बात खोल दी और कैकेयीको खूब समझाया। राजा दशरथको उसने वचनबद्ध करके वर मागे। श्रीरामचन्द्रजी राजकाजमें न फँसकर राजनीतिक कामके लिये दक्षिण जायँ, यही देवोंका अभीष्ट था। सरस्वतीद्वारा मथरा मिलायी गयी थी। श्रीरामचन्द्रजी स्वय इसी बातके इच्छुक थे। अन्तमें देवताओंकी ही बात रही। परिवारके भीतरी कलहने तो प्रचड रूप धारण किया था,परन्तु श्री रामचन्द्रजीकी नि स्वार्थता और भरतजीकी भ्रातृभक्ति और अनुपम स्वार्थत्यागने राजाकी मृत्यु हो जानेपर भी सँभाल लिया। जिस राज्यके लिये और परिस्थितियोंमें बापको बेटेने मारा, बन्दी किया, बेटेको बापने घरसे निकाल दिया, भाई भाईमें घोर सग्राम हुआ, उसी चक्रवर्ती राज्यको इन आदर्श भाइयों और कर्त्तव्यपरायण पुरुषो

उसोंने मार्गके रोड़ेकी तरह ठुकरा दिया। बड़ी कठिनाइयोंसे बड़े भाई और पिताकी आज्ञासे भरत उसका प्रबन्ध करनेको राजी हुए। श्रीरामचन्द्रजीका चौदह बरसका वनवास बड़े कामका था। स्थिति यह थी कि गृहकलह न था, घरके भीतरी शत्रु परशुरामजीसे खटका न था, दक्षिणके वानरराज्योंसे पूरी मैत्री थी। देवताओंके जासूस और योद्धा सारे दक्षिणमें फैले हुए थे। रावणसे युद्ध छेड़नेके लिये जब पूरी तय्यारी हो चुकी थी तभी छेड़छाड़ हुई। महाप्रतापी महात्मा रावणके पक्ष-वालोंका उद्दंड और उच्छृंखल होना कोई अस्वाभाविक बात न थी। विधवा शूर्पणखा तो उसकी बहिन ही थी। उसने रावणके नाशका बीज बोया। पुरुषोत्तमके रूपपर रीझकर बरबस ब्याह पर उतारू हुई। श्रीरामचन्द्रजीके इशारेपर भगवान् लक्ष्मणने एक पथ दो काज किये। नाक कान काटकर उसकी उद्दंडता का दंड भी दिया और रावणको चुनौती भी दी। बस यहींसे झगड़ेका आरंभ हुआ। चौदह सहस्र सेनाका अकेले विनाश करके भगवान् रामचन्द्रने अपने पराक्रमका अपूर्व परिचय दिया। सुनकर रावण दहल गया। परन्तु बदला लेनेकी घोर कामना, प्रतिहिंसाकी उत्कट प्रवृत्ति जाग्रत हुई। सीताहरण हुआ। यही भगवानकी इच्छा भी थी। खुल्लमखुल्ला लंकापर चढ़ाई करनेके लिये कारण उत्पन्न करना था, सो हो गया। फिर भी पुरुषोत्तमने जल्दी नहीं की। परमार्यापहारी रावणका पता तो उसी समय जटायुसे लग चुका था, दक्षिण दिशाका गमन भी वानरोंसे मालूम हो गया था, परन्तु चारों दिशाओंमें सीता जीकी खोजके बहाने अपने चरोंको भेजना और सेनाका पूरा संगठन कराना अनभिज्ञता ओढ़ लेनेसे ही संभव था। चुपकेसे मारुतिको बुलाकर अंगूठी देकर संसारके चरोंके परमाचार्यको लंकाकी पूरी देखभालका काम सौंपना भी भारी चाल थी। भगवान् मारुति भी कैसे जबर्दस्त चर थे! लंकामें जाकर

"मन्दिर मन्दिर प्रतिकर शोधा" एक भी घर न छोड़ा। लंकाका कोना कोना चप्पा चप्पा देख लिया। विभीषणको वहीं फोड़ लिया। बस, काम बन गया। भगवती सीताको आश्वासन देकर, जानबूझकर उत्पात किये कि रावणके दरबारतक पहुँच हो जाय। जासूस भी कैसा बना हुआ था। रावणकी सभाका पूरा भेद लेना था, उसकी बुद्धिकी थाह लेनी थी। मौकेकी किसी बातसे चूका नहीं। आगकी आग लगायी और ऊपरसे नीचेतक लंकाके दुर्गम दुर्गको छान डाला। तब लौटा। यह भगवान् शंकरका पुत्र देवताओंका सबसे बड़ा बुद्धिमान् और बलवान् चर था। नागमाता सुरसाद्वारा इसकी परीक्षा पहले ही हो चुकी थी। इस चरके कामपर देवों, नागों और मानवोंको पूरा भरोसा था। चरके लौटनेपर तो सेना एकत्र करना कर्त्तव्य हो गया था। मारुतिने तो जानबूझकर रावणपर यह बात प्रकट कर दी थी कि सीताहरणके अपराधीका पता श्रीरामचन्द्रजीको लग गया है और वह अवश्य दण्ड देंगे रावणको सगठनका पता अवश्य था, पर उसे अपनी शक्तिका बड़ा गर्व था। उसने शायद इतना नहीं समझा था कि भगवान् रामचन्द्र केवल वनवासी तपसी नहीं वरन् देव, गंधर्व नाग, मानव सबकी ओरसे पूरा सगठन करके मेरे सर्वनाशके लिये आ रहे हैं। उसे विश्वास न था कि समुद्ररूपी अगम और अथाह खाईपर पुल बँध जायगा और लंकाके भीतर शत्रुकी सेनातक आ जायगी। विभीषणको शत्रुकी महाशक्तिका पता लग चुका था। वह रावणसे लड़कर भगवान् रामचन्द्रजीसे आ मिला और भगवान्ने तुरन्त ही उसे लंकाका राज्य दे डाला, अर्थात् यह निश्चय हो गया कि रावणको मारकर भगवान् रामचन्द्रजी विभीषणको ही राजा बनावेंगे। विभीषणके शरणागत होनेसे आधी विजय हो गयी। भगवान् रामचन्द्र जम्बू द्वीपके सम्राट् और विभीषणका साम्राज्य उनके

अधीन हो चुका। रावणका मारा जाना ही शेष और यह काम रह गया। युद्धद्वारा यह काम सम्पन्न हुआ। तपस्वी वनवासी राजकुमार भगवान् रामचन्द्र जो पैतृक माण्डलिक राज्य छोड़कर घरसे निकले थे, सारे जम्बू द्वीपके सम्राट् होकर घर लौटे।

रामायणकी सारी कथा उत्कृष्ट राजनैतिक गतिविधिका उदाहरण है। गोस्वामीजीने अपने कालमें देखा कि राजाओंमें आपसकी फूट है, परस्पर विरोध है, और साम्राज्य मुसल्मानोंके हाथमें है। भीतरी कलहने देशको बरबाद कर रखा है। वह बहुत खिन्न होकर कहते हैं—

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठकी को सुनै कालि कुचालिपर प्रीति॥
गोंड गँवार नृपाल महि यमन महा महिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दण्ड कराल॥
फोरहिं सिल लोढा सदन लागे उढक पहार।
कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार॥
चढे बघूरे चग ज्यों ग्यान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख सम्पदा त्यों जानिये कुराज॥
कटक कारे करि परत गिरि सारवा सहस खजूर।
मरहि कुनृप करि करि कुनय सो कुचालि भवभूर॥
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल॥
धरनि धेनु चारित चरित प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागि है, किये गोडकी गाइ॥
पाके पकये बिटपदल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहहिं नरेस ज्यों करि बिचार मन बीच॥

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सम होय॥
माली भानु किसान सम नीतिनिपुन नर पाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहु कलि काल॥
काल बिलोकत ईस रुख, भानु काल अनुहारि।
रविहिं राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरइ बिचारि॥

उन्होंने देखा कि देशमें लोग महाभारतकी रीति बरतने लगे हैं, भाई भाईमें, बन्धु, मित्र, सुहृद, परिवारी कुटुम्बीमें थोड़ी थोड़ी बातपर परस्पर कलह है। बाहरी वैरी दबाये बैठा है, लोग रामायणकी शिक्षा भूल गये हैं कि चक्रवर्ती राज्य भाई भाईको देना चाहता है, पर हर एक उसे ठुकरा देता है, लक्ष्य है, बाहरी वैरी। अपने देशमें परस्पर प्रीति है। बाहरके वैरी को जीतना रामायणकी शिक्षा है। इसे लोग भूल गये हैं। राजनीतिपर कोई ग्रन्थ लिखकर यदि गोस्वामीजी रामायणकी शिक्षाए प्रचारित करना चाहते तो उनको तनिक भी सफलता न होती। गोस्वामीजीका राजधर्म्म महात्मा गान्धीका ही राजधर्म्म था, जिसमें अहिंसा, क्षमा, सत्य, भक्ति, वैराग्य सभी सद्गुणोंका समावेश था। जो हो, जनतामें मर्य्यादापुरुषोत्तम-की भक्तिका यत्किंचित् प्रचार हुआ सही पर, अनुकरणको ओर ध्यान न गया। पुरुषोत्तम धर्म्म किसीने न सीखा, न समझा। रामचरितमानस एक भक्तका लिखी पोथी है, भक्ति प्रधान है, इसका प्रभाव कोरी भक्तिकी दृष्टिसे थोड़ा बहुत जनतापर पड़ा, पर व्यक्तिके भीतर मर्य्यादापुरुषोत्तमके विकास का अवसर कालकी गतिसे नहीं मिला। रामचरितमानसके पाठसे उदारता फैली। साम्प्रदायिकता घटी। भक्तिभाव बढ़ा। काव्यका लोकोत्तर आनन्द मिला, परन्तु

कलि प्रभाउ विरोध चहुँ ओरा,

कठिन कलिकालके प्रभावसे भारतका भीतरी कलह न मिटा, पर न मिटा। आज भी भारतमें भारतका भाव भरा हुआ है, रामायणके भावका नितान्त अभाव है। प्रत्येक जाति अपने अपने योगक्षेमके पीछे मर रही है। एक हिन्दू जाति ही होकर उन्नतिके पथपर हम अग्रसर होते तो भी कुछ आसू पुछते। रामचरित मानसका जो चरम उद्देश्य था अभीतक पूरा नहीं हुआ। अभी तक रामचरितमानसके प्रचारकी आवश्यकता है। हमें इधर उधरका वकवाद, व्यर्थकी कथा कहानी नहीं चाहिये। हमें तो चाहिये मर्य्यादापुरुषोत्तमके भावका प्रत्येक श्रोतामें, प्रत्येक भक्तमें, प्रत्येक मनुष्यमें विकास। गाव गाँवमे महाल महालमें रामचरितमानसकी कथा होनी चाहिये परन्तु कथाका उद्देश्य यही हो कि प्रत्येक श्रोता पुरुषोत्तम होनेके लिये मर्य्यादापुरुषोत्तमकी भक्ति एव अनुकरण करे। काया मन और वचनका ऐसा सयम करे कि शरीरसे सुन्दर हो, बलवान् हो, वचन मधुर मनोहर सत्य और हित हो, मन उत्साही, साहसी, वीर, पराक्रमी, शुद्ध और विकार-रहित हो। भाव उदार हो जायँ। परस्पर कलह न हो, पाश्चात्य सभ्यता रूपी समान वैरीकी पराजयके लिये प्रत्येक श्रोता यत्नवान् हो। अपने भीतर भी पुरुषोत्तमका विकास हो तो भारतीय पुरुषोत्तम-का विकास हो। यही पुरुषोत्तम अपने तपोबलसे पाश्चात्य सभ्यता रूपी रावणका विनाश करेगा। यही पुरुषोत्तम पाश्चात्य सभ्यताद्वारा हरी अपनी राजलक्ष्मी रूपी सीताका उद्धार इस रावणका सहार करके करेगा। यह हमारे भीतर विकसित होनेवाला पुरुषोत्तम तभी पुरुषोत्तम कहलानेयोग्य होगा जब इसमें ससारकी दासता न रह जायगी। वस्तुत दासता उस मर्य्यादापुरुषोत्तमकी रह जायगी जो ससारकी दासतासे मानवमात्रको मुक्त करनेके लिये ससारमें लीलावपु धारण करता है—

मोर दास कहाइ नर आसा
करइ त कहहु काह बिस्वासा

सिवा उस मर्य्यादापुरुषोत्तमकी दासताके और किसी मनुष्यकी दासता पुरुषोत्तममार्गपर अग्रसर मनुष्यके लिये असभव हो जानी चाहिये। जब इस प्रकार अपनी दासताकी बेडी काट ली तब अपने देशकी राज्यलक्ष्मीको बन्धनमुक्त करनेका उद्योग तो उसके लिये परम कर्त्तव्य हो जाता है।

गोसाईजीने सारी कथाके अतिरिक्त स्थल स्थलपर राजधर्मका वर्णन किसी न किसी मिससे किया है, किसी न किसीके मुखसे कहलाया है, स्वराज क्या है, सुराज क्या है, राजाका कैसा आचरण चाहिये, प्रजाका कैसा व्यवहार हो, मत्रीका क्या कर्त्तव्य है, दूतका क्या धर्म है, आपद्धर्म क्या है, दडकी क्या विधि है, राजा राजामें, मित्र मित्र और शत्रु शत्रु, एव शत्रु मित्रमें, कैसा व्यवहार चाहिये, सेवक कैसा हो, स्वामी कैसा हो, इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर मौजूद हैं। राज-नीतिका कोई अश शायद ही छूटा हो। इस महा काव्यमें इस प्रकारके इतने प्रसग हैं कि राजनीतिक शिक्षाके खोजीको कोई पृष्ठ खाली न मिलेगा।

१८—सामाजिक विचार

भये बरनसकर कलि भिन्न सेतु सब लोग,
करहिं पाप दुख पावहिं भय रुज सोक बियोग।

गोस्वामीजी प्राचीन निगमागमकी पद्धतिके बडे कट्टर अनुयायियोंमें थे। साम्प्रदायिकताके बडे विरोधी थे। किसी पंथ, मत, सम्प्रदायके माननेवाले न थे। सारे मानस महा काव्यमें बराबर प्राचीन सनातन रीतियोंकी प्रशसा की है। कलिधर्म निरूपणके बहाने कहते हैं।

' दम्भिन निज मत कल्पि करि प्रकट कीन्ह बहु पथ '

"बरन धरम नाहिं आस्रम चारी। स्रुति विरोधरत सब नर नारी"

वर्णाश्रम धर्मके कट्टर अनुयायी थे। स्वयं त्यागी थे परन्तु सारे संसारको वैरागी बनानेके पक्षके न थे। मर्यादापुरुषोत्तमके जीवनादर्शके अतिरिक्त रामराज्यमें प्रजाके आचरणकी प्रशंसा करते हुए एक पत्नी व्रतको महत्त्व देते हैं। रामराज्यमें सभी एक नारिव्रती थे। राजा दशरथके कई रानियां थीं, परन्तु राजा रामचन्द्र, उनके भाई, लड़के, भतीजे किसीने एकसे अधिक विवाह नहीं किया। सन्तानके नाते भी दो दो पुत्रोंसे अधिक सन्तान भी उत्पन्न नहीं की। प्रजाके सामने प्रजावृद्धिमें भी संयम दिखाया। समाज विलासितामें न लगे, धनी महाजन भी अपने काम अपने हाथ करनेमें न लजायँ, इसलिये श्रम और सेवाका महत्व इतना दिखाया कि भगवती सीता "निज कर गृह परिचर्य्या करहीं," और आप स्वयं बाल्यावस्थामें तो गुरुके चरण चापते थे, उनके साथ पैदल मंजिलों तय किया और वनवास कालका तो क्या कहना है। ऐसा उत्तम आदर्श सामने हो तो प्रजा विलासितामें क्यों फँसे। ऐसी दशामें धनी अपने भोग विलासमें जब धनका अपव्यय नहीं करता तो उस विपुल धनका बहुत अंश उन लोगोंमें अवश्य ही बँट जाता है जो अत्यन्त दरिद्र हैं। इस प्रकार प्रजामें यद्यपि धनी और धनहीन, छोटे और बड़े, श्रमी और आलसी, सेव्य और सेवकका पारस्परिक थोड़ा बहुत अन्तर बना रहता है तथापि वह अन्तर उतना ही रहता है जितना कि मनुष्यकी पाँचों अँगुलियोंमें है। यदि एक अँगुली गजभरकी हो जाय और कनिष्ठिका ज्योंकी त्यों बनी रहे तो हाथकी अँगुलियोंमें पारस्परिक सहकारिता असंभव हो जाय। आजकल समाजकी दशा कुछ ऐसी ही हो रही है। समाजमें धनवान और निर्धनका आजकलका अन्तर ऐसा ही

विषम है। आजकलका साम्यवाद भी उसी वैषम्यकी प्रतिक्रिया है। न तो यह वैषम्य ही स्वाभाविक है और न ऐसा साम्यवाद ही स्वाभाविक है। असमानता प्रकृतिका धर्म है। रामके राज्यमें यह असमानता स्वाभाविक दशामें थी इसीलिये साम्य वादकी प्रतिक्रिया नहीं दीखती।

भरतजीको समझाते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि वेदविहीन ब्राह्मण जो अपने धर्मको छोड भोगविलासमें लगा हो, राजा जो नीति नही जानता जिसे प्रजा प्राणोंके समान नहीं, वैश्य जो धनवान हो पर कृपिण हो और अतिथिसेवा न करता हो, विद्वानों ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला शूद्र जो बकवादी हो, अभिमानी हो, अपने ज्ञानका घमडी हो, पतिवचक नारी जो कुटिला और लडाकी और आवारा हो, वटु जो व्रतत्यागी हो गुरुकी अवज्ञा करता हो, गृहस्थ जो अज्ञानसे कर्मका त्याग-करे, संन्यासी जो प्रपचमें फँसा, विवेक वैराग्यहीन हो, वान प्रस्थ जो तप छोड विलासप्रिय हो, यह सभी शोकके योग्य हैं। स्पष्ट है कि गोस्वामीजी वर्णाश्रम धर्मके कितने वडे पोषक हैं। वह ब्राह्मणोकी वडी प्रतिष्ठा करते हैं। विप्र अर्थात् विद्वान ब्राह्मण तो उनके निकट सदा पूज्य है चाहे वह शाप क्यों न दे रहा हो, मार ही क्यों न रहा हो, कठोर वचन ही क्यों न कह रहा हो। भुशुडिके प्रति – वान्के मुखारविन्दसे गोस्वामीजी यह कहलाते हैं—

मम माय सभव पारिवारा।
जीव चराचर विविध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सबते आधिक मनुज मोहिं भाये।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुति धारी।
तिन्ह महँ निगम धर्म्म अनुसारी।

तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी।
ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी।
तिन्हते पुनि मोहिं प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

सब प्राणियोंमें मनुष्य, मनुष्योंमें द्विज, द्विजोंमें वेदतत्व-वित्, वेदविदोंमें भी तदनुकूल आचरण करनेवाला, वेदाचारियों कर्मकाण्डियोंमें भी विरक्त, विरक्तोंसे अधिक ज्ञानी, ज्ञानियोंसे अधिक विज्ञानी और विज्ञानियोंसे भी अधिक, अनन्य भक्त भगवान्‌को अधिक प्यारा है। परन्तु इतनेपर भी भगवान् पतित-पावन हैं। मर्य्यादापुरुषोत्तम नीचसे नीच निषादको,"जासु छाहँ छुइ लेइय सींचा" गले लगाते हैं। क्यों, क्या वर्णाश्रमधर्मके विपरीत आचरण करते हैं? नहीं, जैसा कहते हैं ठीक वैसा ही करते हैं। सब प्राणी भगवान्‌के उपजाये हैं,सब उनको प्यारे हैं। परन्तु

तिन्हते अधिक मनुज मोहिं भाये

मनुष्यतो सबसे अधिक प्यारे हैं। जिन भगवान्‌ने

"प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किय आपु समान"

जानवरोंको अपने समान आदर दिया, वह मनुष्योंको जो उनको अधिक प्रिय हैं क्यों न गले लगावें? आज हम हैं कि गंदे कुत्तोंको मुहँ लगाते हैं, और शौच न करनेवाले गंदे विदेशियोंसे हाथ मिलाना अपना परम सौभाग्य समझते हैं, परन्तु अपने यहाके सफाईसे रहनेवाले अन्त्यजको डेवढी नहीं छूने देते और अपने धर्मध्वज होनेकी डींग मारते हैं। भगवान् रामचन्द्रने स्वय निषादको गले लगाकर उस समयकी धर्मध्वजताको अर्द्धचन्द्र देकर अपने राज्यसे बाहर निकाल दिया तभी तो *राम सखा रिषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे।*

मर्य्यादापुरुषोत्तमने जो मार्ग खोल दिया उसपर पीछे वसि

दौर्बल्यमें एक विशेष कोमलता है। वह जो कुछ कहते हैं, बड़े भाईके बलपर और बड़े भाईकी ही खातिर कहते हैं। अपना रत्तीभर स्वार्थ उनकी कटूक्तिमें नहीं है। उनमें क्षात्र धर्मका उत्कट अभिमान है, परन्तु वह सब श्रीरामचन्द्रजीके इशारोंपर अवलम्बित है। जहा श्रीरघुनाथजीने आख तरेरा, तुरन्त शान्त हो लक्ष्मणजी दबक गये। खूंटेके बल बछड़ा कूदता है। कुमार लक्ष्मणजीके सारे बल तो भगवान् रामचन्द्रजी स्वय हैं। यह बात बन जाती बेर एकदम स्पष्ट हो जाती है। लक्ष्मणजी रो देते हैं कि महाराज, मैं तो और किसीको जानता ही नहीं, छोड जाओगे तो किसका होके जिऊंगा। इतना भारी बलशाला वीर अपना सहारा हटते देख कितना अधीर हो जाता है। उसे मा, बाप, स्त्री, घरद्वार किसीकी परवा नहीं। घबराता है कि कहीं मा न रोके। जब माने न रोका तो इतना साहस नही हुआ कि पत्नीसे मिलें। नही, पत्नीको जानबूझकर बिसार दिया। बाधाका भारी डर जो था। शूर्पणखासे उनका गंभीर उत्तर

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा
पराधीन, नाहिं तोर सुपासा

कोई नया विचार न था। इसी विचारको लेकर तो चौदह बरसके वियोगके आरम्भमें भी भगवती ऊर्म्मिलासे वह नहीं मिले।

छोटा देवर अपनी भावजको अपनी माता समझता है। सुमित्राका उपदेश भी यही था कि रामको पिता जानकीको माता और वनको अवध जानो। लक्ष्मणजीका तो यही भाव पहलेसे भी था। बडे कडे समयमें आखोंमें आसू भरकर कहते हैं "मैं तो कान और बाँहके गहने नहीं पहचानता, परन्तु यह बिछुए उन्हींके हैं क्योंकि नित्य चरणवन्दनमें उन्हें देखता

था।" तेरह बरसके वनवासमें परदेमें न रहनेवाली भावजको जो बराबर साथ रही ऐसी निगाहोंसे कभी न देखा जो सौंदर्य्य वा अलकारोंका आदर करे। कोई माताके सौंदय्य वा आभूषण भी देखता है? लक्ष्मणजीने वनवासमें घोर तपस्या करके श्रीरघुनाथजीको सेवा की, अपने प्राणोंकी तो कभी परवा ही न की। अन्तमें जिन भगवती सीताके लिये वह अपने प्राणतक प्राय गँवा चुके थे भाईकी आज्ञासे छातीपर शिला रखके वनमें पहुँचा आये।* आज्ञा सदा शिरोधार्य्य थी, अपने मानसिक कष्ट, मानसिक विचार कोई मूल्य न रखते थे। अपने लम्बे जीवनमें एक बार और केवल अंतिम बार बड़ी लाचारीसे भाईकी आज्ञा न मानी और उसके प्रायश्चित्तमें या दण्डमें जलसमाधि ले ली।। इस आज्ञाकारी भाईका अन्त पहले और अन्तिम आज्ञाभगमें ही हुआ।* यमराज भगवान्से प्रस्थानके विषयमें सलाह करने आये। द्वारपर लक्ष्मणजी तैनात किये गये। आज्ञा हुई "खबरदार, हम लोग बात कर रहे हैं, कोई इस बीच आया तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा।" भावीकी ही पूर्त्तिके लिये उस अवसरपर सारी सामग्री प्रस्तुत हुई थी। दुर्वासा ऋषिको उसी समय श्रीरघुनाथजीसे मिलना इतना जरूरी हो गया कि उन्होंने भगवान् लक्ष्मणजीको धम काया कि इत्तिला न करोगे तो सारे नगरको भस्म कर दूगा। इत्तिला करनेमें केवल लक्ष्मणजीको प्राणदण्ड होता है, न करनेमें सारे नगरको। उदारचेता लक्ष्मणजी इत्तिला करते हैं, और भगवान् रामचन्द्रजी बड़े रजसे उन्हें प्राणदण्ड देते हैं, और लक्ष्मणजीके जलमग्न होनेपर सभी भाई शोकातुर हो शरीर त्याग करते हैं। यह वस्तुत बहाना था। समय आ गया था। परन्तु लक्ष्मणजीकी अनुपम उदारता, अनुपम आज्ञाकारित्व

---

* गोस्वामीजीने यह कथाए मानसमें नहीं दी हैं।

और उनकी और श्रीरघुनाथजीकी कड़ी न्यायबुद्धि यहां इतिहासपटपर अंकित हो जाती है।

बंदउ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका॥
सेस सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥

भरतसा विरागी नि स्वार्थ न्यायपरायण भ्रातृभक्त संसारके इतिहासमें दूसरा नहीं है। उन्हींको राज दिलानेके लिये कैकेयी सारे खेल खेलती है विधवापन स्वीकार कर लेती है, सारी प्रजाके विरुद्ध चलती है, लोकमें बदनाम होती है, सारा परिवार विपत्तिसागरमें डूब जाता है, अयोध्या उजड जाती है, राम लक्ष्मण सीता चौदह बरसके लिये वनवास करते हैं, माताएं समझाती हैं, वसिष्ठजी उपदेश देते हैं, प्रजा अनुनय विनय करती है कि आप राज्य स्वीकार कर लीजिये परन्तु भरत हैं कि शोकसमुद्रमें डूबे हुए भी न्यायपथसे विचलित नहीं होते और रामका राज्य रामको सौंपनेका प्राण पणसे उद्योग करते हैं। भरतकी धर्मनीतिपर, उनके विचार गाम्भीर्य्यपर उनकी वाक्पटुतापर जनक वसिष्ठादि भी मुग्ध हो जाते हैं, और अन्तमें भगवान् रामचन्द्रकी इच्छा जानकर ही भरतजी चरणपादुका लेकर अवधिभरके लिये राज्यप्रबन्ध भार लेते हैं। तिसपर भी घर बैठकर भरतजी तपस्या करते हैं।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृसगात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

हनुमानजी दंग हो जाते हैं। चक्रवर्ती राज्य जिसके अधिकारमें पूरे चौदह बरसतक हो उसका मन एक दिन भी उसके लालचसे डावाडोल न हो, वरन् जो अवधिका अन्तिम दिन बिना प्यारे भाईकी खबर मिले बीतते देख अपार चिन्तामें

पड़ जाय और प्राण छोड़नेको तय्यार हो जाय, उस पुरुषोत्तम की उपमा संसारमें कहा मिल सकती है? लोभ मोहने तो भरतजीकी छाह भी नहीं छुई, भक्तिने भरतजीमें अपनी परा काष्ठा दिखायी। परन्तु ठीक समय भरतकी तपस्या पूरी हुई, श्रीरघुनाथजी आ गये, राज्य सौंपकर राजपुरुषोंके पदपर तुरन्त भरतजी आरूढ़ हो गये। अपने कर्त्तव्यके पालनमे उन्हें कब आनाकानी थी? उन्हें तो आपत्ति इसमें थी कि सिंहासन स्वामीकी जगह है, सेवक भला उसपर बैठनेका साहस कर सकता है?

शत्रुघ्नजी तो भरतके ही अनुगामी हैं,पर हैं आखिर लक्ष्मणजी के ही भाई! दोनों भाई कैकेयीसे घरके सर्वनाशका वृत्तान्त सुन रहे हैं कि बीचमेंही शृंगार किये मथरा आ गयी। भला शोकनिवासमें शृंगारका कौन सा मौका था? तभी तो

दीसि समुहन नखसिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धरि झोटी।

मगर, भरतजी दयानिधान हैं। वह छुड़ा देते हैं। शत्रुघ्नजीमे भी लक्ष्मणजीका सा बालकस्वभाव देख पड़ता है।

पिता दशरथ वात्सल्य की मूर्त्ति हैं। पुत्रलालसामें जीवन बीता जाता था। एक भूलसे जो वैश्य तपस्वीकी हत्या हुई और उसके माता पिताने शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु भी पुत्र वियोगमें ही होगी, तो उस शापको दशरथने परम हित माना, क्योंकि शापसे यह तो निश्चय हो गया कि पुत्र होंगे। चौथेपनके बालक थे। विश्वामित्र उन्हें लेने आये। राजा राजी नहीं हुए। बोले, "अनुभवका काम है, चलिये मैं सेना लेकर स्वयं यज्ञकी रक्षा करूँ"। उधर राज हठ था, पर इधर हठके अवतार विश्वा मित्र अड़ गये कि रामको ही ले जाऊंगा। हारकर अपने प्राण वसिष्ठजीको सौंप दिये। अपने अधिकार भी साथ ही दे डाले।

बराबर खबर लेते रहे। जब जनकपुरसे श्रीरघुनाथजीकी चीठी मिली तो प्रेमानन्दसे अपने आपेमें नहीं रहे। जनकपुरमें प्यारे पुत्रसे मिले क्या!

मृतक शरीर प्रान जनु भेटे!

श्रीरघुनाथजीको राज्य देनेमें उन्हें विशेष रूपसे ममत्व था। उन्हें श्रीरामचन्द्रजीको ही राज देना कर्त्तव्य भी था। यही प्रचलित राजधर्म था। इसके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकते थे। कैकेयी सबसे छोटी रानी थी। और रानियोंके पुत्र नहीं हुए थे। ब्याहके समय आशा थी कि नयी रानीके संतान होगी, वही राज्याधिकारिणी होगी। पर सबसे पहले पुत्र हुआ कौशल्याके। सवतिया डाह था नहीं। श्रीरामचन्द्रजीको कैकेयी सबसे अधिक चाहती थी। फिर भी होनहारकी आशंकासे राजाने क्या क्या उपाय नहीं किये। पर सब पट पड़ गये। राजनीतिके कुचक्रमें पड़कर दोमें एक बात तो अवश्य होती है। या तो सफलताके लोभसे धर्म्मात्माओंके भी पाँव फिसल जाते हैं, या धार्म्मिक कर्त्तव्यके पीछे राजनीतिक चालें ही विफल हो जाती हैं। राजा दशरथ नृपनीति करने चले थे, परन्तु कट्टर धार्म्मिक और नीतिवान् थे। इसीलिये उनकी मनचाही बात नहीं हुई। वह जो कुछ मनसे चाहते थे, वह था होनहारके विरुद्ध। यही कारण है कि धर्म्मने भी उसका विरोध हो गया। पर राजा दशरथ केवल राजा न थे। वह दशरथ भी थे। व्यक्ति भी थे। उन्हें अपने वैयक्तिक व्रत भी पालने थे। वह केवल पिता न थे। वह मनुष्य भी थे। उन्हें अपने वात्सल्यको बलि करके भी सत्यव्रत पालन करना था। राज चला जाय, पुत्र छूट जाय, बल्कि प्राण भी चले जायँ, पर सत्य न जाय। कितना कठोर असिधारा व्रत है! पर दशरथके बलवान् आत्माने सत्यको सर्वस्व त्याग करके निबाहा। सच्चे त्यागी राजा दशरथ ही चारों पुत्र भी सच्चे त्यागी हुए जिन्होंने कर्त्तव्यपालन

के पीछे माता, पिता, भाई, परिवार, नगर तो क्या हाथ आया हुआ चक्रवर्ती राज्यतक फेंक दिया। किसी सन्यासीने कभी ऐसा त्याग न किया था न करेगा। अप्राप्य विषयके विरागी तो हताश हो सभी मनुष्य हो जाते हैं। पर, कर्त्तव्यके पीछे सर्व स्वका त्याग विरले ही होता है। यही पुरुषोत्तम धर्म्म, यही पुरुषोत्तमताकी मर्य्यादा है।

मानसके राजा दशरथने कैकेयीको व्याहनेके समय कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। उनकी प्रतिज्ञा है तो वरदान। अन्यथा जो कुछ वरदानके झगडेके पहले उन्होंने किया वह तो उनका कर्त्तव्य था। बुढापेका खयाल आया, फिर सबसे अधिक उप युक्त राजकाजको सँभालनेवाला श्रीरामचन्द्रजीके सिवा कौन है? राजसभासे पूछा, वसिष्ठजीसे सलाह की। सबने एक स्वरसे श्रीरामचन्द्रको ही युवराजपद देनेकी ठहरायी। अकेले दशरथकी बात होती तो केवल ममता और वात्सल्य ही कारण ठहराये जाते। जब दशरथने कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि कुछ दिन गये भरतजी राजा होंगे तो वहा भी यह हेतु निहित था कि रामजीका वनगमन रुक जाय और भरतजीको ननिहालसे बुलाया जाय, इतनेमें पौरों, जानपदों और गुरु आदि से सलाह करके निश्चय करनेका भी अवसर मिलेगा। बिना सबकी सलाहके राजा कुछ करता तो उद्दण्डता और उच्छृखलता होती। ऐसे उद्दण्ड राजा हो चुके थे, परन्तु राजा दशरथ सच्चे न्यायपरायण और नीतिवान् थे। वह कभी अनीतिसे चल न सकते थे। कैकेयी यह सब बातें समझती थी, इसीलिये राजी न हुई। राजा दशरथ इन दृष्टियोंसे ऐसे शासक थे जिनकी पद्धतिके विकासका फल ही रामराज्य था।

माताओंमें कौसल्या उदारताकी मूर्त्ति हैं। ईर्षा तो छू नहीं गयी। श्रीरघुनाथजी विदा माग रहे हैं। कहती हैं कि अगर पिताकी ही आज्ञा है, तो मत जाओ क्योंकि माताका पद

है। परन्तु जब पिता और माता कैकेयी दोनों कहें तो वन तो अवधसे कई गुना अच्छा है। कैकेयीको कौसल्याजी माताका पद देती हैं और अपना तो कोई अधिकार ही नहीं मानतीं। उनका धैर्य पुरुषोत्तमकी माताके ही योग्य है। सहम जाती हैं, शोकसे विह्वल हो जाती हैं पर सँभलनेमें देर नहीं लगती। पुत्र और पुत्रवधूको बड़े धैर्यसे छातीपर पत्थर रखकर विदा करती हैं। राजाकी मृत्यु इन्हींके सामने होती है। राजा दशरथको भी धैर्यकी सलाह देती हैं। उनके प्राणत्यागपर विधवपन ऐसे महान शोकसे विह्वल होकर भी कैकेयीको कुछ नहीं कहतीं। भरत कितने ही कटुवाद कह जाते हैं पर रामकी माता रामकी ही माता हैं। उनका धैर्य अपरिमित है। वह अन्ततक धीर गम्भीर रहती हैं। सुमित्रा तो रामकी पूर्ण भक्ता है। कहती है "जिसका बेटा रामका भक्त हो वही तो पुत्रवती है, नहीं तो गर्भ धारण करना ही व्यर्थ है।" तीनों रानियोंमें कभी पारस्परिक ईर्षा न थी। परन्तु मथराकी कुटिलताके जालमें कैकेयी फँस जाती है और ऐसा फँसती है कि मरण पर्यन्त उसे पछतावा ही पछतावा हाथ लगता है। यों वह दिलकी [illegible] नहीं है। यह सपत्नियाँ भी आदर्श हैं, परन्तु बहुपत्नीत्वका [illegible] जो घरका सर्वनाश है रामके राज्यके "एक नारिव्रत सब नर भारी" की अमिट शिक्षा देता है। आगेके लिये कड़ी चेतावनी है।

भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है, श्रीरघुनाथजी ही आदर्श पुत्र हैं। कैकेयीको कौशल्यासे अधिक मानते हैं। चित्रकूट जानेपर और अयोध्या लौटनेपर भी उससे ही पहले मिलते हैं। पिताके वचन उनके लिये ब्रह्मवाक्य हैं, अमिट हैं, अपेल हैं। उनके वचनोंपर तपस्या करनेमें भी उन्हें परम सुख है। बापकी बातपर राज्यका त्याग तो उनके निकट कोई त्याग ही नहीं है। ग्रामवास तो क्या विभीषण

और सुग्रीवको राज देनेको भी वस्तीमें नहीं गये। लक्ष्मणजीको भेजकर राजतिलक कराया। चौदह वरसकी अवधि जिस घड़ी पूरी हुई उसी समय अयोध्यामें कदम रखा। धन्य है समय-संयम और भरतका और माताओंका खयाल! व्रतको स्वयं पालन करनेमें और पितासे व्रत पालन करानेमें और जिनके लिये रावणका संहार करनेवाला महा समर किया था उन्हीं भगवती सीताका धोबीके उपालम्भपर परित्याग करनेमें कुलिश से भी कठोर हैं। पिताके प्राणत्यागका निश्चय होते हुए भी तुरन्त वनयात्रा की। साथ ही सिरिसके फूलसे भी कोमल हैं, लक्ष्मण और सीताके आंसू सह नहीं सकते, वालिकी बातोंसे पछताकर उसको जिलानेको तय्यार हैं, भक्तकी चूक तो याद ही नहीं रखते। कहते हैं कि

जेहि सायक मैं मारा बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली

परन्तु ज्यों ही लक्ष्मण भगवान्‌का रुख देखकर खड़े होते हैं भगवान् तुरन्त कहते हैं कि देखो, तुम मार मत डालना, हे तात! सुग्रीव तो सखा है ना, उसे केवल डराकर मेरे पास ले आओ। शक्ति लगनेपर भाईके प्रेममें विह्वल हो जाते हैं। उन्हें अपने किसी भाईपर कभी मनमें सन्देह हुआ ही नहीं। बचपनमें भी छोटे भाइयोंपर इतना वात्सल्य था कि जब छोटे खेलमें हार जाते थे, तो इसलिये कि उनका उत्साह भंग न हो फिरसे खेला कर उन्हें जिता देते थे। भरतका समारोहके साथ आना सुनकर भगवान् तो मन ही मन सोचमें हो जाते हैं कि भरतके आनेका यह अर्थ तो नहीं है कि पिताका शरीरान्त हो गया। इधर लक्ष्मणको यह सन्देह होता है कि भरतजी रामको मारकर अकंटक राज्य करनेके लिये तो नहीं आ रहे हैं, शायद श्रीरघुनाथजी को यही सोच है, ऐसा समझकर सेनासहित भरतको मार डालनेके लिये कमर कसकर खड़े हो जाते हैं। इनकी उतावली देख भगवान् इनका सन्देह निवारण करते हैं, कि भरतके

तुम्हें ऐसा सन्देह ! ओह ! क्या कहीं खटाईकी बूंदसे क्षीर समुद्र फट जाता है ? भरत जैसे पुरुषोत्तम उदारताके क्षीरसागरके लिये चक्रवर्ती राज्य खटाईके एक सीकराणुसे भी कम है। राज्य पाकर भरतजीको मद ! कदापि नहीं !

रावणको मार चुके विभीषणको राज्य मिल गया। अवधि पूरी होनेको आयी। श्रीरघुनाथजीको चिन्ता हो गयी

बीते अवधि जाउँ जौं जियत न पावउँ बीर।

भगवान् भरतकी निःसीम भक्ति और आत्यंतिक कोमलताको कहीं भूल सकते हैं ? जहां छोटे भाइयोंके लिये यह भाव है, वहां अपने बड़ोंके लिये भी क्या कोमलता है ! मातापिताको समझाते हैं कि चौदह बरस चुटकियोंमें बीत जायँगे, मैं तो शीघ्र ही फिर आके चरण छूऊंगा। वसिष्ठजी श्रीरघुनाथजीको उपदेश देने जाते हैं और जानते हैं कि परात्पर पुरुषोत्तम ही हैं, परन्तु श्रीरघुनाथजीकी विनय अपूर्व है। "सेवकके घर स्वामीके चरणों का आना तो मंगलमूल है, मेरे बड़े भाग्य कि गुरुके चरणोंने घरको पुनीत किया। भगवन्, नीति तो यही है कि काम लगे तो सेवकोंको बुलाकर आज्ञा करते हैं। पर कभी कभी इसमें भी भारी प्रभुत्व है कि बड़े लोग छोटोंका आदर करते हैं।" बेचारे वसिष्ठ परात्पर पुरुषोत्तमके इन वाक्योंपर क्या कहते ? "राम कस न तुम कहहु अस हंस बंस अवतंस" कहकर रह गये।

भगवान्ने सख्य भी कैसा किया ! निषाद, विभीषण, सुग्रीव आदिकी कथाएं सख्यभावके उदाहरण हैं। निषादकी नीचता, सुग्रीव और विभीषणकी खुटाई और कदाचार कभी श्रीरघुनाथ जीके ध्यानमें न आये। उन्होंने तो स्वयं सख्यधर्म यों बताया—

'*कुपथ निवारि सुपथ चलावा। गुन प्रकटइ अवगुनहिं दुरावा।*'

यह तो साधारण अच्छे मित्रोंका ढंग है। परन्तु जीकी तो बात ही न्यारी है—

रहत न प्रभुचित चूक कियेकी ।
करत सुरति सयनार हियेकी ।
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली ।
सोइ सुकठ पुनि कीन्हि कुचाली ।
सोइ करतूति विभीषन केरी ।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी ।
सो भरतहि भेटत सनमाने ।
- राजसभा रघुवीर वखाने ।

वाल्यावस्थामें भी जव जनकपुर और मखशाला देखनेको गये तो राजकुमारोंके अपूर्व सौंदर्य और सरलतापर मोहित होकर अनेक वालक साथ हो गये और नगर आदि दिखाने लगे। उनके साथ भी वडा ही शिष्ट और स्नेहमय सख्यका व्यवहार किया।

दैनिक चर्य्यामें भगवान्का वाल्यावस्थासे नित्य नियम था कि तडके उठकर पहले मातापिता और गुरुके चरणपर सीस नवाते थे, फिर शौचादिसे निपटकर सध्या वन्दन अग्निहोत्रादि करके व्यायाम शास्त्राभ्यास आदि करते थे और फिर अपने साधारण नित्यके कामोंमें लगते थे। पूरे सयम और ब्रह्मचर्य्य का जीवन था, वडोंकी सेवा थी, जिससे शरीरमें सौंदर्य्य भी था। वलवान् तेजस्वी और यशस्वी थे। हमने माना कि शरीरका सौंदर्य्य पूर्व सस्कारपर भी निर्भर है, मातापिताके प्रभावसे भी होता है। राजा दशरथ और कौसल्याकी तपस्याका फल भी था, उनका भारी प्रभाव था। परन्तु सस्कारजनित सौंदर्य्य भी सुरक्षित और विवृद्ध तभी हो सकता है जव सौंदर्य्यनिधान स्वय अपने सयम और ब्रह्मचर्य्यपालनसे उसे स्थायी रखे। चारों राजकुमार सुशिक्षासे सम्पन्न थे, सयमकी मूर्ति थे, सदाचारके अवतार थे। उनका सौंदर्य्य, तेज और वल उनके सयम

आचारसे स्थायी और मानवमर्य्यादाके भीतर दृढ था। पुरुषो त्तमने यह दिखाया कि मनुष्यका धर्म है कि अपनेको सुन्दर, तेजस्वी, बलवान् और यशस्वी बनावे। श्रीरघुनाथजीने यह शिक्षा नहीं दी कि मनुष्य अपनेको कुरूप, क्षयरोगी, बलहीन, तेजहीन भिखमगा बनावे। श्रीरामचरितमानसमें बारम्बार सत और असतके लक्षण दिये गये हैं। गोस्वामीजीने साधु और खलकी वन्दनासे तो भूमिकाका आरभ ही किया है। सत और असतके वर्णनसे सारा मानस भरा पडा है। भगवान् रामचन्द्र स्वय सत असत-भेद वर्णन करते हैं। यहा सन्यासी होकर रहना कोई लक्षण नहीं है। संत असत अपने कर्मके अनुकूल फल पाते हैं। संत चन्दनपर असत कुठार चोट करता है। सत चन्दन घिस घिसकर देवताओंके सीसपर चढता है। दुष्ट कुठार आग में तपकर घनसे पिटता है। उसे वह पुरस्कार मिलता है इसे यह दड। सत विषयमें नहीं फँसता, अच्छे गुण और चरित्रकी खान है, परदु'खसे दु खी पराये सुखसे सुखी होता है, सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता है, उसका कोई शत्रु नहीं है, उसे लोभ अमर्ष हर्ष भय नहीं है कोमलचित्त है, दीनदयालु है, मन वचन कर्मसे निष्कपट भक्ति करता है, सबका आदर करता है, आप नम्रताकी मूर्त्ति है, निष्काम भक्ति करता है। शांतिवृत्ति, शीतलता, सरलता, विनयका घर है। शम, दम, नियम और नीतिका पालन करता है। कठोर वचन मु हसे नहीं निकालता। निंदासे दु खी और स्तुतिसे सुखी नहीं होता। यह सब गुण जिसमें हों उसे सच्चा सत समझना चाहिये। इनके विपरीत आचरणवाले असत या खल हैं। खलोंका गुणानुवाद यहा अभीष्ट भी नहीं है। विस्तार मानसमें पर्य्याप्त है। सत असत-भेदका निचोड मानसकारने यों दिया है कि 'परहितके समान न कोई धर्म है और न हिंसाके समान कोई पाप। सतों-का कैसा अच्छा आदर्श है। मर्य्यादापुरुषोत्तमने अपने चरितसे

यह स्पष्ट कर दिया है कि संसारी मनुष्य सन्तोंके आदर्शका किस प्रकार पालन कर सकता है। पुरुषोत्तमका अनुकरण करके, अपना विकास करके, वह स्वयं किस प्रकार पुरुषोत्तमपथपर आरूढ हो सकता है।

विनयपत्रिकामें गोस्वामीजीने भगवान्के शील स्वभावका अत्यन्त संक्षेपमें ऐसे मनोहर अर्थ व्यंजक शब्दोंमें वर्णन किया है कि कमसे कम सौवें पदको बिना उद्धृत किये रहा नहीं जाता।

सुनि सीतापति सील सुभाउ,
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।
सिसुपनते पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत रामाबिधुबदन रिसोहैं सपनेहु लख्यो न ,काउ।
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।
सिला साप सन्ताप बिगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ।
भव धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध छमाइ पाँय परि इतौ न अनत समाउ।
कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातुको मनु जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ।
कपि सेवावस भये कनौडे कह्यौ पवनसुत आउ।
देबेको न कछू रिनियाँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ।
अपनाये सुग्रीव बिभीषन तिन न तजे छल छाउ।
भरतसभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ।

सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ।
समुझि समुझि गुनग्राम रामके उर अनुराग बढाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम पसाउ।

भगवान्‌के शील स्वभावकी थोडी सी चर्चा करके ही लेखनी-को उनसे भी अधिक उनके दासकी चर्चा करनेकी हिम्मत हो सकती है। जैसे स्वामी भगवान रामचन्द्र मर्य्यादापुरुषोत्तम हैं वैसे ही भगवान् मारुति सेवाकी सीमा हैं। बिना पवनपुत्र श्रीहनुमान-जीके चरित्रकी चर्चा किये न यह प्रकरण समाप्त हो सकता है और न लेखनी कृतार्थ हो सकती है। भगवान् मारुतिसे यद्यपि पहलेपहल ऋष्यमूक पर्वतके पास ही भेट होती है, तथापि

"प्रभु पहिचानि परे गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।"
"मैं अजान होइ पूछा साईं।
तुम कस पूछहु नरकी नाईं।"

इससे यह स्पष्ट है कि मारुति पुरुषोत्तमोंसे पहलेसे परिचित हैं। पूछनेमें भी तो चतुराई देखिये "त्रिमूर्त्तिमेंसे आप कोई हैं, कि नर नारायण हैं, कि अखिलेश हैं" मानों उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इनमेंसे ही कोई अवश्य हैं—और ठहरे भी अखिलेश ही! इतनेपर वही भोलेपनकी बातें कि नाथ! मैं तो अजान होकर पूछता था, आप भी मनुष्यकी नाईं कैसे पूछने लगे? बात तो यह थी कि नाथ और दास दोनों ही ससारकी रगभूमिमें लीला कर रहे हैं, दोनों ही इतने निपुण अभिनेता हैं, कि कोई अपने अभिनयमें चूकनेवाला नहीं। फिर भी सेवकसे चूक हो ही जाती है, वह कितना ही करे नाटकके परम सूत्रधारके सामने उसे झुकना ही पडता है। बात खुल ही जाती है।

सेवाका आरम्भ यहींसे होता है। सुग्रीवके मत्री हैं, उनकी विपदाके सगी, इसलिये मारुति वह काम करते हैं जिसमें दोनों

पक्षका लाभ है। सुग्रीवका भला तो हुआ ही, उसकी मैत्रीका फल रामरावणयुद्धमें पूरी सहायता भी प्राप्त हुई। हनुमानजी अपने कर्त्तव्यको कभी नहीं भूलते। देखा कि सुग्रीव राज्य सुखमें अपनी प्रतिज्ञा भूल गया है तो आप ही अग्रसर हुए और लक्ष्मणजीके सक्रोध आगमनके पहले ही उसे चेतावनी दी और स्वय कुछ तदबीरें कर रखीं। देखिये, मन्त्रीकी चतुराई। क्रोध शान्त करनेका साधन उपस्थित किया, स्वामीका काम भी किया और राजाको चेतावनी भी दी।

चर-कार्य्यमें तो हनुमानजी सा दूसरा त्रिकाल और त्रिलोक में है ही नहीं। श्रीरामचन्द्रजीसे जो पहली भेंट हुई उसीमें उनके कौशलका परिचय भगवान्ने पाया। तेजस्वी, बलवान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, सच्चा स्वामिभक्त, ब्रह्मचारी देखकर चलती बेर चुपकेसे बुलाकर भगवान्ने इन्हें अँगूठी दी और सँदेसा भी बताया। वह तो जानते थे कि दूतका काम इसी चरोंके परमाचार्य्यको करना पड़ेगा। समय पड़नेपर अपना रूप अपनी अवस्था आदि बदलकर काम निकालना और उचित वचन बोलना और उचित कर्म्म करना इन्हींके हिस्सेकी बात थी। मारुतिको शायद अणिमादि सिद्ध हैं, क्योंकि इनके जितने काम हुए सभी अद्भुत हैं। पहले तो उनका अपरिमित बल ही अपूर्व चमत्कार है। फिर समुद्र लाघना, लंकामें मशक सा नन्हा रूप धारण करके घर घर घूमना, सारी लका छान डालना, विभीषणसे मैत्री करना, सीताका पता लगाकर उन्हें सान्त्वना देना, फिर वाटिका उजाड़नेके बहाने अपनेको पकड़वा देना और रावणका दरबार देखना, फिर उसीके उपायोंका लाभ उठाकर लकाको जला डालना, मारुतिके यह सभी काम अत्यन्त कौशलके हैं। मारुतिने इनमेंसे कोई एक ही काम किया होता तो भी उनकी कीर्त्ति अमर हो जाती, परन्तु यहा तो उन का सभी काम अपौरुषेय और असाधारण है। सुन्दरकाण्ड

इनकी यशोकीर्त्तिसे वस्तुतः अत्यन्त सुन्दर हो गया है। इतने पराक्रमपर भी हद दर्जेकी शालीनता है। जब महाराज श्रीमुखसे इस सेवककी बड़ाई करते हैं तो लज्जासे गड़ जाते हैं। कहते हैं, नाथ, वानरका बड़ा पराक्रम एक डालसे दूसरीपर कूद जाना है। मैंने जो सागर फांदकर लंका जलायी, वह क्या वानरका काम था? वह तो भगवन्, आपका ही बल-प्रताप था। गरुड़को गर्व हुआ, अर्जुनको अभिमान हुआ, पर भगवान् मारुति काम क्रोध लोभ मद मात्सर्यके दास नहीं हुए। राजनीतिका अत्यन्त ऊंची कोटिका काम विभीषणका मिलाना था। यह मारुतिका ही कौशल था जिससे भगवान् रामचन्द्रको सुग्रीव और विभीषण मिले। दोनों ही एक ही प्रकारके दोषोंवाले थे, दोनोंने भगवान्की पूरी सहायता की। सच पूछिये तो रामरावणयुद्धकी सफलता इन दोनोंकी मैत्रीसे ही सम्पन्न हुई और इनकी मैत्री मारुतिकी राजविद्याका ही फल था। इस प्रकार हनुमानजी ही भगवान् रामचन्द्रके सर्वस्व थे। इन्हींकी बदौलत सीताजीकी रक्षा और उद्धार हुआ और दोनों मित्रोंको राज्य मिला, पर इसकी अपेक्षा अत्यन्त भारी काम जो भगवान् मारुतिने किया वह था लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर इनकी मुक्तिदी। रणभूमिसे पहले तो यही उन्हें उठा लाये। "जगदाधार अनन्त" को सँभालना "रुद्रावतार हनुमन्त" का ही काम था। विभीषणजी जब वैद्यका पता बताते हैं तो सोते हुए सुषेणको उठा लाते हैं। वह संजीवनी बूटी बतलाते हैं तो ऐसी जो हिमालयपर ही मिल सकती थी। संकल्प-विकल्प, सोच-विचारका समय न था, मारुतिके सिवा, दूसरा कौन तड़केसे पहले तीन सौ योजन जाता और ले आता? स्वयं ओषधि नहीं पहचानते थे। शिखरका शिखर उखाड़कर उड़े। गिरिधारी आंजनेयको दानव अनुमान करके भरतजी मार गिराते हैं। कविने व्याजसे भरतजीका धनुर्विद्या कौशल भी यहां दिखाया

है। एक सेकंडमें कमसे कम आधे मीलका वेग अवश्य रहा होगा। ऐसे वेगवान् पदार्थपर अचूक लक्ष्य करके अपने आश्रम में गिराना कोई साधारण बात न थी। वृत्त सुनकर भरतकी मनोगतिको समझनेमें किसी कविकी कल्पना समर्थ नहीं हो सकती।

"अहह दइउ मैं कत जग जायेउँ।
प्रभुके एकउ काज न आयेउँ।"

भगवान् मनुष्योचित निराशासे विलाप प्रलाप कर ही रहे थे कि "आइ गये हनुमान जिमि करुना महँ वीर रस।" धन्य मारुति! आप अनुपम चर हो गये। भगवान्के राज्यासन आसीन होनेपर भी आप वही चर कार्य करते रहे, क्योंकि अटल अनुराग था, अनन्य भक्ति थी, सेवा ही आदि था, सेवा ही अन्त था। भक्तोंमें मारुति सुमेरु हुए। समस्त वानर जातिको यशस्वी बनाया। तो भी विभीषणसे कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना
कपि चचल सबहीं विधि हीना
प्रात लेइ जो नामु हमारा
ता दिन ताहि न मिलइ अहारा

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि मन भरे विलोचन नीर।

भगवान् मारुतिकी सच्ची अनन्य भक्ति है। वह तो अपना सर्वस्व उन्हींको समझते हैं। रामनाम उनके लिये महामंत्र है, रामकी कथा सुनना उनका व्यसन है।

यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तनम्
तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्

वाप्पवारि परिपूर्ण लोचनम् ।
मारुति नमत राक्षसान्तकम् ।

२०—गोस्वामीजीकी उपासना

सुलभ सुखद मारग यह भाई
भगति मोरि पुरान स्तुति गाई

गोस्वामीजी रामचरितमानसका आरभ करते हुए, सरस्वती, गणेश, शिव, पार्वती, गुरु, वाल्मीकि, मारुति और श्री जानकीजीकी वन्दना करके अन्तमें अपने प्रभुकी वन्दना करते हैं। भाषाकी भूमिकामें भी भगवान्‌की वन्दना सबके अन्तमें है। विनती सबसे है, परन्तु इसी बातकी कि हम श्रीरघुनाथजीके यशोगानमें समर्थ हों। साधारण पाठक समझता है कि गोस्वामीजी विष्णूपासनाविशिष्ट स्मार्त्त हैं, क्योंकि वह सभी देवताओंकी प्रार्थना करते हैं। वह उनको भगवान् रामचन्द्रका अनन्य भक्त नहीं समझता, परन्तु यह भारी भूल है। जैसे रामचरितमानसमें वह "करह कृपा हरि जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोरि" कहते हैं वैसे ही वह "विनयपत्रिका" में भी सभी देवताओंसे रामकी भक्ति ही मागते हैं। वह देवताओं का कोई ऊंचा पद नहीं समझते। वह देवताओंको "सदा स्वार्थी" कहते हैं। देवताओंके राजा इन्द्रकी उपमा कहीं कौएसे कहीं कुत्तेसे देते हैं। रामकी कथामें आदिसे अन्ततक देवताओंके चरित्रका चित्रण ऐसा नहीं है कि कोई कह सके कि गोस्वामीजी "अन्य देवता-भक्त" थे। वाणी, विनायक, शिव-शिवा, गुरु, मारुति आदि गोस्वामीजीके निकट देवता नहीं हैं, यह भगवान्‌की विभूति हैं। शिव और विष्णुमे तो वस्तुत इतनी एकता है कि राम शिवके और शिव रामके भक्त और उपासक हैं। गणेशजी तो आदिदेव ही हैं। वाणी तो भगवद्भक्ता महा

विभूति ही है। गुरु महाराज तो नररूप हरि स्वयं हैं। मारुति-की बदौलत जब श्रीरघुनाथजीके दर्शन होते हैं तो मारुति भी परम भागवत हैं। वह कोई देवता नहीं हैं। अन्त पुरमें प्रवेश करनेके सभी द्वार हैं, सभी पूज्य हैं। इनमें और देवतामें उतना ही अन्तर है जितना इनमें और मनुष्यमें।

ब्रह्मा विष्णु शिव यह त्रिमूर्त्ति ब्रह्माण्डके स्रष्टा पाता सहर्त्ता हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी त्रिमूर्त्ति अलग है। यह अखिलेश्वरके ही अनेक रूप हैं। परन्तु इनसे परे भी अखिलेश्वरका सच्चिदानन्द सगुण रूप है, जो

कोटि विस्नु सम पालनकर्त्ता, कोटि रुद्र सत सम सहर्त्ता

है जिसके अश मात्रसे नाना ब्रह्मा विष्णु शिव उत्पन्न होते हैं, जिसके रूपका भगवान् शिव स्वय ध्यान धरते और उपासना करते हैं, जिसके नामामृतका मुमूर्षुओंको उपदेश करते रहते हैं। उन्हीं भगवान् रामचन्द्रकी उपासना गोस्वामीजीको इष्ट है। ऐसा मानते हुए भी गोस्वामीजी शिव और विष्णुके ईश्वरत्व में किसी प्रकारकी अपूर्णता नहीं मानते। भगवान्का अश भी पूर्ण ही होता है।

ॐ पूर्ण मद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

गोस्वामीजीकी उपासना अखिलेश्वरकी ही है, और अनन्य है। अनन्य उपासना भी ऐसी नहीं है जिसका किसी अन्य देवता या भगवद्विभूतिकी उपासनासे विरोध हो।

सो अनन्य असि जाहिके मति न टरै हनुमन्त,
मैं सेवक सचराचर रूपरासि भगवन्त।

सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनामु जोरि जुग पानी।

रामका अनन्य उपासक सारे विश्वको प्रभुमय देखता

और सबके आगे इसी भावसे सीस झुकाता है। वह किसीसे राममक्तिके सिवा कुछ नहीं मागता। वह स्वर्गको तुच्छ समझता है, मुक्तिका निरादर करता है, उसका लक्ष्य केवल एक ही है

"जेहि जोनि जनमउँ कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊ।

* * * * *

"अर्थ न धर्म्म न काम रुचि गति न चहउँ निरबान,

जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन!"

यद्यपि भक्तिभावन भगवान् कहते हैं कि "करोडों ब्रह्म-हत्या लगी हो और शरण आवे तो भी मैं नहीं त्यागता, जीव ज्योंही मेरे सन्मुख होता है, करोडों जन्मोंके पाप मैं नष्ट कर देता हू" तौ भी भक्त कहता है।

"कीजे मोकों जमजातनामई,

राम तुमसे सुचि सुहृद साहेबहि मैं सठ पीठि दई।"

भक्त तो अपने पूर्वपापोंके फल भुगतते हुए भी भगवान्के ही चरणोंमें अनुराग चाहता है। उसका आदि, मध्य और और अन्तिम उद्देश्य केवल एक ही है—वह है रामचन्द्र-जीके चरणारविन्दमें प्रीति। यद्यपि अपनी ओरसे भक्तको कामना इतनी ही है तथापि उसे भगवान्की प्रतिज्ञाओंका भारी भरोसा है।

सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति चयाचते,

अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्

साधुरेव स मन्तव्य सम्यक् व्यवसितो हि स

क्षिप्र भवति धर्म्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति

यही चतुराई है कि वह भगवच्चरणानुराग हो चाहता है। एक बार भगवच्छरण जाकर फिर वह सदाके लिये अभय हो जाता है। उसके पूर्व अपकर्मोंका नाश हो जाता है। वह पहलेसे धीरे धीरे ऊंचे उठते-उठते इस अभयपदपर एक दम पहुँचता है और भगवान्‌को प्राप्त कर ही लेता है।

परन्तु भगवान्‌के सन्मुख वही होता है जिसपर भगवान्‌की भारी कृपा होती है। जीव यदि तनिक सा भी भगवान्‌का स्मरण करता है तो भक्तभावन उसे अत्यधिक स्मरण करते हैं। वह एक कदम उनकी ओर जाता है तो भगवान् सौ कदम आगे आकर उसे शरणमें ले लेते हैं। जगत्पिताकी गोद भक्तको सदा बुलाती रहती है। परन्तु इन सबका रहस्य है भगवत्कृपा। "उर प्रेरक रघुवंस विभूषन"। हम अपनी दैनिक सन्ध्यामें भी तो उसीका ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है*। उसे ही मनाते हैं कि हमें सत्य मार्गपर ले चले और सत्यका हमें दर्शन करावे†।

गोस्वामीजीने उपासनाकी विधियोंका अनेक स्थलोंमें स्पष्ट निर्देश किया है। भगवान्‌के मुखारविन्दसे श्रीरामगीता और नवधा भक्तिमें तो इसका वर्णन है ही पर सबसे अच्छा वर्णन वाल्मीकिजीके मुखसे चौदहों स्थान बताते हुए कराया है। इसी प्रसंगमें श्रीमद्भागवतमें उल्लिखित

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्

---

* गायत्री मन्त्रका यही भाव है।

† ॐ अग्नेनय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

* * *

ॐ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

तत्त्वंपूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।

मनोरथोंकी सफलतामें और सभी दिशाओंसे निराश होकर अन्तमें भगवान्‌की शरणमें आते हैं। वह आत्मनिवेदन नहीं करते प्रत्युत वह तीनों तापोंसे पीडित होकर या तो अपनी रक्षाके लिये भाग आते हैं अथवा काम क्रोध लोभ मोहकी यातनाओंसे बचनेके उद्देश्यसे शरणागत होते हैं।

यद्यपि प्रेमका अन्तर्भाव सभी प्रकारोंमें है, तथापि केवल प्रेमाभक्ति भी एक पृथक् भाव है जो इन्द्रियों और शरीरोंसे परे आत्माकी अन्तरतम दशा है, जो वर्णनातीत है तो भी साधन-द्वारा ज्ञेय और बोधगम्य है।

निष्काम सदाचार तो गीताकी एक मुख्य शिक्षा है। जितने कर्म करे भगवान्‌के लिये करे और उनके फल भी भगवान्‌को ही अर्पण करे। जितने काम करे उनमें कर्त्तव्यबुद्धि रहे, स्वार्थ-बुद्धि न रहे। भक्तके किये हुए काम फिर भी सत् हों, अच्छे ही हों, भूलसे भी जगत् वा व्यक्तिके लिये अनिष्टकारक न हों।

गोस्वामीजी कलियुगमें एक असाम्प्रदायिक सार्वभौम भक्तिके प्रकाशक महाभागवत हो गये हैं। वह प्रचारक न थे। सच्चे भक्त, पहुँचे हुए लोग, प्रचारक नहीं होते। ज्ञानका और सत्यका प्रचार सृष्टिका उद्देश्य नहीं है। सृष्टिका उद्देश्य तो है मायाका बना रहना, प्रचारका बिलकुल उलटा। जो प्रचार करते हैं उनकी क्रिया स्वभावविरुद्ध है। इसीसे इस लोकमें तो उन्हें सफलता नहीं होती और परलोकमें अपने कर्मोंके अनुसार दुःख सुख भोगकर फिर अप्रचारक स्थूल शरीर धारण करते हैं।

इसीलिये गीता आदि रहस्य-ग्रन्थोंकी तरह श्रीरामचरित-मानसमें भी गोस्वामीजीने मना किया है कि यह कथा शठ, हठी, भगवद्भक्तिविरोधी, मन न लगानेवालेसे न कहो। यह कथा उसीसे कहो जिसमें श्रद्धा-विश्वास हो, जो भगवान्‌के हो, जिसपर उनकी कृपा हो। आज ऐसे सम्प्रदाय और

मत भी चल रहे हैं जो मानसकी निन्दा करते नहीं अघाते, यद्यपि इस निन्दासे कोई लाभ नहीं उठाते प्रत्युत् औरोंको भ्रममें डालकर आप उनकी अधोगतिके लिये उत्तरदायी बनते और दोहरे दडके भागी होते हैं।

आपु गये अरु घालहिं आनहिं।

भिन्न भिन्न उद्देश्यों और दृष्टियोंसे यों तो साधारणत रामचरितमानस घर घर पढा जाता है, परन्तु सभी पढनेवाले एक सा लाभ नहीं उठाते।

कर्म्म कमडलु कर गहे तुलसी जहँ जहँ जाय
सरिता सागर कूप जल बूद न अधिक समाय

यहा पाठ करनेवालेकी पात्रताके अनुसार ही रामचरित मानस फल देता है। इस विचित्र ग्रन्थके सहारे वर्णमाला सीखनेके लाभसे लेकर भुक्ति और मुक्तितक लोग कमा लेते हैं। सचमुच रामचरितमानस कहीं तो प्रकाशकोंको या रोजगारियोंको अर्थ दे रहा है, तो धर्म्मप्राणोंको धर्म्म सिखा रहा है, काव्यमर्म्मज्ञोंको लोकोत्तर आनन्द दे रहा है और मुमुक्षुओंको भक्तिमार्गसे ज्ञान और तदुपरान्त मोक्षतक भी पहुँचा रहा है। ऐसे विरले ही ग्रन्थ हैं जो इस प्रकार चारों पदार्थों के देनेवाले हैं। गोपालदासजीने सच ही लिखा है

रामायन सुरतरुकी छाया।
दुख भये दूरि निकट जो आया।

२१—मानसके दार्शनिक विचार

'कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानै
तुलसिदास जो तजे तीनि भ्रम सो आपुन पहिचानै।'

उपासनाके प्रकरणमें हम यह दिखा आये हैं कि

सम्बन्धमें स्वय । विचार हैं। मानसकार

निक नही हैं, वह अनुभवी हैं। उनका ज्ञान प्रत्यक्ष है, तर्क और वादपर अवलम्बित नही है। तर्क और वाद साम्प्रदायिकताकी नेवें हैं, परन्तु उनसे सत्यके पूर्ण रूपका कभी दर्शन नहीं होता और साम्प्रदायिकता स्वय सत्यको अपनी मायाके आवरणमें छिपा लेती है। यह सभव है कि देखनेमें गोस्वामीजीकी उक्ति और युक्ति तर्कके काटेपर बावन तोला पाव रत्ती न उतरे क्योंकि तर्कका सुभीता एक-देशीयतामें ही है और वाद अपने पक्षके पोषणपर ही दृष्टि रखता है। गोस्वामीजी किसी विशेष सम्प्रदायके अनुयायी न थे। उन्होंने स्वय कोई पथ चलाया भी नहीं। वह साम्प्रदायिकताके बड़े विरोधी थे। इसलिये उनके दार्शनिक विचार जिन शब्दोंमें प्रकट हुए हैं वह जहा अत्यन्त सरल और सुबोध हैं, वहा ऐसे लचीले भी हैं कि प्रत्येक सम्प्रदायका अनुयायी सहजमें मनमाना अर्थ निकाल लेता है। गीता उपनिषद आदि प्राचीन ग्रंथोंकी शब्दावली भी ऐसी ही लचीली है।

ईश्वर माया और जीवमें अन्तर कई स्थानोंमें बताया गया है। पहले तो शिवजीकी भूमिकामें इसका कुछ विवेचन दिया गया है। फिर आरण्य काडमें लक्ष्मणजीके प्रश्नोंके उत्तरमें भगवान्ने समझाया है। भुशु डिकी शिक्षामें तो इस विषयकी अच्छी व्याख्या है। रामचरितमानसके पाठकके लिये किसी और ग्रंथमे इस विषयके विशेष अनुशीलनकी आवश्यकता न पडनी चाहिये।

ससारको कोई तो सत्य मानता है, कोई झूठ। कुछ लोगोंका कहना है कि धूपछाँहकी तरह संसार झूठ और सत्य दोनोंके मिश्रणसे बना है। परन्तु दृष्टि-भेदसे सभी बातें ठीक हैं अथवा एक भी ठीक नही, सभी भ्रम है। जिस तरह न जाननेसे रस्सीमें सापका भ्रम होता है, और जाननेपर रस्सीकी असलीयत प्रकट हो जाती है उसी तरह जगत्के नाम और रूपसे जिसको हम जानते हैं वह वस्तुत जगत् नही है, ब्रह्म ही है, हमें-

जगत्का धोखा होता है। इसी धोखेका नाम है "माया"। अब यदि नाम और रूप अथवा दृश्यकी असत्यतापर दृष्टि कीजिये तो जगत् मिथ्या है। यह एक सम्प्रदाय कहता है। परन्तु रस्सीकी सत्ता तो वास्तविक है। रस्सीके होनेमें सन्देह तो है ही नहीं। सापका होना ही भ्रम था। उसी तरह यदि जगत् वस्तुतः वासुदेव है, वह दीखना ही जगत् है, तो जगत्की वास्तविक सत्ता मिथ्या नहीं है सत्य ही है। इस प्रकार दृश्यके विचारसे झूठ और वस्तुसत्ताके विचारसे सत्य होनेके कारण जगत् झूठ भी है, सत्य भी। परन्तु जिस घडी साप है उस घडी रस्सी नहीं है और जब रस्सी है, साप नहीं है। दोनोंका भाव एक ही देश काल और वस्तुमें सम्भव नहीं है। हम सत्य और झूठ दोनोंका होना इसी तरह समझ सकते हैं कि आभासमात्र असत्य है परन्तु आभासका मूल कारण जो सत्ता है उसकी सत्यतामें भी सन्देह नहीं है। परमात्माको न जाननेसे झूठ होते हुए भी संसार सत्य ही भासता है। ज्योंही परमात्माका ज्ञान हो गया जगत् इस तरह खो जाता है जैसे जाननेपर सापका भ्रम या जागनेपर सपनेका भ्रम। परन्तु असत्य होते हुए भी यह भ्रम बडा दुःखदायी है। साप या सपना लाख झूठ हो पर जबतक जानते या जागते नहीं तबतक सापके भय या सपनेकी यातनासे छुटकारा नहीं मिलता। इस दुःखदायी भ्रमसे, इस मायासे, छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय भगवान्की कृपा है।

मायाका मूल रूप यही है। परन्तु माया अत्यन्त विषम है, बडी बलवती है, उसके जालमें ही संसार है। उसके परदेके उघड जानेमें संसारका विनाश है। प्रवृत्तिका कारण, अथवा स्वयं प्रवृत्ति माया है। निवृत्तिका कारण, अथवा स्वयं निवृत्ति तत्त्वज्ञान है। अविश्वास और अज्ञान मायाके ही रूपान्तर हैं। लोग मुँहसे कहते हैं कि सर्वज्ञ ईश्वरको हम मानते हैं और डरते हैं परन्तु यह भी माया है, क्योंकि यह कहते भर हैं, वस्तुतः नहीं

मानते। वह झूठ कहते हैं, क्योंकि यदि वह सर्वज्ञ ईश्वरको मानते और डरते तो पाप तो उनकी कायासे हो नहीं सकता था। तर्कशास्त्री उसे तर्कसे सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु तर्कणाके यत्र बुद्धि और विवेक मायासे ऐसे आवृत हैं कि बुद्धिको पता नहीं लगने पाता कि सत्य और तत्त्व क्या है। जब किसी प्रतिज्ञाको एक सिद्ध करता है तो दूसरा उसका खंडन कर डालता है। इसीलिये संसारमें सर्ववादिसम्मत ईश्वरकी सत्ता तक नहीं है।* जिस किसीको तत्व बताया गया उसकी जुबान बन्द कर दी गयी, वह इतने ऊंचे चला गया जहां बुद्धिकी पहुँच नहीं है, वह इतनी दूर पहुँच गया जहां जिज्ञासाकी पुकार नहीं पहुँच सकती। वह तो जानते ही स्वयं परमात्मा हो जाता है। फिर वह मायाके परदेको सबके लिये क्यों उघाड़े, क्योंकि परमात्माका यह तो उद्देश्य ही नहीं है। जो मायाके परदेको उघाड़नेके लिये ज्ञानका प्रचार करता है प्रकृतिके विरुद्ध चलता है मुँहकी खाता है, संसार उसका अपमान करता है, उसकी सुनता ही नहीं, उसे बावला कहता है। भारी भारी महात्माओं की ऐसी ही गति हुई है। उनके अनुयायी आज उनके नामसे उनकी शिक्षाकी दुर्गति कर रहे हैं, उलटा अर्थ लगाते हैं, और उलटी राहमें लोगोंको चलाते हैं। जिन लोगोंने प्रकृतिके अनुकूल काम किया बड़े अगाध विद्वान् समझे गये, उनकी बात सबको सहज ही समझमें आ गयी, उनके अनुयायी असंख्य हो गये। मायाको यथार्थ समझना ब्रह्मको समझना है। जिस तरह ब्रह्मज्ञान सर्वसाधारणके समझनेकी चीज नहीं उसी तरह माया भी सबके समझनेकी चीज नहीं है। जहांतक इन्द्रियां हैं मन है, और इनके विषय हैं वहांतक माया है। मन बुद्धि अहंकार

* भारतवर्ष सदासे पारलौकिक रहस्योंकी खानि रहा है। अन्य युगोंमें प्राप्त परम्परागत ज्ञान भी लोग माया और कालके प्रभावसे भूलते जाते हैं। युगोंसे ज्ञानी और अनुभूत बातोंपरसे भी विश्वास उठता जा रहा है।

भी उसी मायासे निर्मित हैं। इनको मायासे परेका ज्ञान कैसे हो सकता है? जड़-चेतन, देह और जीव सभी मायाके अन्तर्गत, मायाके अधीन हैं। ईश्वर मायाधीश है, वह मायाके अधीन नहीं है। तो भी अपनी प्रकृतिमें अधिष्ठित अपनी मायासे वह अवतरित होता है। संसार उसकी मायाका खेल है। विश्व उसकी लीला है, विश्वेश्वर खेलवाड़ी है। वही सत्य है, और संसारके दुःखसुख झूठे हैं। परन्तु "जदपि असत्य देत दुख अहई।" इस दुखसे छुटकारा तभी है जब जीव भगवत्सन्मुख होता है, और यह भगवत्कृपापर ही अवलम्बित है।

जीव तो भगवान्की पराप्रकृति है, उनका अंश है, अविनाशी है। अपराप्रकृति मायाके वस होकर बँधा हुआ है। न अपनी असलियत जानता है, न मायाका रहस्य जानता है, न ईश्वरका उसे ज्ञान है। वह यदि यह समझ जाय कि मैं क्या हूँ तो माया-का परदा तुरन्त फट जाय। बहुरूपियेका पता लगा नहीं कि उसका धोखा उड़ा। मायाके ही उलझनमें पड़कर उसे अपना रहस्य भूला रहता है। वह भगवान्की लीलाका चट्टा बट्टा इसी फेरमें बना रहता है। यहां खेलनेवाला, खेलका सामान और क्रिया सब एक ही है, परन्तु खेलके उद्देश्यसे इनमेंसे हर एकका अलग अलग होना अनिवार्य्य है।

ईश्वर मायाधीश है। वह अपनी इच्छासे मायाकी चादर भले ही ओढ़ ले, परन्तु माया उसके अधीन है। उसीके इशारेपर नाचती है। भगवान्की सृष्टिकी ओर प्रवृत्ति ही माया है, यह जीवको भगवान्से दूर कर देती है। जिस तरह माया धीरे धीरे अपना पसारा फैलाती है, उसी तरह भगवद्भक्ति धीरे धीरे इसी पसारेको भक्तके लिये समेटती है और निवृत्तिमार्गपर उसे चलाती है, उसे भगवान्के समीप लाकर मिला देती है। माया भगवान्की फैलायी है, और उनकी इच्छा पूर्ण करनी है, परन्तु भक्ति तो उनकी इच्छाके प्रतिकूल नहीं चलती। वह तो संसार-

की रक्षा करती हुई कृपा-भाजन भक्तको भगवत्के समीप लाती है। इसीसे भक्ति भक्तभावन भगवान्‌को भाती है, उन्हें अत्यन्त प्यारी है। माया केवल कौतुक रचनेमें सक्षम है पर जीवको सदा दूर ही करती है। भक्ति कौतुककी रक्षा करती हुई भक्त को ला मिलाती है।

राम सच्चिदानन्दघन हैं, अज हैं, विज्ञानरूप हैं, बलधाम हैं व्यापक और व्याप्य दोनों हैं, अखण्ड हैं, अनन्त हैं, अखिल हैं, अखिलेश्वर हैं, अमोघशक्ति हैं, निर्गुण हैं मन वचनादि इन्द्रिया से परे, समदर्शी, अनवद्य, अजीत, निर्मल, निराकार, निर्मोह, नित्य, निरजन, प्रकृतिसे परे, परमानन्द, सबके हृदयमें बसने वाले, निरीह, विरज अविनाशी ब्रह्म हैं। सूर्यके लिये जैसे रात्रिका अभाव है वैसे ही रामके लिये मोहका अभाव है। ज्ञान-विज्ञानरूपी प्रभात वहा क्यों होने लगा? यह बातें तो जीवके लिये हैं। राम ज्ञान विज्ञानसे उसी तरह परे हैं जैसे अज्ञान या मोहसे। उनके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूप हैं। सगुण और निर्गुण दोनों ही भावोंसे परे भगवानकी सत्ता है, परन्तु वह दोनों ही रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। जो जिस भावसे भजता है उसी भावसे वह उसे प्राप्त होते हैं।

कूटस्थ, अक्षर, ईश्वरका अश, चैतन्य रूप, "अमल सहज सुखरासी" जीव, मायावश जड चेतनमें गाठ पड जानेसे, बन्धन में उलझ जाता है। झूठा होते हुए भी इस बन्धनके छूटनेमें बडी कठिनाई है। बस इसी गाठसे जीव ससारी हो गया। जितने उपाय करता है सबसे जगत्‌के बन्धनमें अधिकाधिक उलझता जाता है। गाठके खुलनेका उपाय भी ईशके अधीन है। उसकी कृपा हो तो अज्ञानान्धकारको दूर करनेको ज्ञानका दीपक जलाना सभव हो सकता है जिसकी विधि विस्तारसे मानसकारने दी है। परन्तु अत्यन्त कठिनाईसे जलाये हुए ज्ञान दीपकके बुझते देर नहीं लगती। ज्ञानका मार्ग कृपाणकी धारा

है, इसपरसे फिसलकर गिरते देर नहीं लगती। इस कठिनाईके साथ ही ईशकी कृपा इसका मूल है। भक्तिके लिये भी मूल कारण ईशकी कृपा है। भक्तिके मार्गसे पतनका तनिक भी भय नहीं है। "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"। भक्तिसे ज्ञान अपने आप आता है। "श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्"। एक ओर जहा ज्ञानके लिये भक्ति अचूक साधन है, वहाँ दूसरी ओर जीवको निवृत्तिमार्गपर ले जाकर भगवान्से मिलानेके लिये अमोघ उपाय है। जब हरिकृपा ज्ञान और भक्ति दोनोंका मूल है, तब भक्ति जैसे सुगम साधनको छोड ज्ञानके जोखिमवाले मार्गका कौन अवलम्बन करना चाहेगा? ज्ञान निर्गुण उपासनाकी ओर झुकता है और भक्तिका तो लक्ष्य सगुण उपासना है। गीतामें भी कहा है

"क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्"

निर्गुण उपासना कठिन है। ज्ञान केवल जाननेका नाम नहीं है। ज्ञानका लक्षण गीतामें जिस विस्तारसे दिया हुआ है उसका गोस्वामीजीने अत्यन्त सक्षेपमें दिग्दर्शन किया है।

"ज्ञान, मान जहँ एकौ नाहीं
देखै ब्रह्म समान सब माहीं

गीतामें "अमानित्वमदम्भित्व अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्" से लेकर "अध्यात्मज्ञाननित्यत्व तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्"तक ज्ञानके लक्षण दिखाये हैं। गोस्वामीजीने "अमानित्वम्" से आरम्भ करके कैसे कौशलसे "देखै ब्रह्म समान सब माहीं" में अन्तके भाव दे दिये हैं। ज्ञानके अन्तगत अमान, अदम्भ, अहिंसा, क्षमा, ऋजुता, स्थिरता, आचार्योपासना, शौच, आत्मनिग्रह, विषयविराग, अनहकार, पीडाओंका सहन और उनकी उपेक्षा, असग, समदर्शिता आदि सभी सद्गुण हैं। परन्तु सबसे बडी चीज है "मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी" भगवान् ज्ञानीमें

भक्तिको अनिवार्य्य समझते हैं। भक्तोंमें "ग्यानी प्रभुहि बिसेष पियारा" परन्तु "तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते" वह भी भक्तिकी विशेषतासे। साराश यह कि भगवत्कृपा प्रधान ठहरी। उससे यदि भक्ति आयी, तो झख मारेगा ज्ञान पीछे पीछे आवेगा, क्योंकि "तेहि आधीन ज्ञानविज्ञाना।" यदि ज्ञान आया तो उसके साथ ही अनन्यभक्ति होनी चाहिये। भक्तिके पीछे ज्ञानका आना अनिवार्य्य है, क्योंकि "श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्" नियम है। ज्ञानके पीछे भक्तिका आना अनिवार्य्य नहीं है, क्योंकि "ज्ञानवाँल्लभते भक्तिम्" का कोई नियम नहीं है। ज्ञानी तो भगवान्के सयाने लड़के हैं, अनन्य भक्तिका साधन उनका कर्त्तव्य है। उन्होंने अपना कर्त्तव्य न पाला तो उसके लिये दोषी हैं। भक्त तो अबोध बालक है। यदि उसे शीघ्र ज्ञान न हुआ तो उसका दोष नहीं। उसकी श्रद्धा उसे ज्ञान देकर ही रहेगी। उसको बोध करानेकी जिम्मेदारी तो जगत्पितापर है। यही भक्त और ज्ञानीमें अन्तर है। वैसे तो ज्ञान और भक्ति दोनोंका ऐसा सम्बन्ध है कि एकके बिना दूसरा अपूर्ण ही रहता है। भक्त ज्ञानी हुए बिना नहीं रह सकता। ज्ञानी भक्ति बिना कृतकृत्य नहीं हो सकता।

भारतवर्ष आत्माके क्रमविकासकी भूमि है। भारतेतर देशोंमें पारलौकिक क्रमविकासमें शीघ्रताका सुभीता नहीं है। इसी देशपर भू, भुव, स्व, मह, आदि सप्तलोक हैं। यहींके श्रद्धावान् हिन्दू देवयान और पितृयान मार्गोंसे लाभ उठाते हैं। दूसरे नहीं। इस विषयकी सत्यताका प्रत्यक्षानुभव सबको मरणोपरान्त होता है। इस पवित्र भूभागके लोगोंका उद्धार करनेके लिये और श्रद्धालुओंको सत्यज्ञान बतलानेके लिये राम चरितमानसका अवतार हुआ। इस अनुपम ग्रन्थ रत्नने अनेक पापियोंकी यमयातनासे रक्षा की है और करता रहेगा।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला

स्थायी ग्राहकोंके लिये नियम—

१—प्रत्येक व्यक्ति ।।) आने प्रवेश शुल्क जमाकर इस मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है। उक्त ।।) लौटाये नहीं जायंगे।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक पौन मूल्यमें मिल सकेगी। एकसे अधिक प्रतियां पौन मूल्यमें मगा सकेंगे।

३—पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार स्थायी ग्राहकोंको होगा, पर सालभरमें जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, उनमेंसे कमसे कम ६) रु० की पुस्तकें प्रति वर्ष अवश्य लेनी होंगी।

४—पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकोंके पास भेज दी जाती है। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा। यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका योग्य कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों ओरका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहक श्रेणीमें पुनः लिख लिया जायगा।

५—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव प्रकाशित पुस्तकोंके साथ अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम १०) रु० की लागतकी पुस्तकें भी पौन मूल्यमें दी जायंगी, जिनकी नामावली हर नव प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

६—हमारा वर्ष विक्रमीय संवत्‌से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

१–सप्तसरोज

ले० उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजी अपनी प्रतिभाके कारण हिन्दी संसारमें अद्वितीय लेखक माने गये हैं। यह कहानियाँ उन्हींके कलमकी करामात हैं। इस सप्तसरोज में सात अति मनोहर उपदेशप्रद गल्पें हैं, जिनका भारतकी प्राय सभी भाषाओंमें अनुवाद निकल चुका है। यह हिन्दी साहित्यसम्मेलनकी प्रथमा परीक्षा तथा कई राष्ट्रीय पाठशालाओंकी पाठ्यपुस्तकोंमें और सरकारी युनिवर्सिटियोंकी प्राइजलिस्टमें है। मूल्य केवल ॥) । यह चौथी संस्करण है।

२–महात्मा शेखसादी

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

फारसी भाषाके प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद गुलिस्ताँ बोस्ताँके लेखक महात्मा शेखसादीका बड़ा मनोरञ्जक और उपदेशप्रद जीवनचरित्र, अद्भुत भ्रमण वृत्तान्त, नीतिकथायें, गजलें, कसीदे इत्यादिका मनोरञ्जक संग्रह किया गया है। महात्मा शेखसादीका चित्र भी दिया गया है। मूल्य ।)

३–विवेक वचनावली

लेखक स्वामी विवेकानन्द

जगत्प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्दजीके बहुमूल्य विचारों और उपदेशोंका बड़ा मनोरञ्जक संग्रह। बड़ी सीधी सादी प्रत्येक बालक,स्त्री, वृद्धके पढ़ने तथा मनन करने योग्य। ४८

४–जमसेदजी नसरवानजी

लेखक स्वर्गीय प० मन्नन द्विवेदी गजपुरी

श्रीमान् धनकुबेर ताताकी जीवनी, बड़ी भाषामें लिखी गयी है। इस पुस्तकको यु० पी० गवर्नमेन्टने पारितोषिक-वितरणमें रखा है। सचित्र

६—सेवासदन

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा गौरवशाली सामाजिक उपन्यास। यह हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध और मौलिक उपन्यास है। इसकी सूबियोंपर बड़ी आलोचना और प्रत्यालोचना हुई है। पतित-सुधारका बड़ा अनोखा मन्त्र, हिन्दू-समाजकी कुरीतियां जैसे अनमेल विवाह, त्यौहारोंपर वेश्यानृत्य और उनका कुपरिणाम, पश्चिमीय ढङ्गपर स्त्री-शिक्षाका कुफल, पतित आत्माओंके प्रति घृणाका भाव इत्यादि विषयोंपर लेखकने अपनी प्रतिभाकी यह छटा दिखायी है कि पढ़नेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। कुछ दिनोंतक सभी पत्रोंकी आलोचनाका मुख्य विषय यह उपन्यास रहा है। दूसरा संस्करण, मनोहर स्वदेशी कपड़ेकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य २।॥

७—संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ

लेखक पं० जनार्दन भट्ट एम०ए०

संस्कृतके विविध विषयोंके अनोखे भावपूर्ण उत्तमोत्तम श्लोकोंका हिन्दी भाषामें सहित संग्रह। यह ऐसी खूबीसे लिखा गया है कि साधारण मनुष्य भी पढ़कर आनन्द उठा सकें। व्याख्यानदाताओं, रसिकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। दूसरा संस्करण, मूल्य ॥)

८—लोकरहस्य

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह "हास्यरस" पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्तमान धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक त्रुटियोंका बड़े मजेदार भाव और भाषामें चित्र खींचा गया है। पढ़िये और समझ समझकर हँसिये। कई विषयोंपर ऐसी शिक्षा मिलेगी कि आप आश्चर्यमें पड़ जायगे। ... प्रसिद्ध और ...

इसके लेखककी ... कागजपर छपी ...

९—खाद

लेखक श्रीयुक्त मुख्तारसिंह, वकील

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषिके लिये खाद सबसे बड़ा आवश्यकीय पदार्थ है। बिना खादके पैदावारमें कोई उन्नति नहीं की जा सकती। यूरोपवाले खादके बदौलत ही अपने खेतोंमें दूनी चौगुनी पैदावार करते हैं। इसलिये इस पुस्तकमें खादोंके भेद तथा किन अन्नोंके लिये कौन सी खादकी आवश्यकता होती है इनका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया है, चित्रों द्वारा भली प्रकार दिखलाया गया है। इसे प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य रखना चाहिये। मूल्य सचित्र और सजिल्दका १)

१०—प्रेम-पूर्णिमा

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

प्रेमचन्दजीकी लेखनीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने उनके 'प्रेमाश्रम' "सप्तसरोज" और "सेवासदन" का रसास्वादन किया है उनके लिये तो कुछ लिखना व्यर्थ है। प्रत्येक गल्प अपने २ ढङ्गकी निराली है। ज़मींदारोंके अत्याचारका विचित्र दिग्दर्शन कराया गया है। भाषा और भावकी उत्कृष्टताका अनूठा समूह देखना हो तो इस ग्रन्थको अवश्य पढ़िये। इसमें श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"जीकी १५ अनूठी गल्पोंका संग्रह है। बीच बीचमें चित्र भी दिये गये हैं। खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य २)

११—आरोग्यसाधन

लेखक म० गांधी

बस, इसे महात्माजीका प्रसाद समझिये। यदि आप अपने शरीर और मनको प्राकृत रीतिके अनुसार रखकर जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-शरीरको पाकर संसारमें आनन्दके साथ कुछ कीर्ति कमाना चाहते हैं तो महात्माजीके अनुभव किये हुए तरीकेसे रहकर अपने जीवनको सरल, सादा और स्वाभाविक बनाइये और रोगमुक्त होकर आनन्दसे जीवन बिताइये। तीसरा संस्करण, १३० पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ।=)

१२—भारतकी साम्पत्तिक अवस्था

लेखक श्रीयुक्त राधाकृष्ण झा, एम० ए०

यदि भारतकी आर्थिक अवस्था, यहांके वाणिज्य-व्यापारके रहस्यों, कृषिकी दुर्व्यवस्था और मालगुजारी तथा अन्यान्य टैक्सोंकी भरमारका रहस्य जानना चाहते हैं, यदि आप यहांका उत्पन्न कच्चा माल और वह कितनी दिव्य घड़ियोंमें विलायतको ढोया चला जाता है, उसके बदलेमें हमें कौन कौनसा माल दिया जाता है, आने और जानेवाले मालोंपर किस कीमतसे कर बैठाया जाता है, यहां प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं अकाल क्यों पड़ता है, हम दिनपर दिन क्यों कौड़ी कौड़ीके मोहताज हो रहे हैं, इत्यादि बातोंको जानना चाहते हैं तो इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक साहित्यसम्मेलनकी परीक्षामें है। ६५० पृष्ठकी खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४॥)

१३—भाव चित्रावली

चित्रकार श्रीधीरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय

इस पुस्तकमें एक ही समनके विविध भावोंके १०० रंगीन और सादे चित्र दिखलाये गये हैं। आप देखेंगे और आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि ऐं! सब चित्रोंमें एक ही आदमी! गङ्गोपाध्याय महाशयने अपनी इस कलासे समाज और देशकी बहुतसी कुरीतियोंपर बड़ा जबर्दस्त कटाक्ष किया है। चित्रोंके देखनेसे मनोरञ्जनके साथ साथ आपको शिक्षा भी मिलेगी। खादीकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४)

१४—राम बादशाहके छः हुक्मनामे

स्वामी रामतीर्थजीके छ व्याख्यानोंका समह उन्हींकी जोरदार भाषामें। स्वामीजीके ओजस्वी और शिक्षाप्रद भाषणोंके बारेमें क्या कहना है, जिसने अमरीका, जापान और यूरोपमें हलचल मचा दी थी। इन व्याख्यानों को पढ़कर प्रत्येक भारतवासीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उर्दूके शब्दोंका फुटनोटमें अर्थ भी दिया गया है। स्वामीजीकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंके तीन चित्र भी हैं। पुस्तक बढ़िया ऐंटिक कागजपर छपी है। मूल्य सुन्दर खादीकी सजिल्द पुस्तकका १।)

१५—मैं नीरोग हूं या रोगी

ले० प्रसिद्ध जलचिकित्सक, डाक्टर लुईकूने

दे आप स्वस्थ रहकर-आनन्दसे जीवन बिताना, डाक्टरों, वैद्यों बीमोंके फन्देसे छुटकारा पाना, प्राकृतिक नियमानुसार रहकर सुख ान्तिका उपभोग करना चाहते हैं तो इस पुस्तकको पढ़िये और लाभ । जर्मनीके प्रसिद्ध डा० लुइकूनेकी इस पुस्तकका मूल्य ।/

१६—रामकी उपासना

ले० रामदास गौड़ एम०ए०

ामी रामतीर्थसे कौन हिन्दू परिचित न होगा। उनके उपदेशोंका और मनन लोग बड़ी ही श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक ाके विषयमें लिखी गयी है। उपासनाकी आवश्यकता, उसके प्रकार, में मनको लीन करना, सच्ची उपासनाके बाधक और सहायक, सच्चे कोंके लक्षण आदि बातें बड़ी ही मार्मिक और सरल भाषामें लिखी । हिन्दू गृहस्थोंके लिये पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। सुन्दर एण्टिक पर छपी है। कवरपर उपासनाकी मुद्रामें स्वामी रामतीर्थजीका चित्र भी है। ४८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।/

१७—बच्चोंकी रक्षा

ले० डाक्टर लुईकूने

डाक्टर लुईकूने जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आपने अपने अनुभवोंसे बीमारियोंके दूर करनेका प्राकृतिक उपाय निकाला है। आपकी जल ्त्सा आजकल घर घरमें प्रचलित है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबने दिखलाया है कि बच्चोंकी रक्षाकी उचित रीति क्या है और उसके ुसार न चलनेसे हम अपनी सन्ततिको किस गर्तमें गिरा रहे हैं। स्त्रियों लेये विशेष उपयोगी है। विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखने योग्य सुन्दर एण्टिक कागजके ४८ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ।/)

१८—प्रेमाश्रम

ले० उपन्यास सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दजी

जिन्होंने प्रेमचन्दजीकी लेखनीका रसास्वादन किया है उनके लिये इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक क्या है, वर्तमान दशाका सच्चा चित्र है। किसानोंकी दुर्दशा, जमींदारोंके अत्याचार, पुलिसके कारनामे, वकीलों और डाक्टरोंका नैतिक पतन, धर्मके ढोंगमें सरलहृदया स्त्रियोंका फँस जाना, स्वार्थसिद्धिके कलुषित मार्ग, देशसेवियोंके कष्ट और उनके पवित्र चरित्र, सच्ची शिक्षाके लाभ, गृहस्थीके झंझट, साध्वी स्त्रियोंका चरित्र, सरकारी नौकरीका दुष्परिणाम आदि भावोंको लेखकने ऐसी खूबीसे चित्रित किया है कि पढ़ते ही बनता है, एक बार शुरू करनेपर बिना पूरा किये छोड़नेको दिल नहीं चाहता। ठूंस ठूंस कर मैटर भर देनेपर भी पृष्ठसंख्या ६५० हो गयी। खादीकी जिल्दका ३॥), रेशमी ३॥)

१९—पंजाबहरण

ले० प० नन्दकुमारदेव शर्मा

यह सिक्खोंके पतनका इतिहास है। १९ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख-साम्राज्य महाराज रणजीतसिंहके प्रतापसे समृद्धशाली हो गया था। उनके मरते ही आपसकी फूट, कुचक्र, अंग्रेजोंके विश्वासघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ। जो अंग्रेज जाति सभ्यताकी डींग हांकती है, उसने अपने परम प्रिय मित्र महाराज रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक नीतिका व्यवहार किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होता है। इससे अंग्रेजोंके सच्चे पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उनके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त हो गये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एक बार उसी प्रकार और हमला होता तो शायद ये लोग डेराडण्डा लेकर कूच ही कर गये होते। पुस्तक बड़ी ओजसे लिखी गयी है। मोटे कागजपर २५० पृ० का मूल्य केवल २)

२०—भारतमें कृषिसुधार

ले० प्रो० दयाशङ्कर एम० ए०

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है, कृषिका अधःपतन क्यों हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत परतन्त्रताकी श्रृंखलामें जकड़ गया। अन्य देशोंकी तुलनामें यहांकी पैदावारकी क्या अवस्था है और इसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है। सरकारका क्या धर्म है और वह उसका किस तरह प्रतिपालन कर रही है, किस प्रकार प्रजाकी उन्नतिके मार्गमें कांटे बिछाये जा रहे हैं इत्यादि बातोंका दिग्दर्शन लेखकने बड़ी मार्मिक भाषामें दृढ़तर प्रमाणोंके साथ किया है। पुस्तक अपने ढंगकी निराली है और बड़ी ही उपादेय है। २५० पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य १॥।)।

२१—देशभक्त मैजिनीके लेख

भूमिका ले० दैनिक "आज" के सम्पादक

बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी० बेरिस्टर-ऐट-ला

इटलीका इतिहास पढ़नेवालोंको भलीभांति विदित है कि १८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। पराजतन्त्रके दमनचक्रमें पड़कर इटली सारे यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वतन्त्रतापूर्वक लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेका मतलब यह है कि भारतकी वर्तमान दशा इटलीकी उस समयकी दशासे ठीक मिलती-जुलती है। इटली एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसी ही दशामें देशभक्त मैजिनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया और नवयुवकोंको चेतावनी दी कि उठो, आलस्यको त्यागो, माता वसुन्धरा बलिदान चाहती है। प्रत्येक नवयुवकके शरीरमें स्वतन्त्रताकी प्राप्त करनेकी ज्योति जग उठी। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैजिनीका जीवनचरित भी दिया गया है। अनुवादक पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल० बी०। पृष्ठसंख्या २६७ मूल्य केवल २)।

२२—गोलमाल

जिन लोगोंने "चौबेका चिट्ठा" और "गोबर गणेशसंहिता" पढ़ी है, वे गोलमालके मर्मको भलीभांति समझ सकते हैं। रा० ब० काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' में समाजमें प्रचलित कुछ बुराइयोंकी—जिसे वर्तमान समाजने प्रायः अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकीली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगका निराला है। 'रसिकता और रसीली' बातोंसे लेकर 'दिगन्त मिलन' तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। उसी भ्रान्ति-विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। २०० पृष्ठ, मूल्य १=)

२३—१८५७ ई० के गदरका इतिहास

ले० पण्डित शिवनारायण द्विवेदी

सिपाहीविद्रोह क्यों हुआ ? यह प्रश्न अभीतक प्रत्येक भारत-वासीके हृदयको आन्दोलित कर रहा है। कोई इसे सिपाहियोंका क्षणिक जोश, कोई सिपाहियोंकी बेजड़ बुनियाद, धर्मभीरुता और कोई इसे राजनीतिक कारण बतलाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञोंकी पुस्तकोंकी गवेषणापूर्ण छानबीनके बाद लिखी गयी है। पूरे प्रमाणसहित इसमें दिखलाया गया है कि सिपाहियोंकी क्रान्तिके लिये अंग्रेज अफसर पूर्णतः दोषी हैं और यदि उन्होंने चेष्टा की होती तो लार्ड डलहौसीकी कुटिल और दोषपूर्ण नीतिके रहते हुए भी इतना रक्तपात न हुआ होता। प्रस्तुत पुस्तकमें इस बातका भी पता लगता है कि इसरक्तपातकी भीषणता बढ़ानेमें अंग्रेजोंने भी कोई बात उठा नहीं रखी थी। प्रथम भागके सजिल्द प्रायः ६००पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३॥) द्वितीय भागकी सजिल्द प्रायः ८०० पृष्ठका मूल्य ४॥)

२०—भारतमें कृषिसुधार

ले० प्रो० दयाशंकर एम० ए०

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है, कृषिका अधःपतन क्यों हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत परतन्त्रताकी शृङ्खलामें जकड़ गया। अन्य देशोंकी तुलनामें यहांकी पैदावारकी क्या अवस्था है और उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है। सरकारका क्या धर्म है और वह उसका किस तरह प्रतिपालन कर रही है, किस प्रकार प्रजाकी उन्नतिके मार्गमें कांटे बिछाये जा रहे हैं इत्यादि बातोंका दिग्दर्शन लेखकने बड़ी मार्मिक भाषामें ठदतर प्रमाणोंके साथ किया है। पुस्तक अपने ढंगकी निराली है और बड़ी ही उपादेय है। २५० पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य १॥)

२१—देशभक्त मैजिनीके लेख

भूमिका ले० दैनिक "आज" के सम्पादक

बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी० बेरिस्टर-ऐट-ला

इटलीका इतिहास पढ़नेवालोंको भलीभांति विदित है कि १८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। परराजतन्त्रके दमनचक्रमें पड़कर इटली घोर यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वतन्त्रतापूर्वक लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेका मतलब यह है कि भारतकी वर्तमान दशा इटलीकी उस समयकी दशासे ठीक मिलती-जुलती है। इटली एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसी ही दशामें देशभक्त मैजिनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया और नवयुवकोंको चेतावनी दी कि उठो, आलस्यको त्यागो, माता वसुन्धरा बलिदान चाहती है। प्रत्येक नवयुवकके शरीरमें स्वतन्त्रताकी प्राप्त करनेकी ज्योति जग उठी। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैजिनीका जीवनचरित भी दिया गया है। अनुवादक पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल० बी०। पृष्ठसंख्या २६० मूल्य केवल २)

२२–गोलमाल

जिन लोगोंने "चौबेका चिट्ठा" और "गोबर गणेशसंहिता" पढ़ी है, वे गोलमालके मर्मको भलीभाँति समझ सकते हैं। रा० ब० काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' में समाजमें प्रचलित कुछ बुराइयोंकी—जिसे वर्तमान समाजने प्राय अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकीली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगका निराला है। 'रसिकता और रसीली' बातोंसे लेकर 'दिगन्त मिलन' तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। उसी भ्रान्ति-विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। २०० पृष्ठ, मूल्य ।=)

२३–१८५७ ई० के गदरका इतिहास

ले० पण्डित शिवनारायण द्विवेदी

सिपाहीविद्रोह क्यों हुआ? यह प्रश्न अभीतक प्रत्येक भारत वासीके हृदयको आन्दोलित कर रहा है। कोई इसे सिपाहियोंका क्षणिक जोश, कोई सिपाहियोंकी बेजड़ बुनियाद, धर्मभीरुता और कोई इसे राजनीतिक कारण बतलाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञोंकी पुस्तकोंकी गवेषणापूर्ण छानबीनके बाद लिखी गयी है। पूरे प्रमाणसहित इसमें दिखलाया गया है कि सिपाहियोंकी क्रान्तिके लिये अंग्रेज अफसर पूर्णत दोषी हैं और यदि उन्होंने चेष्टा की होती तो लार्ड डलहौजीकी कुटिल और दोषपूर्ण नीतिके रहते हुए भी इतना रक्तपात न हुआ होता। प्रस्तुत पुस्तकसे इस बातका भी पता लगता है कि इसरक्तपातकी भीषणता बढानेमें अंग्रेजोंने भी कोई बात उठा नहीं रखी थी। प्रथम भागके सजिल्द प्राय ६००पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३॥) द्वितीय भागकी सजिल्द प्राय ८०० पृष्ठका मूल्य ४॥)

२४-भक्तियोग

ले० श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त

कौन भगवान्‌की प्रेमसे सेवा नहीं करना चाहता ? कौन भगवद्‌भक्तिके रसका आनन्द नहीं लेना चाहता ? आदर्श भक्तोंके जीवनका रहस्य कौन नहीं जानना चाहता ? हृदयकी साम्प्रदायिक सङ्कीर्णताको त्याग कर, सुन्दर मनोहर दृष्टान्तोंके साथ साथ, धर्मशास्त्रों और उच्च कोटिके विद्वानों, भक्तों और महात्माओंके अनुभवोंसे भक्तिका रहस्य जाननेके लिये इस ग्रन्थका आदिसे अन्ततक पढ़ जाना आवश्यक है। ईश्वरभक्तोंके लिये हिन्दी साहित्यमें अपने ढङ्गका यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। पृष्ठ ३६४। मूल्य सजिल्द १।।/

२५-तिब्बतमें तीन वर्ष

ले० जापानी यात्री श्रीइकाई कावागुची

तिब्बत एशिया खण्डका एक महत्वपूर्ण भाग है, परन्तु यहांके निवासियोंकी धर्मान्धता तथा शिक्षाके अभावके कारण अभीतक यह खण्ड संसारकी दृष्टिसे ओझल-ही था, परन्तु अब कई यात्रियोंके उद्योग और परिश्रमसे यहांका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया है। सबसे प्रसिद्ध यात्री कावागुचीकी यात्राका विवरण हिन्दी-भाषा-भाषियोंके सामने रक्खा जाता है।-इस पुस्तकमें आपको ऐसी भयानक घटनाओंका विवरण पढ़नेको मिलेगा जिनका ध्यान करने मात्रसे ही कलेजा कांप उठता है, साथ ही ऐसे रमणीक स्थानोंका चित्र भी आपके सामने आयेगा जिनको पढ़कर आनन्दके सागरमें लहराने लगेंगे। दार्जिलिङ्ग, नेपाल, हिमालयकी बर्फीली चोटियां, मानसरोवरका रमणीय दृश्य तथा कैलाश आदिका सविस्तर वर्णन पढ़कर आप ही आनन्दलाभ करेंगे। इसके सिवा यहांके रहन-सहन, विवाह शादी, रीति रिवाज एवं धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओंका भी पूर्ण हाल विदित हो जायगा। ५२५ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य २।/ सजिल्द २।।=)

२६—संग्राम

ले० उपन्याससम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

मौलिक उपन्यास एवं कहानियाँ लिखनेमें प्रेमचन्दजीने हिन्दीमें वह नाम पाया है जो आजतक किसी हिन्दी लेखकको नसीब नहीं हुआ उनके लिखे उपन्यास 'प्रेमाश्रम' एवं 'सेवासदन' तथा 'मानसरोज' 'प्रेमपूर्णिमा' और 'प्रेमपचीसी' आदि पुस्तकोंकी सभी पत्रोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

इन उपन्यासों और कहानियोंको रचकर उन्होंने हिन्दी-संसारमें नवयुग उपस्थित कर दिया है, नये तथा पुराने लेखकोंके सामने भाषाकी प्रौढ़ता मौलिकता, विषयकी गम्भीरता और रोचकताका आदर्श रख दिया है।

उन्हीं प्रेमचन्दजीकी कुशल लेखनी द्वारा यह 'संग्राम' नाटक लिखा गया है। यों तो उनके उपन्यासोंमें ही नाटकका मजा आ जाता है, फिर उनका लिखा नाटक कैसा होगा यह बतानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रस्तुत नाटकमें मनोभावोंका जो चित्र खींचा है वह आप पढ़कर ही अन्दाजा लगा सकेंगे। बढ़िया एन्टिक कागजपर प्राय २७५ पृष्ठोंमें छपी पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

२७—चरित्रहीन

ले० श्रीयुक्त शरचन्द्र चट्टोपाध्याय

बंगालमें श्रीयुत शरत् बाबूके उपन्यास उच्च कोटिके समझे जाते हैं। तथा उनके लिखे उपन्यासोंका बंगलामें बड़ा आदर है। उनके लिखे उपन्यास पढ़ते समय आँखोंके सामने घटना स्पष्ट रूपसे भासने लगती है। युवा पुरुष बिना पूछदेख रेखके किस तरह चरित्रहीन हो बैठते हैं, तथा स्वामिभक्त सेवक किस तरह दुर्व्यसनके पंजोंसे अपने मालिकको छुड़ा सकता है। इसके अतिरिक्त पति पत्नीका प्रेम पतिव्रताकी पति सेवा और विधवा स्त्रियाँ दुष्टोंके बहकावेमें पड़कर कैसे अपने धर्मकी रक्षा कर सकती हैं, इन सब बातोंका इसमें पूर्णरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। पृष्ठ ६६४ जिल्दसहित मूल्य ३ℓ रेशमी ३।ℓ

२८—राजनीति-विज्ञान

ले० सुखसम्पति राय भण्डारी

आज भारत राजनीति निपुण न होनेके कारण ही दासताकी यातनाओंको भोग रहा है। हिन्दीमें राजनीतिकी पुस्तकोंका अभाव जानकर ही यह पुस्तक निकाली गई है। मुनरोस्मिथ, रो, ब्लंशले, गार्नर आदि पाश्चात्य राजनीति विशारदोंके अमूल्य ग्रन्थोंके आधारपर यह पुस्तक लिखी गई है। राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इकरार सिद्धान्त, शक्तिसिद्धान्त, राज्य और राष्ट्रकी व्याख्या आदि राजनीतिके गूढ़ रहस्योंका प्रतिपादन बड़ी खूबीसे इस ग्रन्थमें किया गया है। इस राजनीतिक युगमें राजनीति प्रेमी प्रत्येक पाठकको इस पुस्तककी एक प्रति पास रखनी चाहिये। राष्ट्रीय स्कूलोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखी जाने योग्य है। २१६ पृ० की पुस्तकका मूल्य १।=) है।

२९—आकृति-निदान

ले० जर्मनीके प्रसिद्ध जल-चिकित्सक डा० लूईकूने

सम्पादक-रामदास गौड़ एम० ए०

आज संसार डाक्टर लूईकूनेके आविष्कारोंको आश्चर्यकी दृष्टिसे देखता है। उसी लूईकूनेकी अंग्रेजी पुस्तक 'The Science of Facial Expression' का यह अनुवाद है। इसमें लगभग ६० चित्र दिये गये हैं, जो बहुत सुन्दर आर्ट पेपरपर छपे हैं। उन चित्रोंके देखनेसे ही फ़ौरन मालूम हो जाता है कि इस चित्रमें दिये हुए मनुष्यमें यह बीमारी है। उन बीमारियोंकी प्राकृतिक चिकित्सा विधि भी बतलाई गयी है। यदि पुस्तक समझ कर पढ़ी जाय और चित्रोंका गौरसे अवलोकन किया जाय तो मनुष्य एक मामूली डाक्टरका अनुभव सहज ही प्राप्त कर सकता है। इतने चित्रोंके रहते भी पुस्तकका मूल्य केवल १॥) रखा गया है।

३०—वीर केशरी शिवाजी

लेo पंo नन्दकुमारदेव शर्म्मा

महाराज छत्रपति शिवाजीका नाम किसीसे छिपा नहीं है। हिन्दू धर्मपर विधर्मियोंद्वारा होते हुए अत्याचारसे बचानेवाले, गो-ब्राह्मण भक्त, सच्चे धर्म्मवीर कर्म्मवीर, राष्ट्रवीर 'वीर-केशरी शिवाजी' की इतनी बड़ी जीवनी अभीतक नहीं निकली थी। अंग्रेजी इतिहास लेखकोंने शिवाजीके सम्बन्धमें अनेकों बातें बिना किसी प्रमाणके आधारपर मनमानी लिख डाली हैं। उन सबका समाधान एतिहासिक प्रमाणोंद्वारा लेखकने बड़ी खूबीके साथ किया है। औरंगजेबकी कुटिल चालोंको शिवाजीने किस प्रकार शह देकर मात किया, दगाबाज अफजलखाँकी दगाबाजीका किस प्रकार अन्त किया, हिन्दुओंके हिन्दुत्वकी कैसे रक्षा की, किस प्रकार मराठा-राज्य स्थापित किया, इन सब विषयोंका बड़ी सरल और ओजस्विनी भाषामें वर्णन किया है। लगभग ७५० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य खद्दरकी जिल्द सहित ४) रेशमी सुनहली जिल्द सहित ४I)

३१—भारतीय वीरता

लेo श्रीयुक्त रजनीकान्त गुप्त

कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अपने पूर्वजोंकी कीर्ति-कथा न जानना चाहता हो। महाराणा प्रतापसिंहके प्रताप, वीर-केशरी शिवाजीकी वीरता, गुरु गोविन्दसिंहकी गुरुता और महाराजा रणजीतसिंहके अद्भुत शौर्य्य और रणकौशलने आज भी भारतके गौरवको क़ायम रक्खा है। रानी दुर्गावती, पद्मावती, किरणदेवी आदि भारत रमणियोंकी वीरता पढ़कर आज भी भारतीय अबलायें बल प्राप्त कर सकती हैं। ऐसे वीर भारतके सपूतों और आर्य्य-ललनाओंकी पवित्र चरित्र-कथायें इसमें वर्णित हैं। इसकी १६—१७ आवृत्तियाँ अन्य भाषामें हो चुकी हैं। अनुवाद भी सरल और ओजस्विनी भाषामें हुआ है। कवरपर तीनरङ्गा सुन्दर चित्र है। भीतर ८ चित्र दिये गये हैं। ... पुस्तक पढ़नी चाहिये। २७५ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल १॥I)

३२–रागिणी

ले०:मराठीके प्रसिद्ध उपन्यासकार

श्रीयुक्त वामन-मल्हारराव जोशी एम० ए०

अनुवादक-हिन्दी नवजीवनके सम्पादक तथा हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक

श्रीयुक्त प० हरिभाऊ उपाध्याय

रागिणी है तो उपन्यास, परन्तु इसे केवल उपन्यास कहनेसे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि आजकल उपन्यासोंका काम केवल मनोरञ्जन और मनबहलाव होता है। इसको तर्क शास्त्र और दर्शन-शास्त्र भी कह सकते हैं। इसमें जिज्ञासुओंके लिये जिज्ञासा, प्रेमियोंके लिये प्रेम और अशान्त जनोंके लिये विमल शान्ति मिलती है। वैराग्य खण्डका पाठ करनेसे मोह-माया और जगतकी उलझनोंसे निकलकर मनमें स्वाभाविक ही भक्ति भाव उठने लगता है। देशभक्तिके भाव भी स्थान स्थानपर वर्णित हैं। लेखककी कल्पना शक्ति और प्रतिभा पुस्तकके प्रत्येक वाक्यसे टपकती है। सभी पात्रोंकी पारस्परिक बातें और तर्क पढ़ पढ़कर मनोरञ्जन तो होता ही है, बुद्धि भी प्रखर हो जाती है। भारतीय साहित्यमें पहले तो मराठीका ही स्थान ऊंचा है फिर मराठी साहित्यमें भी रागिणी एक रत्न है। भाषा और भावकी गम्भीरता सराहनीय है। उपाध्यायजीके द्वारा अनुवाद होनेसे हिन्दीमें इसका महत्व और भी बढ़ गया है। लेखककी लेखनशैली, अनुवादककी भाषा-शैली जैसी सुन्दर है, आकार भी वैसा ही सुन्दर, छपाई वैसी ही साफ है। ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर पुस्तक आपके देखनेमें कम आवेगी। लगभग ८०० पृष्ठकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४) और सुन्दर रेशमी सुनहली जिल्दका ४।)

३३—प्रेम-पचीसी

ले० उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीका नाम ऐसा कौन साहित्य प्रेमी है जो न जानता हो। जिस प्रेमाश्रमकी धूम दैनिक और मासिक पत्रोंमें प्रायः बारह महीनेसे मची हुई है उसी प्रेमाश्रमके लेखक-बाबू प्रेमचन्दजीकी रचनाओंमेंसे एक यह भी है। 'प्रेमाश्रम', 'सप्त सरोज','प्रेम पूर्णिमा' और 'सेवासदन' आदि उपन्यासों और कहानियोंका जिसने रसास्वादन किया है वह तो इसे बिना पढ़े रह ही नहीं सकता। इसमें शिक्षाप्रद मनोरञ्जक २५ अनूठी कहानियां हैं। प्रत्येक कहानी अपने अपने ढङ्गकी निराली है। कोई मनोरञ्जन करती है, तो कोई सामाजिक कुरीतियोंका चित्र चित्रण करती है। कोई कहानी ऐसी नहीं है जो धार्मिक अथवा नैतिक प्रकाश न डालती हो। पढ़नेमें इतना मन लगता है कि कितना भी चिन्तित कोई क्यों न हो प्रफुल्लित हो जाता है। भाषा बहुत सरल है। विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य है। ३८४ पृ० की पुस्तकका खद्दरकी जिल्द सहित मूल्य २।) —रेशमी जिल्दका २॥।)

३४—व्यावहारिक पत्र-बोध

ले० प०-लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी

आजकलकी अंग्रेजी शिक्षामें सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रायः अंग्रेजी शिक्षित व्यवहार-कुशल नहीं होते। कितने तो शुद्ध बाकायदा पत्र लिखनातक नहीं जानते। उसी अभावकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक निकाली गयी है। व्यापारिक पत्रोंका लिखना, पत्रोंका उत्तर देना, प्रार्थनापत्रोंका बाकायदा लिखना तथा आफिसियल पत्रोंका जवाब देना आदि दैनिक जीवनमें काम आनेवाली बातें इस पुस्तकद्वारा सहज ही सीखी जा सकती हैं। व्यापारिक विद्यालयों (Commercial Schools) की पाठ्य-पुस्तकोंमें रहने लायक यह पुस्तक है। अन्यान्य विद्यालयोंमें भी यदि पढ़ायी जाय तो लड़कोंका बड़ा उपकार हो। विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये ही लगभग १२५ पृ० की पुस्तककी कीमत ।≈) रखी गयी है।

३५—रूसका पञ्चायती-राज्य

ले० प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार

जिस बोल्शेविज्मकी धूम इस समय संसारमें मची हुई है, जिन बोल्शेविकोंका नाम सुनकर सारा यूरोप कांप रहा है उसीका यह इतिहास है। जारके अत्याचारोंसे पीड़ित प्रजा जारको गद्दीसे हटानेमें कैसे समर्थ हुई, मजदूर और किसानोंने किस प्रकार जार शाहीको उलटनेमें काम किया, आज उनकी क्या दशा है इत्यादि बातें जाननेको कौन उत्सुक नहीं है ? प्रजातन्त्र-राज्यकी महत्ताका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। प्रजाकी मर्जी बिना राज्य नहीं चल सकता और रूस ऐसा प्रबल राष्ट्र भी उलट दिया जा सकता है, अत्याचार और अन्यायका फल सदा बुरा होता है इत्यादि बातें बड़े सरल और नवीन तरीकेसे लिखी गयी हैं। लेनिनकी बुद्धिमत्ता और कार्यशैली पढ़कर दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। किस कठिनता और अध्यवसायसे उसने रूसमें पंचायती राज्य स्थापित किया इसका विवरण पढ़कर मुर्दा दिल भी हाथों उछलने लगता है। १३६ पृ० की पुस्तकका मूल्य केवल ।॥) मात्र रखा गया है।

३६—टाल्स्टायकी कहानियां

स० श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

यह महात्मा टाल्स्टायकी संसार-प्रसिद्ध कहानियोंका हिन्दी अनुवाद है। यूरोपकी कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें इनका अनुवाद न हो गया हो। इन कहानियोंके जोड़की कहानियां सिवा उपनिषदोंके और कहीं नहीं हैं। इनकी भाषा जितनी सरल, भाव उतने ही गम्भीर हैं। इनका सर्वप्रधान गुण यह है कि ये सर्व प्रिय हैं। धार्मिक और नैतिक भाव कूट कूटकर भरे हैं। विद्यालयोंमें छात्रोंको यदि पढ़ाई जायँ तो उनका बड़ा उपकार हो। किसानोंको भी इनके पाठसे बड़ा लाभ होगा। पहले भी कहींसे इनका अनुवाद निकला था परन्तु सर्वप्रिय न होनेके कारण उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी-द्वारा सम्पादित कराकर निकाली गयी हैं। सर्वसाधारणके हाथोंतक यह पुस्तक पहुंच जाय इसीलिये मूल्य केवल १) रक्खा गया है।

३७-सुयेनच्वांग

ले०—श्रीयुत जगन्मोहन वर्मा

"सुयेनच्वांग" ने बड़े कष्ट और परिश्रमसे १३ सौ वर्ष पहले भारतकी यात्राकी थी, जिसका विस्तृत वर्णन उसने अपनी यात्रावाली पुस्तकमें लिखा है। उसने यहाँ की सुव्यवस्थाका दृश्य अपने आखों देखा था, इस पुस्तकके अवलोकनसे आपके सामने १३ सौ वर्ष पुराने भारतका दृश्य अंकित हो जायगा। उस समयका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यवहारिक अवस्थाओंको जान कर आप मुग्ध हो जायेंगे और यहाँका सुशासन, विद्याका प्रचार, लोगोंकी आर्थिक अवस्था, अनेक जातियों और धर्मोंके होते हुए आपसका प्रेम इत्यादि विषयोंका तथा यहाँका प्राकृतिक दृश्यका वर्णन बड़ा ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

सुन्दर चिकने कागजकी २५४ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल १।)

३८-मौलाना रूम और उनका काव्य

ले०—श्रीजगदीशचन्द्र वाचस्पति

फारसी-भाषामें "मसनवी रूम" बड़ाही उत्कृष्ट ग्रंथ है। फारसीमें अध्यात्म विषयका यह अनोखा है। फारसीमें अध्यात्म-विषयके यह ग्रन्थ प्रामाणिक समझा जाता है। इसके अधिकांश सिद्धान्त वेदान्तसे मिलते-जुलते हैं। हिन्दी-भाषाके सुयोग लेखकोंने अभीतक फारसी और अरबीकी तरफ ध्यान नहीं दिया है, हालांकि इन भाषाओंमें बड़े बड़े उत्कृष्ट ग्रन्थरत्न हैं। एजेंसीने इस ग्रंथके लेखक "मौलाना रूम" की जीवनी, भावपूर्ण मनोरंजक कहानियाँ, शुभ उपदेश, फारसीके कुछ चुने हुए पद्य और उनका सरल भावपूर्ण अर्थ बड़े सुन्दर ढंगसे लिखाकर प्रकाशित किया है। लेखकने मौलाना रूमके विचारोंका आर्य ग्रन्थोंसे बड़ी खूबीसे मुकाबिला किया है। हिन्दी-भाषामें यह अपने ढंगकी एक ही आलोचनात्मक पुस्तक है। सुन्दर एन्टिक ८० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल

३९—आधुनिक भारत

ले०—श्रीप्यारेलाल गांगराडे

अंग्रेजी अमलदारीके पूर्व भारतके व्यापारिक, व्यावसायिक, शिक्षा और धार्मिक अवस्थाकी क्या दशा थी और आज उसकी अवनति कैसे हुई है, इसी विषयको प्रामाणिक आधारपर लेखकने लिखा है। इस पुस्तकमें शिक्षा, स्वराज्य, धन, धर्म, स्वास्थ्य इत्यादिकी हीनता सरकारी रिपोर्टों तथा विद्वान् अंग्रेजोंकी रायसे प्रकट की गयी है। इस पुस्तकको सभी पढ़े-लिखे भारतवासियोंको पढ़ लेना चाहिये तथा "आधुनिक भारत" का स्वरूप देख और समझ लेना चाहिये। राजनीतिक, धार्मिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रमें काम करनेवाले प्रत्येक देशभक्तोंको इस पुस्तकको अवश्य पढ़ना चाहिये। सुन्दर पुष्टिक कागजकी १४४ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल ॥।)

४०—हिन्दी साहित्य विमर्श

ले०—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

(सरस्वती-सम्पादक)

यह पुस्तक क्या है, हिन्दी साहित्यका जीता-जागता चित्र है। हिन्दी भाषाका सुन्दर आलोचनात्मक इतिहास, भाषाका विकास तथा उसकी स्थिरताके सम्बन्धमें पश्चिमीय तथा पूर्वीय विद्वानोंकी क्या राय है, उसका हिन्दी-भाषाके इस विकासके समयमें कहांतक पालन होता है, हिन्दी भाषाके आधुनिक गद्य-पद्य लेखकों तथा शुभचिन्तकोंने कहांतक अपना कर्त्तव्य पालन किया है, और ब्रजभाषा तथा खड़ी बोलीके विवादास्पद विषयोंकी बड़ी विस्तृत आलोचना की गयी है। विद्वान् लेखकने अपनी प्रतिभामयी लेखनीसे बड़ी स्वतन्त्रताके साथ भाषाके विकासपर पूर्ण प्रकाश डाला है। यह सम्पूर्ण मौलिक ग्रन्थ है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमीको पढ़ना और मनन करना चाहिये। पुस्तक सुन्दर पुष्टिक कागजपर छप रही है।

४१—धनकुबेर कारनेगी

यदि आप यह जानना चाहते हैं कि किस प्रकार एक गरीबके घरका लड़का अपने उत्साह और बाहुबलसे करोड़पती हो गया और फिर अपने अतुल धन और सम्पत्तिको परोपकारमें लगाकर अक्षय कीर्ति लाभ की, तो इस जीवनकी अवश्य पढ़िये और अपने बच्चोंको पढ़ाइये, तथा उन्हें साहसी और पराक्रमी बनाइये। पौने दो सौ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य १।) मात्र।

४२—चरित्र चिन्तन

लेखक—पं० छविनाथ पाण्डेय बी० ए० एल० एल० बी०

प्रस्तुत पुस्तक मासिद्ध अंगरेजी पुस्तक (Out for Character) "आउट फार कैरेक्टर" के लेखोंके आधारपर बिलकुल भारतीय ढगसे लिखी गई है। अङ्गरेजी पुस्तकमें,-अमरीकाके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानोंके चरित्र-विषयक लेखोंका समूह है। पुस्तकका प्रधान विषय चरित्र-सुधार है। प्रत्यक्ष प्रमाणोंद्वारा दिखलाया गया है कि ब्रह्मचर्य और चरित्रके नियमोंके पालन करनेसे क्या लाभ होता है और उनकी अवज्ञा करनेसे किस तरहकी हानि उठानी पड़ती है। निबन्धोंके नामसे ही प्रकट होता है कि उनके विषय कितने गम्भीर, शिक्षाप्रद और चेतावनी देनेवाले हैं। आत्मसंयम, इन्द्रिय-निग्रह, सदाचारकी सीढ़ी, सुखकी खोज, दिव्य जीवन, नवयुवकोंके कर्तव्य, चरित्र बल, सदाचारके सुख, पतनके परिणाम, कलुषित विचारके फल, हृदयकी निर्मलता, पथभ्रष्टकी दुर्दशा आदि २२ निबन्ध हैं जो एकसे एक बढ़कर हैं। चरित्र-बलको ही जीवनका एकमात्र सर्वस्व माननेवाले नवयुवकोंके लिये इससे उत्तम दूसरी पुस्तक अभीतक नहीं प्राप्य है।

प्रत्येक मनुष्यको एक बार इस पुस्तकको पढ़कर देखना चाहिये कि वह जिस मार्गपर जा रहा है उसका फल उसे किस रूपमें मिलेगा। आशा है पढ़नेवालोंको इससे अमूल्य लाभ होगा।

इतनी उपयोगी और शिक्षाप्रद, बढ़िया कागज और [illegible]

सहित २०० पृष्ठकी [illegible]) मात्र।

४३–रामचरित मानसकी भूमिका

लेखक—अध्यापक श्रीरामदास गौड़, एम०, ए०

यह पुस्तक क्या है, गुसाईं तुलसीदासकृत रामचरित मानसकी कुञ्जी है। रामचरित मानसपर इतनी गवेषणापूर्ण पुस्तक अभीतक नहीं छपी है। इस पुस्तकके पांच खण्ड हैं।

१ ले खण्डमें "शिक्षा और व्याकरण" पर काफी तौरसे विचार किया गया है। तथा उदाहरणसहित शङ्का-समाधान किया गया है।

२ रे खण्डमें "मानस, शङ्कावली" है। रामचरित मानसके पाठकों तथा श्रोताओंको पढ़ते और सुनते समय अनेक कथाओंपर शङ्काएं हुआ करती हैं। जिनके समाधान इसमें प्रश्न और उत्तरके रूपमें दिये गये हैं। इससे पढ़नेवाले सज्जनोंको कितनी पौराणिक कथाओंका ज्ञान होगा तथा कितनी ऐसी बातोंका रहस्य खुलेगा जिनपर आजकलके कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे महानुभावोंकी, न जाननेके कारण, अश्रद्धा है।

३ रे खण्डमें "मानस कथा-कौमुदी" है। रामचरित मानसमें आनेवाली कथाओंका समाधान उसका पूरा विवरण देकर किया गया है।

४ थे खण्डमें "मानस शब्द-सरोवर" है। इसमें रामचरितमानसमें आनेवाले शब्दोंका कोष दिया गया है।

५ वें खण्डमें तुलसीदासजीकी जीवनी है। तुलसीदासजीकी जीवनीके सम्बन्धमें अभी अनेक विद्वानोंका मतभेद है, इसलिये उसपर भी काफी प्रकाश डाला गया है। साथ ही गुसाईंजीका चित्र और उनके हाथकी लिखी रामायणका कोष भी दिया गया है, जिससे पुस्तककी उपयोगिता बहुत बढ़ गयी है। पुस्तक बड़ी विद्वत्ता और खोजके साथ लिखी गया है। प्रत्येक साहित्यप्रेमी तथा मानसप्रेमी और भगवद्भक्तको पढ़नी चाहिये। मूल्य लगभग २।)

४४–उषाकाल

ले०—पं० हरिनारायण आपटे

यह उपन्यास मराठाके प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक पं० हरिनारायण आपटेके इसी नामके उपन्यासका अनुवाद है। इस उपन्यासमें वीर केसरी शिवाजीके जन्मके पहलेकी मराठा जातिकी अवस्था और हिन्दुओं की मनोवृत्तिका इतना उत्तम दिग्दर्शन कराया गया है कि पढ़ते ही बनता है। पहलेके लोग सत्य और न्यायके लिये देश और जातिकी उपेक्षा करके भी बादशाहों और सरदारोंके अन्यायको सहते हुए अपने वचनपर डटे रहे और बादशाहोंकी कुटिल नीतिसे देशको पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़ाकर भी अपने धर्म और कर्त्तव्यसे विमुख न हुए। परन्तु देश और जाति की इस अधोगतिको भगवान सहन न कर सके और उसी समय एक महान् आत्माकी ज्योति छत्रपति शिवाजीके रूपमें प्रगट हुई जिसने देशको रक्षाके लिये नवीन जीवन उत्पन्न किया। और अपने बाहुबलसे उस समयकी राजनैतिक, आर्थिक, और सामाजिक अवस्थाको उलटकर देश और धर्मको बचाया तथा हिन्दू धर्म, सभ्यता और जातीयताका पुनरुद्धार करके देशको कर्तव्य-मार्ग दिखाया उस समय यदि शिवाजी जन्म न लेते तो कोई भी बद्दर हिन्दू रक्षित रहता, इसमें सन्देह है। इन्हीं घटनाओंको इतने रोचक ढगसे लेखकने लिखा है कि पढ़ना आरम्भ कर बिना समाप्त किये नहीं रहा जाता। पुस्तक दो भागोंमें छापी गयी है। ११४० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ५॥) सुन्दर रेशमी सुनहरी जिल्दसहित ६॥)

सस्ती ग्रन्थ माला

उद्देश्य —इस ग्रन्थमालाके प्रकाशित करनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि उपयोगी और अलभ्य पुस्तकोंको हिन्दीके गरीब और उत्सुक पाठकोंके पास स्वल्प और सरल मूल्यमें पहुंचाना। प्रकाशनकी व्यावसायिक वृत्तिपर ध्यान न देकर केवल प्रचारके उद्देश्यसे ही इस मालाके रत्न निकाले जायगे।

१—आनन्द मठ

यह उपन्यास-सम्राट् बङ्किमचन्द्र चटर्जीकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। मातृभूमिके प्रति उत्कट, अनुराग और, प्रेमका यह प्रत्यक्ष स्वरूप है। इस पुस्तकसे नव बङ्गालने कैसा उत्साह ग्रहण किया था उसका अनुमान केवल १६०० के पूर्व और वर्तमान बङ्गालकी तुलना करनेसे ही लग सकता है। इसकी अपार उपयोगिता देखकर राजा कमलानन्दने इसे अनुवादितकर छपवाया था, जो इस समय प्राप्य नहीं है। और जो एकाध सस्करण निकले हैं, वे अपूर्ण और महगे हैं। इसीसे केवल प्रचारके ख्यालसे सस्ते दाममें यह पुस्तक निकाली गयी है, अर्थात् २८ लाइनके पृष्ठके प्राय २०० पृष्ठोंका मूल्य केवल ॥/ मात्र रखा गया है।

२—पश्चिमीय सभ्यताका दिवाला

ले०—ई० एस० स्टोक्स

यह पुस्तक "सस्ती ग्रन्थमाला" का दूसरा पुष्प है। आज यूरोपीय ससारमें रंगका जो प्रश्न उठ रहा है और इसके कारण ससारमें जो अशान्ति मची हुई है उसीका दिग्दर्शन इस पुस्तकमें कराया गया है, और साथ ही यह भी बताया गया है कि इस विपत्तिकालमें भारतका क्या कर्तव्य है और ससार इस रंगीले रोगसे कैसे मुक्त हो सकता है। मूल्य ।)

३–संसारका सर्वश्रेष्ठ पुरुष

संग्रहकर्ता तथा अनुवादक, "साहित्य" सम्पादक पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल० बी० । इस पुस्तकमें प्राय सभी विदेशी समाचारपत्रों और पुरुषोंके मतका संग्रह है जो उन्होंने महात्माजीके बारेमें दिये हैं । इस पुस्तकको पढ़नेसे आपको विदित हो जायगा कि केवल भारतवासी ही नहीं, बल्कि सारा ससार इस बातको स्वीकार करता है कि महात्मा गाधी एक अवतार हैं और महात्मा ईसामसीहसे किसी भी तरह तुलनामें कम नहीं हैं। एक अमरीकन पादरीने तो यहांतक कहा है कि यदि मैं अवतारोंमें विश्वास रखता तो मैं निःसङ्कोच कहता कि "महात्मा गाधी ईसामसीहके दूसरे अवतार हैं" । पुस्तकमें महात्माजीके विविध अवस्थाके अनेक चित्र भी दिये गये हैं । पुस्तक पढ़नेयोग्य है ।

मूल्य १४० पृष्ठकी पुस्तकका केवल ।।/)

४–भक्ति

ले० स्वामी विवेकानन्द

"भगवानमें परम प्रेमका होना ही भक्ति है" "भक्ति कर्म, ज्ञान और योगसे भी अधिक श्रेष्ठ है।" उपरोक्त दो अवतरणोंहीसे इस पुस्तककी उपयोगिता और श्रेष्ठता मालूम हो जाती है । इस कलिकालमें "भक्ति" ही परमपदतक पहुंचनेका सरल और साध्य उपाय है । इसी "भक्ति" को स्वामीजीने अपने प्राच्य और पाश्चात्य ज्ञानसे बड़े ही सरल और रोचक ढंगसे लिखा है । इन्हीं लेखों और व्याख्यानोंको पढ़कर अमरीका और युरोपके विद्वानोंका ध्यान भारतके अध्यात्म विषयकी ओर आकर्षित हुआ और आज पश्चिमीय देशोंमें भी हिन्दू धर्म और भारतीय वेदान्तकी तरफ लोगोंका ध्यान हुआ है।

११२ पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ।/)

५-इन्दिरा

लेखक-उपन्यास-सम्राट् श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

श्रीयुत बंकिम बाबूकी लेखनीके सम्बन्धमें कुछ लिखना फिजूल सा जान पड़ता है। इन ग्रन्थोंके वर्णनका तो कहना ही क्या है। भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें इनका अनुवाद हो चुका है। हिन्दीमें भी बंकिम बाबूके ग्रंथ कई जगहोंसे प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु कई प्रकाशकोंने तो इतना मूल्य रख दिया है कि सर्व-साधारणके हाथोंतक पहुंचना कठिन हो गया है। कई पुस्तकोंके अनुवादकोंने मनमानी की है। कहीं कहीं तो पृष्ठके पृष्ठ छोड़ दिये गये हैं, जिससे मूललेखकके अभिप्रायके समझनेमें कठिनता पड़ती है। इन्हीं बातोंको दृष्टिमें रखकर यह अनुवाद निकाला गया है। इसमें दोनों खूबियां हैं—पहली तो यह कि पुस्तकका मूल्य बहुत कम रखा गया है और दूसरी यह कि बंगलाकी पुस्तकका पूरा पूरा अनुवाद है। यह अनुवाद भी बड़ा सरल और सुपाठ्य है। पुस्तक स्त्री और पुरुष दोनोंके पढ़नेके योग्य है। इन्दिरापर कैसे कैसे कष्ट पड़े, पर उसने अपने सतीत्वकी रक्षा बड़ी वीरतासे की और एक विचित्र ढगसे फिर अपने पतिसे मिली। इस पुस्तकमें हास्य रसका भी काफी मसाला है। कहीं कहीं तो आप हसते हसते लोटपोट हो जायगे। सुन्दर चिकने कागजके १५५ पृष्ठ की पुस्तकका मूल्य केवल ।=)

६—देवी चौधरानी

लेखक-श्रीयुत-बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

यह भी बंकिम बाबूके इसी नामके उपन्यासका अनुवाद है। इसकी घटना बड़ी मनोरंजक और वर्णन-शैली बड़ी हृदयग्राहिनी है। इसमें कहीं रसिकता है, कहीं कवि कल्पना है, कहीं वर्णनवैचित्र्य है, कहीं गम्भीरता है, कहीं आध्यात्मिकता है और निस्स्वार्थ-परहित व्रतका ज्वलन्त उदाहरण है। बंकिम बाबूकी असाधारण कल्पना शक्तिका यह जीता जागता चित्र है। यह उपन्यास घटनाओं, उपदेशों और वर्णनवैचित्र्यका भण्डार है। इस उपन्यासके जोड़का दूसरा उपन्यास मिलना कठिन है। सुन्दर चिकने कागजके २०० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल ॥)

७—भक्ति रहस्य

ले०—श्री स्वामी विवेकानन्द

वेदों और शास्त्रोंमें ईश्वर प्राप्तिका जरिया "योग" बताया गया है। "योग" के भी कई स्वरूप हैं—जैसे हठयोग, ज्ञानयोग, राजयोग तथा भक्तियोग इत्यादि। कलिकालमें "भक्तियोग" ही ईश्वर-प्राप्तिका सबसे सरल और सुगम मार्ग है। इन योग-मार्गोंके प्रत्येक अंगकी व्याख्या बड़े बड़े ऋषि-मुनियोंने अपने ग्रन्थोंमें तथा आजकलके महापुरुषों और विद्वानोंने अपनी पुस्तकों और लेखोंमें की है। इसी "भक्तियोग" की व्याख्या स्वामी विवेकानन्दजीने भी की है, जिसका हिन्दी-अनुवाद "भक्ति" के नामसे इसी मालाकी चौथी पुस्तकके रूपमें पाठकोंके सामने रखा गया है। आज उन्हीं स्वामीजीकृत "भक्ति-रहस्य" का अनुवाद आपके सामने है। इसमें स्वामीजीने बड़ी सरल रीतिसे भक्तिके रहस्यका उद्घाटन किया है। इन्हीं लेखोंको पढ़कर अमरीका तथा युरोपवासियोंका ध्यान भारतके आध्यात्मिक विषयोंकी तरफ हुआ है। इस पुस्तकको प्रत्येक भगवत्प्रेमीको पढ़ना और लाभ उठाना चाहिये। प्रचारकी दृष्टिसे ही इस पुस्तकका मूल्य बहुत कम रखा गया है। सुन्दर एण्टिक कागजके १६० पृष्ठका मूल्य केवल ॥=)

८—श्रीमद्भगवद्गीता

टीकाकार—प० बाबूराव विष्णु पराड़कर

श्रीमद्भगवद्गीताकी अनेक टीकायें निकल चुकी हैं। पर ऐसी सुबोध और सुपाठ्य तथा सस्ते एडीशनकी टीकाकी आवश्यकता थी जिससे सर्व-साधारणको लाभ हो और गीताका प्रचार हो। १२ वर्ष पहले इस गीताके एक एडीशनकी १०००० प्रतियां १०—१५ रोजमें खप चुकी हैं। परन्तु इतने दिनोंसे उसका एडीशन न देख हमलोगोंने इसे फिर छपाया है। आशा है कि उत्साही सज्जन फिर वैसे ही इसका आदर करेंगे। १६१ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल ।)

देशी करघा—अर्थात चरखा करघा शिक्षक। महात्मा गांधीने चरखे और करघेका उद्धार करके देशके गरीब और निरुद्यमी जनोंके सामने एक कार्य रखा है, जिससे देशोन्नतिके साथ साथ गरीबोंका सवाल भी हल होता है। चरखे और करघेके सम्बन्धमें हिन्दीमें कोई भी अच्छी पुस्तक नहीं थी। इस पुस्तकमें कपास और उसकी किस्में, कपासको ओटना, धुनना, सूत कातना और सूतोंके नम्बर तथा उनका हिसाब, ताना तनना और उसका तरीका, माडी देना और माडीकी तरह तरहकी किस्में, कितनी माडी, किस चीजकी माडी, किस नम्बरके सूतमें उपयुक्त होगी, करघा, करघेके प्रत्येक अंगकी बनावट, उनके स्थान, उनके काम, इत्यादि बातें बड़ी सुगमतासे तरह तरहके चित्रोंद्वारा समझायी गयी हैं। बिनना और बिनावटकी तर्ज इत्यादि भी बतलाई गयी है। मूल्य कितने ही चित्रों-सहितका केवल ॥।≈)

विक्रयकला—व्यापारके लिये दूकानदारी मुख्य चीज है। दूकानदारी भी एक कला है, जिसपर अंग्रेजी भाषामें सैकड़ों पुस्तकें हैं। पाश्चात्य देशकी सभी युनिवर्सिटियोंमें इस विषयकी शिक्षा दी जाती है। पर भारत ऐसे प्राचीन देशमें न तो कोई स्कूल इस विषयका है, न भारतीय भाषाओंमें इस विषयकी अच्छी पुस्तकें हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें सरल भाषामें माल बेचनेके प्रत्येक अंगका दिग्दर्शन कराया गया है। मूल्य।)

कांग्रेसका जन्म और विकास—जिस समयसे अंग्रेज वणिक् तराजू लेकर करांचीके बन्दरमें व्यापार करनेके लिये आये उस समयसे लेकर आजतककी मुख्यमुख्य घटनाओंका संक्षिप्त वर्णन करते हुए १८८५ ई० की पहली कांग्रेससे लेकर १९२० ई०की कांग्रेस तकका संक्षिप्त परिचय बड़ी मनोहर और ओजपूर्ण भाषामें लिखा गया है। मूल्य ≈)

नेत्रोन्मिलन—इस नाटकमें पुलिसकी चालबाजियों, वकीलोंके हथकंडे, अदालती न्यायका ढकोसला, इत्यादि बातोंको बतलाया गया है। मूल्य कागजकी जिल्द सहितका केवल ।≈)

वस्त्रव्यवसायी और स्वदेशी आन्दोलन—विदेशी वस्त्रोंसे देशकी कैसी हानि हो रही है। इसके बतानेकी अब आवश्यकता नहीं रही। परन्तु इस विषयपर विचार करनेकी आवश्यकता है। इस पुस्तकमें महात्मा गांधीके स्वदेशी-आन्दोलनपर दिये हुए व्याख्यानोंके साथ-साथ विदेशी वस्त्रोंकी अवनतिका सचित्र इतिहास भी दिया गया है। मूल्य ।)

बोलशेविक जादूगर—प्रो० लेनिनका नाम किसने न सुना होगा? परन्तु उसके जादूगरीके शिकमेको जाननेके लिये, कौन न उत्सुक होगा? रूसके उद्धारकका हाल जानना हो तो इसको अवश्य पढ़िये। मूल्य ॥)

सत्याग्रहकी मीमांसा—इस समय देशके उद्धारका केवल एक उपाय है और वह—"सत्याग्रह" परन्तु सत्याग्रह क्या है? और कैसे सफल हो सकता है? इत्यादि विषयोंपर बड़ा मतभेद है। इन्हीं बातोंकी समीक्षा तात्विक दृष्टिसे इस पुस्तकमें की गयी है। मूल्य ।)

हिन्द स्वराज्य—ले० महात्मा गांधी। महात्मा गांधीके विचारोंको जाननेके लिये इस पुस्तकका पढ़ना बहुत ही आवश्यकीय है। इतनी बड़ी पुस्तकका मूल्य केवल ।-)

रणधीर और प्रेममोहिनी—ले० लाला श्रीनिवासदास। यह एक बड़ा ही चित्ताकर्षक नाटक है। इसकी भाषा बड़ी ही भावपूर्ण और मनोहर है, सभी पात्र अपनी अपनी मातृभाषामें ही वार्तालाप करते हैं। मुंशी सुखवासी लालकी टकसाली उर्दू, चौबेजीकी ब्रजभाषा और नाथूराम मारवाड़ीकी मारवाड़ी भाषा पढ़ते ही आनन्द आता है। जिस विषयका वर्णन है बस, पढ़ते पढ़ते आपके सामने उसका चित्र खिंच जायगा। वास्तविकताका तो इतना सुन्दर फोटो कमही नाटकोंमें देखनेको मिलता है। प्रेमके चढ़ाव उतारका मजा लेनेके लिये और प्रेमरसमें गोते लगानेके लिये बड़ी मनोहर पुस्तक है। यह पुस्तक कई स्कूलोंकी पाठ्यपुस्तकोंमें भी है। मूल्य ॥=)

जेवनार—लेखिका सत्यवती द्विवेदी गजपुरी । पाकशास्त्रपर आजकल कई पुस्तकें देखनेमें आती हैं परन्तु प्रायः सभी पुस्तकें पुरुषों-द्वारा लिखी गई हैं । परन्तु जेवनार एक अनुभवी गृहिणीद्वारा ही लिखी जानेके कारण सर्वाङ्ग सुन्दर एवं अधिक उपयोगी है । दूसरी बात यह है कि इस पुस्तकमें केवल निरामिष भोजनकी विधियाँ ही लिखी गयी हैं जिससे आपके घरकी बालिकाएं और बधुएं सरलतासे इस कलाको सीख सकती हैं । ऐसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तकका मूल्य केवल ।-)

भजनमाला—हिन्दीके प्राचीन सोलह भक्तों, जैसे कबीर, तुलसी, सूर, मीराबाई, सुन्दरदास इत्यादिके सुन्दर सुन्दर भक्तिरसपूर्ण भजनोंका अति उत्तम और मनोहर सङ्ग्रह उनके संक्षिप्त परिचयसहित । मूल्य ।)

बाल भजनमाला—छोटे छोटे बच्चोंको स्कूलों और पाठशालाओंमें प्रार्थना करानेके लिये बड़ा सुन्दर, सचित्र संग्रह है । मूल्य -)

मौखिक गणित—छोटे छोटे बच्चोंको जबानी हिसाब लगानेकी विधि तथा गिनती, पहाड़ा, पवन्ना, सवैया इत्यादि और अनेक जबानी हिसाबके गुर इसमें बताये गये हैं । मूल्य =)॥

हिन्दी अंक प्रकाश—इसमें बच्चोंको याद करनेके लिये गिनती, पहाड़ा, परन्ना, ड्योढ़ा इत्यादि तथा जबानी जाननेके लिये गुर बताये गये हैं । मूल्य केवल)॥

श्रीयुत प्रेमचन्दजीकी कहानियोंका खूब आदर है । इसलिये उनकी यह छः कहानियां अलग अलग छापी गई हैं । प्रत्येक कहानी बड़ी मनोहर और शिक्षाप्रद है । मूल्य भी खूब कम रखा गया है ।

बैंकका दिवाला -)	पंच परमेसर
बड़े घरकी बेटी -)	नमकका दारोगा
शान्ति -)	लाल फीता